शूद्रों का प्राचीन इतिहास

शूद्रों का प्राचीन इतिहास

रामशरण शर्मा



राजकमल प्रकाशन
नयी दिल्ली पटना

मूल्य रु 175 00

प्रथम संस्करण 1992

प्रकाशक राजकमल प्रकाशन प्रा लि
1-बी नेताजी सुभाष मार्ग
नई दिल्ली-110002

लेजर टाइपसैटर साकेत फोटोटाइप सैटर
शकरपुर विस्तार दिल्ली 92

मुद्रक मेहरा ऑफसेट प्रेस
दरियागंज नई दिल्ली -110002

आवरण नरेंद्र श्रीवास्तव

SHUDRON KA PRACHEEN ITIHAS
History by R S Sharma

ISBN 81 7178 212-4

अनुक्रम

आमुख

मैंने इस विषय का अध्ययन लगभग दस वर्ष पहले आरंभ किया किंतु भारतीय विश्वविद्यालय के शिक्षक की कार्यव्यस्तता और पुस्तकालय की समुचित सुविधा के अभाव के कारण कोई उल्लेखनीय प्रगति नहीं कर सका। इस ग्रंथ का अधिकांश स्कूल ऑफ ओरियंटल ऐंड अफ्रीकन स्टडीज में दो सिमेस्टरों (1954 56) में पूरा किया गया जहाँ जाने के लिए पटना विश्वविद्यालय ने मुझे उदारतापूर्वक अध्ययन अवकाश प्रदान किया। यह पुस्तक मुख्यतया मेरे उस शोधप्रबंध पर आधारित है जो लन्दन विश्वविद्यालय में 1956 ई में पी एच डी की उपाधि के लिए स्वीकृत हुआ था।

डॉ एफ आर आलचिन प्रो एच डब्ल्यू बेली, डॉ टी एन दवे, डॉ जे डी एम डेरेट प्रो सी वान फुरस्हैमेनडार्फ प्रो डी डी कोसंबी, प्रो आर एन शर्मा और डॉ ए के वार्डर और अनेक अन्य मित्रों को मैं धन्यवाद देता हूँ, जिनसे मुझे इस कार्य में अनेक प्रकार की सहायता मिली है। डॉ एल डी बार्नेट ने मुझे जो बहुमूल्य सुझाव दिए हैं उसके लिए मैं उनका आभारी हूँ। अपने निज मित्र डॉ देवराज को मैं अवश्य धन्यवाद दूँगा जिनकी सहायता यदि प्रमाणीकरण और आनुषंगिक कार्य में नहीं मिलती तो पुस्तक के प्रकाशन में कुछ और विलंब हो जाता। डॉ उपेंद्र ठाकुर का भी आभारी हूँ जिन्होंने अनुक्रमणी तैयार की है और प्रमाणीकरण में भी मेरी सहायता की है। सबसे बढ़कर इसे मैं अपना सौभाग्य मानता हूँ कि मुझे प्रो ए एल बैशम के साथ कार्य करने का अवसर मिला जिनके अविदित वैदुष्य मानदंड छात्रों की बौद्धिक स्वतंत्रता के प्रति स्नेह और सुदृढ़ संमित मार्गदर्शन से इस ग्रंथ की रचना में बहुत सहारा मिला है। इसमें तथ्य और निर्णय संबंधी जो भूलें अथवा अन्य तर्कलोपी अनियमितताएँ रह गई हों, उनका दायित्व मैं अपने ऊपर लेता हूँ।

रामशरण शर्मा

कि उसके समय वैसे पराश्रित वर्ग अब विद्यमान नही थे।[7]

इसमें संदेह नही कि बहुत सी अति पुरातन सामाजिक प्रथाएँ उन्नीसवीं शताब्दी में भी प्रचलित थी। इग्लैंड के विकासोन्मुख औद्योगिक समाज और भारत के पुराने तथ पतनोन्मुख समाज के बीच की गहरी विषमता ने राष्ट्रीय भावना से प्रेरित भारत के शिक्षित और बुद्धिजीवी वर्ग का ध्यान आकर्षित किया।[8] उन्होंने महसूस किया कि सती प्रथा, आजीवन वैधव्य, बाल विवाह और सजातीय विवाह की प्रथा राष्ट्र की प्रगति में बाधक हैं। चूँकि ये प्रथाएँ धर्मशास्त्रों के बल पर चल रही थीं इसलिए यह अनुभव किया गया कि उनमें आवश्यक सुधार आसानी से लाए जा सकते हैं यदि यह सिद्ध किया जा सके कि वे सुधार धार्मिक ग्रथों के अनुरूप है। इस प्रकार सन् 1818 ई में राममोहन राय ने सती प्रथा के विरोध में प्रकाशित अपनी प्रथम पुस्तिका (ट्रैक्ट) के द्वारा यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि शास्त्रों के अनुसार नारी के मोक्ष का सर्वोत्तम साधन सती प्रथा नही है।[9] इसी शताब्दी के पाँचवें दशक में स्मृति ग्रथों के आधार पर ईश्वरचद्र विद्यासागर ने विधवा विवाह का समर्थन किया।[10] सातवें दशक में आर्य समाज के सस्थापक स्वामी दयानद ने मूल सस्कृत ग्रथों के उद्धरणों का सकलन *सत्यार्थ प्रकाश* के नाम से प्रकाशित किया। उनके जरिए उन्होंने विधवा विवाह का समर्थन किया जन्म पर आधारित जाति प्रथा के बहिष्कार की घोषणा की[11] और शूद्रों को भी वेदाध्ययन का अधिकारी माना।[12] हमें मालूम नहीं कि आरभ में समाज सुधारकों को म्यूर की समकालीन रचनाओं[13] से कहाँ तक प्रेरणा मिली। उसने यह प्रमाणित करने का प्रयास किया है कि प्राचीन युग में यह विश्वास प्रचलित नही था कि चारों वर्णों की उत्पत्ति आदि मानव से हुई है।[14] हम यह भी नही जानते कि वेबर की उन रचनाओं का भी उन पर कोई प्रभाव पडा या नहीं जिनमें उसने ब्राह्मणों और सूत्रों के आधार पर वर्ण व्यवस्था का प्रथम महत्वपूर्ण विश्लेषण प्रस्तुत किया है।[15]

1891 ई मे जब सम्मति आयु विधेयक (एज ऑफ कसेंट बिल) प्रस्तुत किया जा रहा था सर आर जी भडारकर ने एक प्रामाणिक पुस्तिका प्रकाशित की जिसमें सस्कृत ग्रथों का उद्धरण देकर उन्होंने यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि वयस्क होने पर ही किसी लडकी का विवाह किया जाना चाहिए। दूसरी ओर बाल गगाधर तिलक ने जो विदेशी शासकों के विरुद्ध किसी भी हथियार का प्रयोग करने को तैयार रहते थे प्राचीन सदर्भग्रथों से उद्धरण प्रस्तुत करके इस विधेयक का विरोध किया।[16]

आधुनिक सुधारों के समर्थन में प्राचीन ग्रथों का उद्धरण देने की प्रवृत्ति कितनी व्यापक थी इसका कुछ अनुमान आर जी भडारकर (1895) के इन शब्दों से किया जा सकता है प्राचीन काल में लडकियों का विवाह वयस्क होने पर किया जाता था अब उनका

विवाह उसके पूर्व ही हो जाता है तब विधवा विवाह का प्रचलन था, अब वह बिल्कुल उठ गया है विभिन्न जातियों के लोग उन दिनों साथ मिलकर खाते थे और इस बात पर कोई रोक नहीं थी, लेकिन अब इन असंख्य जातियों में इस प्रकार का कोई पारस्परिक संपर्क नहीं है।'[17]

भारतीय विद्वानों ने समाज के पुराने रीति रिवाजों को इस ढंग से प्रस्तुत करने का प्रयास किया है कि वे नए युग के लोगों को अधिक ग्राह्य हों, पर पश्चिम के लेखकों को यह बात रुचिकर नहीं लगी है। सेनार्ट (1896) का कथन है कि अँगरेजी रंग-ढंग में पले हिंदुओं ने जातिप्रथा की तुलना यूरोपवासियों में प्रचलित सामाजिक भेदभावों से की है, पर पश्चिमी सामाजिक वर्गों के साथ यदि उनमें कुछ समानता दीखती भी है तो बहुत कम ही।[18] इसी प्रकार हापकिंस (1881) का विचार है कि शूद्रों की स्थिति 1860 के पहले अमरीकी गृह दासों से भिन्न नहीं थी।[19] हापकिंस के इस मंतव्य की समीक्षा करते हुए हिलब्रांट (1896) ने कहा है कि शूद्रों की तुलना पुराने जमाने के दासों से की जानी चाहिए, न कि बाद में विकसित ऐतिहासिक तथ्यों के संदर्भ में।[20]

हापकिंस की आलोचना करते हुए केतकर (1911) की शिकायत है कि हब्शियों के प्रति बरते जानेवाले जातीय भेदभाव से प्रभावित होने के कारण यूरोपीय लेखक भारतीय जातिप्रथा का नाहक बढ़ा चढ़ाकर चित्रण करते हैं।[21] केतकर, दत्त घुर्ये तथा अन्य नवीन भारतीय लेखकों की रचनाओं की मुख्य प्रवृत्ति यह है कि जातिप्रथा को इस रूप में चित्रित किया जाए कि वह नए ढाँचे में ढलकर वर्तमान आवश्यकताओं के अनुकूल बन सके।[22] इससे यह आभास मिलता है कि प्राचीन भारतीय सामाजिक समस्याओं का अध्ययन अधिकतर सुधारवादियों और कट्टरपंथियों के बीच झगड़े की पृष्ठभूमि में किया गया है। सुधार और राष्ट्रीयता की सशक्त प्रेरणाओं ने भारत के आरंभिक सामाजिक जीवन के बारे में निस्संदेह अनमोल रचनाओं को जन्म दिया है। किंतु आधुनिक दृष्टिकोण के अनुसार जो कुछ बातें अरुचिकर और अनुचित लगीं उनकी या तो उपेक्षा कर दी गई या उनकी ऐसी व्याख्या की गई जो युक्तिसंगत नहीं लगती। उदाहरणार्थ, यह कहा गया है कि अशक्तताओं के कारण शूद्रों के सुख या कल्याण में कोई कमी नहीं आई।[23]

आरंभिक सामाजिक जीवन के अनुकूल पहलुओं पर विशेष ध्यान देने की इस प्रवृत्ति के कारण प्राचीन भारतीय शूद्रों की स्थिति के बारे में ग्रंथों का सर्वथा अभाव है। यूरोपीय लेखकों का भी ध्यान मुख्यतः हिंदू समाज के उच्च वर्णों के अध्ययन पर ही केंद्रित रहा है। इस प्रकार म्यूर ने ब्राह्मण और क्षत्रियों के बीच के संघर्ष के आख्यानों का वर्णन 188 पृष्ठों में किया[24] और हापकिंस (1889) ने भी 'प्राचीन भारत में शासक जातियों की स्थिति' का विशद विवरण दिया है।[25] उत्तर पूर्व भारत के सामाजिक संगठन पर फिक (1897) की

सराहनीय रचना भी मुख्यतया क्षत्रियों ब्राह्मणों और गहपतियों या सेट्ठियों के वर्णन में ही सिमटी रही। निम्न वर्णों की स्थिति के प्रति इन लेखकों की अरुचि का कोई कारण नहीं हो सकता सिवाय इसके कि उनकी दृष्टि स्वय उनके अपने युग के प्रबल प्रमुख वर्ग के जीवन दर्शन से परिसीमित थी।

शूद्रों के बारे में प्रथम स्वतत्र रचना वी एस शास्त्री (1922) का एक छोटा सा निबध है जिसमें उन्होंने 'शूद्र' शब्द के दार्शनिक आधार की चर्चा की है।[26] इसी विषय पर एक अन्य लेख में उन्होंने यह बताने का प्रयास किया है कि शूद्र वैदिक अनुष्ठान कर सकते है।[27] घोषाल (1947) ने हाल के अपने एक निबध में धर्मसूत्रों में शूद्रों के स्थान की विवेचना की है।[28] इस विषय पर नवीनतम रचना रूसी लेखक जी एफ इलिन ने (1950) की है[29] जिन्होंने धर्मशास्त्रों के आधार पर[30] सिद्ध किया है कि शूद्र गुलाम नही थे। शूद्रों के सबध में एकमात्र प्रबध रचना (1946) सुविख्यात भारतीय राजनीतिज्ञ अबेडकर की है। यह शूद्रों के उद्भव के प्रश्न तक ही सीमित है।[31] लेखक ने पूरी सामग्री अनुवादो[32] से जुटाई है और इससे भी बुरी बात यह है कि उनके लेखन से यह आभास मिलता है कि उन्होंने शूद्रों को उच्च वश का सिद्ध करने का दृढ सकल्प लेकर अपनी यह पुस्तक लिखी है। यह उस मनोवृत्ति का परिचायक है जो हाल में नीची जाति के पढे लिखे लोगों में उत्पन्न हुई है। शाति पर्व के मात्र एक स्थल पर शूद्र पैजवन द्वारा किए गए यज्ञ की चर्चा को शूद्रों के मूलतया क्षत्रिय होने का पर्याप्त प्रमाण मान लिया गया है।[33] लेखक ने विभिन्न परिस्थितियों की उस पेचीदगी की ओर कोई ध्यान नहीं दिया है जिसके कारण शूद्र नामक श्रमजीवी वर्ग बना। हमारे विषय से सबधित एक बहुत हाल की रचना (1957) में[34] प्राचीन भारत के श्रमिकों से सबधित छिटपुट सूचनाएँ एकत्र की गई हैं किंतु इससे हमारी समझदारी में कोई महत्वपूर्ण वृद्धि नहीं होती। इस पुस्तक का प्रधान उद्देश्य है प्राचीन भारत में श्रम सबधी अर्थशास्त्र के क्रियाकलाप की छानबीन करना। इस क्रम में लेखक ने पाया है कि पहले भी आज की तरह पारिश्रमिक बोर्ड मध्यस्थता सामाजिक सुरक्षा आदि की व्यवस्था थी। फलस्वरूप यह पुस्तक आधुनिकता से ग्रस्त है। इतना ही नहीं यह पुस्तक प्रधानतया कौटिल्य के *अर्थशास्त्र* के आधार पर लिखी गई है, अपूर्ण है और इसमें ऐतिहासिक समझदारी का अभाव है।

प्रस्तुत ग्रथ की रचना का उद्देश्य मात्र प्राचीन भारत में शूद्रों की स्थिति का विस्तृत विवेचन करना ही नही बल्कि उसके ऐसे आधुनिक विवरणों का मूल्याकन करना भी है जो या तो अपर्याप्त आँकडों के आधार पर अथवा सुधारवादी या सुधारविरोधी भावनाओं से प्रेरित होकर लिखे गए हैं। इसमें लगभग पाँच सौ ई तक हुए शूद्रों के विकास को सुसबद्ध और क्रमानुसार रूप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया जाएगा।

इस ग्रथ की सामग्री के लिए मुख्यत साहित्यिक स्रोतों पर निर्भर करना पडा है, जिनका या जिनके कुछ अशों का काल निर्धारण कठिन है । हमने साहित्यिक ग्रथों का साधारणतया स्वीकृत कालक्रम अपनाया है किंतु जहाँ इस पर मतभेद है, वहाँ परपरा से भिन्न रचनातिथि अपनाने के बारे में हमने अपने तर्क प्रस्तुत किए हैं।

यद्यपि ये ग्रथ विभिन्न कालावधियों के है, फिर भी इनमें एक ही प्रकार के सूत्र और समरूप शब्दावली का ऐसा आधिक्य है कि इनके चलते समाज में हुए परिवर्तनों का पता लगाना कठिन है । इसलिए पाठभेदों पर पूरा ध्यान रखा गया है । इनमें से बहुतेरे ग्रथों को टीकाकार की सहायता के बिना समझ सकना सभव नहीं है, किंतु टीकाकार अधिकतर अपने युग के विचारों को आरभिक युगों पर आरोपित कर देते है ।

यह भी ध्यातव्य है कि ब्राह्मण और ब्राह्मणेतर ग्रथों में ब्राह्मणों या क्षत्रियों या दोनों की प्रभुता को प्रामाणिक सिद्ध करने का प्रयास किया गया है और उनमें शायद ही कही शूद्रों के प्रति सहानुभूति की भावना है । यह दलील दी जाती है कि धर्मशास्त्र और अन्यान्य ग्रथों के लेखक शूद्रों के शत्रु थे अत प्रमाण की दृष्टि से इनका महत्व नहीं है ।[35] किंतु अन्य प्राचीन समाजों के विधिग्रथों में भी भारतीय धर्मशास्त्रों की तरह ही वर्ग के आधार पर विधान बनाने का सिद्धात अपनाया गया है । दुर्भाग्यवश पर्याप्त आँकडों के अभाव में निश्चित रूप से यह बताना कठिन है कि धर्मशास्त्र के न्यायसूत्रों का कहाँ तक अनुपालन होता था ।

चूँकि शूद्र श्रमिक वर्ग के थे अत इस पुस्तक में उनकी माली हालत और उच्च वर्ग के लोगों के साथ उनके आर्थिक और सामाजिक सबधों का स्वरूप निश्चित करने पर विशेष ध्यान रखा गया है । स्वाभाविक रूप से इसमें दासों की स्थिति का भी अध्ययन करना पडा है क्योंकि शूद्रों को उनके सदृश माना जाता था । अछूतों को सिद्धाततः शूद्रों की कोटि में रखा गया है और यही कारण है कि उनकी उत्पत्ति और स्थिति की भी चर्चा विस्तारपूर्वक की गई है ।

शूद्रों की स्थिति में हुई प्रगति की सुचारु व्याख्या और उसे सोदाहरण प्रस्तुत करने के उद्देश्य से जहाँ कही सभव हुआ है उसकी तुलना प्राचीन काल के उन समाजों और आदिकालीन लोगों की स्थिति में हुई उसी तरह की प्रगति के साथ की गई है जिनकी जानकारी मानवशास्त्रवेत्ताओं को प्राप्त है ।

संदर्भ

1 विवादार्णवसेतु, अनुवाद की भूमिका पृ IX इस ग्रंथ का अंग्रेजी से जर्मन भाषा में अनुवाद 1778 ई में हुआ
2 इस्टीट्यूट्स ऑफ हिंदू लॉ भूमिका पृ XIX रायल एशियाटिक सोसाइटी की प्रथम साधारण सभा (15 मार्च 1823) में कोलब्रुक का भाषण एसेज I पृ 1 2
3 वही II पृ 157 70
4 वही II पृ 157
5 जेम्स मिल : 'दि हिस्ट्री ऑफ इंडिया' II पृ 166 I पृ 169 पृ 169 पाद टिप्पणी 1 ऐसा प्रतीत होता है कि मिल ने भारत के इतिहास में जो साधारणीकरण और सामान्य विवेचन प्रस्तुत किया उसका ब्रिटिश इतिहासकारों पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा
6 वही I पृ 34
7 वही पृ 107
8 जे सी घोष 'ब्राह्मणिज्म ऐंड शूद्र' पृ 46 1902 ई में एक पुराने भारतीय लेखक ने खेद प्रकट किया है कि ब्राह्मणों को यूरेशियन (आंग्ल भारतीय) उपोगपतियों से नीचे स्थान दिया गया
9 सं —जे सी घोष दि इंगलिश वर्क्स ऑफ राममोहन राय' I प्रस्तावना पृ XVIII II पृ 123 192
10 आर जी भंडारकर कलेक्टेड वर्क्स II पृ 498
11 स्वामी दयानंद सरस्वती सत्यार्थ प्रकाश, चतुर्थ समुल्लास पृ 83 92, 113 122
12 वही तृतीय समुल्लास पृ 39 73 74
13 जे म्यूर ओरिजिनल संस्कृत टैक्सट्स' I लंदन 1872
14 वही पृ 159 60
15 इंडिशे स्टुडियन x 1 160
16 आर जी भंडारकर 'कलेक्टेड वर्क्स II पृ 538 'हिस्ट्री ऑफ चाइल्ड मैरिज' पर जाली के निबंध की भंडारकर द्वारा की गई आलोचना भी वही पृ 584 602
17 वही II पृ 522 23
18 एमिल सेनार्ट कास्ट इन इंडिया' पृ 12 13
19 ई डब्ल्यू हापकिंस म्यूचुअल रिलेशंस ऑफ दि फोर कास्ट्स इन मनु पृ 102
20 हिलब्राट ब्राह्मणेन उण्ड शूद्राज फेस्टशृफ्ट फ्यूर कार्ल वेनहोल्ड पृ 57
21 केतकर 'हिस्ट्री ऑफ कास्ट' पृ 78 पाद टिप्पणी 3
22 वही पृ 9 वेन्वनकर की पुस्तक 'हिंदू सोशल इंस्टीट्यूशंस' में राधाकृष्णन का प्राक्कथन दत्त और घुर्ये की रचनाओं में अपेक्षाकृत अधिक ऐतिहासिक दृष्टिकोण लक्षित हुआ है पर दत्त पूर्व निर्दिष्ट भूमिका पृ VI
23 सरकार हिंदू सोशियालजी पृ 92 95 शुक्रनीति सार के आधार पर देखें के वी रंगस्वामी अय्यगर इंडियन कैमरेलिज्म पृ 85
24 जे म्यूर ओरिजिनल संस्कृत टैक्सट्स I अध्याय IV
25 (जरनल ऑफ दि अमेरिकन ओरिएण्टल सोसायटी) बाल्टीमोर xiii पृ 57 376
26 वी एस शास्त्री (इंडियन एंटीक्वेरी) 1I पृ 137 9

27 वी एस भट्टाचार्य 'दि स्टेटस ऑफ शू' इन एनशिएट इंडिया (विश्वभारती क्वार्टरली) 1 पृ 268 278

28 यू एन घोषाल (इंडियन कल्चर) XIV पृ 21 27

29 जी एफ इलिन शूद्राज उन्ड स्कलावेन इन डेन अल्टिनडिस्चेन गेसेतजबुचेर्न (सौजेटवसेनशैफ्ट 1952) 'वैस्तानिक ड्रेवेनीय इस्तोरी से अनूदित 1950 स 2, पृ 94 107

30 काणे ने शूद्रों के बारे में धर्मशास्त्र से जो उद्धरण सकलित किए हैं उनमें शूद्रों की स्थिति का ऐतिहासिक दृष्टि से अध्ययन करने के लिए मूल्यवान सामग्री प्राप्त होती है।

31 अबेडकर हू वेयर दि शूद्रज ?

32 वही भूमिका पृ IV

33 यह ध्यान देने की बात है कि हाल के जातीय आदोलन में कई शूद्र जातियों ने क्षत्रिय होने का दावा किया। दुसाप दुःशासन के और ग्वाले यदु के वशज होने का दावा करते हैं।

34 कै एम शरण लेबर इन एनशिएट इंडिया

35 अबेडकर पूर्व निर्दिष्ट 114

उत्पत्ति

1847 ई. में रोथ ने संकेत किया था कि शूद्र आर्यों के समाज से बाहर के रहे होंगे।[1] उस समय से सामान्यतया यह विचारधारा चली आ रही है कि ब्राह्मणकालीन समाज का चौथा वर्ण मुख्यतया आर्येतर लोगों का था जिनकी वैसी स्थिति आर्य विजेताओं ने बना रखी थी।[2] यूरोप के गोराग और एशिया तथा अफ्रीका के गौरांगेतर लोगों के बीच हुए संघर्ष से साम्य के आधार पर इस विचारधारा की पुष्टि की जाती रही है।

यदि दास और दस्यु दोनों आर्येतर भाषा बोलनेवाले भारत के मूल निवासी हों[3] तो उपर्युक्त विचारधारा के पक्ष में *ऋग्वेद* से प्रमाण प्रस्तुत करना सम्भव है। इस ग्रंथ के अनेक सूक्तों में जिन्हें *अथर्ववेद* में भी दुहराया गया है, आर्यों के देवता इंद्र को दासों के विजेता के रूप में चित्रित किया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि ये दास मनुष्य ही रहे होंगे। वेदों में कहा गया है कि इंद्र ने अधम दास वर्ण को गुफाओं में रहने को बाध्य कर दिया था।[4] विश्व नियंता की हैसियत से दासों को पराधीन बनाने का भार उनके ऊपर है[5], और उनसे यह भी अनुरोध किया जाता है कि वे इन दासों का विनाश करने के लिए तैयार रहें।[6] ऋग्वैदिक स्तुतियों में बार बार इंद्र से अनुरोध किया गया है कि वे दास जनजाति (विश्) का विध्वंस करें।[7] इंद्र के बारे में यह भी कहा गया है कि उसने दस्युओं को सभी अच्छे गुणों से वंचित रखा है और दासों को अपने वश में किया है।[8]

वेदों में दासों की अपेक्षा दस्युओं के विनाश और उन्हें पराधीन बनाने की चर्चा अधिक है। कहा गया है कि दस्युओं को मारकर इंद्र ने आर्य वर्ण की रक्षा की है।[9] स्तुतियों में उससे अनुरोध किया गया है कि वह दस्युओं से युद्ध करे ताकि आर्यों की शक्ति बढ़ सके।[10] महत्व की बात है कि दस्युओं की हत्या की चर्चा कम से कम बारह जगहों पर हुई है जिनमें से अधिकांश हत्याएँ इंद्र के द्वारा ही बताई गई हैं।[11] इसके विपरीत यद्यपि दासों

की हत्या के अलग अलग प्रसग भी आए हैं किंतु 'दासहत्या' शब्द कहीं नहीं मिलता है। इससे पता चलता है कि दास और दस्यु पर्यायवाची नहीं थे और आर्य दस्युओं का विनाश निर्ममतापूर्वक करते थे, पर दासों के प्रति उनकी नीति नरम थी।

आर्यों और उनके शत्रुओं के बीच जो सघर्ष हुए उनमें मुख्यत शत्रुओं के किलों और दीवारों से घिरी बस्तियों को ध्वस्त किया गया। दासों और दस्युओं, दोनों ही के कब्जे में अनेक किलाबद बस्तियाँ थीं[12], जिनका सबध भी सामान्यतया आर्यों के शत्रुओं के साथ जोडा जाता है।[13] मालूम होता है कि घुमक्कड आर्यों की आँखें दुश्मनों की बस्तियों में सचित सपत्ति पर लगी हुई थी और उन्हें हडपने के लिए दोनों में निरतर सघर्ष होता रहता था।[14] उपासक की कामना रहती थी कि सभी ऐसे लोगों को मार दिया जाए जो यज्ञ, हवन आदि नहीं करते हैं और उन्हें मार देने के बाद उनकी सारी सपत्ति लोगों में बाँट दी जाए।[15] दस्युओं को सपत्तिशाली (धनिन) होने पर भी यज्ञ न करनेवाला (अक्रतु) कहा गया है।[16] दो ऐसे दासप्रमुखों का उल्लेख किया गया है जो धनलोलुप माने गए हैं।[17] कामना की गई है कि इद्र[18] दासों की शक्ति को क्षीण करें और उनकी एकत्रित सपत्ति लोगों में बाँट दें। दस्युओं के पास स्वर्ण और हीरा जवाहरात भी थे, जिनके चलते प्राय आर्यों का मन और भी ललच गया।[19] किंतु आर्य जैसी पशुपालक जाति को मुख्यतया अपने दुश्मनों के पशुधन का अधिक लोभ था। तर्क दिया जाता है कि 'कीकट' (हरियाणा में रहनेवाली एक जनजाति) गाय रखने के अधिकारी नहीं हैं क्योंकि वे यज्ञ में गव्य (दुग्धोत्पादित वस्तुओं) का उपयोग नहीं करते।[20] दूसरी ओर यह भी सभव है कि आर्यों के शत्रु उनके घोडों और रथों को अधिक महत्व देते थे। *ऋग्वेद* में एक कथा आई है कि असुरों ने राजर्षि दधीति के नगर पर कब्जा कर लिया था किंतु जब असुर लौट रहे थे तो इद्र ने उन्हें घेरकर पराजित किया और उनसे मवेशी घोडे तथा रथ छीनकर राजर्षि को वापस कर दिए।[21]

दस्युओं के रहन सहन के ढग से भी आर्य उनके वैरी बन गए। ऐसा लगता है कि आर्यों का पशुपालन पर आधारित जनजातीय और अस्थायी जीवनक्रम देशीय सस्कृति के स्थायी एव शहरी जीवन से बेमेल था।[22] आर्यों का जीवन प्रधानतया जनजातीय जीवन था, जो गण सभा समिति और विदथ जैसी विभिन्न सामुदायिक सस्थाओं के माध्यम से रूपायित हुआ है और जिसमें यज्ञ का बहुत महत्वपूर्ण स्थान था। किंतु दस्युओं को यज्ञ से कोई सरोकार नहीं था। दासों के साथ भी यही बात थी क्योंकि इद्र के बारे में बताया गया है कि वह दास और आर्य का विभेद करते हुए यज्ञस्थल में आता था।[23] *ऋग्वेद* के सातवें मडल का एक सपूर्ण सूक्त अक्रतुन्, अश्रद्धान्, अयज्ञान् और अयज्वान जैसे विशेषणों की शृखला मात्र है। इनका प्रयोग दस्युओं के लिए पुरजोर तौर पर यह सिद्ध करने के लिए किया गया है कि उनको यज्ञ पसद नहीं था।[24] इद्र से कहा गया है कि वे यज्ञपरायण आर्य

और यज्ञविमुख दस्युओं के बीच अंतर करें।[25] 'अनिंद्र' (इंद्र को न माननेवाला) शब्द का प्रयोग भी कई स्थलों पर किया गया है,[26] और अनुमानतः इससे दस्युओं, दासों और संभवतः कुछ भिन्न मतावलंबी आर्यों का बोध होता है। आर्यों के कथनानुसार दस्यु तिलस्मी जादू करते थे।[27] ऐसा मत *अथर्ववेद* में विशेष रूप से व्यक्त किया गया है। यहाँ दस्युओं को भूत-पिशाच के रूप में प्रस्तुत किया गया है और इन्हें यज्ञ स्थल से भगाने की चेष्टा की गई है।[28] कहा जाता है कि 'अंगिरस्' मुनि के पास एक परम शक्तिशाली रक्षाकवच (ताबीज) था जिससे वे दस्युओं के किले ध्वस्त कर सकते थे।[29] ऋग्वैदिक काल में उन्होंने जो लड़ाइयाँ लड़ी थीं, उनके कारण ही *अथर्ववेद* में दस्युओं को दुरात्मा के रूप में चित्रित किया गया है। *अथर्ववेद* में कहा गया है कि ईश्वर के निंदक दस्युओं को बलिवेदी पर चढ़ा दिया जाना चाहिए।[30] ऐसा विश्वास था कि दस्यु विश्वासघाती होते हैं, वे आर्यों की तरह धर्म कर्म नहीं करते और उनमें मानवता नहीं होती।[31]

आर्यों और दस्युओं के रहन सहन में जो अंतर है, उससे आर्यों के व्रत, जिसका अर्थ सामान्यतया जीवन का सुनिश्चित ढंग होता है, के प्रति दस्युओं की क्या दृष्टि थी इसका पता चलता है।[32] यदि व्रत और व्रात, जिसका अर्थ जनजातीय दल या समूह होता है, के बीच संबंध स्थापित करना संभव हो तो यह कहा जा सकता है कि व्रत शब्द का अर्थ जनजातीय कानून या प्रथा है। दस्युओं को साधारणतः अव्रत[33] और अन्यव्रत[34] कहा गया है। अपव्रत शब्द का प्रयोग दो स्थलों पर हुआ है जो प्रायः दस्युओं और भिन्न मत रखनेवाले आर्यों के लिए है।[35] ध्यान देने की बात है कि दासों के लिए इस प्रकार के विशेषणों का प्रयोग नहीं हुआ है जिससे मालूम होता है कि वे दस्युओं की अपेक्षा आर्यों के तौर तरीके अधिक पसंद करते थे।

ऐसा लगता है कि आर्यों और उनके शत्रुओं में रंग का अंतर था। आर्य, जो मानव (मानुषी प्रजा) कहे जाते थे और अग्नि वैश्वानर की पूजा करते थे, कभी कभी काले रंगवाले मनुष्यों (असिक्नीविश) की बस्तियों में आग लगा देते थे और वे लोग संघर्ष किए बिना ही अपना सर्वस्व छोड़कर भाग खड़े होते थे।[36] आर्य देवता सोम को काले वर्ण के लोगों का हिंसक कहा गया है, जो दस्यु होते थे।[37] इंद्र को भी काले रंग के राक्षसों (त्वचमसिक्नीम्) से संघर्ष करना पड़ा था,[38] और एक स्थल पर उन्हें पचास हजार काले वर्णवालों (कृष्ण) की हत्या का श्रेय दिया गया है, जिन्हें सायण काले वर्ण का राक्षस मानते हैं।[39] इंद्र का असुरों की काली चमड़ी उधेड़ते हुए भी चित्रण किया गया है।[40] इंद्र का एक वीरतापूर्ण कार्य, जिसका कुछ ऐतिहासिक आधार हो सकता है, कृष्ण नामक योद्धा के साथ उनका युद्ध है। कहा जाता है कि जब कृष्ण ने अपनी दस हजार सेना के साथ अंशुमती या यमुना पर डेरा गिराया तब इंद्र ने मरुतों (आर्यविश) को संगठित किया और पुरोहित देव बृहस्पति

की सहायता से अदेवी विश के साथ युद्ध किया।[41] अदेवी विश का अर्थ सायण ने काले रग का असुर बताया है (कृष्णरूपा असुरसेना)। कृष्ण को श्याम वर्ण का आर्येतर योद्धा बताया गया है जो यादव जाति का था।[42] यह सभव मालूम पडता है, क्योंकि परवर्ती अनुश्रुति है कि इद्र और कृष्ण में बडी शत्रुता थी। ऐसा प्रसग आया है जिसमें कृष्णगर्भा के मारे जाने की चर्चा है जिसका अर्थ सशयपूर्वक सायण ने कृष्ण नामक असुर की गर्भवती पत्नियाँ बताया है।[43] इसी प्रकार इद्र द्वारा कृष्णयोनि दासी के विनाश का भी उल्लेख है।[44] सायण की उर्वर कल्पना ने उन्हें निकृष्ट जाति की आसुरी सेना (निकृष्ट जाती आसुरी सेना) माना है, किंतु विल्सन कृष्ण को श्याम वर्ण का द्योतक मानते हैं। यदि विल्सन का अर्थ सही माना जाए तो यह स्पष्ट है कि दास काले रग के होते थे। किंतु हो सकता है कि उन्हें उसी प्रकार काले रग का कहा गया हो, जिस प्रकार दस्युओं और आर्यों के अन्य शत्रुओं को कहा गया है। उपर्युक्त प्रसगों से निस्सदेह यह स्पष्ट होता है कि अग्नि और सोम के उपासक आर्यों को भारत के काले लोगों से युद्ध करना पडा था। ऋग्वेद में एक प्रसग आया है जिसमें पुरुकुत्स का पुत्र 'त्रसदस्यु' नामक वैदिक योद्धा काले रग के लोगों के नेता के रूप में वर्णित है।[45] इससे यह स्पष्ट होता है कि उसने उन लोगों पर अपनी धाक जमा रखी थी।

यदि दस्युओं के सबध में प्रयुक्त अनास[46] शब्द का अर्थ नासाविहीन या चिपटी नाकवाला किया जाए और दासों के प्रसग में प्रयुक्त वृषशिप्र शब्द[47] का अर्थ वृषभ ओष्ठवाला' या उभरे ओठोंवाला माना जाए तो यह मालूम पडेगा कि मुखाकृतियों की दृष्टि से आर्यों के शत्रु उनसे भिन्न प्रकार के थे।

ऋग्वेद में 'मृध्रवाक शब्द का प्रयोग विभिन्न रूप में छ स्थलों पर हुआ है[48] जिससे पता चलता है कि आर्यों और उनके शत्रुओं में बोलचाल की रीति भिन्न थी। यह दो स्थलों पर दस्युओं का विशेषण है।[49] सायण ने इसका अर्थ विद्वेषपूर्ण वचन वाला किया है, और गेल्डनर ने इसे 'झूठ बोलनेवाले का पर्याय माना है।[50] इससे पता चलता है कि आर्यों और दस्युओं में कोई भाषाजन्य अतर था और दस्यु अपनी अनुचित वाणी से आर्यों की भावना को चोट पहुँचाते थे। अत आर्यों और उनके दुश्मनों के बीच युद्ध में यद्यपि मुख्य प्रश्न पशु, रथ ओर अन्य प्रकार की सपत्ति को दखल करने का रहता था, फिर भी जाति, धर्म और बोलचाल की रीति में अतर होने के कारण भी उनके सबध कटु बने रहते थे।

यदि *ऋग्वेद* में दास और दस्यु शब्द के प्रयोग की आपेक्षिक मात्रा से कोई निष्कर्ष निकाला जा सके, तो जान पडता है कि दस्युगण जिनकी चर्चा चौरासी बार हुई है स्पष्टत दासों से अधिक सख्या में थे जिनका उल्लेख इकसठ बार हुआ है।[51] दस्युओं के

साथ युद्ध में अधिक रक्तपात हुआ। अपने विस्तार की आरंभिक अवस्था में आर्यों को जीविकोपार्जन के लिए पशुधन की आकांक्षा रहती थी। इसलिए स्वभावतया उन्होंने नागर जीवन और सगठित कृषि का महत्व समझा।[52] ऐसा जान पड़ता है कि आर्यों के आने के पहले की नगर बस्तियाँ पूर्णत ध्वस्त हो गई थीं। युद्ध में शत्रुओं से अपहृत वस्तुओं, खासकर मवेशियों के कारण सरदारों और पुरोहितों की शक्ति बढ़ी होगी और वे 'विश्' से ऊपर उठे होंगे। बाद में क्रमश उन्होंने समझा होगा कि पुरानी संस्कृति के किसानों से श्रमिकों का काम लिया जा सकता है और उनसे कृषिकार्य कराया जा सकता है साथ ही अपनी जनजाति के लोगों से भी श्रमिकों का काम लेना उन्होंने धीरे धीरे आरंभ किया होगा।

आर्यों और उनके शत्रुओं के बीच तो संघर्ष चल ही रहा था आर्य जनजातीय समाज में भी आतरिक द्वंद्व विद्यमान था। एक युद्धगीत में 'मन्यु', —मूर्तिमान क्रोध से याचना की गई है कि वे आर्य और दास दोनों तरह के शत्रुओं को पराजित करने में सहायक हों।[53] इंद्र से अनुरोध किया गया है कि वे ईश्वर में आस्था नहीं रखनेवाले दासों और आर्यों से युद्ध करें ये इंद्र के अनुयाइयों के शत्रु के रूप में वर्णित है।[54] *ऋग्वेद* में एक स्थल पर कहा गया है कि इंद्र और वरुण ने सुदास् के विरोधी दासों और आर्यों का सहार कर उसकी रक्षा की।[55] सज्जन और धर्मपरायण लोगों की ओर से दो मुख्य ऋग्वैदिक देवताओं, अग्नि और इंद्र से प्रार्थना की गई है कि वे आर्यों और दासों के दुष्टतापूर्ण कार्यों और अत्याचारों का शमन करें।[56] चूंकि आर्य खुद मानवजाति के मुख्य दुश्मन थे, अत आश्चर्य नहीं कि इंद्र ने दासों के साथ साथ आर्यों का भी विनाश किया होगा।[57] विल्सन ने *ऋग्वेद* के एक परिच्छेद का जैसा अनुवाद किया है उसे यदि स्वीकार किया जाए तो उसमें इंद्र की भरपूर प्रशसा की गई है क्योंकि उन्होंने सप्तसिंधु (सात नदियों) के तट पर राक्षसों और आर्यों से लोगों की रक्षा की। उनसे यह भी अनुरोध किया गया है कि वे दासों को अस्त्र शस्त्रविहीन कर दें।[58]

ऋग्वेद में आर्य शब्द का प्रयोग छत्तीस बार हुआ है जिनमें से नौ स्थलों पर बताया गया है कि खुद आर्यों में भी आपसी मतभेद थे।[59] शत्रु आर्यों की दस्युओं के साथ एक स्थल पर चर्चा है और पाँच स्थलों पर दासों के साथ, जिससे यह पता चलता है कि आर्यों के एक समूह से दस्युओं की अपेक्षा दासों का सबंध अच्छा था। आर्यों के अपने आपसी संघर्ष में दास स्वभावत आर्यों के मित्र और सहयोगी थे। इसलिए आर्यों के समाज का जनजातीय आधार धीरे धीरे क्षीण होने लगा और आर्यों तथा दासों के विलयन की क्रिया को बल मिला। *ऋग्वेद के आरंभिक भाग में ऐसे पाँच प्रसग आए है, जिनसे पता चलता है* कि आतरिक संघर्षों की परपरा बहुत ही पुरानी थी।

आर्यों में बहुत पहले जो आंतरिक संघर्ष हुए थे, उनका सबसे महत्वपूर्ण प्रमाण 'दाशराज' युद्ध है, जो *ऋग्वेद* में एकमात्र महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना है। गेल्डनर के अनुसार *ऋग्वेद* मंडल सात का तैंतीसवाँ सूक्त, जिसमें इस युद्ध की चर्चा की गई है, प्रारंभिक काल से संबंधित है।[60] दस राजाओं का युद्ध मुख्यतः ऋग्वेदकालीन आर्यों की दो मुख्य शाखाओं 'पूरुओं' और 'भारतों' के बीच हुआ था, जिसमें आर्येतर लोग भी सहायक के रूप में सम्मिलित हुए होंगे।[61] ऋग्वेद का सुविख्यात नायक सुदास् भारतों का नेता था और पुरोहित वसिष्ठ उसके सहायक थे। इनके शत्रु थे पाँच प्रसिद्ध जनजातियाँ यथा 'अनु', 'द्रुह्यु', 'यदु', 'तुर्वशस्' और 'पूरु' तथा पाँच गौण जनजातियाँ यथा 'अलिन', 'पक्थ', 'भलानस्', 'शिव' और 'विषाणिन' के दस राजा। विरोधी गुट के सूत्रधार ऋषि विश्वामित्र थे और उसका नेतृत्व पूरुओं ने किया था। दास काले रंग के होते थे।[62] ऐसा प्रतीत होता है कि इस युद्ध में आर्यों की संयुक्त जनजातियों ने अपना अलग अस्तित्व बनाए रखने का स्मरणीय प्रयास किया। पर सुदास् के नेतृत्व में भारतों ने परुष्णि (रावी) के किनारे उन्हें पूरी तरह हरा दिया। इन पराजित आर्यों के साथ कैसा व्यवहार किया गया इसका कोई संकेत नहीं मिलता, किंतु अनुमान है कि उनके प्रति भी वैसा ही व्यवहार किया गया होगा जैसा आर्येतर लोगों के साथ किया गया था।

यह असंभव नहीं कि इस तरह के और भी कई अंतर्जातीय संघर्ष हुए हों जिनका कोई वृत्तांत हमें उपलब्ध नहीं। ऐसे संघर्षों के संकेत उन प्रसंगों में मिलते हैं जिनमें आर्यों को देवताओं द्वारा प्रतिष्ठित व्रतों का भंजक माना गया है। काणे ने *ऋग्वेद* से पाँच अंश उद्धृत किए हैं जिनका ऐसा अर्थ लगाया जा सकता है।[63] आदियुगीन ऋषि अथर्वण ने वरुण के साथ हुए संभाषण में यह दावा किया है कि मैं जो नियम बनाऊँगा उसका उल्लंघन कोई भी दास जो आर्य से भिन्न हो नहीं कर सकता चाहे वह कितना भी बड़ा क्यों न हो।[64]

म्यूर ने *ऋग्वेद* से ऐसे अट्ठावन अंश उद्धृत किए हैं जिनमें आर्य समुदाय के सदस्यों की धार्मिक शत्रुता या उदासीनता की भर्त्सना की गई है।[65] इनमें से बहुत से परिच्छेद *ऋग्वेद* के मूल भाग (मंडल दो से आठ) में उपलब्ध हैं और उनसे पता चलता है कि आदिकाल में आर्यों की स्थिति कैसी थी। इनमें से कई अंश उन अनुदार व्यक्तियों के विरुद्ध हैं, जिन्हें अराधसम्[66] या अपृणत[67] कहा गया है। एक स्थल पर इंद्र को समृद्ध व्यक्तियों (एधमानद्विट्) का संभवतः उन समृद्ध आर्यों का जिन्होंने उसकी कोई सेवा नहीं की थी दुश्मन बताया गया है।[68] दास और आर्य अपनी संपत्ति छिपाकर रखते थे, जिसके चलते उनका विरोध होता था।[69] कहा जाता है कि अग्नि ने अपनी प्रजा की भलाई के लिए समतल भूमि और पहाड़ियों में स्थित संपत्ति को अपने कब्जे में कर लिया और अपनी प्रजा के दास तथा आर्य शत्रुओं को हराया।[70] इन अंशों में यह बताया गया है कि जो आर्य

दुश्मन समझे जाते थे उनकी भी संपत्ति (अनुमानत मवेशी) छीन ली जाती थी और उन्हें आर्येतर लोगों की भाँति कंगाल बना दिया जाता था।

कई अनुच्छेदों में पणियों के रूप में विख्यात लोगों के प्रति सामान्यत शत्रुतापूर्ण भाव देखने को मिलता है।[71] म्यूर ने उन्हें कंजूस माना है।[72] *वैदिक इंडेक्स* के प्रणेताओं के अनुसार *ऋग्वेद* में 'पणि' शब्द उस व्यक्ति का द्योतक है जो संपत्तिवान हो, पर न तो ईश्वर को हव्य अर्पित करता हो और न पुरोहितों को दक्षिणा देता हो, फलत संहिता के रचयिताओं की घृणा का पात्र हो।[73] एक अनुच्छेद में उन्हें 'बेकनाट' या सूदखोर (?) बताया गया है जिन्हें इंद्र ने पराजित किया था।[74] पणि यज्ञ करने के लिए सक्षम थे और वैरदेय (वरगेल्ड) पाने के अधिकारी भी थे। इन तथ्यों से ज्ञात होता है कि वे आर्य समुदाय के ही सदस्य थे।[75] हिलब्रांट उन्हें पर्णियों से अभिन्न मानते हैं।[76] पर्णि दहे अर्थात अश्वारोही और लड़ाकू सीथियन जनजातियों के विशाल समुदाय के अंग।[77] *वैदिक इंडेक्स* के प्रणेता समझते है कि यह शब्द इतना व्यापक है कि इससे आदिवासी या विद्वेषी आर्य जनजातियों का भी बोध होता है।[78]

जिन परिच्छेदों में पणियों को कंजूस बताया गया है और साधारणत अनुदार व्यक्तियों की निंदा की गई है उनमें से कुछ दान लोभी पुरोहितों के इशारे पर लिखे गए होंगे। किंतु उनसे सामान्यतया पता चलता है कि अपने बांधवों का गला दबाकर भी संपत्ति इकट्ठी करने की प्रवृत्ति कुछ आर्यों में पाई जाती थी। ऐसे लोगों से अपेक्षा की जाती थी कि वे अपनी एकत्रित संपत्ति में से इंद्र तथा अन्य देवताओं को यज्ञ में धनराशि अर्पित करें जिससे इस धन में फिर दूसरों को कुछ हिस्सा मिल सके[79] और जनसमुदाय को बार बार सहभोज का अवसर मिले। पर लूट के धन का अधिकांश अंश जब वे लोग अपने पास रखने लगे तो आर्थिक और सामाजिक विषमता का जन्म हुआ।

आर्यों के अन्य जनजातियों के साथ और उनके अंतर जनजातीय संघर्षों के कारण समाज विशृंखल होता गया और जैसे जैसे पशुपालन की अपेक्षा कृषि जोर पकड़ती गयी सामाजिक वर्गों की स्थापना हुई। यद्यपि *ऋग्वेद* में वर्ण शब्द का प्रयोग आर्य[80] और दास[81] के लिए हुआ है किंतु इससे किसी ऐसे श्रम विभाजन का संकेत नहीं मिलता जो परवर्ती काल में समाज के व्यापक वर्गीकरण का आधार हुआ। आर्य वर्ण और दास वर्ण दो वृहद जनजातीय समूह थे जो सामाजिक वर्गों के रूप में विघटित हो रहे थे। आर्यों के संबंध में इसके पर्याप्त प्रमाण हैं। सेनार्ट की आलोचना करते हुए ओल्डेनबर्ग ने ठीक ही कहा है कि ऋग्वेद में जाति (कास्ट) की चर्चा नहीं है,[82] किंतु इस संकलन से आरंभिक अवस्था में सामाजिक वर्गभेद के धीरे धीरे पनपने का आभास मिलता है। उसमें 'ब्राह्मण शब्द का प्रयोग पंद्रह बार और 'क्षत्रिय' शब्द का प्रयोग नौ बार हुआ है। फिर भी 'जन और

'विश्'[83] जैसे शब्दों के बार बार दुहराए जाने और उनके रीतिरिवाजों से पता चलता है कि ऋग्वैदिक समाज जनजातीय था। हमें मालूम नहीं कि जब आर्य भारत में पहली बार आए तो उनके पास दास थे या नहीं। कीथ का विचार है कि वैदिक युग के भारतीय प्रधानतया पशुचारी थे।[84] कम से कम *ऋग्वेद* के आरंभिक भागों में वर्णित आर्यों के बारे में यह समीचीन है। मानव विज्ञान संबंधी अनुसंधानों से पता चलता है कि कुछ पशुचारी जनजातियाँ भी दास रखती हैं, हालाँकि अपेक्षित अर्थ में दासप्रथा का अधिक विकसित रूप कृषक जनजातियों में दिखाई पड़ता है।[85]

इसमें संदेह नहीं कि हड़प्पा समुदाय की शहरी आबादी में जो आर्थिक विषमता थी, वह लगभग वर्गभेद जैसी थी।[86] व्हीलर की राय है कि हड़प्पा और मेसोपोटामिया के निवासियों के बीच दास व्यापार भी हुआ करता था।[87] यह मानना युक्तिसंगत है कि हड़प्पा की शहरी आबादी का विकास निकटवर्ती देहातों के किसानों द्वारा अतिरिक्त कृषि उत्पादनों की आपूर्ति के बिना नहीं हो सकता था। सिंधु घाटी का राजनीतिक ढाँचा सुमेर के राजनीतिक ढाँचे जैसा माना गया है, जहाँ पुरोहित राजा आज्ञाशील प्रजा पर सुगठित अफसरशाही के माध्यम से शासन करता था।[88] हमें मालूम नहीं कि हड़प्पा समाज के विभिन्न वर्गों और लोगों के साथ दस्युओं और दासों का कैसा संबंध था। जो भी हो, ऋग्वैदिक आर्यों के आने के पहले सैंधव सभ्यता प्राय नष्ट हो चुकी थी। गंगा की घाटी में आर्य ज्यों ज्यों पूरब की ओर बढ़ते गए, उन्हें संभवतया ताँबे के हथियार रखने वाले लोगों का मुकाबला करना पड़ा, जो उस क्षेत्र के प्राचीन निवासी थे।[89] हो सकता है कि ताम्रयुग के अन्य लोगों की भाँति ये लोग भी वर्गों में बँटे रहे होंगे।

तथ्य उपलब्ध न रहने के कारण हड़प्पा समाज के बचे खुचे लोगों और आर्यों के बीच क्या आदान प्रदान हुए, यह कहना कठिन है। चाहे ये अनार्य जो भी हों *ऋग्वेद* से तो लगता है कि उनके धन को आर्यों ने अवश्य लूटा। युद्ध में अपहरण की गई संपत्ति से जनजाति के नेताओं का ऐश्वर्य और सामाजिक दर्जा अवश्य बढ़ा होगा और उन्होंने मवेशी और दासियों का दान कर पुरोहितों का संरक्षण किया होगा। *ऋग्वेद* की दानस्तुति से यह स्पष्ट है। इस प्रकार *ऋग्वेद* में रथ पर जाते हुए एक यजमान को 'धनवान, दाता, और सभाओं में संस्तुत' के रूप में चित्रित किया गया है।[90]

ऐसा प्रतीत होता है कि आर्यों के विस्तार के पहले दौर में बस्तियों और दस्युओं जैसे लोगों का विनाश इतना अधिक किया गया कि नए समाज में आर्यों के विलयन हेतु उत्तर-पश्चिमी भारत में बहुत कम ही लोग बच रहे होंगे, हालाँकि बाद में उनके विस्तार के क्रमों में ऐसी स्थिति नहीं भी रही होगी। एक ओर तो बचे हुए लोगों में से अधिकांश लोगों और विशेषत अपेक्षाकृत पिछड़े वर्ग के लोगों को दासता स्वीकार करनी पड़ी होगी तथा दूसरी

ओर आर्यों के समाज में 'विश्' की सहज प्रवृत्ति यही रही होगी कि निम्न वर्ग में विलयन करें। आर्य पुरोहितों और योद्धाओं की प्रवृत्ति प्राचीन समाज के उच्च वर्ग से मिल जाने की रही होगी। दो ऐसे प्रसग मिले हैं जिनसे स्पष्ट होता है कि कुछ मामलों में आर्य के दुश्मनों को इस नए और मिश्रित समाज में ऊँचा दर्जा दिया गया था। एक स्थल पर कहा गया है कि इद्र ने दासों को आर्य में परिवर्तित किया।[91] सायण की टीका के अनुसार उन्हें आर्यों के जीवन के तौर-तरीके सिखाए जाते थे। एक अन्य प्रसग में चर्चा आई है कि इद्र ने दस्युओं को आर्य की उपाधि से वचित कर दिया।[92] क्या इससे यह अनुमान किया जाए कि कुछ दस्युओं को आर्य की हैसियत देकर फिर उन्हें अपने आर्यविरोधी कार्यकलापों के कारण उससे वचित कर दिया गया होगा ? इन तथ्यों के आधार पर हम अनुमान करते हैं कि वैरियों के बचे हुए पुरोहितों और प्रमुखों को आर्यों के नए समाज में उनके उपयुक्त स्थान (सभवत निम्नतर कोटि का) दिया गया होगा।

कहा गया है कि ब्राह्मणवाद आर्यों से पूर्व की सस्था है।[93] सारे पुरोहितवर्ग के विषय में यह कहना कठिन है। लैटिन फ्लामेन रोमन राजाओं द्वारा स्थापित एक प्रकार के पुरोहित पद का अभिधान है, जिसका समीकरण ब्राह्मण शब्द से किया गया है।[94] इस समानता के अतिरिक्त वेदकालीन भारत के अथर्वन पुरोहित और ईरान के अथर्वन की सुपरिचित समानता है। किंतु फिर भी एक प्रमुख आपत्ति का उत्तर देना शेष रह जाता है। कीथ का कथन है कि ऋग्वैदिक मान्यता और वैदिक देवताओं की अपेक्षाकृत बहुलता पुरोहितों के कठिन प्रयास और अपरिमित समन्वयवाद का परिणाम रही होगी।[95] इतना ही नहीं वेदों और महाकाव्यों की परपरा से पर्याप्त प्रमाण प्रस्तुत किए गए हैं जिनसे पता चलता है कि इद्र ब्राह्मणघाती थे और उनका मुख्य दुश्मन वृत्र ब्राह्मण था।[96] इससे यह परिकल्पना पुष्ट होती है कि विकसित पुरोहित प्रथा आर्यों के पहले की प्रथा थी, जिससे निष्कर्ष निकल सकता है कि जो लोग पराजित हुए वे सभी दास या शूद्र नहीं बना लिए गए। अतएव यद्यपि ब्राह्मणवाद भारोपीय सस्था था फिर भी आर्य विजेताओं के पुरोहित वर्ग में अधिकाश विजित जाति के लोग लिए गए होंगे।[97] उनका अनुपात क्या रहा होगा यह बताने के लिए कोई सामग्री उपलब्ध नहीं है, किंतु प्रतीत होता है कि आर्यपूर्व पुरोहितों को इस नए समाज में स्थान मिला था। यह सोचना गलत होगा कि सभी काले लोगों को शूद्र बना लिया गया था, क्योंकि ऐसे प्रसग आए हैं जिनमें काले ऋषियों की चर्चा है। *ऋग्वेद* में अश्विनी के सबध में जो वर्णन किया गया है उसके अनुसार उन्होंने काले वर्ण के (श्यावाय) कण्व को गौरवर्ण की स्त्रियाँ प्रदान की थी।[98] सभवत कण्व को कृष्ण भी कहा गया है[99] और वे इन युग्म देवों को सबोधित सूक्तों (*ऋग्वेद* के मडल आठ सूक्त पचासी और छियासी) के द्रष्टा हैं। शायद कण्व को ही पुन *ऋग्वेद* के प्रथम मडल में कृष्ण

ऋषि के रूप में चित्रित किया गया है।[100] इसी प्रकार *ऋग्वेद* की एक ऋचा में गायक के रूप में वर्णित 'दीर्घतमस्' काले रग का रहा होगा अगर यह नाम उसे काले वर्ण के कारण मिला हो।[101] यह महत्वपूर्ण है कि *ऋग्वेद* के कई अनुच्छेदों में वह केवल मातृमूलक नाम 'मामतेय' से ही चर्चित है। बाद की एक अनुश्रुति यह भी है कि उसने उशिज से विवाह किया जो एक दास की लडकी थी और उससे कक्षीवत् उत्पन्न हुआ।[102] पुन ऋग्वेद के प्रथम मडल में ऋषि दिवोदास को, जिनके नाम से ही ध्वनित होता है कि वे दास वश के थे,[103] नई ऋचाओं का रचयिता बताया गया है[104] तथा दसवें मडल में उसके सूक्त बयालिस चौवालिस के लेखक अगिरस को कृष्ण कहा गया है।[105] चूँकि ऊपर बताए गए अधिकाश निर्देश *ऋग्वेद* के परवर्ती भागों में पडते हैं इसलिए यह स्पष्ट होगा कि ऋग्वैदिक काल के अतिम चरण में नवगठित आर्य समुदाय में कुछ काले ऋषियों और दास पुरोहितों का प्रवेश हो रहा था।

इसी प्रकार मालूम पडता है कि कुछ पराजित सरदारों को नए समाज में उच्च स्थान दिया गया था। दास के प्रमुखों—यथा बलबूथ और तरुक्ष से पुरोहितों ने जो उपहार ग्रहण किया उसके चलते इन लोगों की बडी सराहना हुई और नए समाज में उनका दर्जा भी बढा। दास उपहार प्रस्तुत करने की स्थिति में थे और उन्हें दानी समझा जाता था यह निष्कर्ष दश् धातु के अर्थ से ही निकाला जा सकता है जिससे दास सज्ञा का निर्माण हुआ है।[106] बाद में भी विलयन की प्रक्रिया चलती रही क्योंकि बाद के साहित्य में इस अनुश्रुति का उल्लेख है कि प्रतदन दैवोदासि इद्रलोक गए[107] और ऐतिहासिक दृष्टि से इद्र आर्य आक्रमणकारियों के नामधारी शासक थे।

प्राचीन ग्रथ इस तथ्य पर विशेष प्रकाश नही डालते कि सामान्य आर्यजन (विश्) और प्राचीन समाज के अवशिष्ट लोगों का आत्मसातीकरण किस प्रकार हुआ। सभवत अधिकाश लोग आर्यों के समाज के चौथे वर्ण में मिला लिए गए। किंतु पुरुष सूक्त को छोडकर *ऋग्वेद* में शूद्र वर्ण का कोई प्रमाण नहीं है। हाँ ऋग्वैदिक काल के आरभ में दासियों का छोटा सा आनानुवर्ती समुदाय विद्यमान था। अनुमानत आर्यों के जो शत्रु थे उनमें पुरुषों के मारे जाने पर उनकी पत्नियाँ दासता की स्थिति में पहुँच गई। कहा गया है कि पुरुकुत्स के बेटे त्रसदस्यु ने उपहार के रूप में पचास दासियाँ दी।[108] *अथर्ववेद* के आरभिक अशों में भी दासियों के सबध में प्रमाण मिलते हैं। उसमें दासी का जो चित्र उपस्थित किया गया है उसके अनुसार उसके हाथ भीगे रहते थे, वह ओखल-मूसल कूटती थी[109] तथा गाय के गोबर[110] पर पानी छिडकती थी। इससे पता चलता है कि वह घरेलू कार्य करती थी। इस सहिता में काली दासी का प्राचीनतम उल्लेख मिलता है।[111] सदर्भों से पता चलता है कि आरभिक वैदिक समाज में दासियों से गृहकार्य कराया जाता था। दासी

शब्द के प्रयोग से स्पष्ट है कि वे पराजित दासों की स्त्रियाँ थीं।

गुलाम के अर्थ में दास शब्द का प्रयोग अधिकांशत *ऋग्वेद* के परवर्ती भागों में पाया जाता है। प्रथम मंडल में दो जगह[112], दशम मंडल में एक जगह[113] और अष्टम मंडल में जो अतिरिक्त सूक्त (बालखिल्य) जोड़े गए हैं, उनमें एक जगह[114] इसका प्रसंग आया है। इस प्रकार का एकमात्र प्राचीन प्रसंग आठवें मंडल में पाया जाता है।[115] *ऋग्वेद* में कोई दूसरा शब्द नहीं मिलता जिसका अर्थ दास लगाया जा सकता हो। इससे स्पष्ट है कि आरंभिक ऋग्वेद काल में शायद ही पुरुष दास रहे होंगे।

उत्तर ऋग्वेद काल में दासों की संख्या और स्वरूप के बारे में जो प्रसंग आए हैं उनसे केवल धुँधला सा चित्र उभरता है। बालखिल्य में सौ दासों की चर्चा आई है जिन्हें गदहे और भेड़ की कोटि में रखा गया है।[116] बाद के एक अन्य प्रसंग में आए 'दासप्रवर्ग' का अर्थ संपत्ति या दासों का समूह किया जा सकता है।[117] इससे यह स्पष्ट है कि ऋग्वेद काल के अंत में दासों की संख्या बढ़ रही थी। किंतु ऐसा कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है जिससे सिद्ध हो सके कि उन्हें किसी उत्पादन कार्य में लगाया जाता था। संभवत उन्हें घरेलू नौकर की तरह रखा जाता था जिसका मुख्य कार्य अपने मालिक की सेवा करना था जो या तो सरदार या पुरोहित होते थे। सामान्यत ऐसे मालिक दीर्घतमस् के पास दास थे।[118] इन दासों को मुक्त रूप से किसी के हाथ सौंपा जा सकता था।[119] ऐसा प्रतीत होता है कि कोई व्यक्ति ऋण नहीं चुका पाता, तो उसे दास बना लिया जाता था[120] पर ऋण में पैसे नहीं दिए जाते थे क्योंकि सिक्के का प्रचलन नहीं था। वास्तव में 'दास' नाम से ही प्रकट होता है कि वैदिक काल में दासता का सबसे महत्वपूर्ण स्रोत युद्ध था। दास जनजाति के लोग युद्ध में विजित होने पर भी दास के नाम से पुकारे जाते थे पर इससे उनकी गुलामी का बोध होता था।

दास कौन थे? साधारणत दासों और दस्युओं को एक मान लिया जाता है। किंतु दस्युहत्या शब्द के प्रयोग तो हैं, पर दासहत्या शब्द का प्रयोग नहीं मिलता आर्यों के अंतर्जातीय युद्धों में दासों को सहायक सेना के रूप में दिखाया गया है अपव्रत, अन्यव्रत, आदि के रूप में उनका वर्णन नहीं किया गया है तीन स्थलों पर दास विशों का उल्लेख किया गया है[121] और सबसे बढ़कर तो यह कि एक सीथियन जनजाति—ईरानी दहे[122] से उनको अभिन्न दिखाया गया है। इन सब तथ्यों से दासों और दस्युओं का अंतर स्पष्ट है दस्युओं और वैदिक आर्यों में समानता की बात बहुत ही कम आती है।[123] इसके विपरीत *दास संभवत उन मिश्रित भारतीय आर्यों के अग्रिम दस्ते थे जो उसी समय भारत आए जब केसाइट बेबीलोनिया पहुँचे थे (1750 ई पू)।* *पुरातात्विकों का अनुमान है* कि उत्तर फारस से भारत की ओर लोगों का प्रस्थान या तो निरंतर होता रहा अथवा उनका

आगमन मुख्यत दो बार हुआ था, जिनमें पहला आगमन 2000 ई पू के तुरत बाद हुआ था।[124] शायद इसी कारण आर्यों ने दासों के प्रति मेलमिलाप की नीति अपनाई और दिवोदास, बलबुथ एव तरुक्ष जैसे उनके सरदार आर्यों के दल में आसानी से आत्मसात किए जा सके। अतर्जातीय सघर्षों में अधिकतर आर्यों के सहायक के रूप में दासों के उल्लेख का भी यही कारण है। इससे लगता है कि गुलाम के अर्थ में दास शब्द का प्रयोग भारत के आर्येतर निवासियों के बीच नहीं, बल्कि भारतीय आर्यों से सबद्ध लोगों के बीच प्रचलित था। *ऋग्वेद* के उत्तरवर्ती काल में दास शब्द का प्रयोग व्यापक अर्थ में होने लगा होगा जिससे न केवल मूल भारोपीय दासों के वशजों बल्कि दस्यु और राक्षस जैसे आर्य पूर्व लोगों और आर्य समुदाय के उन सदस्यों का भी बोध होता होगा जो अपने आतरिक सघर्षों के कारण अकिंचनता या गुमनामी की स्थिति में पहुँच गए थे।

यदि आर्यों की सख्या कम होती तो वे पराजित लोगों पर नए अल्पसख्यक उच्चवर्गीय शासक के रूप में अपने को स्थापित करते जैसा कि हित्तियों (हिट्टाइट), कसाइटों और मितन्नी ने पश्चिम एशिया में किया था। किंतु ऋग्वैदिक प्रमाण इस बात के प्रतिकूल है।[125] न केवल पराजित लोगों की जन हत्या बल्कि कितनी ही आर्य जनजातियों की बस्तियों का भी उल्लेख मिलता है।[126] फिर, भारत के बहुत बड़े हिस्से में आर्य भाषाओं के प्रचलन से भी यह अनुमान किया जा सकता है कि इन भाषाओं के बोलनेवाले बडी तादाद में आए थे। आगे चलकर बताया गया है कि उत्तर भारत की आबादी में वैश्यों के साथ साथ शूद्रों की सख्या बहुत अधिक थी किंतु इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता कि वे आर्येतर भाषाएँ बोलते थे। दूसरी ओर, शूद्र के लिए यज्ञ में प्रयुक्त सबोधन से स्पष्ट है कि उत्तर वैदिक काल में शूद्र आर्यों की भाषा समझते थे।[127] इस सबध में *महाभारत* की एक अनुश्रुति महत्वपूर्ण है 'ब्रह्मा ने वेद के प्रतीकस्वरूप सरस्वती का निर्माण पहले चारों वर्णों के लिए किया, किंतु शूद्र धनलिप्सा में पडकर अज्ञानाधकार में डूब गए और वेद के प्रति उनका अधिकार जाता रहा।[128] वेबर की दृष्टि में इस कडिका से यह ध्वनित होता है कि प्राचीन युग में शूद्र आर्यों की भाषा बोलते थे।[129] सभव है कि कुछ स्वस्थानिक जनजातियों ने अपनी बोली के बदले आर्यों की बोलियाँ अपना ली हों, जैसे आधुनिक युग में बिहार की कई जनजातियों ने अपनी भाषा छोड़कर कुर्माली और सदाना जैसी आर्य बोलियाँ अपना ली हैं। किंतु उन्होंने जिन लोगों की भाषा अपनाई, उनकी अपेक्षा इन आदिवासियों की सख्या अवश्य कम रही होगी। आधुनिक युग में भी, जबकि आर्यभाषा बोलनेवालों को अपनी भाषा और सस्कृति का प्रसार करने के लिए अधिक सुविधाएँ प्राप्त हैं वे आर्येतर भाषाओं को नहीं मिटा पाए हैं। इन आर्येतर भाषाओं में कुछ तो अपनी सशक्त वर्णनशीलता सिद्ध कर चुकी हैं।

ऊपर बताए गए तथ्यों के आधार पर यह कहना दुस्साहस नहीं होगा कि आर्य बडी

तादाद में भारत आए। वैरी जनजातियों के साथ मिश्रण के बावजूद, आर्य सरदारों और पुरोहितों की संख्या बहुत कम रही होगी। कालक्रम से आर्य जन जातियों के अधिकांश लोग पशुपालक और किसान बन गए, और कुछ लोग श्रमिक बन गए। पर ऋग्वेद काल में आर्थिक और सामाजिक विशिष्टीकरण की प्रक्रिया अत्यंत आरंभिक अवस्था में थी। इस जनजातिप्रधान समाज में सैनिक नेताओं को अतिरिक्त अनाज या मवेशी प्राप्त करने के नियत और नियमित साधन प्राय नहीं थे, जिससे वे और उनके धार्मिक समर्थक अपना निर्वाह ओर समुन्नति कर सकते। यह समाज मुख्यत घुमतू और पशुचारी था और इसमें कृषि अथवा एक जगह बसने की प्रधानता नहीं थी। अतएव अनाज की चर्चा दान के रूप में भी नही आई है और कर देने का तो कोई प्रश्न ही नहीं उठता है। युद्ध में पराजित लोगों से उपहार के रूप में या लूटपाट से जो संपत्ति आर्य समुदायों को प्राप्त होती थी वही उनकी आमदनी थी और प्राय इस संपत्ति में भी उन्हें जनजाति के सदस्यों को हिस्सा देना पडता था।[130] *ऋग्वेद* में केवल बलि ही एक शब्द है जो एक प्रकार से कर का द्योतक है। साधारणतया इसका तात्पर्य है देवता को अर्पित चढावा[131] किंतु इसका प्रयोग राजा को दिए गए उपहार के रूप में भी किया जाता है।[132] अनुमान है कि बलि का भुगतान करना ऐच्छिक था[133] क्योंकि लोगों से इसकी वसूली के लिए कोई करवसूली संगठन नहीं था। जनजातीय राजा द्वारा अपने योद्धाओं और पुरोहितों को अनाज या भूमि के दान का दृष्टांत नहीं मिलता। इसका कारण शायद यह था कि भूमि पूरे जनसमुदाय की संपत्ति थी। ऋग्वैदिक समाज एक प्रकार का समतावादी समाज था यह इस तथ्य से भी स्पष्ट है कि पुरुष या स्त्री प्रत्येक व्यक्ति के लिए एक ही वैरदेय प्राप्त करने का परंपरासिद्ध अधिकार प्राप्त था[134] जो एक सौ गायों के बराबर था।[135]

सारांश यह कि *ऋग्वेद* एवं *अथर्ववेद* में वर्णित समाज में गहरे वर्गभेद का अभाव था जैसा सामान्यतया प्रारंभिक आदिम समाजों में देखने को मिलता है।[136] प्राय पुराणों में वर्णव्यवस्था की उत्पत्ति के विषय में जो अनुमान किए गए हैं वे उस स्थिति का ही उल्लेख करते है। इन अनुमानों के अनुसार त्रेता युग का आरंभ होने तक न तो कोई वर्णव्यवस्था थी न कोई व्यक्ति लालची था और न लोगों में दूसरे की वस्तु चुरा लेने की प्रवृत्ति ही थी।[137] किंतु अति प्राचीन काल में भी सैनिकों नेताओं और पुरोहितों के मंथर उद्भव के साथ साथ खेतिहर किसान और हस्तकलाओं का व्यवसाय करनेवाले कारीगर या शिल्पी जैसे वर्गों का भी उद्भव हुआ। बुनकर (जुलाहे), चर्मकार बढई और चित्रकार के लिए एक ही ढंग के शब्दों का प्रयोग उनके भारोपीय उद्भव का संकेत देता है।[138] रथ के लिए एक भारोपीय शब्द के व्यापक प्रयोग से पता चलता है कि भारोपीय लोग रथ का निर्माण करना जानते रहे होंगे।[139] किंतु *ऋग्वेद* में जहाँ पहले के अनेकानेक परिच्छेदों में बढ़इ के

कार्य की चर्चा हुई है, वहाँ रथकार शब्द का प्रयोग नहीं दिखाई पड़ता।[140] *अथर्ववेद* से संकेत मिलता है कि रथनिर्माता (रथकार) और धातुकर्म करनेवाले (कर्मार) को समाज में महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। इसी ग्रंथ के आरंभिक भाग में नवनिर्वाचित राजा *पर्णमणि* (पादपीयताबीज) से प्रार्थना करता है कि वह आसपास रहनेवाले कुशल रथ निर्माताओं और धातुकर्म करनेवालों के बीच उसकी स्थिति सुदृढ़ करने में सहायक हो। प्रार्थना का उद्देश्य शिल्पियों को राजा का सहायक बनाना है[141] और इस दृष्टि से वे राजाओं, राजविधाताओं सूतों और दलपतियों (ग्रामणी) के समकक्ष मालूम पड़ते हैं,[142] जो सब राजा के आसपास रहते हैं और जो राजा के सहायक माने जाते हैं।[143]

स्पष्ट है कि आर्य समुदाय के सदस्य (विश्) ऊपर बताए गए शिल्पों का व्यवसाय करते थे और उन्हें किसी तरह हीन नहीं समझा जाता था। ऋग्वेद की एक परवर्ती ऋचा में बढ़ई का वर्णन इस रूप में किया गया है कि वह सामान्यतया अपना काम तब तक झुककर करता रहता है जब तक उसकी कमर टूटने न लग जाए।[144] इससे आभास मिलता है कि उसका कार्य कठिन था पर इससे हमारे मन में उसके प्रति घृणा के भाव नहीं जगते हैं। वैदिक काल के संदर्भ में यह नहीं कहा जा सकता कि बढ़ई नीची जाति के थे या उनका अपना पृथक वर्ग था।[145] किंतु कर्मार, बढ़ई (तक्षन्), चर्मम्[146], जुलाहे और अन्य लोग जिनका व्यवसाय *ऋग्वेद* में सम्मानजनक माना गया है और जिनका विश् के सम्मानित सदस्य भी आदर करते थे, पालि ग्रंथों में शूद्र माने गए हैं।[147] संभव है कि आर्येतर लोगों ने भी स्वतंत्र रूप से इन शिल्पों को अपनाया हो[148] पर इसमें कोई संदेह नहीं कि आर्य शिल्पियों के अनेक वंशज जो अपने प्राचीन व्यवसाय में ही लगे रहे शूद्र समझे जाने लगे।

चतुर्वर्ण की उत्पत्ति के बारे में प्राचीनतम अनुमान *ऋग्वेद* के पुरुषसूक्त में वर्णित सृष्टि संबंधी पुराकथा में पाया जाता है। समझा जाता है कि इस संहिता के दशम मंडल में यह विषय बाद में अंतर्वेशित किया गया है। लेकिन उत्तर वैदिक साहित्य[149] में और गाथाकाव्य[150] पुराण[151] तथा धर्मशास्त्र[152] की अनुश्रुतियों में भी इसे कुछ हेरफेर के साथ प्रस्तुत किया गया है। इसमें कहा गया है कि ब्राह्मण की उत्पत्ति आदिमानव (ब्रह्मा) के मुँह से क्षत्रिय की उनकी भुजाओं से वैश्य की उनकी जाँघों से और शूद्र की उनके पैरों से हुई थी।[153] इससे या तो यह स्पष्ट होता है कि शूद्र और अन्य तीन वर्ण एक ही वंश के थे और इसके फलस्वरूप वे आर्य समुदाय के अंग थे, अथवा इसके द्वारा विभिन्न जातियों को ब्राह्मणीय समाज में उत्पत्ति की कहानी के द्वारा मिलाने का प्रयास किया गया। पुरुषसूक्त *अथर्ववेद के अंतिम अंश में है*[154] और इसे कालक्रम की दृष्टि से अथर्ववैदिक युग के अंत का माना जा सकता है।[155] यह जनजातियों के सामाजिक वर्गों में विघटित होने का सैद्धांतिक औचित्य प्रस्तुत करता है। श्रम का विभाजन ऋग्वैदिक काल में ही काफी

विकसित हो चुका था। किंतु, यद्यपि एक ही परिवार के विभिन्न सदस्य कवि, भिषक और पाठक (पिसाई करनेवाले) का काम करते थे,[156] इससे कोई सामाजिक भेदभाव उत्पन्न नहीं होता था। पर अथर्ववैदिक काल के अंत में कार्यों की भिन्नता के आधार पर सामाजिक हैसियत में भी अंतर किया जाने लगा और इस प्रकार जनजातियों तथा कुनबों का सामाजिक वर्गों में विघटन शुरू हुआ। मालूम होता है कि शूद्र या दासकर्म करनेवाले कुछ आर्य चतुर्थ वर्ण की श्रेणी में आ गए। इस अर्थ में चारों वर्णों की समान उत्पत्ति की कथा में सत्य का अंश है। किंतु यह परंपरा पूर्णतः सत्य नहीं मानी जा सकती। संभव है कि बाद में आर्य शूद्रों के वंशजों की संख्या गंगा की नई उर्वर घाटियों में बढ़ती गई हो। साथ ही वैदिक काल से लेकर आगे तक विभिन्न प्रकार के विभिन्न वर्णों के आर्येतर आदिवासी धीरे धीरे बड़ी संख्या में शूद्र वर्ण में सम्मिलित किए गए।[157] वर्णों की समान उत्पत्ति के बारे में चली आ रही परंपरा से यह स्पष्ट नहीं हो सका कि आर्येतर जनजातियाँ किस प्रकार ब्राह्मणीय समाज में प्रवेश पा सकीं लेकिन यह कल्पना उपयोगी सिद्ध हुई। यह विभिन्न प्रकार के लोगों को मिलाने और उन्हें साथ ले चलने में सहायक हो सकी और चूँकि शूद्रों को प्रथम मानव के चरण से उत्पन्न माना गया है इससे ब्राह्मणप्रधान समाज में उनकी गुलामों जैसी स्थिति को न्यायसिद्ध माना और बताया जा सका।

तीन उच्च वर्णों की सेवा करनेवाले सामाजिक वर्ग के रूप में शूद्रों का सर्वप्रथम उल्लेख कब किया गया है? ऋग्वेदकालीन समाज में कुछ दास दासियाँ होती थीं जो घरेलू नौकर के रूप में काम करती थी पर उनकी संख्या इतनी नहीं थी कि उनको मिलाकर शूद्रों का दास वर्ण बन पाता। समाज के वर्ग के रूप में शूद्रों का प्रथम और एकमात्र उल्लेख *ऋग्वेद* के पुरुषसूक्त में आया है जिसकी पुनरावृत्ति *अथर्ववेद* के उन्नीसवें भाग में हुई है।[158] इसी भाग के दो अन्य परिच्छेदों में भी चार वर्णों का संकेत किया गया है। इसमें से एक परिच्छेद में दर्भ (घास) से प्रार्थना की गई है कि वह प्रार्थी को ब्राह्मण क्षत्रिय शूद्र और आर्य का प्रियपात्र बनाए।[159] यहाँ आर्य शब्द का प्रयोग प्रायः वैश्य के लिए किया गया है। दूसरे परिच्छेद में देवों और राजाओं के साथ साथ शूद्र तथा आर्य दोनों के ही प्रियपात्र बनने की इच्छा व्यक्त की गई है।[160] मालूम होता है कि यहाँ देव ब्राह्मण के लिए और आर्य वैश्य के लिए प्रयुक्त हुआ है।[161] हमें स्मरण रखना है कि ये सभी परिच्छेद उन्नीसवें भाग में आए हैं जो बीसवें भाग को मिलाकर *अथर्ववेद* के मुख्य संकलन का परिशिष्ट है।[162] इसके पूर्व के एक परिच्छेद में ब्राह्मण राजन्य या शूद्र द्वारा किए गए जादू टोने (या उनके द्वारा बनाए गए ताबीज) का उल्लेख है और एक मंत्र में बताया गया है कि प्रयोग करनेवाले को भी जादू का झटका लग सकता है।[163] यह परिच्छेद *अथर्ववेद* के द्वितीय खंड (भाग आठ बारह) में है जिसके संबंध में व्हिटने की राय है कि इसकी रचना स्पष्टतः पुरोहितों ने

की होगी।[164] इससे यह संकेत मिलता है कि वर्णव्यवस्था का विकास पुरोहितों के प्रभाव में हुआ। हमारे काम का केवल एक प्रसंग ऐसा है जिसे व्हिट्नी के अनुसार *अथर्ववेद* के आरंभिक काल का कहा जा सकता है। इसमें ब्राह्मण, राजन्य और वैश्य का उल्लेख हो हुआ है[165] किंतु शूद्र को छोड़ दिया गया है। इससे स्पष्ट है कि अथर्ववेद काल के अंत में ही शूद्रों को समाज के एक वर्ग के रूप में चित्रित किया गया है। इसी अवधि में उनकी उत्पत्ति के संबंध में पुरुषसूक्त में उल्लिखित उक्ति का समावेश *ऋग्वेद* के दशम मंडल में किया गया होगा।

लोग जानना चाहेंगे कि चतुर्थ वर्ण शूद्र क्यों कहलाने लगा। मालूम होता है कि जिस प्रकार सामान्य यूरोपीय शब्द 'स्लेव' और संस्कृत शब्द 'दास' विजित जनों के नाम पर बने थे उसी प्रकार शूद्र शब्द उक्त नामधारी पराजित जनजाति के नाम पर बना था। ईसा पूर्व चौथी शताब्दी में शूद्र नाम की जनजाति थी, क्योंकि डियोडोरस ने लिखा है कि सिकंदर ने आधुनिक सिंध के कुछ इलाकों में रहनेवाली सोद्रई नामक जनजाति पर चढ़ाई की थी।[166] ग्रीक लेखकों ने जिन जातियों का उल्लेख किया है, उनका अस्तित्व अतिप्राचीन काल में भी देखा जा सकता है। उदाहरणार्थ एरियन द्वारा वर्णित अबस्तनोई (जिसे डियोडोरस ने सबस्तई कहा है) को *ऐतरेय ब्राह्मण* के अबष्ठों का समरूप माना गया है।[167] इस *ब्राह्मण* में एक अबष्ठ राजा की चर्चा है।[168] यही बात शूद्र जाति पर भी लागू होती है और इस तरह लगभग ई.पू. 10वीं शताब्दी की शूद्र जाति और चौथी शताब्दी की शूद्र जनजाति में साम्य देखा जा सकता है।

अथर्ववेद के आरंभिक भाग में शूद्रों के तीन उल्लेखों की इस दृष्टि से विवेचना की जा सकती है। व्हिट्नी का कथन है कि ये *अथर्ववेद* के प्रथम खंड (भाग 1-7) में आते हैं जो परम लोकमूलक है और सभी प्रकार से उस संहिता का अत्यंत अभिलाक्षणिक अंश है।[169] इनमें से दो संदर्भों में पुजारी चाहता है कि हर किसी को चाहे वह आर्य हो या शूद्र, जड़ी बूटी की सहायता से परखे ताकि जादूगर का पता चल जाए।[170] इस संबंध में ब्राह्मण या राजन्य का कोई उल्लेख नहीं हुआ है। अब प्रश्न यह है कि यहाँ आर्य और शूद्र दो सामाजिक वर्गों (वर्णों) के प्रतीक हैं या दो जनजातियों के। इनमें से उत्तरवर्ती कल्पना युक्तियुक्त लगती है। पहले आर्य और दास या दस्यु के बीच जो विरोध रहता था वह अब बदलकर आर्य और शूद्र के बीच का हो गया। यह विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है कि ये निर्देश सामाजिक विभेद या अशक्तताओं का ऐसा आभास नहीं देते जो वर्ण की कल्पना में अंतर्निहित है। उनकी तुलना उसी संहिता के एक अन्य परिच्छेद से की जा सकती है जिसमें आर्य और दास की चर्चा है और जिसमें पुरोहित या वरुण ने यह दावा किया है कि उसने जिस मार्ग का अनुसरण किया है उसे कोई दास या आर्य विनष्ट नहीं कर सकता।[171]

ऋग्वेद में इसी तरह की अन्य ऋचाएँ भी आई हैं, जिनमें पुरोहित चाहता है कि वह अपने दुश्मन आर्यों और दासों या दस्युओं को परास्त करे। वैदिक ग्रंथों में आए हुए सामाजिक संबंधों के प्रत्यक्ष निर्देशों का सही अर्थ लगाने में ब्राह्मण टीकाकार इसलिए सफल नहीं हो सके कि उनका ध्यान सदा बाद में होनेवाली घटनाओं की ओर लगा रहता था। *ऋग्वेद* में आर्य और दास शब्दों का अर्थ जिस रूप में किया गया है, वह इस आशय का उदाहरण कहा जा सकता है। सायण आर्य को प्रथम तीन वर्णों का और दास को शूद्र वर्ण का मानते है।[172] स्पष्ट है कि सायण ने यह टीका बाद में समाज के चार वर्णों में विभक्त होने के आधार पर की, जिनका औचित्य वह सिद्ध करना चाहते हैं। इसी प्रकार यहाँ जिस अथर्ववैदिक प्रसंग का विवेचन किया जा रहा है उसमें सायण ने आर्य की व्याख्या तीन वर्णों के सदस्य के रूप में की है,[173] जिससे सहज ही शूद्र चौथे वर्ण के प्रतिनिधि हो जाते है। किंतु धर्मशास्त्रों में आर्य और शूद्र के प्रति जो दृष्टि अपनाई गई है, उसके आधार पर पहले के ग्रंथों का सही अर्थ लगाना बहुत कठिन हो जाता है।

अथर्ववेद के आरंभिक भाग में शूद्र को जनजाति माना गया है। इस आशय का निष्कर्ष इसमें उपलब्ध तीसरे प्रसंग से भी निकाला जा सकता है जिसमें 'तक्मन्' ज्वर से कहा गया है कि वह मुजवतों बल्हिकों और महावृषों के साथ साथ कुलटा शूद्र महिलाओं को भी ग्रसित करे।[174] मालूम है कि ये सभी जन उत्तरपूर्व भारत के निवासी थे, [175] जहाँ शूद्र जनजाति आभीरों के साथ रहती थी [176] जैसा कि *महाभारत* में बताया गया है। एक अन्य ऋचा में भी इस इच्छा की पुनरावृत्ति की गई है कि ज्वर विदेशियों को ग्रसित करे।[177] इससे आभास मिलता है कि शूद्र महिलाओं का उल्लेख जिस संदर्भ में हुआ है वह अथर्ववेदकालीन आर्यों के उस वैर भाव का द्योतक है जो उनके मन में भारत के उत्तर पश्चिम भाग के विजातीय निवासियों के प्रति रहता था। अत यहाँ संभवत शूद्र शब्द का अर्थ है शूद्र जाति की महिला। पैप्पलाद शाखा की एक ऐसी ही ऋचा में शूद्रा की जगह दासी शब्द का प्रयोग हुआ है,[178] जिससे लेखक की राय में यह प्रकट होता है कि ये दोनों शब्द पर्यायवाची हैं। अत *अथर्ववेद* के आरंभिक भाग में जो शूद्र शब्द का प्रयोग हुआ है उसे वर्ण के अर्थ में नही, बल्कि जाति के अर्थ में लेना चाहिए, जो प्रसंग की दृष्टि से अधिक समीचीन मालूम पड़ता है।

महाभारत में आभीरों के साथ शूद्रों की चर्चा बार बार जनजाति के रूप में हुई है जिससे ई पू दसवीं शताब्दी की परंपराओं का आभास मिलता है। इस महाकाव्य में शूद्र कुल का उल्लेख क्षत्रिय और वैश्य कुल के साथ हुआ है, [179] और शूद्र जनजाति का वर्णन आभीरों दरदों तुखारों पहलवों आदि के साथ हुआ है [180] तथा कुल एव जाति के बीच स्पष्ट भेद दिखाया गया है। नकुल ने अपनी दिग्विजय यात्रा के क्रम में जिन जातियों को

पराजित किया, उनकी सूची में[181] तथा राजसूय यज्ञ के अवसर पर युधिष्ठिर को जिन लोगों ने उपहार प्रस्तुत किए उनकी सूची में[182] भी शूद्र का उल्लेख जनजाति के रूप में हुआ है। इनका कालक्रम निर्धारित करने के लिए सभवत एक ओर भारत युद्ध के समय विद्यमान शूद्रों और आभीरों तथा दूसरी ओर बाद में इस सूची में प्रक्षिप्त शकों, तुखारों, पहलवों, रोमकों, चीनों और हूणों आदि जनों के बीच विभेद करना पड़ेगा।[183] भारतीयेतर स्रोतों से ऐसा कुछ पता नहीं चलता कि ईस्वी सन के पूर्व या पश्चात की कुछ आरंभिक शताब्दियों में शूद्रों और आभीरों का बाहरी देशों से भी कोई सबध था। इस बात के समर्थक तथ्य शायद ही उपलब्ध हैं कि आभीर ईसा की आरंभिक शताब्दियों में भारत आए। मालूम होता है कि भारत-युद्ध के समय वे जनजाति के रूप में यहाँ रहते थे,[184] पर उस महायुद्ध के पश्चात जो अस्तव्यस्तता की अवधि आई उसमें वे पजाब में बिखर गए।[185] आभीरों के साथ शूद्रों का जो बार बार उल्लेख हुआ है उससे सकेत मिलता है कि वे पुरानी जनजाति के थे और युद्ध के समय सुखी एव सपन्न थे। *अथर्ववेद* के आरभिक अश में शूद्र शब्द के जनजाति स्वरूप किए गए अर्थ के यह सर्वथा उपयुक्त है।

दूसरा प्रश्न यह है कि शूद्र आर्य थे या आर्य आगमन से पहले की जनजाति थे और यदि वे आर्य थे तो भारत में किस समय आए। शूद्र जनजाति के मानवजातीय वर्गीकरण (एथनोलाजिकल क्लासीफिकेशन) के विषय में परस्पर विरोधी विचार व्यक्त किए गए हैं। पहले यह माना जाता था कि पहले पहल जो आर्य आए उनमें से कुछ शूद्र जनजाति के थे,[186] बाद में यह माना जाने लगा कि शूद्र आर्यपूर्व जनों की एक शाखा थे,[187] किंतु दोनों विचारों में से किसी के भी पक्ष में कोई सबल प्रमाण नहीं है। उपलब्ध तथ्यों के आधार पर सोचा जा सकता है कि शूद्र जनजाति का आर्यों के साथ कुछ सादृश्य था। शूद्रों की चर्चा हमेशा आभीरों के साथ हुई है,[188] जो आर्यों की एक बोली 'आभीरी' बोलते थे।[189] ब्राह्मणकाल में शूद्र आर्य की भाषा समझने में समर्थ थे, जिससे परोक्ष रूप में सिद्ध होता है कि वे आर्यों की भाषा जानते थे। इतना ही नहीं, शूद्र को आर्य-पूर्व लोगों यथा द्रविड, पुलिंद शबर आदि की सूची में कभी शामिल नहीं किया गया है। उन्हें बराबर उत्तर पश्चिम का निवासी माना गया है,[190] जहाँ आगे चलकर मुख्यत आर्य ही निवास करते थे।[191] आभीर और शूद्र सरस्वती नदी के निकट रहते थे।[192] कहा जाता है कि इन लोगों के प्रति वैर भाव के कारण सरस्वती मरुभूमि में विलीन हो गई।[193] ये सदर्भ महत्वपूर्ण हैं क्योंकि दृषद्वती के साथ सरस्वती उस प्रदेश की एक सीमा स्थिर करती थी जो आर्य देश कहलाता था। ऊपर 'दहे' शब्द का हवाला दिया जा चुका है जो भारतीय 'दास' शब्द का ईरानी पर्याय है किंतु शूद्र के लिए ऐसा तादात्म्य स्थापन कठिन है। यह सुझाव दिया जा सकता है कि ग्रीक कुद्रोस शब्द का समानार्थक है[194] जिसे होमर ने (ई पू

दसवीं-नवीं शताब्दी) 'महान के अर्थ में प्रयुक्त किया है और इसका प्रयोग सामान्यतया मर्त्यलोके के प्राणियों के लिए नहीं, बल्कि देवलोकवासियों की विशेषता बताने के लिए किया गया है।[195] भारत में, बाद में, शूद्र शब्द अपमानसूचक माना जाने लगा,और उन लोगों के लिए व्यवहृत होता था जिनसे ब्राह्मण अप्रसन्न थे। इसके विपरीत होमरकालीन ग्रीस में 'शूद्र शब्द (कुद्रोस) प्रशसावाचक था। हम यह कह सकते हैं कि 'कुद्र' नामक एक भारोपीय जनजाति थी जिसकी शाखाएँ ग्रीस और भारत दोनों देशों में गईं। ग्रीस में इस शाखा को महत्व का स्थान मिला लेकिन इस जाति के जो लोग भारतवर्ष आए उन्हें उनके सहआक्रमणकारियों ने हराकर अपने अधीन कर लिया। इस कारण ग्रीस में कुद्रों का ऊँचा स्थान हुआ और भारत में शूद्रों का नीचा। एक ही शब्द के विभिन्न संदर्भ में विपरीत अर्थ होते हैं जैसा कि असुर शब्द के उदाहरण से स्पष्ट है। भारत में असुर अनिष्टकर (शैतान) माना जाता है, किंतु उसके प्रतिरूप 'अहुर' को ईरान में देवता माना जाता है। भारत और ग्रीस में शूद्र शब्द का प्रयोग भेद भी इसी प्रकार का माना जा सकता है, किंतु उपरोक्त *व्याख्या को तब तक निश्चयात्मक नहीं कहा जा सकता जब तक कि यह प्रमाणित न हो* जाए कि 'कुद्रोस' ग्रीस की एक जनजाति थी। फिर भी ऊपर जितनी बातें कही गई हैं, उनके आधार पर यह सभव प्रतीत होता है कि दासों के समान शूद्र भी भारतीय आर्यवश के लोगों से सबधित थे।

यदि शूद्र भारतीय आर्यों से सबद्ध थे, तो वे भारत में कब आए? कहा गया है कि वे भारत में आनेवाले आर्यों के किसी आरभ के दल के थे।[196] किंतु चूँकि *ऋग्वेद* में उनका उल्लेख नही हुआ है, इसलिए सभव है कि शूद्र उन विदेशी जनजातियों में से थे जो ऋग्वैदिक काल का अत होते होते उत्तर पश्चिम भारत में आईं। पुरातत्व सबधी साक्ष्य के आधार पर ऐसा सभव मालूम होता है कि 2000 ई पू के पश्चात हजार वर्षों तक लोगों का भारत में आना जारी रहा।[197] इस परिकल्पना का समर्थन भाषाजन्य प्रमाणों से भी होता है।[198] अतएव अनुमान किया जाता है कि शूद्र ई पू दूसरे सहस्राब्द के अत में भारत आए जबकि उन्हें वैदिककालीन आर्यों ने पराजित किया और वैदिक काल के उत्तरवर्ती समाज ने उन्हें चतुर्थ वर्ण के रूप में अपनाया।

यह जोर देकर कहा गया है कि ब्राह्मणों के साथ दीर्घकाल तक संघर्ष करते रहने के फलस्वरूप क्षत्रियों को शूद्र की स्थिति में पहुँचा दिया गया और ब्राह्मणों ने अपने शत्रु क्षत्रियों को अतत उपनयन (यज्ञोपवीत संस्कार) के अधिकार से वंचित कर दिया।[199] *महाभारत* के शातिपर्व में वर्णित एकमात्र अनुश्रुति के आधार पर कि पैजवन शूद्र राजा था यह दावा किया जाता है कि शूद्र आरभ में क्षत्रिय थे।[200] इस तरह की धारणा का कोई तथ्यगत आधार नही है। प्रथमत ऋग्वेद काल में क्षत्रियों का ऐसा वर्णन कहीं नहीं मिलता

है जिससे पता चले कि उनका एक निश्चित वर्ण था तथा उनके कर्तव्य और अधिकार अलग थे। सपूर्ण जनजाति के लोग युद्ध और सार्वजनिक कार्यों के प्रबंध को अपना कर्तव्य समझते थे। यह कुछ गिने चुने योद्धाओं का काम नहीं समझा जाता था। आरभ से ही विकसित हो रहे योद्धाओं और पुरोहितों के समुदाय ने आर्यों और आर्येतर लोगों के साथ युद्ध में विश् का मार्गदर्शन किया और उन्हें सहायता दी। ज्यों ज्यों समय बीतता गया सरदार और योद्धागण पुरोहितों को उदारतापूर्वक भेंट-उपहार देने लगे और धार्मिक कर्मकाड जटिल होता गया, जिससे उस कर्मकाड का निष्पादन करनेवाले पुरोहितों और उन पुरोहितों को सरक्षण देनेवाले योद्धाओं की शक्ति सामान्य जन की शक्ति की अपेक्षा बहुत अधिक बढ़ी। दूसरे यद्यपि उत्तरवैदिक काल में, परसुराम और विश्वामित्र की कथाओं में पुरोहितों और योद्धाओं का सघर्ष ध्वनित होता है, फिर भी इसका कोई प्रमाण नहीं है कि विवाद का विषय उपनयन था जिसका निर्णय क्षत्रियों के विपक्ष में हुआ। उत्तरवैदिककाल के अत में कृषि के आरभ हो जाने से किसानों से अनाज वसूल किया जाने लगा। इस वसूली में किसका कितना हिस्सा होगा इसे लेकर सरदारों और पुरोहितों में सघर्ष अवश्यभावी था। सघर्ष सामाजिक आधिपत्य को लेकर हुआ करता था, जिसके आधार पर विशेषाधिकारों का निर्णय होता था। ज्ञान के क्षेत्र में ब्राह्मणों के एकाधिकार के विषय में भी कुछ विवाद उठे और क्षत्रियों ने इसे चुनौती दी और उसमें सफल भी हुए। ऐसा जान पडता है कि अश्वपति कैकेय और प्रवाहण जैवलि सभवत ब्राह्मणों के अध्यापक थे।[201] मिथिला के क्षत्रिय शासक जनक ने उपनिषदीय चिंतन को आगे बढाने में योगदान दिया तथा क्षत्रिय राजा विश्वामित्र ने ब्रह्मर्षि का पद प्राप्त किया। उत्तर-पूर्व भारत में क्षत्रियों का विद्रोह गौतम बुद्ध और वर्द्धमान महावीर के उपदेशों के रूप में अपनी चरम सीमा पर आया। उनके अनुसार समाज में प्रमुख स्थान क्षत्रियों का था और ब्राह्मण उसके बाद थे। झगडा इस प्रश्न को लेकर था कि समाज में प्रथम स्थान ब्राह्मणों को मिले या क्षत्रियों को। न तो उत्तर वैदिक और न मौर्य पूर्व ग्रथों में ही कहीं ऐसा संकेत है कि ब्राह्मण चाहते थे कि क्षत्रियों को तृतीय या चतुर्थ वर्ण में रखा जाए, या क्षत्रियों की यह इच्छा थी कि ब्राह्मणों की वह गति हो।

तीसरी बात ऐसा सोचना गलत है कि आरभ में उपनयन सस्कार का न होना शूद्रता का निश्चित प्रमाण माना जाता था। इस मामले में आज के न्यायालयों का निर्णय[202] उस समय की परिस्थितियों का द्योतक नहीं बन सकता ,जब शूद्र वर्ण का उद्भव हुआ। शूद्रों को उपनयन च्युत केवल उत्तर वैदिक काल के अत से पाया जाता है और तब भी शूद्रों की दासतासूचक एकमात्र अशक्तता केवल यही नहीं थी कि उन्हें यज्ञोपवीत से वंचित रखा गया इस तरह की अन्य कई अशक्तताएँ थीं। आगे चलकर हम देखेंगे कि बात ऐसी नहीं थी कि

उपनयन नहीं होने के कारण आर्य शूद्र में परिवर्तित हो गए थे बल्कि आर्थिक और सामाजिक विषमताओं के चलते वे इस अधोगति में पहुँचे थे।

चौथी बात यह है कि शांतिपर्व की इस अनुश्रुति की प्रामाणिकता को दृढतापूर्वक स्वीकार करना कठिन है कि पैजवन शूद्र था। उसे सुदास् से अभिन्न माना गया है जो भारत जनजाति का प्रधान था, और कहा जाता है कि दस राजाओं के युद्ध का यह सुप्रसिद्ध नायक शूद्र ही था।[203] वैदिक ग्रंथों में ऐसे तथ्य नहीं हैं जिनसे इस विचार की पुष्टि होती हो और शांतिपर्व की अनुश्रुति को किसी अन्य स्रोत से, चाहे वह महाकाव्य हो या पुराण, बल नहीं मिलता है। इस अनुश्रुति के अनुसार शूद्र पैजवन यज्ञ करते थे। यह बात भी ऐसे प्रसंग में आई है, जहाँ कहा गया है कि शूद्र पाँच महायज्ञ कर सकते थे और दान दे सकते थे।[204] यह निर्णय करना कठिन है कि यह अनुश्रुति सच है या झूठ, किंतु इसका उद्देश्य यह सिद्ध करना था कि शूद्र यज्ञ और दान-पुण्य कर सकते थे। हम आगे यह देखेंगे कि ऐसा दृष्टिकोण शांतिपर्व की उदारवादी भावना के अनुकूल था, और तब पैदा हुआ जब शूद्र किसानों की संख्या बढ़कर काफी हो गई। यह भी ध्यातव्य है कि परवर्ती काल में ब्राह्मण ऐसे किसी भी व्यक्ति के लिए जो उनका विरोध करता था, व्यापक रूप से शूद्र या वृषल शब्द का प्रयोग करने लगे थे। हमें मालूम नहीं कि शूद्र पैजवन के साथ भी ऐसी ही बात थी या नहीं। प्राय ऐसे कथनों का यह अर्थ नहीं कि क्षत्रिय और ब्राह्मण शूद्र की स्थिति में पहुँच गए थे बल्कि वे मात्र इतना संकेत देते हैं कि इन मान्य व्यक्तियों की उत्पत्ति शूद्रों से हुई थी खासकर मातृकुल की ओर से।[205]

स्पष्ट है कि आर्य जनजातियों और उनकी संस्थाओं की ही तरह शूद्र जनजाति भी सैनिक कृत्यों का निर्वाह करती थी।[206] *महाभारत* में शूद्रों की सेना का उल्लेख अबष्ठों आभीरों शूरसेनों आदि के साथ हुआ है।[207] किंतु, जैसा कि हम जानते हैं, इससे पूरी जनजाति क्षत्रिय वर्ण नहीं बन सकी और न उसके कर्तव्य और विशेषाधिकार सुनिश्चित हो सके। अत इस सिद्धांत में शायद ही कोई बल है कि क्षत्रियों को शूद्र की स्थिति में पहुँचा दिया गया था।

शूद्र शब्द का व्युत्पत्त्यर्थ निकालने के जो प्रयास हुए हैं वे अनिश्चित से लगते हैं और इनसे वर्ण की समस्या सुलझाने में शायद ही कोई सहायता मिलती है। सबसे पहले *वेदांत सूत्र* में बादरायण ने इस दिशा में प्रयास किया था। इसमें शूद्र शब्द को दो भागों में विभक्त कर दिया गया है —'शुक् (शोक) और द्र जो द्रु धातु से बना है और जिसका अर्थ है दौड़ना।[208] *इसकी टीका करते हुए शंकर ने इस बात की तीन वैकल्पिक व्याख्याएँ की हैं* कि जानश्रुति[209] शूद्र क्यों कहलाया (1) वह शोक के अन्दर दौड़ गया — वह शोक निमग्न हो गया (शुचम् अभिदुद्राव) (2) उस पर शोक दौड़ आया — उस पर

सताप छा गया (शुचा वा अभिद्रुवे) और (3) 'अपने शोक के मारे वह रैक्व दौड गया' (शुचा वा रैक्वम् अभिदुद्राव)।[210] शकर का निष्कर्ष है कि शूद्र शब्द के विभिन्न अगों की व्याख्या करने पर ही उसे समझा जा सकता है, अन्यथा नहीं।[211] बादरायण द्वारा शूद्र शब्द की व्युत्पत्ति और शकर द्वारा उसकी व्याख्या दोनों ही वस्तुत असतोषजनक है।[212] कहा जाता है कि शकर ने जिस जानश्रुति का उल्लेख किया है, वह *अथर्ववेद* में वर्णित उत्तर पश्चिम भारत के निवासी महावृषों पर राज्य करता था। यह अनिश्चित है कि वह शूद्र वर्ण का था। वह या तो शूद्र जनजाति का था या उत्तर पश्चिम की किसी जाति का था जिसे ब्राह्मण लेखकों ने शूद्र के रूप में चित्रित किया है।

पाणिनि के व्याकरण में उणादिसूत्र के लेखक ने इस शब्द की ऐसी ही व्युत्पत्ति की है जिसमें शूद्र शब्द के दो भाग किए गए हैं, अर्थात धातु शुच् या शुक् +र।[213] प्रत्यय 'र' की व्याख्या करना कठिन है और यह व्युत्पत्ति भी काल्पनिक और अस्वाभाविक लगती है।[214]

पुराणों में जो परपराएँ है उनसे भी शूद्र शब्द शुच् धातु से सबद्ध जान पडता है, जिसका अर्थ होता है सतप्त होना। कहा जाता है कि 'जो खिन्न हुए और भागे, शारीरिक श्रम करने के अभ्यस्त थे तथा दीन हीन थे उन्हें शूद्र बना दिया गया। [215] किंतु शूद्र शब्द की ऐसी व्याख्या उसके व्युत्पत्यर्थ बताने की अपेक्षा परवर्ती काल में शूद्रों की स्थिति पर ही प्रकाश डालती है। बौद्धों द्वारा प्रस्तुत व्याख्या भी ब्राह्मणों की व्याख्या की ही तरह काल्पनिक मालूम होती है। बुद्ध के अनुसार जिन व्यक्तियों का आचरण आतकपूर्ण और हीन कोटि का था (लुदआचारा खुद्दाचाराति) वे सुद (सस्कृत—शूद्र) कहलाने लगे और इस तरह सुद (स शूद्र) शब्द बना।[216] आदि मध्यकाल के बौद्ध शब्दकोश में शूद्र शब्द क्षुद्र का पर्याय बन गया,[217] और इससे यह निष्कर्ष निकाला गया कि शूद्र शब्द क्षुद्र से बना है।[218] दोनों ही व्युत्पत्तियाँ भाषाविज्ञान की दृष्टि से असतोषजनक हैं, किंतु फिर भी महत्वपूर्ण हैं क्योंकि उनसे प्राचीन काल में शूद्र वर्ण के प्रति प्रचलित धारणा का आभास मिलता है। ब्राह्मणों द्वारा प्रस्तुत व्युत्पत्ति में शूद्रों की दयनीय अवस्था का चित्रण किया गया है, किंतु बौद्ध व्युत्पत्ति में समाज में उनकी हीनता और न्यूनता का परिचय मिलता है। इन व्युत्पत्तियों से केवल इतना पता चलता है कि भाषा ओर व्युत्पत्ति सबधी व्याख्याएँ भी सामाजिक स्थितियों से प्रभावित होती हैं। हाल में एक लेखक ने शूद्र शब्द की व्युत्पत्ति इस रूप में की है—— धातु 'श्वी (मोटा होना)+धातु 'द्रु (दौडना)। उसकी राय है कि इस शब्द का अर्थ है ऐसा व्यक्ति जो स्थूल जीवन की ओर दौडे।' अतएव उसकी दृष्टि में शूद्र ऐसा गँवार है जो शारीरिक श्रम करने के लिए ही बना है।[219] यह बहुत ही अद्भुत बात है कि यहाँ दो धातुओं के मेल से 'शूद्र शब्द की उत्पत्ति की गई है और तब जब उसका कोई पुराना व्युत्पत्यात्मक आधार नहीं है। इस शब्द को लेखक जो अर्थ देना चाहता है वह शूद्रों

के प्रति केवल परपरावादी मनोवृत्ति को चित्रित कर पाता है। उससे शूद्रों की उत्पत्ति पर कोई प्रकाश नहीं पडता।

उत्पत्ति के समय शूद्र वर्ण की स्थिति दयनीय और उपेक्षित थी, यह बात *ऋग्वेद* और *अथर्ववेद* में वर्णित समाज के चित्रण से शायद ही सिद्ध होती है। इन सहिताओं में कहीं भी न तो दास और आर्य के बीच और न शूद्र और उच्च वर्णों के बीच भोजन और वैवाहिक प्रतिबंध का प्रमाण मिलता है।[220] वर्णों के बीच सामाजिक भेदभाव बतानेवाला एकमात्र पूर्वकालीन सदर्भ *अथर्ववेद* में पाया जाता है जिसमें यह दावा किया गया है कि ब्राह्मण को राजन्य और वैश्य की तुलना में, किसी नारी का पहला पति बनने का अधिकार प्राप्त है।[221] और भी कहीं-कहीं ब्राह्मणों के विशेषाधिकारों की चर्चा की गई है, यथा कहा गया है *कि उनकी गाय अथवा स्त्री को कोई हाथ नहीं लगा सकता। पर इस सबध में कहीं शूद्र* की चर्चा नहीं मिलती, क्योंकि प्राय उस समय यह वर्ण विद्यमान नहीं था। इसका कोई आधार नहीं कि दास और शूद्र अपवित्र समझे जाते थे और न ही इसका कोई प्रमाण मिलता है कि उनके छू जाने से उच्च वर्णों के लोगों का शरीर और भोजन दूषित हो जाता था।[222] अपवित्रता का सारा ढकोसला बाद में खडा किया गया, जब समाज कृषिप्रधान होने के बाद वर्णों में बँट गया और ऊपर के वर्ण अपने लिए तरह तरह की सुविधाएँ और विशेषाधिकार माँगने लगे।[223]

शूद्र वर्ण के उद्भव के विषय में इस अध्याय का साराश यह है कि आतरिक और बाहरी सघर्षों के कारण आर्य या आर्य पूर्व लोगों की स्थिति ऐसी हो गई है।[224] चूँकि सघर्ष मुख्यतया मवेशी के स्वामित्व को लेकर और बाद में भूमि को लेकर होता था अत जिनसे ये वस्तुएँ छीन ली जाती थी और जो अशक्त हो जाते थे वे नए समाज में चतुर्थ वर्ण कहलाने लगते थे। फिर जिन परिवारों के पास इतने अधिक मवेशी हो गए और इतनी अधिक जमीन हो गई कि वे स्वय सँभाल नहीं पाते थे, तो उन्हें मजदूरों की आवश्यकता हुई और वैदिककाल के अत में ये शूद्र कहलाने लगे।

यह मतव्य कि शूद्र वर्ण का निर्माण आर्य-पूर्व लोगों से हुआ था उतना ही एकागी और अतिरजित मालूम पडता है, जितना यह समझना कि उस वर्ण में मुख्यत आर्य ही थे।[225] वास्तविकता यह है कि आर्थिक तथा सामाजिक विषमताओं के कारण आर्य और आर्येतर दोनों के अदर श्रमिक समुदाय का उदय हुआ और ये श्रमिक आगे जाकर शूद्र कहलाए। साधारणतया मान्य समाजशास्त्रीय सिद्धात है कि वर्णविभाजन बराबर सजातीय असमानताओं से मूलतया सबद्ध होता है[226] किंतु इस सिद्धात से शूद्रों और दासों की उत्पत्ति पर आशिक प्रकाश ही पडता है। बहुत सभव है कि दासों और शूद्रों का नाम क्रमश इन्हीं नामों की जनजातियों के आधार पर रखा गया हो जो भारतीय आर्यों के निकट सपर्क

में रही हों। लेकिन कालक्रम से आर्य-पूर्व आबादी के लोग और विपन्न आर्य भी इन वर्गों में शामिल हो गए होंगे। यह बहुत स्पष्ट है कि वैदिक काल के आरंभिक लोगों में शूद्रों और दासों की जनसख्या बहुत सीमित थी और उत्तरवर्ती वैदिक काल के अत से लेकर आगे तक शूद्र जिन अशक्तताओं के शिकार रहे हैं वे आदिवैदिक काल में विद्यमान नहीं थीं।

संदर्भ

1 आर रौथ शब्रम अड डाइ ब्राम्नेन साइटशिफ्ट डेर डोयचेन मेर्गनलैंडिशेन गेजेलशाफ्ट बर्लिन' I पृ 84

2 वैदिक इंडेक्स II पृ 265 388 आर सी दत्त ए हिस्ट्री ऑफ सिविलिजेशन इन एनशिएंट इंडिया I, पृ 2 सेनार्ट कास्ट इन इंडिया पृ 83 एन के दत्त ओरिजिन ऐंड ग्रोथ ऑफ कास्ट इन इंडिया पृ 151 52 घुर्ये कास्ट ऐंड क्लास' पृ 152 2, डी आर भडारकर सम आस्पेक्ट्स ऑफ एनशिएंट इंडियन कल्चर पृ 10

3 जे म्यूर ओरिजिनल सस्कृत टेक्स्ट्स II पृ 387 म्यूर का विचार है कि यह बताने के लिए कोई प्रमाण नहीं है कि वे आर्यों से भिन्न थे

4 ऋग्वेद II 12 4 येनेमा विश्वा च्यवना कृतानि यो दास वर्णमधर गुहाक' अथर्ववेद XX 34 4

5 ऋग्वेद V 34 6—'यष्यवश्च नयति दासमार्य

6 वही II 13 8—'दसवेशाय चाव' सायण ने इसकी टीका दासों के विनाश के रूप में की है किंतु वैदिक इंडेक्स I 358 इसे दास का नाम मानता है।

7 ऋग्वेद II 11 4 VI 25 2 और X 148 2

8 वही, IV 28 4

9 वही III 34 9—हत्वी दस्यून् प्रार्य वर्णमावत अथर्ववेद XX 11 9 (पिप्पलाद सस्करण में नहीं)

10 I 103 3 अथर्ववेद XX 20 4

11 ऋग्वेद I 51.5-6 103 4 X 95 7 99 7 में दस्युहा शब्द आया है दस्युघ्न शब्द ऋग्वेद VI 16 10 में दस्युहन शब्द ऋग्वेद X 47 4 में दस्युहत्य शब्द ऋग्वेद, IV 16 15 VIII 39 8 में आया है और वाजसनेयि संहिता XI 34 में उसकी पुनरावृत्ति की गई है आर्यों और दस्युओं में शत्रुता के कई अन्य प्रसग आए हैं यथा ऋग्वेद V 7 10 VII 5 6 आदि ऋग्वेद 1 100 12, VI 45 24 VIII 76 11 77.3 में इद्र को दस्युहा कहा गया है इद्र द्वारा दस्युओं की हत्या के ऐसे ही प्रसग अथर्ववेद III 10 12 VIII 8.5 7 IX 2 17और IX X 3 11 XIX 46 2 XX 11 6 21 4 29 4 34 10 37 4 42.2, 64.3 78.3 में आए हैं और अग्नि द्वारा दस्युओं की हत्या के प्रसग अथर्ववेद में I, 7 1, XI 1 2 में आए हैं। अथर्ववेद VI 32.3 में मन्यु को दस्युहा कहा गया है

12 ऋग्वेद I 103.3 II 19 6 IV 30 20 VI 20 10 31 4
13 वही I 33 13 53 8 VIII 17 4
14 वही IV 30 13 V 40 6 X 69 6
15 वही 176 4 असमभ्यमस्य वेदन दद्धि सूरिश्चिदो हते
16 वही I 33 4
17 वही VI 47 21
18 वही VIII 40 6 वय तदस्य सम्भृत वसु इंद्रेण विभजेमहि
19 वही I 33 7 8
20 वही III 53 14 किं ते कृण्वंति की कटेषु गावो नाशीर दुह्रे न तपन्ति धर्मम्
21 वही II 15 4
22. ह्वीलर दि इडस सिविलिजेशन (सप्लीमेंट वाल्यूम टु कैंब्रिज हिस्ट्री ऑफ इंडिया I) पृ 90 91
23 ऋग्वेद X 86 19 अथर्ववेद XX 126 19
24 ऋग्वेद VII 6 3
25 वही I 51 8
26 वही I 133 1 V 2 3 VII 18 16 X 27 6 X 48 7
27 वही IV 16 9
28 अथर्ववेद II 14 5
29 वही X 6 20
30 वही XII 1 37
31 ऋग्वेद X 22 8
32 पी वी काणे दि वर्ड व्रत इन दि ऋग्वेद जर्नल ऑफ दि बाम्बे ब्राच ऑफ दि रायल एशियाटिक सोसायटी न्यू सीरीज XXIX पृ 12
33 ऋग्वेद I 51 8 9 I 101 2 I 175 3 VI 14 3 IX 41 2 किंतु अव्रत शब्द का प्रयोग कहीं भी दास के लिए नहीं किया गया है
34 वही VIII 70 11 X 22 8
35 वही V 42 9 V 40 6 में अपव्रत शब्द का अर्थ काला माना गया है
36 वही VII 5 2 3 गेल्डर का अनुवाद बी बी लाल एन्शिएट इंडिया 9 पृ 88 राणा घुडई III में हड़प्पा संस्कृति का अत भीषण अग्निकाड में हुआ
37 ऋग्वेद IX 41 1 2 घ्नन्त कृष्ण आप त्वच साह्वाम्सो दास्युमव्रतम्
38 वही IX 73 5
39 वही IV 16 13 किंतु गेल्डनर ने इस सदर्भ में राक्षस का जिक्र नहीं किया है
40 वही I 130 8
41 ऋग्वेद VIII 96 13 15 अव द्रप्सो अंशुमत्या उपस्थे धारयत्तत्वम्, तितिषाण विशो

अदेविर्म्या चरन्तिर् बृहस्पतिना युजेन्द्र ससाहे

42 कोसबी जर्नल आफ दि बम्बे ब्राच ऑफ दि रायल एशियाटिक सोसायटी बम्बई न्यू सीरीज XXVII 43

43 ऋग्वेद I 101 1 'य कृष्णगर्भानिरहन्नृजिश्वाना

44 वही II 20 7 सवृत्रहेन्द्र कृष्णयोनि पुरन्दर ओदासीरैयद्रि "सायण की टीका किंतु गेल्डनर का सुझाव है कि दासी में पुर अतर्निहित है और कवि गर्भाधान की बात सोचता है

45 वही VIII 19 36 37

46 वही V 29 10 सायण अनास की व्याख्या वाणीविहीन (आस्यरहित) के अर्थ में करते हैं

47 वही VII 99 4

48 वही I 174 2 V 29 10 32 8 VII 6 3 18 13 चार स्थानों पर नहीं जैसा कि 'हू वेयर दि शूद्राज पृ 71 में है

49 वही V 29 10 VII 6 3

50 वही I 174 2

51 यह गिनती विश्वबंधु शास्त्री के वैदिक कोश पर आधारित है।

52 व्हीलर पूर्व निर्दिष्ट पृ 8 व्हीलर की राय है कि असभ्य खानाबदोशों (अर्थात आर्यों) की चढ़ाई के कारण सगठित कृषि बिखर गई पर अभी तक ऐसे प्रमाण नहीं मिले हैं जिनके आधार पर कहा जाए कि सैंधव शहरी सभ्यता के लोगों और आर्यों के बीच जमकर लड़ाई हुई

53 ऋग्वेद X 83 1 साह्याम दासमार्य त्वयायुजा सहस्कृतेन सहसा सहस्वता, जो अथर्ववेद IV 32 1 जैसा ही है

54 ऋग्वेद X 38 3 देखें अथर्ववेद XX 36 10

55 ऋग्वेद VII 83 1 दासाच वृत्रा हतमार्याणि च सुदासमु इन्द्रावरुणावसावतम्

56 वही VI 60 6

57 वही, VI 33.3 देखें X 102 3

58 ऋग्वेद VIII 24 27 'य ऋक्षादहसो मुचद्योवार्यात् सप्तसिन्धुषु, वधर्दासस्य तुविनृम्ण नीनम गेल्डनर इस परिच्छेद का अर्थ लगाते हैं कि इंद्र ने दासों के अस्त्रों को आर्यों से विमुख कर दिया

59 ऋग्वेद VI 33.3 60 6 VII 83 1 VIII 24 27 (विवादास्पद कंडिका) X 38 3 IV 6 83 1 86 19 102.3 इनमें से चार निर्देशों को अबेडकर ने सही रूप में उद्धृत किया है अंबेडकर पूर्व निर्दिष्ट' पृ 83 4

60 वैदिक इंडेक्स I 356 दासदास के ऊपर देखें पाद टिप्पणी 4

61 ऋग्वेद VII 33 2 5 83 8 वास्तविक युद्ध स्तुति ऋग्वेद VII 18 में है

62 आर सी मजुमदार और ए डी पुसलकर वैदिक एज पृ 245 अन्य आर्यों के प्रति वैरभाव के कारण पूरुओं को ऋग्वेद VII 18 13 में मृध्रवाच कहा गया है

63 पी वी काणे पूर्व निर्दिष्ट, (जर्नल आफ दि बाम्बे ब्राच ऑफ दि रायल एशियाटिक सोसायटी बंबई न्यू सीरीज xxix 11

64 अथर्ववेद V 11 3 पैप्पलाद VIII 1 3 'नमे दासोनार्यो महीत्वा व्रतं मीमाय यदहम् धरिष्ये

65 जर्नल आफ दि रायल एशियाटिक सोसायटी ऑफ ग्रेट ब्रिटेन एंड आयरलैंड लन्दन न्यू सीरीज II पृ 286 294

66 ऋग्वेद I [illegible] 8

67 वही VI 44 11

68 वही VI 47 16 (जर्नल ऑफ [illegible] रायल एशियाटिक सोसायटी ऑफ ग्रेट ब्रिटेन एंड आयरलैंड लंदन न्यू सीरीज II पृ 286 294)

69 ऋग्वेद VIII 51 9 यस्यार्य विश्व आर्यो दास शेवधिपा अरि इस अनुच्छेद पर सायण की टिप्पणी में और वाजसनेयि संहिता XXXIII के एक ऐसे ही अनुच्छेद पर उवट तथा महीधर की टिप्पणी में भी दास को आर्य का विशेषण माना गया है किंतु गेल्डनर (ऋग्वेद VIII 51 9) आर्य और दास को दो अलग अलग सत्ता मानते हैं हर हालत में यह स्पष्ट है कि आर्यों का भी विरोध होता था

70 ऋग्वेद X 69 6 समजया पर्वत्या वसूनि दासा वृत्राण्यार्या जिगेथ

71 ऋग्वेद I 124 10 182 3 IV 25 7 51 3 V 34 7 VI 13 3 53 6 7

72 जर्नल ऑफ दि रायल एशियाटिक सोसायटी ऑफ ग्रेट ब्रिटेन एंड आयरलैंड लंदन न्यू सीरीज II 286 294

73 वैदिक इंडेक्स I पृ 471

74 वही ऋग्वेद VIII 66 10

75 वैदिक इंडेक्स,I,472

76 वही

77 गीर्समन ईरान पृ 243

78 वैदिक इंडेक्स I 472

79 ऋग्वेद VIII 40 6

80 वही III 34 9

81 ऋग्वेद I 104 2 III 34 9 'देवासो मन्यु दासस्य श्चमन्ते न आवक्षन्त्सुविताय वर्णम्

82 साइटशृफ्ट डेर डोय्चेन मैर्गेनलैंडिशेनगेजेलशाफ्ट बर्लिन II 272

83 जन का उल्लेख लगभग 275 बार और विश् का उल्लेख 170 बार हुआ है

84 ई जे रैप्सन दि कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इंडिया पृ 99

85 सेंटमैन दि ओरिजिन्स ऑफ सोशल इनइक्वलिटीज ऑफ दि सोशल क्लासेज , पृ 230

86 चाइल्ड 'दि मोस्ट एनशिएंट ईस्ट' पृ 175

87 व्हीलर पूर्व निर्दिष्ट पृ 94

88 मैके अर्ली इंडस सिविलिजेशंस पृ XII XIII

89 लाल एनशिएंट इंडिया सं 9 पृ 93

90 ऋग्वेद II 27 12

91 ऋग्वेद VI 22 1 यया दासान्यार्णि वृत्र करो वज्रिन्सुतुका नाहुषाणि'
92 ऋग्वेद X 49 3 अह शुष्णस्य श्नथिता वधर्यम न यो रर आर्य नाम दस्यवे
93 पार्जिटर एनशिएट इंडियन हिस्टारिकल ट्रेडीशन पृ 306 8
94 हयुमेजिन फ्लामेन ब्राह्मण अध्याय II और III एक अन्य निर्देश के लिए देखें पाल थिमे (साइटशृफ्ट डेर डोयेन मेर्गेनलैंडिशेनगेजेलशाफ्ट बर्लिन एन एफ 27 पृ 91 129
95 ई जे रैपसन पूर्व निर्दिष्ट I 103
96 डब्ल्यू रुबेन इन्द्राज फाइट अगेन्स्ट वृत्र इन दि महाभारत (एस के बेल्वल्कर कमेमोरेशन वाल्यूम पृ 116 8) धर्मानंद कोसंबी, भगवान बुद्ध पृ 24
97 कोसंबी (जर्नल ऑफ दि बाम्बे ब्राच ऑफ दि रायल एशियाटिक सोसायटी बम्बई न्यू सीरीज XXII 35)
98 ऋग्वेद I 117 8 किंतु सायण श्यावाय' को कुष्ठरोगेण श्यामवर्णाय बताते हैं
99 वही VIII 85 3 4 वही VIII 50 10 में भी कण्व का उल्लेख है
100 वही I 116 23 देखें I 117 7 पार्जिटर मानते हैं कि काण्वायन ही वास्तविक ब्राह्मण हैं डायनेस्टीज ऑफ दि कलि एज पृ 35
101 ऋग्वेद I 158 6 अंबेडकर हू वेयर दि शूद्राज ? पृ 77
102 'वैदिक इंडेक्स I 366 शतपथ ब्राह्मण XIV 9 4 15 में एक ऐसी माँ का वर्णन आया है जो काले रंग के बालक की आकांक्षा रखती है जिसे वेद का ज्ञान हो
103 वैदिक इंडेक्स I 363 ह्विलब्राट का सुझाव
104 ऋग्वेद I 130 10
105 कोसंबी (जर्नल ऑफ दि बाम्बे ब्राच ऑफ एशियाटिक सोसायटी बम्बई न्यू सीरीज XXVI 44)
106 मोनियर विलियम्स संस्कृत इंगलिश डिक्शनरी देखें दास दास
107 कौषतकि उप III 1 वैदिक इंडेक्स में उद्धृत II 30
108 ऋग्वेद VIII 19 36
109 अथर्ववेद, XII 3 13 पैप्प XVII 37.3 यद्वा दास्यार्द्रहस्ता समत उलूखल मुसलम् शुम्भताप
110 वही XII 4 9 पैप्प के एक ऐसे ही परिच्छेद XVII 16 9 में दासी शब्द के स्थान पर देवी लिया गया है
111 अथर्ववेद V 13 8
112 ऋग्वेद I 92 8 158.5 गेल्डनर के अनुवाद के अनुसार
113 वही X 62.10
114 वही VIII 56.3
115 वही VII 86 7 हिलब्रांट इसे संदिग्ध मानते हैं उन्होंने गलत ढंग से VII 86.3 में 'कदाचित्' जोड़ दिया है जो होना चाहिए VII 86 7 'साइटश्रिफ्ट फ्यूर इंडोलोगिज उंड ईरेनिस्टिक सम्पतिसबु, III. 16

116 वही VIII 56 3 शर्तं में गर्दभान्ना शतपूर्णावतीना शत दासा अति सज 100 रूद्र सख्या हो सकती है

117 वही I 92 8 उपसिआमस्यां यवसुवीरं दासप्रवगं रयिमश्व बुध्यम्

118 वही I 158 5 6

119 वही X 62 10 'उत् दासा परिविषेऽस्मद् दिष्टि गोपरिणसा यदुस् तुर्वश् च मामहे

120 वही X 34 4

121 वही II 11 4 IV 28 4 और VI 25 2 दत्त स्टडीज इन हिंदू सोशल पालिटी पृ 334 श्री एन दत्त का विचार है कि ऋग्वेद VI 25 2 में दासविश् का जो उल्लेख हुआ है उसका तात्पर्य यह है कि दास को वैश्य कोटि में रखा गया है किंतु चूँकि उस समय वैश्य समाज के एक वर्ग के रूप में नहीं थे इसलिए यहाँ विश् को एक जनजाति विशेष माना जा सकता है

122 वही VI I 357 पाद टिप्पणी 20 जाति और भाषा की दृष्टि से दास ईरानियों के बहुत निकट रहे होंगे किंतु यह बहुत स्पष्ट रूप से प्रमाणित नहीं हो पाया है वही त्सिम्मर ने हेरोडोटस के दआई या दाअई I 126 को तूरानियन जनजाति का बताया है।

123 शेफर एथनोग्राफी इन एनशिएंट इंडिया पृ 32 कहा गया है कि सामाजिक स्तर पर दास और आर्य का स्थान दस्यु भीलों से ऊपर था

124 स्टुअर्ट पिगाट एंटिक्विटी जिल्द XXIV सं 96 218 लाल पूर्व निर्दिष्ट दिल्ली स 9 पृ 90-91 लाल का कथन है कि दूसरी सहस्राब्दी ई पू के पूर्वार्ध में शाही टुप (आधुनिक बलूचिस्तान) में और दूसरी सहस्राब्दी ई पू के उत्तरार्ध में फोर्ट मुनरो (अफगानिस्तान) में लोग झुंड के झुंड आए.

125 वैदिक इंडेक्स II पृ 255 पाद टिप्पणी 67 देखें वर्ण शब्द

126 आर सी मजुमदार और ए. डी पुसलकर पूर्व निर्दिष्ट ऋग्वैदिक जातियों के लिये देखें पृ 245 248 और उत्तर वैदिककालीन जातियों के लिए पृ 252 262

127 शतपथ ब्राह्मण I 1 4 11 12

128 महाभारत शांति पर्व 181 15 'वर्णश्चत्वार एते हि येषा ब्राह्मी सरस्वती विहिता ब्रह्मणा पूर्वा लोभात्त्वज्ञानता गता

129 वेबर इंडिश स्टुडियेन II 94 पाद टिप्पणी

130 आर एस शर्मा (जर्नल ऑफ दि बिहार रिसर्च सोसायटी XXXVIII 434 5 XXXIX 418 9)

131 ऋग्वेद I 70 9 V 1 10 VIII 100 9

132 ऋग्वेद VII 6.5 X 173 6 बलिहृत (कर देना)

133 वैदिक इंडेक्स II 62 त्सिम्मर के विचार

134 मैक्समूलर सेक्रेड बुक्स ऑफ दि ईस्ट XXXII 361 ऋग्वेद का अनुवाद V 61 8

135 वैदिक इंडेक्स II 331

136 लैटमैन पूर्व निर्दिष्ट पृ 5 12 में दिए गए उदाहरण उन्होंने पूर्वी भारत के नागाओं और

कूकियों में वर्णभेद के अभाव का भी उल्लेख किया है (पृ   II)

137 वायु पुराण I, VIII 60 देखें, दीघ निकाय अगञ्ञसुत्त 'वर्णाश्रमव्यवस्थाश्च न तदासन्नसंकर न लिप्सन्ति हि ते5न्योन्यज्ञानुगृहणन्ति चैव हि

138 कर्ल डार्लिंग ए डिक्शनरी ऑफ सिलेक्टेड सिनोनिम्स इन दि प्रिंसिपल इण्डो यूरोपियन लैंग्वेजेज चर्म (चर्मन्) के लिए देखें पृ 40 बुनाई के लिए पृ 408 तक्षन् के लिए पृ 589 90 और वेणीकार के लिए पृ 621 22 चाइल्ड दि एरियन्स, पृ 86

139 चाइल्ड पूर्व निर्दिष्ट पृ 86 और 92.

140 ऋग्वेद IV 35 6 36 5 VI 32 1

141 अथर्ववेद III 5 6 ये धीवानो रथकारा कर्मारा ये मनीषिण उपस्तीन्पर्ण मह्य त्वम् सर्वान्कृण्वभितो जनान्

यहाँ ब्लूमफील्ड के अनुवाद का अनुसरण किया गया है ह्विटने ने ब्लूमफील्ड जैसा ही अनुवाद प्रस्तुत किया है किंतु उन्होंने सायण के विचारानुसार उपस्तिन् को प्रजा के अर्थ में लिया है सायण धीवान और मनीषिण को अलग अलग सत्ता मानते हैं जिनका अर्थ मछुआ और बुद्धिजीवी किया गया है पैप्प अथ में थोड़ा सा पाठभेद है, ये तक्षाणो रथकारा कर्मारा ये मनीषिण सर्वास तान्पर्ण रथयोपस्ति कृणु मेदिनम्' III 13 7

142 वैदिक इंडेक्स, I पृ 247 सम्भवत यह असैनिक और सैनिक दोनों प्रकार के कार्यों के लिए गाँव का प्रधान था

143 अथर्ववेद III 5 7

144 ऋग्वेद I 105 18

145 वैदिक इंडेक्स I पृ 297

146 ऋग्वेद VIII 5 38

147 वैदिक इंडेक्स II पृ 265 6

148 फिक दि सोशल आर्गेनाइजेशन इन नार्थ ईस्ट इंडिया पृ 326 7

149 पचविंश ब्राह्मण V I 6 10 वाजसनेयि संहिता XXXI 11 तैत्तिरीय आरण्यक III 12 5 और 6

150 महाभारत XII 73 4 8

151 वायु पुराण I VIII 155 9 मार्क पु अध्याय 49 विष्णु पुराण I अध्याय VI

152 वसिष्ठ धर्मसूत्र IV 2 बौधायन धर्मसूत्र I 10 19 5 6 देखें आपस्तम्ब धर्मसूत्र I 1 1 7 मनु I 31 मनु III 126

153 ऋग्वेद X 90 12

154 ह्विटने हार्वर्ड ओरिएंटल सिरीज VII पृ CXLI VIII 895 898

155 अथर्ववेद XIX 6 6

156 ऋग्वेद IX 112 3

157 ओल्डेनबर्ग (साइटश्रिफ्ट डेर डोयचेन मॉर्गेनलैंडिशेन गेसेलशाफ्ट बर्लिन 1 286)

158 अथर्ववेद XIX 6 6

159 वही XIX 32 8 पैप्पलाद XII 4 8

160 वही XIX 62.1 पैप्पलाद II 32 5

161 हार्वर्ड ओरिएंटल सिरीज VIII 1003 अथर्ववेद के अनुवाद पर व्हिटने की टिप्पणी XIX 62 1

162 व्हिटने पूर्व निर्दिष्ट पृ 33

163 अथर्ववेद X 1 3

164 व्हिटने पूर्व निर्दिष्ट VII पृ CLV

165 अथर्ववेद V 17 9 पैप्प IX 16 7

166 मक्रिन्डल इनवेजन ऑफ इंडिया पृ 293 एरियन सोगदोई (वही पृ 157) का उल्लेख करते हैं जो गलत हो सकता है मैक्रिन्डल ऐनशिएंट इंडिया ऐज डिस्क्राइब्ड बाइ टालमी पृ 317 फिर टालमी ने स्पष्ट लिखा है (VI 20 3) कि सिद्रोई आर्कोसिया के मध्य भाग में रहते थे जिसके अंतर्गत पूर्वी अफगानिस्तान का काफी बड़ा हिस्सा पड़ता है और जिसकी पूर्वी सीमा पर सिंधु है

167 एच सी रायचौधरी पोलिटिकल हिस्ट्री आफ एनशिएंट इंडिया पृ 255

168 ऐतरेय ब्राह्मण VII 21

169 हार्वर्ड ओरिएंटल सिरीज VII पृ CXLVIII और CLV

170 अथर्ववेद IV 20 4 8 पैप्प VIII 6 8 तयाह सर्वं पश्यामि यश्च शूद्र उतार्य

171 अथर्ववेद V 11 3

172 ऋग्वेद की टीका II 12 4

173 अथर्ववेद की टीका IV 20 4

174 अथर्ववेद V 22 7 और 8

175 मजुमदार और पुसलकर पूर्व निर्दिष्ट पृ 258 9

176 महाभारत VI 10 66 46 जहां क्रिटिकल एडिशन ऑफ महाभारत में अपरान्ता की जगह अशुद्ध पाठ अपराग्ना है शूद्राभीराथ दरदा काश्मीरा पशुभि सह

177 अथर्ववेद V 22 12 14

178 पैप्पलाद XIII 1 9

179 वही II 29 8 9 पल्लव और बर्बर का भी उल्लेख हुआ है वही II 29 15

180 महाभारत VI 10 65

181 वही VI 10 66

182 वही II 47 7

183 वही II 47 7 एवं आगे

184 पी बनर्जी (जर्नल ऑफ दि बिहार रिसर्च सोसायटी पटना xli 160 1)

185 बुधप्रकाश (जर्नल आफ दि बिहार रिसर्च सोसायटी पटना x1 255 260 3)

186 वेबर (त्साइटश्रिफ्ट डेर डोयचेन मोर्गेनलैंडिशेनगेजेलशाफ्ट बर्लिन iv 301 पाद टिप्पणी 2) रौथ वही बर्लिन i, 84

187 फिक पूर्व निर्दिष्ट पृ 315 कीथ कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इंडिया, I 86 लैसेन इंडिश आल्टरटुम्स्कुंड, II 174 देखें वेबर, इंडिश स्टुडियेन XVIII 85 86 और 255 तिस्मर टॉलेमी द्वारा उल्लिखित शूद्रों को ब्राहुई से अभिन्न मानते हैं (अल्ट लेबेन पृ 435) किंतु ऐसे अनुमान का कोई आधार नहीं दीखता हापकिन्स, रिलिजन्स ऑफ इंडिया पृ 548 पाद टिप्पणी 3 मार्कण्डेय पुराण अनुवाद पृ 313 14 पाद टिप्पणी पार्जिटर का मत है कि शूद्र और आभीर परस्पर सम्मिलित और सबद्ध आदिम जाति के थे

188 महाभारत VI 10 45 और 46 65 और 66 महाभारत के आलोचनात्मक सस्करण VII 19 7 में शूद्राभीर पाठ अशुद्ध मालूम पड़ता है यह शूद्रभरा होना चाहिए जैसा कि अन्य हस्तलिपियों में पाया जाता है (VII 19 7 पर पाद टिप्पणी) पतजलि आन पाणिनिज ग्रामर I 2 72 6 पतजलि के महाभाष्य में शूद्रों और आभीरों का एक साथ उल्लेख हुआ है

189 पी डी गुने भविसयत्तकहा पृ 50-51 आभीरोक्ति के प्राचीनतम उदाहरण भरत के नाट्यशास्त्र में मिलते हैं जो ई सन् की दूसरी या तीसरी शताब्दी की रचना है ये स्पष्टत सस्कृत के बहुत निकट हैं

190 महाभारत की सूची लगभग उसी रूप में पुराणों में भी आई है जिसमें शूद्रों को आभीरों कालतोयकों अपरातों पहलवों (जिन्हें आलोचनात्मक सस्करण VI 10 66 में गलत रूप में पल्लव कहा गया है) और अन्य लोगों के साथ एक जाति के रूप में चित्रित किया गया है। मार्कण्डेय पुराण अध्याय 57 35 36 और मत्स्य पुराण अध्याय 113 40 मालूम पड़ता है कि गुप्त काल में शूद्र जनजाति का अपना एक नियत राज्यक्षेत्र था जिसे विष्णु पुराण (IV 24 18) में सौराष्ट्र, अवंति और अर्बुद राज्यक्षेत्रों के साथ सूचीबद्ध किया गया है दीक्षितार ने (गुप्त पालिटी पृ 3-4 में) सूर के रूप में जो पाठ प्रस्तुत किया है उसका कोई औचित्य नहीं है क्योंकि ग्रथ में शूद्र राज्यक्षेत्र का स्पष्ट उल्लेख है

191 म्यूर पूर्व निर्दिष्ट II 355 357

192 महाभारत II 29 9 शूद्राभीरगणाश्चैव ये चाश्रित्य सरस्वतीम्

193 महाभारत (कल), IX 37 1 शूद्राभीरान् प्रति द्वेषाद् यत्र नष्टा सरस्वती

194 वैकरनैगेल इडुवायरेनिशे सितजुगबेरिख्टे डेर कोनिग्लिश प्रेसिस्चेन अकेडेमी डेर विसेनशाफ्टेन - 1918 410-411

195 लिडेल ऐंड स्काट ए ग्रीक इगलिश लेक्सिकन ।

196 वेबर (साइटश्रुफ्ट डेर डोयचेन् मोर्गेनलैंडिशेनगेजेलशाफ्ट बर्लिन IV 301 पाद टिप्पणी 2) रौय वही बर्लिन I, 84

197 स्टुअर्ट पिग्गट पूर्व निर्दिष्ट IV स 96 218

198 टी बरो दि सस्कृत लैंग्वेज पृ 31

199 अंबेडकर पूर्वोद्धृत पृ 239

200 वही पृ 139-42 लैसेन ने इस तथ्य की ओर ध्यान आकृष्ट किया कि प्राचीन राजा सुदास् को महाभारत में शूद्र कहा गया है इंडिश् आल्टर I 969

201 कोसबी (जर्नल ऑफ दि बम्बे ब्रांच ऑफ दि रायल एशियाटिक सोसायटी बम्बई न्यू सीरीज

XXIII 45)

202 अंबेडकर पूर्वोद्धृत पृ 185 90

203 वही पृ 139

204 महाभारत XII 60 38-40

205 ऐसे ऋषियों की चर्चा भविष्य पुराण I 42 22 26 में की गई है जिनकी माँ शूद्र वर्ण के किसी न किसी वर्ग की समझी जाती थी। यह सूची कई अन्य पुराणों और महाभारत पृ 70 में भी दी गई है

206 आर एस शर्मा (जर्नल ऑफ [illegible] बिहार रिसर्च सोसायटी XXXVIII 435 7 XXXIX 416 7)

207 महाभारत VII 6 6 देखें 19 7

208 वेदांत सूत्र 1.3.34 शुगस्य तदनादर श्रवणात् तदाद्रवणात् सूच्यते

209 छांदोग्य उपनिषद्, IV 2. 3 में राजा के रूप में वर्णित

210 शंकर्स कमेंट्री टु वेदांतसूत्र 1 3 34

211 वही शूद्र अवयवार्थ सम्भवात् रूढ्यर्थस्य चासम्भवात्

212 (इंडियन ऐंटीक्वेरी बबई 1ı 137 8)

213 शुचेर द्रव II 19

214 (इंडियन ऐंटीक्वेरी बबई 1ı,137 8)

215 वायु पुराण I VIII 158 शोचन्तश्च परिचर्यासु ये रता' निस्तेजसो अल्पवीर्याश्च शूद्रास्तानब्रवीत्तु स भविष्य पुराण I 44 23 [illegible] आगे में कहा गया है कि शूद्रों को इसलिए शूद्र कहा जाता था कि उन्हें वैदिक ज्ञान का महज उच्छिष्ट प्राप्त होता था ये ते श्रुतेर्दुर्ति प्राप्ता शूद्रास्तेनेह कीर्तिता

216 दीघ निकाय III 95 'सुद्दा त्वेव अक्खर उपनिब्बतम्

217 देखें शूद्र शब्द महाव्युत्पत्ति

218 (इंडियन ऐंटीक्वेरी बबई 1ı 138 9)

219 सूर्यनात कीकट फलिगा और पणि (एस के बेल्वल्कर कमेमोरेशन वाल्यूम पृ 44)

220 (इंडियन कल्चर कलकत्ता XII 179), एन एन घोष ने गलत कहा है कि आर्य और दास के बीच ऐसा प्रतिबंध ऋग्वेद द्वारा प्रमाणित है।

221 अथर्ववेद V 17 8 9

222 दत्त ओरीजिन एंड ग्रोथ आफ कास्ट सिस्टम पृ 20 और 62

223 आजकल कई यूरोपीय समाजशास्त्री जैसे लुई दुमो अपवित्रता ही के कारण वर्ण या जातिप्रथा का उदय मानते हैं पर किस आर्थिक और सामाजिक परिस्थिति में अपवित्रता की भावना बढ़ी इस पर विचार करने का कष्ट नहीं करते

224 जी जे हेल्ड 'एथनालाजी ऑफ महाभारत पृ 89 95 बी एन दत्त स्टडीज इन इंडियन सोशल पालिटी पृ 28 30 अंबेडकर हू वेयर दि शूद्राज पृ 239

225 वैदिक इंडेक्स II 265

226 लैंटमैन पूर्व निर्दिष्ट पृ 38

जनजाति से वर्ण की ओर
(लगभग 1000 ई पू से लगभग 600 ई पू तक)

उत्तरवैदिक साहित्य, जो शूद्रों की तत्कालीन स्थिति की जानकारी का एकमात्र साधन है, मुख्यतया जनजीवन के प्रत्येक क्षेत्र में व्याप्त कर्मकाड से सबधित है। इस युग में हर सामाजिक या वैयक्तिक कार्य किसी उपयुक्त धार्मिक अनुष्ठान से जुडा हुआ था पर इन अनुष्ठानों में बहुधा सामाजिक विभेदों का ध्यान रखा जाता था।

कर्मकाडों का प्रचलन मुख्यतया कुरुपाचाल देश में था, जहाँ उत्तरवैदिक साहित्य का अधिकाश भाग रचा गया था।[1] यह साहित्य सामान्यतया 1000 ई पू से 600 ई पू तक के काल से सबद्ध है। इसमें सामाजिक विकास के विभिन्न चरणों की कल्पना की गई है। कालक्रम के अनुसार सामाजिक विकास का पता उस बात से चलता है कि कौन सा पाठ किस विशेष समय का है। इस प्रकार *कृष्ण यजुर्वेद संहिता शुक्ल यजुर्वेद संहिता* से प्राचीन है।[2] ब्राह्मण ग्रथों में *शतपथ* और *ऐतरेय*, जो वर्णों के पारस्परिक सबध का महत्वपूर्ण विवरण प्रस्तुत करते हैं, अपेक्षाकृत नवीन' हैं और *पञ्चविंश* एव *तैत्तिरीय* प्राचीनतम हैं।[3] *जैमिनीय ब्राह्मण शतपथ ब्राह्मण* और *ऐतरेय ब्राह्मण* से भी बाद का है,[4] और उसी तरह *कौषीतकि* या *शाङ्खायन ब्राह्मण* भी।[5] कुछ मामलों में *श्रौतसूत्र* और ब्राह्मण ग्रथों के बीच विभेद करना कठिन है जैसे *बौधायन श्रौतसूत्र* बाद का ब्राह्मण ग्रथ माना जा सकता है।[6] *आपस्तब श्रौतसूत्र* भी उतना ही पुराना मालूम पडता है।[7] इनके अतिरिक्त अन्य प्रमुख श्रौतसूत्र (यथा *आश्वलायन, कात्यायन शाङ्खायन लाट्यायन*, *द्राह्यायन* और *सत्याषाढ*) आठ सौ ई पू और पाँच सौ ई पू के बीच के माने गए हैं[8] यद्यपि उनमें से अधिकाश छ सौ ई पू के बाद रचे हुए मालूम पडते हैं। अभी उपनिषदों की सख्या दो सौ से अधिक हो गई है किंतु उनमें से केवल छ बुद्ध से पहले के माने जा सकते हैं।[9] उत्तरवैदिक साहित्य के विभिन्न भागों से उपलब्ध सामग्री की जाँच करने में अलग अलग ग्रथों के कतिपय अशों के पारस्परिक तिथिनिर्धारण का भी ध्यान रखना होगा।[10] इतना ही नहीं हम देखते हैं कि *ऋग्वेद* और *अथर्ववेद* की अपेक्षा बाद की

XXIII 45)

202 अबेडकर पूर्वोद्धृत पृ 185 90

203 वही पृ 139

204 महाभारत XII 60 38 40

205 ऐसे ऋषियों की चर्चा भविष्य पुराण, I 42 22 26 में की गई है जिनकी माँ शूद्र वर्ण के किसी न किसी वर्ग की समझी जाती थी। यह सूची कई अन्य पुराणों और महाभारत पृ 70 में भी दी गई है

206 आर एस शर्मा (जर्नल ऑफ बिहार रिसर्च सोसायटी XXXVIII 435 7 XXXIX 416 7)

207 महाभारत VII 6 6 देखें 19 7

208 वेदांत सूत्र 1.3.34 शुगस्य तदनादर श्रवणात् तदाद्रवणात् सूच्यते

209 छांदोग्य उपनिषद्, IV 2. 3 में राजा के रूप में वर्णित

210 शंकर्स कमेंट्री टु वेदांतसूत्र 1.3 34

211 वही शू" अदवधार्य सम्भावात् स्वार्थस्य चासम्भवात्

212 (इंडियन ऐंटीक्वेरी बंबई, 1ı 137 8)

213 कुबेर दश्व II 19

214 (इंडियन ऐंटीक्वेरी बंबई 1ı 137 8)

215 वायु पुराण I VIII 158 शोचन्तश्च परिचर्यासु ये रता निस्तेजसो अल्पवीर्याश्च शू"द्रास्तान्ब्रवीत्तु सः भविष्य पुराण I 44 23 एवं आगे में कहा गया है कि शूद्रों को इसलिए शू" कहा जाता था कि उन्हें वैदिक ज्ञान का महज उच्छिष्ट प्राप्त होता था ये ते श्रुतेद्रुतिं प्राप्ता शूद्रास्तेनेह कीर्तिता

216 दीघ निकाय III 95 "सुद्दा सेव अक्खर उपनिब्बतम्

217 देखें शूद्र शब्द महाव्युत्पति

218 (इंडियन ऐंटीक्वेरी बंबई 1ı 138 9)

219 सूर्यकांत कीकट फलिगा और पणि (एस के बेल्वल्कर कमेमोरेशन वाल्यूम पृ 44)

220 (इंडियन कल्चर कलकत्ता XII 179), एन एल घोष ने गलत कहा है कि आर्य और दास के बीच ऐसा प्रतिबंध ऋग्वेद द्वारा प्रमाणित है।

221 अथर्ववे" V 17 8 9

222 दत्त ओरिजिन एंड ग्रोथ आफ कास्ट सिस्टम पृ 20 और 62

223 आजकल कई यूरोपीय समाजशास्त्री जैसे लूई दूमों अपवित्रता ही के कारण वर्ण या जातिप्रथा का उदय मानते हैं पर किस आर्थिक और सामाजिक परिस्थिति में अपवित्रता की भावना बढ़ी इस पर विचार करने का कष्ट नहीं करते

224 जी जे हेल्ड एथनालाजी ऑफ महाभारत पृ 89 95 बी एन दत्त स्टडीज इन इंडियन सोशल पालिटी पृ 28 30 अंबेडकर हू वेयर दि शूद्राज पृ 239

225 वैदिक इंडेक्स II 265

226 लैंटमैन पूर्व निर्दिष्ट पृ 38

जनजाति से वर्ण की ओर

(लगभग 1000 ई पू से लगभग 600 ई पू तक)

उत्तरवैदिक साहित्य, जो शूद्रों की तत्कालीन स्थिति की जानकारी का एकमात्र साधन है, मुख्यतया जनजीवन के प्रत्येक क्षेत्र में व्याप्त कर्मकांड से संबंधित है। इस युग में हर सामाजिक या वैयक्तिक कार्य किसी उपयुक्त धार्मिक अनुष्ठान से जुड़ा हुआ था पर इन अनुष्ठानों में बहुधा सामाजिक विभेदों का ध्यान रखा जाता था।

कर्मकांडों का प्रचलन मुख्यतया कुरुपांचाल देश में था, जहाँ उत्तरवैदिक साहित्य का अधिकांश भाग रचा गया था।[1] यह साहित्य सामान्यतया 1000 ई पू से 600 ई पू तक के काल से सबद्ध है। इसमें सामाजिक विकास के विभिन्न चरणों की कल्पना की गई है। कालक्रम के अनुसार सामाजिक विकास का पता उस बात से चलता है कि कौन-सा पाठ किस विशेष समय का है। इस प्रकार *कृष्ण यजुर्वेद संहिता शुक्ल यजुर्वेद संहिता* से प्राचीन है।[2] ब्राह्मण ग्रंथों में *शतपथ* और *ऐतरेय* जो वर्णों के पारस्परिक संबंध का महत्वपूर्ण विवरण प्रस्तुत करते है, अपेक्षाकृत नवीन' है, और *पञ्चविंश* एवं *तैत्तिरीय* प्राचीनतम हैं।[3] *जैमिनीय ब्राह्मण शतपथ ब्राह्मण* और *ऐतरेय ब्राह्मण* से भी बाद का है[4] और उसी तरह *कौषीतकि* या *शाङ्खायन ब्राह्मण* भी।[5] कुछ मामलों में *श्रौतसूत्र* और ब्राह्मण ग्रंथों के बीच विभेद करना कठिन है जैसे *बौधायन श्रौतसूत्र* बाद का ब्राह्मण ग्रंथ माना जा सकता है।[6] *आपस्तंब श्रौतसूत्र* भी उतना ही पुराना मालूम पड़ता है।[7] इनके अतिरिक्त अन्य प्रमुख श्रौतसूत्र (यथा, *आश्वलायन, कात्यायन, शाङ्खायन लाट्यायन*, *द्राह्यायन* और *सत्याषाढ*) आठ सौ ई पू और पाँच सौ ई पू के बीच के माने गए हैं,[8] यद्यपि उनमें से अधिकांश छ सौ ई पू के बाद रचे हुए मालूम पड़ते हैं। अभी उपनिषदों की संख्या दो सौ से अधिक हो गई है, किंतु उनमें से केवल छ बुद्ध से पहले के माने जा सकते हैं।[9] उत्तरवैदिक साहित्य के विभिन्न भागों से उपलब्ध सामग्री की जाँच करने में अलग अलग ग्रंथों के कतिपय अंशों के पारस्परिक तिथिनिर्धारण का भी ध्यान रखना होगा।[10] इतना ही नहीं हम देखते हैं कि *ऋग्वेद* और *अथर्ववेद* की अपेक्षा बाद की

संहिताओं और खासकर ब्राह्मणों में इच्छासूचक क्रियापद का प्रयोग कहीं अधिक हुआ है।[11] अतएव परवर्ती वैदिक साहित्य में बहुत से संदर्भ वस्तुतः घटित तथ्यों के अभिलेख नहीं हैं, उनसे केवल वैचारिक स्थिति का पता चलता है। लेकिन उत्तरवैदिक काल की घटनाओं के प्रमुख ग्रंथ *महाभारत* के विवरणात्मक अंशों से घटनाओं के साम्य यदा कदा प्राप्त हो सकते हैं।[12]

चूँकि वैदिक काल के बाद शूद्रों का वर्णन मुख्यतः अनुचर वर्ग के रूप में हुआ है, इसलिए उत्तरवैदिक काल में उनकी स्थिति का अध्ययन आरंभ करने में उनकी आर्थिक दशा पर ध्यान देना होगा। एक आरंभिक प्रसंग में कहा गया है कि शूद्रों के पास मवेशी होते थे जिन्हें उच्च वर्ण के लोग यज्ञ के लिए पकड़ ले जाते थे।[13] इस तथ्य की पुष्टि पूर्ववर्ती ब्राह्मणग्रंथ के एक अन्य ऐसे प्रसंग से होती है जिसमें बताया गया है कि शूद्र का जन्म उस समाज में हुआ जहाँ ईश्वर का अस्तित्व नहीं माना जाता था और यज्ञ का आयोजन भी नहीं होता था परंतु उसके पास बहुत से मवेशी रहते थे (बहुपशु)।[14] संभव है कि यहाँ उन शूद्रों का उल्लेख है जिनके बीच आर्य धर्म का प्रचार नहीं हुआ था और जिनके पशुधन पर यज्ञ करनेवालों की आँख लगी रहती थी।

कुछ ऐसे भी प्रसंग आए हैं जिनमें शूद्रों के अनुचरजन्य कर्मों का उल्लेख है। *जैमिनीय ब्राह्मण* में कहा गया है कि शूद्र की उत्पत्ति प्रजापति के पाँव से हुई है और उसका कोई देवता नहीं है। गृहस्वामी उसके देवता हैं और उनका चरण पखारकर ही उसे अपना जीवननिर्वाह करना है।[15] दूसरे शब्दों में एक परवर्ती श्रौत के अनुसार उसे उच्च वर्ण के लोगों की सेवा करके अपना निर्वाह करना है।[16] ऊपर जिन दो श्रौतों की चर्चा है उनमें पहलेवाले से यह भी सूचना मिलती है कि अश्वमेध यज्ञ के परिणामस्वरूप पोषक वैश्य संपत्तिशाली बनता था और कर्मठ शूद्र दक्ष कर्मकर्ता होता था।[17] संभवतः यहाँ कर्मकर्ता शब्द का प्रयोग भाड़े के मजदूर के अर्थ में नहीं हुआ है इस अर्थ में कर्मकर शब्द वैदिकोत्तर साहित्य में प्रयुक्त होता है।[18] उत्तरवैदिक काल में खेती का प्रचार अवश्य हुआ पर इतनी जमीन किसी परिवार के पास नहीं थी जिसके लिए उसे खेतिहर मजदूरों की आवश्यकता पड़े। अतएव शूद्र इस काल में खेत मजदूर के रूप में नहीं पाए जाते हैं। एक पूर्वकालीन उपनिषद् में शूद्र को 'पूषन या पोषक' कहा गया है[19] जो ऐसी उपाधि (पोषयिष्णु) है जिसका प्रयोग *जैमिनीय ब्राह्मण* में वैश्यों के लिए किया गया है।[20] इससे संकेत मिलता है कि वह जमीन जोतनेवाला था[21] और समाज को पोषाहार प्राप्त कराने के उद्देश्य से उत्पादन कार्य में लगा रहता था। संभवतया अपने परिवार का पोषण वह पशुपालन और खेती से करता था, और इस काल के उत्तरभाग में वैश्यों की तरह वह भी उत्पादन का हिस्सा करों के रूप में चुकाता था।

किंतु यह धारणा कि शूद्र श्रमिक वर्ग के थे कई अन्य प्रसंगों पर भी आधारित है। [1] पुरुषमेध यज्ञ में ब्राह्मण ब्रह्मत्व को, राजन्य राज्य को, वैश्य मरुत (कृषक समुदाय) को और शूद्र तप (शारीरिक श्रम) को बलि चढ़ाया जाना चाहिए।[22] यह समझा जाता था कि शूद्र श्रमसाध्य कार्य करनेवाले हैं। यज्ञ में बलि दिए जानेवाले लोगों की सूची में चारों वर्णों के पश्चात् विभिन्न प्रकार के पेशेवर लोगों का स्थान आता है, यथा, रथनिर्माता, बढ़ई, कुम्भकार, लोहार, सर्राफ, चरवाहा, गड़ेरिया, किसान, मद्यनिर्माता, मछुआ और शिकारी। इन्हें वैश्य अथवा शूद्रों की कोटि में रखा जा सकता है। निषाद, किरात, पर्णक पौलकस और बैद [23] संभवतया शूद्र समझे जाते थे।[24] इस सूची से पता चलता है कि शिल्पों की संख्या बढ़ गई थी और लोग मानने लगे थे कि विभिन्न प्रकार के शिल्पी और मजदूर शूद्र थे। ऐसा लगता है कि शिल्पी जनजातीय सामाजिक इकाइयों के अभिन्न अंग थे। कुछ शिल्पी राजकीय आवश्यकताओं की पूर्ति करते थे, और अन्य कृषक समाज का काम चलाते थे।

शूद्र मजदूरों और उनके नियोजकों के बीच किस प्रकार का संबंध था? *वैदिक इंडेक्स* के लेखकों का कथन है कि 'शूद्र' शब्द से दास का भी बोध होता था।[25] किन्तु दासों की संख्या बहुत कम थी। हमें यह भी पता चलता है कि अंग ने विभिन्न देशों से दस हजार दासियों को बंदी बनाया था और उन्हें अपने ब्राह्मण पुरोहित आत्रेय को समर्पित किया था।[26] लगता है कि यह आँकड़ा अतिरंजित और परंपरागत है। श्वेतकेतु के पिता आरुणि को इस बात का गर्व है कि उसके पास स्वर्ण, मवेशी, घोड़े दासियाँ, अमले और बाँदियाँ हैं, किंतु वह पुरुष दास की चर्चा नहीं करता।[27] परंपरा से यह बात चली आ रही है कि युधिष्ठिर के विशाल राज्याभिषेक यज्ञ में ब्राह्मणों को दासियाँ अर्पित की गई थीं।[28] यह यज्ञ संभवतः उत्तरवैदिक काल में हुआ था। इससे स्पष्ट है कि इस काल में शासक वर्ग और पुरोहित बड़े पैमाने पर दासियाँ रखते थे। यह इसलिए संभव था क्योंकि वैदिक सरदारों की विजययात्रा के कारण स्त्रियों की संख्या घटती जाती थी। युद्ध में विरोधी पक्ष के पुरुष मारे जाते थे और उनकी स्त्रियों को बड़ी संख्या में दासीगत किया जाता था।

'दास' शब्द का उल्लेख *ऐतरेय* और *गोपथ* ब्राह्मणों [29] में हुआ है, किंतु गुलाम के अर्थ में नहीं। ध्यान देने की बात यह है कि *निघंटु* में [30] चाकर का काम करनेवालों (परिचरणकर्माण) की जो सूची दी गई है, उसमें कहीं भी दास का उल्लेख नहीं है यद्यपि 'चाकर' शब्द के दस पर्याय दिए गए हैं। संभवतया दासों की संख्या इतनी कम थी कि उस ओर लोगों का ध्यान ही नहीं गया होगा। स्वभावतया शूद्रों के बड़े पैमाने पर गुलाम के रूप में नियोजित किए जाने की संभावना नहीं रह जाती। इसलिए कीथ का यह कथन वास्तविक स्थिति का संकेत नहीं देता कि किसान पहले स्वयं अपना खेत जोतते थे, पर ब्राह्मणकाल में

उनकी जगह भूस्वामी लोग आ गए जो गुलाम मजदूरों के सहारे अपनी गृहस्थी सँभालने लगे।[31] ब्राह्मणकाल में कहीं भी इस प्रकार के भूखंडों के होने का प्रमाण नहीं मिलता है जिसकी खेती लोग अपने घर के सदस्यों की सहायता से न कर पाएँ। अतएव उन्हें दासों अथवा कर्मकरों की आवश्यकता नहीं थी। यह स्थिति वैदिकोत्तर काल में उत्पन्न हुई।

खेतों में काम करते हुए गुलामों का सर्वप्रथम प्रसंग श्रौतसूत्रों में आया है, जिसकी रचना वैदिक काल के अंत और बाद में हुई थी। इन सूत्रों में से एक से हमें यह जानकारी मिलती है कि अन्न हल और पशुओं के साथ दो गुलाम भी दिए जाते थे,[32] जिससे प्रतीत होता है कि गुलामों से हल जुतवाया जाता था और उनके मालिक उन्हें खुलेआम बेच सकते थे। किंतु बहुत से परिच्छेदों में जमीन और उस पर काम करनेवाले लोगों को उपहार में देने की प्रथा का विरोध किया गया है। इस प्रकार कहा गया है कि अश्वमेध यज्ञ में भूमि और उस पर काम करनेवाले लोग यज्ञशुल्क नहीं हो सकते थे (भूमिपुरुषवर्जम्)।[33] बताया गया है कि एकाह (एक दिन वाले) यज्ञ में भी भूमि और शूद्र उपहार में नहीं दिए जा सकते थे (भूमिशूद्रवर्जम्)।[34] यों, वैकल्पिक रूप से कभी कभी शूद्र भी दिए जा सकते थे[35] हालाँकि टीका के अनुसार ये शूद्र जन्मजात गुलाम ही होते थे।[36] *शांखायन श्रौतसूत्र* से इस आशय के दो प्रसंग उपलब्ध है। इनमें से एक में कहा गया है कि पुरुषमेध यज्ञ में भूमि और मनुष्य यज्ञशुल्क के रूप में दिए जाते थे।[37] दूसरा प्रसंग स्पष्ट नहीं है पर उससे संकेत मिलता है कि सर्वमेध यज्ञ में 'मनुष्य के साथ' भूमि भी दी जाती थी।[38] इन प्रसंगों से वैदिक काल के अंतिम चरण में और बाद में हुए एक नए सामाजिक विन्यास का आभास मिलता है। शूद्रों से कुछ व्यक्तियों (अधिकतर शासक सरदारों) के खेतों में गुलाम के तौर पर काम कराया जाता था और उन्हें भूमि के साथ उपहार के रूप में भी अर्पित किया जा सकता था यद्यपि *आश्वलायन* और *कात्यायन श्रौतसूत्र* के रचयिताओं को इससे आपत्ति थी।

कहा गया है कि वैदिक काल में शूद्र कृषिदास थे।[39] कृषिदास (कम्मी) शब्द अपने मालिक की भूमि में काम करनेवाले व्यक्ति के लिए प्रयुक्त होता है। कृषिदास एक भूखंड का स्वामी होता था जिसके लिए वह अपने मालिक को कर चुकाता था और उसके खेतों में काम करता था पर उसे भूमि के साथ ही दूसरे मालिकों के नाम अंतरित किया जा सकता था। शूद्र शब्द का यह जो अर्थ लगाया गया है वह संबद्ध प्रसंगों के बिल्कुल अनुकूल नहीं है। प्रथमत वैदिक काल मे भूमि का निजी स्वामित्व बहुत ही सीमित था। स्वामित्व का तात्पर्य है संपत्ति का मुक्त क्रय विक्रय या हस्तांतरण। किंतु संहिताओं में भूमिदान के दृष्टांत नहीं हैं। *छांदोग्य उपनिषद्* में एक उदाहरण के अनुसार पूरे गाँव को राजा जानश्रुति ने रैक्व को दान दिया था।[40] दो परवर्ती ब्राह्मण ग्रंथों में एक अन्य दृष्टांत मिलता है।[41]

इन दृष्टांतों से हमें पता चलता है कि भूमि का अतरण कुटुबों की सहमति से ही किया जा सकता था, किंतु इस पर भी धरती हस्तातरित होने से इनकार कर सकती है ।[42] पूर्वकाल में ऐसा कोई उदाहरण नहीं मिलता , जिसमें भूमि के साथ शूद्र का भी दान किया गया हो । कुछ श्रौतसूत्रों में ऐसे दृष्टात मिलते हैं, किंतु ये बाद के हैं और एक टीका के अनुसार ऐसे शूद्रों को जन्मजात गुलाम (गर्भदास) माना गया है,[43] न कि भूसबद्ध चाकर या कृषिदास ।

वैदिक काल में गुलामी या कृषिदासता की दृष्टि से, शूद्रो की स्थिति सुनिश्चित करना कठिन है । यद्यपि सदर्भो से धारणा बनती है कि मजदूर वर्ग को शूद्र की सज्ञा दी जा रही थी, फिर भी सामान्यतया ऐसा प्रतीत नहीं होता कि वे किसी खास व्यक्ति के गुलाम या कृषिदास थे । स्पष्ट है कि जिस प्रकार भूमि पर समुदाय का सामान्य नियत्रण रहता था उसी प्रकार का नियत्रण श्रमिक वर्ग पर भी रखा जाता था । इस दृष्टि से शूद्रों की तुलना स्पार्टा के गुलामों से की जा सकती है । अतर इतना है कि उनके साथ उस हद तक बलप्रयोग नहीं किया जाता था और न उन्हें उस तरह तिरस्कृत ही किया जाता था ।

यद्यपि परवर्ती वैदिक काल में 'विश् ' का शिल्पी वर्ग शूद्र की स्थिति में पहुँच गया था फिर भी ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिलता जिससे सिद्ध हो सके कि वे जिन शिल्पों या कृषिकर्मों से लगे हुए थे उनसे लोग घृणा करते थे । जहाँ तक कृषि का सबध है, लोगों के मन में निश्चित भावना थी कि इस कार्य में सहायता दी जाए और इसमें सलग्न रहनेवालों को प्रोत्साहन तथा सम्मान मिले । इसके लिए वे कई प्रकार के घरेलू कर्मकाड और तत्र मत्र करते थे ।[44] जहाँ तक शिल्प का प्रश्न है, चमडे के काम के प्रति भी घृणा के प्रमाण नहीं मिलते ।[45] इससे यह आभास मिलता है कि कोई भी कार्य अपने स्वरूप के कारण अपवित्र नहीं माना जाता था और यही धारणा बाद में भी चलती रही। श्रौतसूत्र में एक विशेष प्रकार का अनुष्ठान शिल्प कहलाता है जिसका अर्थ हस्तकौशल भी है ।[46] परवर्ती वैदिक काल में शारीरिक श्रम के प्रति घृणा का अभाव था । इसकी तुलना ग्रीस में हुए समानातर विकास से की जा सकती है जहाँ हेसियोद से लेकर सुकरात तक (800 ई पू से करीब करीब 400 ई पू तक) जनभावना शारीरिक श्रम के पक्ष में थी ।[47] परवर्ती वैदिक काल में शारीरिक श्रम के प्रति निष्ठा सभवत पुराने सीधे सादे समाज से चली आ रही थी जिसमें राजा भी खेत जोतने के काम में हाथ बँटाता था ।[48] राजा जनक के हल चलाने की कथा प्रसिद्ध है ।

उस काल के राजनैतिक जीवन में भी शूद्रों की भूमिका उनकी स्थिति के अनुकूल महत्वपूर्ण ही जान पडती है । भारतीय आर्यों की राज्यव्यवस्था की निर्माणावस्था में उन्हें राज काज में हाथ बँटाने का पर्याप्त अवसर मिला । ध्यान देने की बात यह है कि उन्हें राज्य के लगभग एक दर्जन उच्च कर्मचारियों के उन्नत निकाय में स्थान प्राप्त था,[49] जिन्हें

रत्निन् (रत्नाधिकारी) कहा गया है । इसकी तुलना बारह व्यक्तियों के उस पर्षद से की जा सकती है जो प्राचीन सैक्सन, फ्रिजियन केल्ट्स आदि जैसी कई भारोपीय जातियों की अति प्राचीन संस्था थी ।[50] रत्नियों का चढ़ावा अर्पित करने का समारोह संपन्न करने के लिए राजा को इनके घर जाना पड़ता था । रत्नियों की सूची से पता चलता है कि उनमें सभी वर्णों के लोग रहते थे ।[51] इनमें से दो रत्निन् रथकार और तक्षन्, जिनकी चर्चा विभिन्न ग्रंथों में हुई है,[52] शूद्र वर्ण के शिल्पी वर्ग के थे । इनके घरों पर होनेवाले समारोहों में सभी प्रकार के धातु यज्ञशुल्क के रूप में विहित किए गए हैं,[53] जिससे पता चलता है कि वे अपने धातु संबंधी कार्य और व्यवसाय के कारण महत्वपूर्ण थे । पहले ही बताया जा चुका है कि अथर्ववेद में वर्णित एक राजा ने किस तरह कर्मार और रथकार की सहायता प्राप्त करने का प्रयास किया था । किंतु वर्तमान सूची में कर्मार का स्थान तक्षन् ने ले लिया है जो रथकार के साथ ही धातुकर्म और बैलगाड़ी के निर्माण संबंधी सभी कार्यों के प्रभारी रहे होंगे और जिनके बिना सुदूरपूर्व में आर्यों का विस्तार और उनकी बस्तियों की स्थापना नहीं हो पाती । किंतु *शतपथ ब्राह्मण* में इन दोनों रत्नियों का कोई उल्लेख नहीं है और उनके बदले गोविकर्तन (शिकारी) और पालागल (संवादवाहक) का उल्लेख हुआ है ।[54] इन दोनों को भी शूद्र समझने के कारण मौजूद हैं । रत्न आदि अर्पित करने के समारोह के पश्चात राजा प्रायश्चित करता था क्योंकि उसे यज्ञ के अनधिकारी शूद्रों को यज्ञ के संपर्क में लाने का दोषी समझा जाता था ।[55] सायण ने तो सेनानी को भी शूद्र रत्निन् माना है लेकिन उसकी यह स्थापना कपोलकल्पित लगती है ।[56] अधिक संभावना यही है कि यज्ञ के अनधिकारी शूद्रों का जो उल्लेख आया है, वह केवल पालागल और गोविकर्तन पर ही लागू है । पालागल शूद्र था, यह निष्कर्ष इस तथ्य से निकाला जा सकता है कि पालागल को शूद्र के रूप में संबोधित किया गया है ।[57] एक अन्य स्थान में पालागल शब्द मिथ्या दूत (अनृतदूत) के रूप में परिभाषित किया गया है ।[58] यहाँ पालागल की जो विशेषता बताई गई है, आगे चलकर वह सर्वथा शूद्र के बारे में लागू होती है ।[59] गोविकर्तन, जिसका वर्णन शतपथ के अतिरिक्त कई अन्य सूचियों में भी रत्निन् के रूप में किया गया है,[60] सायण द्वारा नीच जाति (हीन जाति) का बताया गया है ।[61] संभवतया वह आखेटरक्षक और वन का प्रभारी था जो शूद्र रहा होगा । *कीथ क्षतृ को, जो रत्निन् था मूर्तिकार मानता है,*[62] *जिसका आशय यह हुआ* कि वह भी शूद्र था । किंतु यह संदेहास्पद लगता है क्योंकि महाकाव्य में क्षतृ का अर्थ प्रतिहार किया गया है,[63] और यह समझने का कोई विशेष कारण नहीं कि ब्राह्मणों में इसका प्रयोग भिन्न अर्थ में किया गया है । रत्नियों में तक्षन् को अधिक अधिकार के साथ मूर्तिकार कहा जा सकता है । इससे यह स्पष्ट है कि कुछ मामलों में शिल्पियों और कुछ में पशुपालकों तथा संदेशवाहकों (जो शूद्र वर्ण के थे) का इतना महत्व था कि राजसूय यज्ञ के

अवसर पर राजा उनकी खोज करते थे।

किंतु शूद्र रत्निनों की स्थिति पर और भी प्रकाश डालना आवश्यक है। प्रथमत , उन्हें वर्ण नाम से निर्दिष्ट किया गया है जैसे ब्राह्मण, राजन्य और वैश्य रत्निनों को किया गया है।[64] फिर, जहाँ तक प्रभाव, कृतित्व और प्रतिनिधित्व का प्रश्न है, शूद्र रत्निनों के विरुद्ध पलड़ा भारी रहा होगा और राजनीतिक अनुष्ठानों में उनकी उपस्थिति कालांतर में मात्र एक औपचारिकता बनकर रह गई होगी। अलग-अलग सूचियों में शूद्र रत्निनों की संख्या दो या तीन बताई गई है।[65] किसी भी बात से यह पता नहीं चलता कि उनकी उपस्थिति से संपूर्ण शूद्र वर्ण का प्रतिनिधित्व हो जाता था, किंतु इतनी बात तो अवश्य थी कि इस समुदाय के कुछ लोगों को राज्यव्यवस्था में स्थान मिल गया था।

जायसवाल ने रत्नार्पण समारोह (रत्नहवींषि) को महान संवैधानिक परिवर्तन माना है, क्योंकि शूद्र की 'जो विजित गुलाम थे राजा बननेवाला व्यक्ति पूजा करता था।'[66] इसका अर्थ यह हुआ कि विजित आर्यपूर्व जनों को आर्यों की राज्यव्यवस्था में जान-बूझकर ऊँचा दर्जा दिया गया था। किंतु आर्यों के राजनीतिक संगठन में कम से कम दो शूद्र रत्निन्, रथकार और तक्षन् का स्थान विजितों को जान बूझकर उच्च स्थान देने की नीति के कारण नहीं था, बल्कि उसका आधार तो यह था कि वे दोनों ऐसी आर्य जनजातियों के मूल सदस्य थे जो उस समय तक वर्गों में बिखर गई थी। अथर्ववेद में रथकार और कर्मार (जिसका स्थान अब तक्षन् ने ले लिया है) को स्पष्टत राजा के इर्द गिर्द रहनेवाले विश् के रूप में चित्रित किया गया है।[67] धातुकर्म और रथनिर्माण में उनकी नैपुण्यजन्य अपरिहार्यता के कारण भी प्राचीन समाज में उनका महत्व बढ गया होगा। इतना ही नहीं यह भी असंभव नहीं कि इन शूद्र रत्निनों के कारण शूद्र वर्ण के अन्य वर्गों को भी परोक्ष रूप से महत्व मिल गया होगा।

उस समय के राजनीतिक जीवन में शूद्रों के सहयोग का तथ्य पासे के खेल से भी स्पष्ट है जो राजसूय यज्ञ में एक तरह के धार्मिक कृत्य के रूप में विहित है। हमें इसके बारे में दो तरह के पाठ मिलते है। पूर्ववर्ती पाठ में , *जो कृष्ण यजुर्वेद* में उपलब्ध है, बताया गया है कि ब्राह्मण राजन्य, वैश्य और शूद्र गाय को दाव पर रखकर पासा खेलते थे और उसमें राजा जीतता था।[68] परवर्ती पाठ में, जो *शुक्ल यजुर्वेद* में आया है, गाय के लिए होनेवाली प्रतियोगिता में से वैश्य और शूद्र को हटा दिया गया है। इस जुए के खेल में राजा का संबंधी (सजात) गाय को दाँव पर रखता है और कार्यकारी पुरोहित (अध्वर्यु) उसे राजा के लिए जीतता है।[69] जान पड़ता है कि गाय का यह जुआ मूलत जनजातीय प्रथा थी जिसका आयोजन नेता की विचक्षणता और वाक्चातुरी जाँचने के लिए किया जाता था। अत जनजातियों की ममेकता और समरूपता की पुरानी परंपरा के ही कारण पासे के खेल

में सभी वर्णों को भाग लेने दिया जाता था। किंतु कालांतर में इस प्रथा का स्वरूप बदल गया और वैश्य तथा शूद्र को इस खेल से बहिष्कृत कर दिया गया। इतना ही नहीं, यह महत्व की बात है कि पूर्वकाल में शूद्र भी एक प्रतियोगी के रूप में इस खेल में भाग ले सकता था जो राजा के औपचारिक अभिषेक की प्रारंभिक क्रियाओं में से एक थी।

राजसूय यज्ञ के एक अन्य समारोह में भी हमें शूद्र की चर्चा मिलती है, जिसमें यजमान प्रथमतः ब्राह्मण को स्वर्ण प्रदान करता है और उससे दीप्ति खरीदता है, तब राजन्य को तीन तीर के साथ धनुष देकर कांति खरीदता है, तत्पश्चात वैश्य को अंकुश देता है और उससे पुष्टि प्राप्त करता है और अंततः शूद्र को मापपात्र देता है जिससे दीर्घ आयु खरीदता है।[70] यहाँ वर्णभेद का चित्रण किया गया है। इससे पता चलता है कि वैश्य पशुपालन में लगे थे और शूद्र कृषिकर्म में। फिर भी उन्हें राजा के संपर्क में लाया गया है और यह माना गया है कि वे राजा को दीर्घ आयु प्रदान करने में सक्षम हैं।

संभवतया, शूद्र राजसूय यज्ञ के एक और समारोह से संबद्ध हैं, जिसमें नवाभिषिक्त राजा को आकाश की चारों दिशाओं में आरोहण करने को कहा जाता है और पूर्व दिशा में ब्रह्म से, दक्षिण में क्षत्र से, पश्चिम में विश् से तथा उत्तर में फल वर्चस् और पुष्टम् से निवेदन किया जाता है कि वे राजा की रक्षा करें।[71] जायसवाल का कथन है कि फल स्पष्टतया शूद्र का पर्यायवाची है।[72] घोषाल इसे स्वीकार नहीं करते और वे इस समारोह को वैदिक राज्यव्यवस्था में तीन उच्च जातियों के प्रभाव का प्रतीक मानते हैं।[73] यह भी सुझाव दिया गया है कि फल शिल्पी वर्ग का द्योतक है।[74] हमारी राय है कि वैदिक साहित्य में[75] फल शब्द का प्रयोग उसके शाब्दिक अर्थ में किया गया है न कि उसके पश्चातवर्ती गौण अर्थ 'परिणाम' के रूप में। अतः हो सकता है कि यह शूद्र के उत्पादन कार्यों से संबंधित रहा हो। किंतु वर्चस (जिसका अर्थ है कांति) के बारे में भी ऐसा ही नहीं कहा जा सकता। जहाँ तक पुष्टम् शब्द का संबंध है, वह सामान्यतया वैश्यों से संबद्ध है, किंतु एक परिच्छेद में शूद्र को पूषण (पोषक) भी कहा गया है।[76] अतः यह सुझाव दिया जा सकता है कि फलम् और पुष्टम् शब्द शूद्र के उत्पादन कार्यों का संकेत देते हैं और शूद्र से यह अनुरोध किया जाता है कि वह उत्तर दिशा में राजा की रक्षा करे।

हमें ज्ञात है कि युधिष्ठिर के महान राजसूय यज्ञ में सम्मानित शूद्रों को आमंत्रित किया गया था।[77] ऐसा विरोधात्मक वक्तव्य कि उस अवसर पर यज्ञ का अनधिकारी एक भी शूद्र उपस्थित नहीं था,[78] संभवतया उस प्रयास का परिचायक है जो शूद्रों को राजनीतिक सत्ता से बहिष्कृत करने के लिए किया गया था। जो भी हो, इतना तो स्पष्ट है कि कम से कम शूद्र वर्ण के कुछ लोग राज्याभिषेकों में भाग लेते थे।

शुक्ल और *कृष्ण* दोनों यजुः संहिताओं में पाए जानेवाले एक मंत्र के अनुसार[79]

राजसूय यज्ञ के अवसर पर 'विश्' के बीच प्रतिष्ठापित राजा[80] अर्य और शूद्र के प्रति किए गए पाप के प्रायश्चित के लिए सूर्य से प्रार्थना करता है। पाणिनि [81] को आधार मानकर, टीकाकार उवट और महीधर ने 'अर्य' शब्द की व्याख्या वैश्य के रूप में की है।[82] इससे स्पष्ट है कि राजा भी दो निम्न वर्णों को सताने के लिए स्वच्छंद नहीं था। यह स्थिति *ऐतरेय ब्राह्मण* में वर्णित स्थिति से बिल्कुल भिन्न है, [83] जहाँ राजा की इच्छानुसार वैश्य को सताया और *शूद्र को पीटा जा सकता है।*

माना गया है कि अश्वमेध यज्ञ करने से याजक को सर्वोच्च सत्ता प्राप्त होती है और कहा गया है कि शूद्र विश्वविजय के अभियान पर भेजे गए अश्व के साथ अस्त्र शस्त्र लेकर रक्षक के रूप में जाता था।[84] शूद्र अस्त्र चला सकता था, यह निष्कर्ष एक प्राचीन परिच्छेद से भी निकाला जा सकता है, जिसमें लिखा गया है कि राजा के सहयोग से राजा, वैश्य के सहयोग से वैश्य, और शूद्र के सहयोग से शूद्र मारा जाता है।[85] *महाभारत* में दम्भोद्भव नाम के राजा की कथा है। वह प्रतिदिन क्षत्रिय वैश्य और शूद्र वर्ग के सशस्त्र सैनिकों को ललकारकर कहता था कि वे युद्ध करने में उसके समान बहादुर बनें।[86] युद्ध में भाग लेनेवाले विभिन्न नेताओं और लोगों की गणना करते हुए इस महाकाव्य में बताया गया है कि चारों वर्ण युद्ध में भाग लेते थे और इससे उन्हें ख्याति आनन्द और मर्यादा की प्राप्ति होती थी।[87] शूद्र भी सैनिक के रूप में कार्य करते थे यह तथ्य भी प्राचीन जनजातीय राज्यव्यवस्था के प्रभाव का परिचायक है। इस राज्यव्यवस्था में भी हर व्यक्ति शस्त्र ग्रहण कर सकता था।

यह भी ध्यान देने की बात है कि आयोगव जिसे टीकाकारों ने वैश्य महिला से उत्पन्न शूद्रपुत्र बताया है अश्वमेध यज्ञ में जागरूक कुत्ते जैसा काम करता है।[88] प्राय यह उस *प्रथा की ओर संकेत करता है जिसमें आदिम जाति के लोगों को प्रहरी के रूप में* बहाल किया जाता था। *शतपथ ब्राह्मण* में एक आयोगव राजा मरुत आविक्षित का अद्वितीय विवरण मिलता है। यह अश्वमेध यज्ञ करता है और मरुत उसके अंगरक्षक अग्नि उसके प्रतिहार और विश्वदेव उसके सभासद के रूप में कार्य करते हैं।[89] यह दृष्टांत शूद्र राजा का नहीं मालूम पड़ता यह संभवतया ब्राह्मणप्रधान राज्यव्यवस्था में ब्राह्मणेतर शासक को समाविष्ट करने का दृष्टांत है। आयोगव शब्द की परिभाषा धर्मसूत्रों के पहले नहीं मिलती और यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि मरुत आविक्षित हीन जाति का राजा था।

अश्वमेध यज्ञ में ऐसी व्यवस्था थी कि रथकार का घर यज्ञ के अश्व और उसके रक्षकों का विश्रामस्थान होगा।[90] इससे प्रकट होता है कि परवर्ती काल के अश्वमेध यज्ञ में भी रथकार को राजनीतिक महत्व प्राप्त था।

अश्वमेध यज्ञ का आयोजन चारों वर्णों को जीतने के उद्देश्य से किया जाता था, जिससे

मालूम होता है कि शासक आवश्यक समझता था कि समाज के सभी वर्गों की निष्ठा उसे प्राप्त हो।[91] एक अन्य परिच्छेद से भी ऐसी ही धारणा बनती है। इसके अनुसार राजसूय यज्ञ के अवसर पर पुरोहित राजा को दीप्ति, शक्ति, संतति और सुदृढ़ स्थिति की प्राप्ति में सफलता प्रदान कराता है। ये गुण क्रमश ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र में पाए जाते हैं।[92] इसी आशय का एक परिच्छेद तैत्तिरीय संहिता में मिलता है।[93] इसके अनुसार राजन्य को अग्न्याधानमन्त्र तीन बार पढ़ना पड़ता है, क्योंकि उसे योद्धा की निष्ठा के अतिरिक्त तीन अन्य वर्णों, यथा ब्राह्मण, वैश्य और शूद्र की आज्ञाकारिता भी प्राप्त करनी होती है। इन बातों से पता चलता है कि इस युग में परवर्ती ग्रंथों की तरह शूद्रों की आज्ञाकारिता स्वयंसिद्ध ही थी। *जैमिनीय ब्राह्मण* के एक अनुच्छेद से भी स्पष्ट है कि राजा के लिए यह अनिवार्य था कि वह उनका भी समर्थन प्राप्त करे। इस ग्रंथ से हम जान पाते हैं कि ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य और शूद्र ने क्रमश गायत्री, त्रिष्टुभ्, जगती और अनुष्टुभ् छंदों के जरिए पांचालनरेश दर्भ शातानीकि का सम्मान किया था।[94]

सभी यजु संहिताओं में एक महत्वपूर्ण परिच्छेद आया है जिसमें अग्नि से प्रार्थना की गई है कि वह पुरोहितों योद्धाओं, वैश्यों और शूद्रों को प्रभा प्रदान करे।[95] *वाजसनेयि संहिता* में यह परिच्छेद वसोर्धारा कर्म की विधि के प्रसंग में आया है, जिसमें अग्नि को राजा के रूप में अभिषिक्त किया जाता है। इस अवसर पर कार्यकारी पुरोहित (अध्वर्यु) इस आशय का मंत्रपाठ करता है कि याजक को सभी आधिभौतिक और आधिदैविक वर मिलें। यह स्पष्ट तो नहीं है किंतु इसे असंभव नहीं कहा जा सकता कि यह कर्म राजा के लिए विहित है, जो अग्नि से प्रार्थना करता है कि वह उसकी सभी वर्णों की प्रजा को जिसमें शूद्र भी सम्मिलित हैं दीप्ति प्रदान करे।

राजनीतिक ढंग के धर्मकर्म में शूद्रों का सहयोग किस प्रकार का और किस हद तक हो इसमें कोई एकरूपता नहीं थी। कुछ मामलों में समारोह की गौण बातों में वर्ण के अनुसार अंतर पड़ता था। स्वभावतया शूद्र को निम्नतम स्थान प्राप्त था। अन्य मामलों में शूद्र सहित सभी वर्ण समारोह में उसी प्रकार भाग लेते थे और समान आशीष की आशा रख सकते थे। जो भी हो धर्मशास्त्रों के नियमों से तुलना करने पर यह ध्यातव्य है कि उत्तरवैदिक काल में तीनों उच्च वर्णों के साथ शूद्रों को भी राजनीतिक सत्ता में कुछ हिस्सा मिल सका था।

किंतु इसका एक दूसरा पहलू भी है। इस काल में पहले ही यह प्रवृत्ति चल पड़ी थी कि शूद्रों को सामुदायिक जीवन में भाग लेने से बहिष्कृत किया जाए। इसीलिए अन्य तीन उच्च वर्ण के लोगों की भाँति शूद्र राजसूय यज्ञ के अवसर पर अभिषेचन कर्म में भाग नहीं ले सकता था।[96] जायसवाल का मत है कि जन्य या जन्यमित्र, जिसे राजा को अभिषिक्त

करनेवाला चौथा व्यक्ति बताया गया है, नैरी जनजाति के सदस्य के रूप में शूद्र है [97], किंतु इस तरह का अर्थ प्रमाणहीन प्रतीत होता है । इस शब्द का वास्तविक अर्थ चाहे जो कुछ भी हो [98] इतना तो स्पष्ट है कि उपलब्ध साहित्य में कहीं भी इस शब्द का शूद्र से कोई सबध नहीं है । यह भी कहा गया है कि राजसूय यज्ञ के अवसर पर तीनों उच्च वर्ण के लोग राजा से ईश्वर की पूजा के लिए स्थान माँगें ।[99] इसमें शूद्रों को छोड़ देना इस सिद्धात का स्वाभाविक परिणाम है कि शूद्र देवपूजक नहीं थे फिर भी यह राजनीतिक जीवन में उसके महत्व के घटते जाने का संकेत है ।

शतपथ ब्राह्मण में कुछ ऐसे कर्मों का विधान है जो विश् (समुदाय) पर क्षत्र (शासनप्रमुख) का नियन्त्रण स्थापित करते हैं ।[100] यहाँ शूद्र का उल्लेख नहीं किया गया है, क्योंकि प्राय यह निश्चित मान लिया गया है कि उस पर राजा का नियन्त्रण था । एक दूसरे अनुच्छेद से भी ऐसा ही विचार व्यक्त होता है । इसके अनुसार ब्रह्म और क्षत्र विश् में सुस्थापित थे [101] किंतु यहाँ भी शूद्र की चर्चा नहीं हुई है ।

वाजपेय यज्ञ राजा की शक्ति बढानेवाला यज्ञ था और उसमें शूद्र को भाग लेने की अनुमति नहीं थी । एक ग्रथ के अनुसार ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य इस यज्ञ में भाग ले सकते थे [102] किंतु दूसरे ग्रथों में वैश्यों को भी इस अधिकार से वंचित कर दिया गया है ।[103]

तैत्तिरीय ब्राह्मण में एक छोटे समारोह के प्रसग में सकेत मिलता है कि शूद्र को नागरिक की हैसियत प्राप्त नहीं थी । अमावस और पूर्णमासी को होनेवाले दशपूर्णमास यज्ञ की विधिविशेष की व्याख्या करते हुए यह तर्क दिया गया है कि शूद्र अपने स्वामी के सामने उनकी आज्ञा लेकर ही कुछ कर सकता है, और जो कोई आज्ञा के बिना कुछ कर नहीं सकता, उसके साथ शूद्रवत व्यवहार किया जाए । [104] इससे पता चलता है कि शूद्र से यह उम्मीद की जाती थी कि वह अपने स्वामी के विरुद्ध नहीं बोलेगा । शूद्र पूर्णतया गुलाम समझा जाता था ।

उत्तरवैदिक काल की राज्यव्यवस्था में जो एक महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ, वह है वैश्य और शूद्र से विभेद करते हुए ब्राह्मण और क्षत्रियों को विशेष स्थान प्राप्त कराने की प्रवृत्ति । घोषाल ने अनेक दृष्टात देकर बताया है कि दो प्रभावशाली शक्तियों के रूप में ब्रह्म और क्षत्र का समाज में कितना महत्व था उनमें परस्पर कितना विरोध था तथा उनकी राजनीतिक मित्रता कितनी गहरी थी ।[105] सहिताओं [106] और ब्राह्मण ग्रथों [107] में दो उच्च वर्णों की रक्षा के लिए प्रार्थनाओं का उल्लेख है । यदि इन निर्देशों का सूक्ष्म विवेचन किया जाए तो दो परिणाम निकल सकते हैं । प्रथमत , उनमें से अधिकाश का उल्लेख परवर्ती साहित्य, खासकर *शतपथ ब्राह्मण* में ही हुआ है । दूसरा यह कि पूर्वकालीन ग्रथों में जहाँ साधारणतया दोनों उच्च वर्णों के आपस में मिले जुले रहने का सकेत मिलता है वहाँ बाद

के गध वैश्य और शूद्र को अलग रखने का स्पष्ट संकेत देते हैं। *शतपथ ब्राह्मण* में साफ साफ बताया गया है कि वैश्य और शूद्र ब्राह्मणों और क्षत्रियों से घिरे हुए हैं।[108] वही ग्रंथ यह भी प्रमाणित करता है कि जो लोग न तो क्षत्रिय हैं और न ब्राह्मण वे अपूर्ण हैं।[109] पहले ही ध्यान आकृष्ट किया जा चुका है कि बाद में राजसूय यज्ञ के जो वृत्तांत आए हैं उनमें वैश्य और शूद्र को पाँसा के खेल से छाँट दिया गया है।[110] उसी राज्याभिषेक यज्ञ के संबंध में ऐतरेय ब्राह्मण का मत है कि ब्राह्मण को तो 'क्षत्र' से पहले स्थान मिलता है किंतु वैश्य और शूद्र उसके बाद ही आते हैं।[111] अत मालूम पड़ता है कि वैश्य को शूद्र के बराबर मानने और उसे जनजीवन में स्थान न देने की धारणा पूर्वकालीन ग्रंथों में तो परोक्ष थी किंतु बाद के ग्रंथों में पूर्णतया स्पष्ट और प्रत्यक्ष हो गई।

उत्तरवैदिक काल के समाज में शूद्र के कार्य की समीक्षा *ऐतरेय ब्राह्मण* के एक ऐसे अनुच्छेद[112] की परीक्षा करके समाप्त की जा सकती है जिसके आधार पर कहा जाता है कि वेदकालीन राज्यव्यवस्था में शूद्र का स्थान सर्वथा गुलाम जैसा था। इस महत्वपूर्ण परिच्छेद के प्रसग और तात्पर्य का विश्लेषण करने से मालूम होता है कि इस तरह का विचार न्यायोचित नहीं है। कहा जाता है कि विश्वंतर सौषद्मन नामक एक राजा ने पुरोहित कुल श्यापर्ण के बिना ही यज्ञ किया और उन पुरोहितों को यज्ञवेदी से उठा दिया। उनकी ओर से बोलते हुए उनके विद्वान नेता राम मार्गवेय ने पुरोहितों के निष्कासन का इस आधार पर विरोध किया कि उसे इस बात की जानकारी है कि राजसूय यज्ञ के अवसर पर सोमरस के बदले राजा को क्या खाना चाहिए।[113] प्रसगाधीन परिच्छेद में उसके शब्दों में कहा गया है कि राजा द्वारा विभिन्न प्रकार के आहार ग्रहण करने के क्या क्या परिणाम हो सकते है और इस सिलसिले में यह भी जतलाया है कि क्षत्रिय राजा का अन्य तीन वर्णों के साथ कैसा सबध था। कहा जाता है कि यदि राजा सोम का पान करे जो ब्राह्मण का आहार है तो उसके वशज ब्राह्मण होंगे और उनमें ब्राह्मण के सभी लक्षण रहेंगे। वे प्रतिग्रह लेंगे, सोमपायी होंगे आजीविका की खोज करनेवाले होंगे और इच्छानुसार कहीं भी भेजे जाने योग्य (यथाकामप्राप्य) होंगे।[114] यदि राजा दही खाए जो वैश्य का आहार है तो उसका वशज वैश्य होगा और उसमें वैश्य के सभी लक्षण होंगे। वह करदाता होगा दूसरे का भोज्य होगा और इच्छानुसार सताया जा सकेगा। किंतु यहाँ हमारा विशेष प्रयोजन उन विशेषणों से है जिनसे शूद्र की स्थिति का पता चलता है। यह भी कहा गया है कि यदि राजा पानी पिए जो शूद्र का आहार है तो वह शूद्र का पक्ष करेगा और उसकी सतान में शूद्र के सभी लक्षण रहेंगे।[115] वह (i) अन्यस्य प्रेष्य (ii) कामोत्थाप्य और (iii) यथाकामवध्य होगा। *(कीथ ने प्रथम विशेषण का अनुवाद किया है 'दूसरे का सेवक' जो सही है। किंतु* अन्य दो विशेषणों का उसने जो अनुवाद किया है वह सही नहीं कहा जा सकता। उसने

दूसरे विशेषण 'कामोत्थाप्य' का अनुवाद किया है, ऐसा व्यक्ति जिसे 'इच्छानुसार हटाया जा सके'[116] और हेग ने उसका अनुवाद किया है, ऐसा व्यक्ति जिसे स्वामी की इच्छानुसार निकाल बाहर किया जा सके।'[117] इस आधार पर कहा जाता है कि शूद्र की स्थिति उस रैयत के समान थी जिसे उसका मालिक किसी भी समय अपनी भूमि से निष्कासित कर सकता था।[118] किंतु सायण ने इस शब्द की टीका करते हुए बताया है कि शूद्र को दिन या रात में किसी भी समय मालिक की इच्छानुसार काम करने के लिए उठाया जा सकता है।[119] उसने जो अर्थ किया है वह बहुत कुछ सभव प्रतीत होता है, क्योंकि 'उत्थापन' का सीधा सादा अर्थ होता है—जगाना। प्राचीन संस्कृत में निकाल बाहर करने के लिए 'निर्वासन'[120] या 'निष्कासन' शब्द का प्रयोग हुआ है। तीसरे विशेषण 'यथाकामवध्य' का अनुवाद कीथ ने यह किया है कि 'मालिक की इच्छानुसार उसका वध किया जा सकता है।'[121] किंतु सायण ने इसका अर्थ किया है कि यदि शूद्र अपने मालिक की मर्जी के विरुद्ध कोई काम करे तो उसका मालिक क्रुद्ध होकर उसे पीट सकता है।'[122] सायण द्वारा किए गए अर्थ की 'निरुक्त' से भी पुष्टि होती है जिसमें तीन जगह तो वध का अर्थ 'जान से मार डालना' किया गया है,[123] पर पाँच जगह इसका प्रयोग 'चोट पहुँचाने या घायल करने' के अर्थ में हुआ है।[124] अत हेग ने तीसरे विशेषण का जो अर्थ किया है, मनमाने ढंग से पीटा जाने योग्य वह सही है।[125]

बिना विचारे ही लोगों ने इस गलत मत को मान लिया कि ऐतरेय ब्राह्मण के अनुसार मालिक अपनी मर्जी से शूद्र की जान ले सकता है।[126] इसका निष्कर्ष यह निकाला गया कि वैदिक काल में उसका वैरदेय नहीं था अर्थात उसकी जान लेने के बदले हर्जाना नहीं देना पड़ता था।[127] स्पष्ट है कि ऐसे विचार 'यथा कामवध्य' शब्द के संदिग्ध अर्थान्वयन पर आश्रित है। इतना ही नहीं यद्यपि 'वैर' या वैरदेय के लिए प्राय एक सौ गायें निर्धारित की गई थीं[128] फिर भी न तो ऐसा कोई प्रसग मिलता है जिससे पता चले कि वर्ण के अनुसार इस राशि में अतर किया जाता था और न यही प्रमाण दिखाई पड़ता है कि किसी खास वर्ण को इस अधिकार से वचित रखा जाता था। मानव वध (वैर हत्या) के पाप से मुक्त होने के लिए यज्ञ के रूप में प्रायश्चित करने की व्यवस्था भी थी[129] किंतु इसे भी वर्णमूलक विभेदों से मुक्त रखा गया है। अत यह स्पष्ट है कि उत्तरवैदिककालीन समाज में वर्णगत अतर इतना प्रबल और व्यापक नहीं था जितना कि धर्मसूत्रों के काल में हुआ जब सामाजिक भेदभाव इतना गहरा हो गया कि शूद्र को न्यूनतम वैरदेय अर्थात दस गाय मात्र पाने का ही अधिकार रह गया।

ऐतरेय ब्राह्मण के इस परिच्छेद को पुन देखें तो शूद्र के लिए प्रयुक्त दोनों विशेषणों के जो अर्थ बताए गए हैं वे सभव प्रतीत होंगे। पूरे वैदिक साहित्य में इस परिच्छेद के समान

दूसरा प्रसग नहीं है, जिसमें यह कहा गया हो कि शूद्र को उसका मालिक अपनी इच्छानुसार घर से निकाल बाहर कर सकता है और चाहे तो उसे कत्ल भी कर सकता है।

ऊपर बताए गए दोनों विशेषणों के विभिन्न अर्थ वास्तविक स्थिति के द्योतक हैं या नहीं यह सुनिश्चित कर पाना कठिन है। इसका कारण यह है कि *ऐतरेय ब्राह्मण* का सातवाँ भाग, जिसमें प्रसगाधीन परिच्छेद आया है, परवर्ती भाग है।[130] कोई आश्चर्य नहीं कि किसी निष्कासित पुरोहित ने राजा का कृपापात्र बनने की दृष्टि से विभिन्न वर्णों पर लागू कुछ विशेषणों का प्रयोग किया हो। यह कम महत्व की बात नहीं कि ब्राह्मण को भी इच्छानुसार निर्वासन योग्य बताया गया है। ऐसी दशा में अन्य वर्णों की स्थिति का अनुमान तो सहज ही लगाया जा सकता है।

किंतु सारे विचार विमर्श के बाद भी परवर्ती वैदिककालीन राज्यव्यवस्था में शूद्रों की हीन स्थिति से इनकार नहीं किया जा सकता। हमारा उद्देश्य है उसकी यथासभव सुनिश्चित परिभाषा प्रस्तुत करना। यह पूर्णतया स्पष्ट है कि यद्यपि शूद्र अश्वमेध और राजसूय जैसे दो महत्वपूर्ण राजनीतिक ढग के यज्ञों के कतिपय समारोहों से सबद्ध था फिर भी, सभवतया वैदिक काल के अत तक, राजनीतिक जीवन से सबधित कर्मों से उसे अलग रखने की निश्चित प्रवृत्ति पनप चुकी थी। कुछ दृष्टातों में वैश्य को भी शूद्र की स्थिति में रख दिया गया और उसे पुराने अधिकारों से वचित कर दिया गया।

कर्मकांडी साहित्य से भी शूद्रों की सामाजिक स्थिति की कुछ जानकारी मिल सकती है। *यजुर्वेद* के एक परिच्छेद में कहा गया है कि वैश्य और शूद्र की सृष्टि एक साथ हुई थी।[131] यह *पुरुषसूक्त* की उक्ति के प्रतिकूल है जिसमें वैश्य की सृष्टि शूद्र से पहले बताई गई है जिसके परिणामस्वरूप शूद्र को समाज में सबसे हीन स्थान मिला। किंतु वैश्य और शूद्र को एक ही सामाजिक कोटि में रखने की प्रवृत्ति कुछ कर्मकाडों में लक्षित होती है क्योंकि वे बताते है कि वैश्य शूद्र महिला का तथा शूद्र वैश्य महिला का पति बन सकता है।[132] व्यग्यपूर्ण भाषा में कहा गया है कि शूद्र महिला का अर्य पति अपनी उन्नति की बात नहीं सोचता क्योंकि ऐसे विवाह से उसे चिरकाल तक दरिद्र बने रहना ही है।[133] टीकाकारों ने अर्य शब्द का अर्थ वैश्य किया है,[134] जिससे वैश्य और शूद्र महिला के बीच विवाह का प्रमाण मिलता है, किंतु *वैदिक इडेक्स* के लेखक इन प्रसगों को आर्य और शूद्र के अवैध सबध का दृष्टात मानते है।[135] अधिकाश मामलों में पाठ अर्य है, अत टीकाकारों ने जो अर्थ लगाया है वह सही मालूम होता है। जे इगलिंग ने भी *शतपथ ब्राह्मण* के अनुवाद में अर्य पाठ को ही ग्रहण किया है,[136] और इसका रूपातर वैश्य के रूप में किया है। किंतु यह भी सभव है कि मूल पाठ में ही नई परिस्थितियों के अनुकूल उस वक्त कुछ परिवर्तन कर दिए गए होंगे जब उच्च वर्ण और शूद्र के बीच विवाह सबध को बुरा समझा

जाने लगा होगा। इस उपधारणा के आधार पर कहा जा सकता है कि आर्य, और शूद्र अथवा बाद में शूद्र वर्ण में शामिल किए गए लोगों के बीच निर्बाध रूप से विवाह-सबध स्थापित हो सकते थे। बाद में इस तरह का सबध दो निम्न वर्णों तक ही सिमटकर रह गया।

ब्राह्मण ग्रंथों से पता चलता है कि ब्राह्मण और क्षत्रिय दोनों निम्न वर्णों के साथ — जिनमें शूद्र भी आ जाते हैं —अतर्जातीय विवाह कर सकते थे, जैसा कि वत्स और कवष के दृष्टात से स्पष्ट है।[137] वत्स को उसका भाई मेधातिथि शूद्र-पुत्र कहता था, जिससे प्रकट होता है कि प्राय इस शब्द का प्रयोग अपमानजनक शब्द के रूप में नहीं होता था।[138] कहा जाता है कि वत्स ने आग पर निरापद चलकर अपना ब्राह्मणत्व प्रमाणित किया और इस प्रकार इस कलक को मिटाया। यह बताता है कि किसी व्यक्ति की सामाजिक मर्यादा उसके वश से नहीं, बल्कि उसकी योग्यता से निर्धारित होती थी।[139] कवष ऐलूष का जन्म दासी से हुआ था और यह दृष्टात सदिग्ध मालूम पडता है। सायण का विचार है कि उसके लिए 'दास्या पुत्र' का प्रयोग अपशब्द के रूप में हुआ है।[140] यदि हम ऋषि दीर्घतमस् की माँ उशिज के बारे में *बृहद्देवता*[141] में दिए गए विवरण को अगीकार करें तो *पचविंश ब्राह्मण*[142] में हमें इस दासी कन्या उशिज के विधिसम्मत विवाह का दृष्टात मिलेगा। पौराणिक अनुश्रुतियों से विदित होता है कि काक्षीवत्, जो ब्रह्मवादिन् था, दीर्घतमस् का पुत्र था और उसका जन्म राजा बलि की शूद्र दासी से हुआ था।[143] पुराण में उसे शूद्रयोनि का कहा गया है।[144] *ऐतरेय ब्राह्मण* के लेखक महीदास के बारे में बताया गया है कि वह शूद्र था।[145] इस तथ्य के समर्थन में कोई प्रमाण नही मिलता जब तक कि उसके उपाधिनाम ऐतरेय का अर्थ यह न किया जाए कि वह इतरा का पुत्र था,[146] जिसका अर्थ होता है भ्रष्ट नीच या बहिष्कृत। किंतु यह बहुत खींच-तानकर लगाया गया अर्थ मालूम पड़ता है। एक परवर्ती ब्राह्मण ग्रथ में सुदक्षिण क्षैमि नामक ऋषि और पुरोहित को शूद्र कहकर सबोधित किया गया है,[147] किंतु उसके माँ बाप का कोई विवरण नहीं दिया गया है। मात्र इतना कहा गया है कि वह क्षेम का वशज था और प्राय इसके सबध में यह विशेषण अपशब्द के रूप में प्रयुक्त हुआ है। *भविष्य पुराण* में लगभग एक दर्जन ऐसे ऋषियों के नाम गिनाए गए हैं जिनकी माँ शूद्र वर्ण की किसी न किसी शाखा की थी।[148] मामूली हेरफेर के साथ यह सूची कई अन्य पुराणों और *महाभारत* में भी आई है।[149] इससे पता चलता है कि व्यास का जन्म मछुआइन से, पराशर का श्वपाक महिला से कपिंजलाद का चडाल महिला से वसिष्ठ का गणिका से और मुनिश्रेष्ठ मदनपाल का मल्लाहिन से हुआ था। इस तरह की सूची के औचित्य के विषय में ग्रथ के अत में कहा गया है कि ऋषियों नदियों धर्मात्माओं महात्माओं और स्त्रियों की दुश्चरित्रता का उद्गम

नहीं जाना जा सकता।[150] इन ऋषियों की कालानुक्रमिक स्थिति या उनके वास्तविक जीवनकाल के बारे में निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता, किंतु यह सूची प्रमाणित करती है कि परवर्ती वैदिक काल में यह प्रथा थी कि ऋषि और पुरोहित शूद्रकन्या या दासी से विवाह करते थे। ऐसा जान पड़ता है कि राजा और प्रमुख भी शूद्र महिलाओं से विवाह करते थे। पान्नागली जो राजा की चौथी पत्नी थी और जिसका आदर सबसे कम होता था, शूद्र महिला थी।[151]

ऊपर के दृष्टांत बताते हैं कि शूद्र महिला से उच्च वर्ण के लोगों के विवाह को बुरा नहीं माना जाता था।[152] संभवतया आरंभ में वैदकालीन भारतीय और आदिवासी अपनी-अपनी जनजातियों में ही विवाह संबंध रचाते थे।[153] जब जनजातियाँ छिन्न भिन्न हो गई और उनके सदस्य चार वर्णों में बंट गए तब भी पुरानी प्रथा कुछ दिनों तक चलती रही। किंतु परवर्ती वैदिककाल में वर्ण का भेदभाव इतना प्रबल हो गया कि निम्न वर्गों के पुरुष और उच्च वर्गों की स्त्रियों के विवाह की अनुमति नहीं दी जाती थी। यह धारणा भी चल पड़ी थी कि शूद्र महिलाएँ उच्च वर्णों के लोगों के लिए सुखभोग की वस्तु है। अत अपेक्षाकृत बाद के ब्राह्मण ग्रंथों में अनुष्टुभ् छंद की तुलना शूद्र वेश्या से की गई है जो समान रूप से सुगम्य है।[154]

इस अवधि में हमें चंडाल के प्रति घृणा के भाव भी दिखाई पड़ते हैं। कहा गया है कि जिनका आचरण अच्छा होगा उनका पुनर्जन्म ब्राह्मण क्षत्रिय या वैश्य के रूप में होगा किंतु जिनका आचरण कुत्सित होगा वे कुत्ते सूअर या चंडाल के घृणित गर्भ में उद्भूत होंगे।[155] ध्यान देने की बात है कि शूद्र वर्ण में जन्म लेना चंडाल की तरह अपवित्र (कपूयाम्) नहीं माना जाता था पर ऐसा प्रतीत होता है कि इसे लोग अवांछनीय जरूर मानते थे। यह भी मालूम होता है कि चंडाल जो आदिम जाति के थे[156] निंदनीय आचरणवाले समझे जाने लगे थे। किंतु इस काल के आरंभिक ग्रंथों में चंडाल को पुरुषमेध यज्ञ की बलि समझा गया है[157] जिससे उसके अस्पृश्य होने का संकेत नहीं मिलता। परंतु पौलकस को लोग घृणा की दृष्टि से देखते थे।[158]

जिस काल की हम यहाँ समीक्षा कर रहे है, उसके सामाजिक आचारशास्त्र के अनुसार शूद्रों में कुछ दुर्गुणों का आरोप किया गया था। हम देखते है कि आंगिरस गोत्रीय शुन शेप ने अपने पिता अजीगर्त की निंदा करते हुए उसे शूद्र कहा, क्योंकि पिता ने पुत्र को तीन सौ गाएँ लेकर वरुण यज्ञ के निमित्त पदार्थ के रूप में बेच दिया था।[159] यद्यपि देव ने पुत्र को मुक्त कर दिया और पिता ने अपना कलंक मिटाने के उद्देश्य से उसे सो गाएँ भी दीं फिर भी शुन शेप ने कटु शब्दों में उसकी भर्त्सना की। उसने कहा 'तुम अभी भी शूद्रसुलभ नृशसता से मुक्त नहीं हो क्योंकि तुम्हारे अपराध का कोई समाधान नहीं'।[160] इससे पता

चलता है कि अजीगर्त की तरह शूद्र भी भूखे रहने पर अपने बच्चों को बेचने के लिए तैयार रहते थे। ऐसा समझा जाता था कि धन प्राप्ति के लिए वे अपने कुटुंब के प्रति पाशविक और निर्दयतापूर्ण आचरण कर सकते थे।

यह भी ज्ञातव्य है कि जब विश्वामित्र ने शुन शेप को अपना दत्तक पुत्र बनाया और अपने सौ बेटों में उसे प्रथम स्थान दिया तथा उसे ज्येष्ठाधिकार भी प्रदान किया, तब उनके पचास ज्येष्ठ पुत्रों ने इस स्थिति को स्वीकार करने से इनकार कर दिया। पिता को इस पर क्रोध आया और उन्होंने इन पुत्रों को शाप दिया कि उनके वंशज अंध्र, पुंड्र, शबर, पुलिंद, मुतिब, दस्यु और अतस् (आनिच्युत) की तरह हीनजाति के होंगे।[161] आर्येतर लोगों को ब्राह्मणकालीन समाज की निम्न कोटि में रखने के उद्देश्य से पुरोहितों ने जिस पटुता से उनकी वंशावली खोज निकाली है उसका यह वृत्तांत प्रारंभिक उदाहरण है लेकिन इससे यह भी स्पष्ट है कि अवज्ञा और विरोध करनेवाले पुत्रों को दस्यु और अतस् माना जाता था। सायण ने इस अनुच्छेद की टीका में चंडाल और निम्न कोटि की अन्य जातियों को भी सम्मिलित कर लिया है किंतु मूल ग्रंथ में इसका उल्लेख नहीं है।[162]

वाजसनेयि संहिता में एक अनुपूरक सूत्र आया है जिसका प्रयोग अनेक सामयिक और घरेलू यज्ञों में किया जाता है। इस सूत्र में सभी वर्णों के साथ 'कल्याणीवाक्' के उपयोग की इच्छा व्यक्त की गई है।[163] इस आधार पर यह कहा गया है कि सभी वर्णों को वेद के अध्ययन का अधिकार था।[164] किंतु 'कल्याणीवाक्' शब्द वेद के लिए प्रयुक्त नहीं हुआ है। टीकाकारों ने ठीक ही इसे मधुर और शिष्ट वचन माना है।[165] इससे ध्वनित होता है कि सभी वर्णों से बातचीत के क्रम में मैत्रीपूर्ण शब्दों का प्रयोग किया जाना चाहिए। किंतु *शतपथ ब्राह्मण* में स्थिति भिन्न मालूम पड़ती है, क्योंकि एक समारोह विशेष के बारे में जो अनुदेश दिए गए हैं उनमें विभिन्न वर्णों के लिए विभिन्न संबोधनों का प्रयोग हुआ है। इस प्रकार क्रमशः ब्राह्मण, राजन्यबंधु, वैश्य और शूद्र वर्णों के 'हविष्कृत' को बुलाने के लिए एहि, आगहि, आद्रव और आधाव शब्दों का प्रयोग किया गया है।[166] उत्तरवैदिक काल के सामाजिक संसर्ग में इस तरह के भेदभाव बहुधा दिखाई पड़ते हैं।

वैदिक काल के अंत में जीवन के जो चार आश्रम बने उनमें आगे चलकर, केवल गार्हस्थ्य ही शूद्रों के लिए विहित किया गया। किंतु इस काल में ऐसे विभेद का कोई उल्लेख नहीं मिलता। *छांदोग्योपनिषद्* में चार आश्रमों का उल्लेख है लेकिन वर्णों के साथ उनके संबंध का कोई निर्देश नहीं मिलता।[167] इस तरह, अब हमारे सामने शूद्रों की शिक्षा का प्रश्न आ खड़ा होता है, क्योंकि बाद के ग्रंथ बताते हैं कि ब्रह्मचर्याश्रम में उनका प्रवेश नहीं हो सकता था जो उपनयन संस्कार से आरंभ होता है। उपनयन का उल्लेख सर्वप्रथम *अथर्ववेद* में हुआ है जहाँ बताया गया है कि गुरु युवक को नए जीवन में प्रवेश कराते हैं

क्योंकि ऐसा माना जाता है कि वह गुरु के ही उदर से उत्पन्न हुआ है।[168] नवजीवन में प्रवेश करनेवाला ब्रह्मचारिन् कहलाता था, किंतु वह किस वर्ण का होता था इसका कोई संकेत नहीं मिलता। — आरुणि ने अपने पुत्र श्वेतकेतु को उपदेश दिया था कि उसे ब्रह्मचर्य धारण करना चाहिए, जिसके आधार पर यह अनुमान किया गया है कि बहुत दिनों तक उपनयन केवल पुरोहितों और विद्वानों के परिवार तक ही सीमित था। बाद में सारे ब्राह्मण समुदाय में इसका प्रचार हुआ और फिर वहाँ से पूरे आर्य समुदाय में।[169] यदि उपनयन को गुरुकुल प्रवेश का प्रारंभिक बिंदु माना जाए तो यह सत्य सिद्ध होगा क्योंकि प्राचीन समाज में शिक्षा साधारणतया पुरोहितों के हाथ में थी। ब्रह्मचारिन् सामान्यतया ब्राह्मण होता था, यह बात विभिन्न स्रोतों से प्रमाणित होती है[170] किंतु यदि उपनयन की तुलना उस संस्कार से की जा सकती है जो जनजाति के किसी पूर्ण वयस्क सदस्य के नए जीवन में विधिवत प्रवेश करने के समय होता है तो यह सही नहीं लगता। ऐसा अर्थ उस अनुश्रुति के आधार पर लगाया जा सकता है कि देवता मनुष्य और दानव ब्रह्मचर्य की अवधि अपने पिता प्रजापति के संरक्षण में बिताते थे जो उनके शिक्षक थे।[171] इसका यह तात्पर्य नहीं कि आदिकालीन लोगों में पढ़ाई का व्यापक प्रचलन था। इससे केवल इतना संकेत मिलता है कि वैदिककालीन भारतीयों या आर्यपूर्व समुदायों के बीच एक सर्वमान्य प्रथा प्रचलित थी कि वयस्क जीवन में प्रवेश करने के पहले कुछ रीतियाँ निभाई जाएँ। यह ऐसा तथ्य है जिसकी आदिम जातियों में प्रचलित इसी प्रकार की प्रथा से पुष्टि होती है। गुरुकुल में इस तरह से प्रवेश करने की प्रथा का प्रसार व्रात्यों में भी हुआ जिन्हें ब्रह्मचर्य धारण कराकर आर्यों के समाज में प्रविष्ट कराया जाता था।[172]

प्राचीन ईरानियों में भी उपनयन जैसा प्रवेश संस्कार प्रचलित था। पंद्रह वर्ष की अवस्था में ईरानी पुरुष और स्त्री को पवित्र सूत्र धारण कराकर दीक्षित कराया जाता था और इस प्रकार अहुर मज्द के संप्रदाय में उनका प्रवेश होता था।[173] इसकी चर्चा करते हुए गाइगर ने कहा है कि यह एक पुरानी प्रथा थी जिसमें आगे चलकर हेरफेर और सुधार किए गए।[174] यह बात सर्वविदित है कि सामुदायिक जीवन में प्रवेश कराने की प्रथा स्पार्टनों में प्रचलित थी।[175] अतः ऐसा माना जा सकता है कि वैदिककालीन भारतीयों में भी यह प्रथा प्रचलित थी। इस तरह शुरू में संभवतया विघटित आर्य जन-जातियों के शूद्रजन भी उसी ढंग से उपनयन और ब्रह्मचर्य संस्कार संपन्न करने के अधिकारी थे, जिस प्रकार कई अन्य धार्मिक कृत्य। संहिताओं और ब्राह्मणों में ऐसे प्रसंग नहीं हैं जिनसे यह संकेत मिलता हो कि शूद्रों के लिए उपनयन संस्कार वर्जित था।

छान्दोग्य उपनिषद् से हमें पता चलता है कि जानश्रुति जिसे रैक्व ने प्राण और वायु का ज्ञान कराया था शूद्र था।[176] किंतु अन्यत्र उसे पश्चिम उत्तर के निवासी महावृष

लोगों के प्रधान के रूप में चित्रित किया गया है।[177] उसे या तो उस क्षेत्र में रहनेवाली शूद्र जाति के साथ सपर्क के कारण अथवा इसलिए कि ब्राह्मण समाज के बाहर के लोगों के लिए यह अपमानजनक शब्द प्रयुक्त होता था शूद्र कहा गया है।[178]

जानश्रुति शूद्र नहीं भी हो, किंतु ऐसे संकेत मिलते हैं जिनसे प्रकट होता है कि शूद्र को किसी खास ढग के ज्ञानार्जन से बिल्कुल वंचित नहीं रखा जाता था। *तैत्तिरीय ब्राह्मण* में कहा गया है कि वैश्य *ऋग्वेद* से, क्षत्रिय *यजुर्वेद* से और ब्राह्मण *सामवेद* से उत्पन्न हुए थे।[179] इसका स्पष्ट अर्थ होता है कि *अथर्ववेद* शूद्रों के लिए था। *आपस्तम्ब धर्मसूत्र* में भी परोक्ष रूप से यह बात दुहराई गई है। तात्पर्य यह कि शूद्रों के लिए परपरानिष्ठ वैदिक ज्ञान का अर्जन वर्जित था न कि अन्य प्रकार के अध्ययन। *शतपथ ब्राह्मण* के कई अनुच्छेदों से भी यह धारणा बनती है। इन अनुच्छेदों में कहा गया है कि सँपेरा, सूदखोर, मछुआ बहेलिया, सेलग निषाद असुर और गधर्व को पुरोहित शिक्षा देते थे, जिनमें से अधिकाश शूद्र वर्ण के थे।[180] वे इतिहास अथर्ववेद, सर्पविद्या और देवजन विद्या सिखाते थे।[181] छात्रों और अध्ययन के विषयों की सूची से मालूम होता है कि प्राचीन काल में ब्राह्मण कला और शिल्प से विमुख नहीं थे, पर बाद में इस प्रकार के सारे धधे शूद्र वर्ण को दिए गए कार्य क्षेत्र के अतर्गत आ गए। किंतु यह स्पष्ट नहीं कि ऐसी शिक्षा के साथ शूद्रों को साहित्य भी पढाया जाता था या नहीं।

वैदिक काल के अत में यह धारणा चल पडी कि शूद्र को उपनयन और परिणामतया अध्ययन से वचित रखा जाए। इस तरह का आभास छादोग्य उपनिषद् के एक परिच्छेद से मिलता है जिसमें एक सुविख्यात छात्र दावा करता है कि उसने ब्राह्मण राजन् और वैश्य की गरिमा बढाई है।[182] किंतु एक अन्य स्थल पर छात्र चाहता है कि वह सारे वर्णों के लोगों का शूद्रों का भी प्रियपात्र बने।[183] परवर्ती काल के एक श्रौतसूत्र में शूद्रों के बहिष्कार का प्रथम स्पष्ट उल्लेख मिलता है। इसमें तीन उच्च वर्णों के उपनयन सस्कार के लिए उपयुक्त ऋतुओं का उल्लेख हुआ है।[184] इसमें स्पष्ट बताया गया है कि उपनयन, वेदाध्ययन और अग्निस्थापन केवल उन्हीं लोगों के लिए फलदायक हो सकते हैं जो शूद्र नहीं हैं और कुकर्मों में नहीं फँसे हैं।[185] एक अन्य ग्रथ में बताया गया है कि 'उपनीत छात्र को शूद्र से बातचीत नहीं करनी चाहिए।[186] यह भी विहित किया गया है कि शूद्रों को चाहिए, जिन स्नातकों ने अपनी पाठचर्या पूरी कर ली हो मधुपर्क समारोह में वे उनके पैर धोएँ।[187] यह कहना कठिन है कि दो श्रौतसूत्रों से लिए गए उपर्युक्त प्रसग परवर्ती वैदिक काल की स्थितियों का संकेत देते हैं। उन्हें उस काल के अत का बताया जाता है और सभव है कि वे वैदिक काल के पश्चात के हों भी, क्योंकि प्राचीन गृह्यसूत्र जो प्राचीन श्रौतसूत्र का समकालीन ग्रथ है बताता है कि रथकार को उपनयन का अधिकार प्राप्त

था।[188]

तो यह मालूम पड़ता है कि आरंभ में पूरी जनजाति के लोग उपनयन करते थे, किंतु जैसे जैसे जनजाति वर्गों में बिखरती गई वैसे वैसे यह परमाधिकार और सम्मान का विषय बनता गया जिसे सपत्र करने के लिए संपत्ति और उच्च सामाजिक हैसियत की आवश्यकता थी। उपनयन के आधार पर ही विशिष्ट, लगभग गुप्त वर्गों में लोगों का प्रवेश हो पाता था।[189] जिस प्रकार ईरान में हूइति वर्ग को यह अधिकार नहीं मिला था,[190] उसी प्रकार भारत में शूद्र वर्ण को इससे वंचित रखा गया था। सेनार्ट का ख्याल है कि जनजातियों के बीच जनजाति के भीतर और अपने अपने गोत्र के बाहर विवाह करने की प्रथा प्रचलित थी। इस प्रथा के कारण बाद में जातिविभेद आया। उनके इस विचार के आधार पर कहा जा सकता है कि सामुदायिक जीवन में दीक्षित कराने की प्रथा भी जनजातीय अवस्था की अवशेष थी। इसने बाद में तीन उच्च वर्णों में उपनयन का रूप लिया, जिसके फलस्वरूप समाज में शूद्र को हीन स्थान प्राप्त हुआ।

यद्यपि उपनयन संस्कार से वंचित हो जाने से शूद्र शिक्षा से भी वंचित हो गए, फिर भी अभी हम जिस कालावधि पर विचार कर रहे हैं उसमें इसका प्रभाव संभवतया बहुत नहीं पड़ा। उत्तर वैदिक काल में शिक्षा का स्वरूप कैसा था यह स्पष्ट नहीं और कोई प्रत्यक्ष प्रमाण भी उपलब्ध नहीं है जिसके आधार पर कहा जा सके कि उस समय लोग साक्षर थे।[191] संभव है कि क्षत्रिय और वैश्य भी वेद के प्रति अपने कर्तव्य का निष्पादन अगर करते भी थे तो महज औपचारिक ढंग से।[192] बाद के एक ग्रंथ में बताया गया है कि साधारणतया छात्र मनोयोगपूर्वक वेद का अध्ययन नहीं करते थे वे केवल दिखाना चाहते थे कि उन्होंने वेद का अध्ययन किया है।[193] उस समय शिक्षा मुख्यतया ब्राह्मणों का विषय थी। किंतु उपनयन का महत्व शिक्षा के अधिकार के अलावा कुछ और भी था। जो लोग उपनयन संस्कार के अधिकारी थे समाज में उनका स्थान ऊँचा था।

शूद्र को इस आधार पर उपनयन संस्कार की अनुमति नहीं थी कि यह वैदिक संस्कार है। किंतु वैदिक काल के धार्मिक जीवन से मालूम होता है कि शूद्र को हमेशा वैदिक संस्कारों से वंचित नहीं रखा गया था। कई ग्रंथों में यज्ञ के लिए रथकार द्वारा अग्निस्थापन का उल्लेख हुआ है[194] जिसे वह वर्षा ऋतु में संपन्न कर सकता था।[195] सूची में उसका स्थान चौथा है ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य के बाद। *आश्वलायन श्रौतसूत्र* में रथकार के स्थान में 'उपकृष्ट' शब्द प्रयुक्त हुआ है। इसका शाब्दिक अर्थ है कोई निम्नित व्यक्ति किंतु, टीकाकारों ने इसका अर्थ लगाया है— बढ़ई (तक्षक)।[196] इससे पता चलता है कि यद्यपि बढ़ई की निंदा की जाती थी फिर भी उसे यज्ञ में आने दिया जाता था। इस कोटि के एक अन्य व्यक्ति निषादों के सरदार (निषाद स्थपति) को भी वैदिक यज्ञ का अधिकार प्राप्त

था।[197] किंतु उसका यन रुद्र पशुपति की प्रजा द्वारा पशुओं के शमन के लिए किया जाता था।[198] एक अन्य स्थल पर ऐसे ही एक संदर्भ में केवल निषाद की चर्चा हुई है।[199] किंतु टीकाकार का कथन है कि यह निषाद प्रमुख (स्थपति) का निर्देश करता है और उसका यह भी कहना है कि *आपस्तम्ब श्रौतसूत्र* में वह त्रैवर्णिक (प्रथम तीन वर्णों का) है।[200] *महाभारत* में भी कहा गया है कि निषादाधिपति ने यज्ञ संपन्न किया।[201] ऋग्वेद के एक परिच्छेद में 'पंचजना' (पाँच व्यक्ति) के यज्ञ में भाग लेने का प्रसंग आया है।[202] *निरुक्त* के अनुसार पंचजना शब्द का अर्थ है चार वर्ण और निषाद।[203] ऐसा *ऋग्वेदकाल* के बारे में नहीं कहा जा सकता जैसा कि कभी कभी किया जाता है।[204] ऋग्वेद में न तो निषाद शब्द आया है और न उस वक्त चार वर्णों की ही समुचित स्थापना [illegible] सकी थी। स्पष्ट है कि 'पंचजना' शब्द से उन पाँच ऋग्वैदिक जातियों का बोध होता है जिनके सदस्य बिना किसी भेदभाव के आहुति चढ़ाते थे। किंतु यास्क ने जो अर्थ किया है उससे मालूम होता है कि उनके समय में शूद्र और निषाद (धर्मसूत्र में जिन्हें ब्राह्मण और शूद्र स्त्री से उत्पन्न वर्णसंकर माना गया है) यज्ञ में भाग ले सकते थे। अतः इन प्रसंगों से सिद्ध है कि निषादों को कभी कभी और निषाद प्रमुख को साधारणतया वैदिक यज्ञ का अधिकार मिला था। यह बताया गया है कि विश्वजित् यज्ञ में याजक को तीन रात तक निषाद और वैश्य तथा राजन्य के साथ ठहरना होगा।[205] इससे मालूम होता है कि निषाद इस यज्ञ से अप्रत्यक्ष रूप में संबद्ध थे।

जिन दो श्रेणियों के लोगों को यज्ञ करने का अधिकार दिया गया था उनमें से रथकार स्पष्टतया आर्य समुदाय के सदस्य थे किंतु निषाद आर्येतर समुदाय के जान पड़ते हैं, और अपने गाँवों में रहते थे।[206] *महाभारत* और *विष्णु पुराण* में कई ऐसे प्रसंग आए हैं जिनसे सिद्ध है कि निषाद श्याम वर्ण के थे।[207] संभवतया निषाद जाति को ब्राह्मणप्रमुख समाज में अंगीकृत करने के प्रयास में उन्हें वैदिक रीति से अपना यज्ञ संपन्न करने की अनुमति दी गई थी जो विशेषाधिकार बाद में उनके प्रमुख मात्र तक ही सीमित रहा। यह स्पष्ट है कि वैदिक काल के अंत तक रथकार और निषाद को यज्ञ करने का अधिकार था यद्यपि वे शूद्र की कोटि में थे। अधिक महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि यास्क ने 'पंचजना' शब्द की जो व्याख्या की है उससे पता चलता है कि उनके विचारानुसार तमाम शूद्र जाति को यह अधिकार प्राप्त था।

शूद्र कई धार्मिक संस्कारों में भाग लेता था। इसका स्पष्ट निश्चित उल्लेख मिलता [illegible]। देवता के लिए हविष् तैयार करने में वह तीनों वर्ण के लोगों के साथ कार्य करता था। किंतु उसे जिस रूप में संबोधित किया गया है वह बताता है कि उसे ऐसे धार्मिक कार्य में सबसे निचला स्थान दिया गया था।[208] इसी प्रकार अन्य वर्ण के लोगों के साथ वह सोमरस का

पान करता था और वमन करने पर उसे प्रायश्चित करना पड़ता था।[209] दासीपुत्र कवष ऐलूष का ज़िक्र करते हुए हापकिंस ने बताया है कि शूद्र का बेटा यज्ञ में भाग लेता था और शूद्र एक सामाजिक स्तोत्र विशेष में सोमरस पान करता था।[210] विचित्र तथ्य है कि *काठक संहिता* के एक परिच्छेद में शूद्रों और महिलाओं को सोमरस पान करने की अनुमति नहीं दी गई है।[211] किंतु यजुओं के अन्य ग्रंथों में ऐसी बात नहीं पाई जाती। अतः सम्भवतया यह बात *काठक संहिता* में बाद में जोड़ी गई है, अथवा यह अधिक से अधिक काठक सम्प्रदाय का मत है।

शूद्र का अन्य छोटे छोटे संस्कारों में भी भाग लेता था। वह 'ओदनसव' अर्थात बने हुए भोजन के अर्पणकर्म में अन्य तीन वर्णों की भाँति भाग लेता था, किंतु भोज्य पदार्थ वर्ण के अनुसार भिन्न हुआ करते थे।[212] इसी प्रकार, प्रथम फल के अर्पण का कार्य सभी वर्ण के लोग कर सकते थे।[213]

महाव्रत नाम से प्रसिद्ध अपारा कर्म में शूद्रों के लिए जो कर्तव्य निर्धारित हैं, वे तत्कालीन धार्मिक कृत्यों में शूद्र के भाग लेने के महत्वपूर्ण प्रमाण हैं।

इसके अनुसार शूद्र वेदी के बाहर और आर्य वेदी के भीतर रहते हैं। वे आपस में चमड़े के लिए लड़ते हैं और आर्य की जीत होती है।[214] कुछ ग्रंथों में तो शूद्र वर्ण और आर्य वर्ण का स्पष्ट उल्लेख किया गया है।[215] जहाँ 'अर्य' शब्द का प्रयोग हुआ है वहाँ वैश्य से तात्पर्य है।[216] दूसरी ओर जहाँ 'आर्य' शब्द का प्रयोग हुआ है वहाँ तात्पर्य प्रथम तीन वर्ण के लोगों से है। कहीं कहीं आर्य के स्थान पर ब्राह्मण का प्रयोग हुआ है,[217] जो शूद्र के विरोधी मालूम पड़ते हैं और यह विशेषता वैदिक काल के उपरांत सामान्य रूप में पाई जाती है। वेद की एक अन्य कंडिका जिसमें दोनों पर विशेष ध्यान दिया गया है बताती है कि न तो ब्राह्मण और न शूद्र की बलि प्रजापति को चढ़ाई जा सकती है।[218] *वाजसनेयि संहिता* के उत्तरार्द्ध के एक परिच्छेद में इस आशय का निर्देश लगता है कि ब्राह्मण बलि के लिए आवश्यकता से अधिक श्रेष्ठ और शूद्र आवश्यकता से अधिक हीन है।

जहाँ तक महाव्रत के अर्थ का प्रश्न है यह प्रायः आर्यों के बीच और आर्य तथा आर्येतर लोगों (जो शूद्र की स्थिति में पहुँच गए) के बीच पशु के लिए हुए संघर्षों की याद दिलाता है। *शाखायन श्रौतसूत्र* में उल्लिखित है कि इस पुरातन और अप्रचलित रिवाज का परित्याग होना चाहिए।[219] इससे प्रकट होता है कि महाव्रत जैसे पुराने धार्मिक कर्म में शूद्र उच्च वर्णों के लोगों के साथ भाग ले सकता था किंतु जब ऐसे कर्म अप्रचलित हो गए तब धार्मिक कर्म में उसका भाग लेना खतम हो गया।

उत्तर वैदिक काल में दाह संस्कार में भी शूद्रों का अपना स्थान था। यह निर्धारित था कि शूद्र के लिए भी समाधिटीला बनाया जा सकता है जो घुटना भर ऊँचा हो सकता

है। टीले की ऊँचाई में वर्ण के अनुसार अतर होता था।[220]

शूद्रों के विषय में कहा गया है कि अन्य समुदायों की भाँति उनके भी अपने देवी देवता थे जिनकी वे पूजा करते थे। *बृहदारण्यक उपनिषद* में शूद्र को पूषन् कहा गया है जिससे आभास मिलता है कि वह शूद्रों का देवता है।[221] इसी प्रकार *महाभारत* में देवताओं के चिकित्सक यमल अश्विनों को शूद्र माना गया है।[222] यह महत्वपूर्ण बात है कि रत्नहवीषि महोत्सव में अश्विनों को सग्रहीतृ[223] के साथ ओर पूषन् को भागदुध के साथ सबधित माना गया है।[224] किंतु *तैत्तिरीय ब्राह्मण* में विश्वेदेवों ओर मरुतों (कृषि देवता) के साथ पूषन् को भी वैश्यों से सबद्ध बताया गया है।[225] इस तरह कहा जा सकता है कि विश्वेदेव परोक्ष रूप से शूद्र के भी देवता हैं। अनुष्टुभ्, जो बाद का लोकप्रिय छद है शूद्रों[226] और विश्वेदेवों[227] का छद माना गया है। कहा गया है कि इस छद के पाठ द्वारा विश्वेदेवों में प्रजापति[228] और इद्र तथा शूद्रों में पचाल राजा दर्भशातानीकि ने प्रतिष्ठा पाई।[229] अतएव इस प्रसग में देवों के समाज में विश्वेदेवों का वही स्थान है जो मानवसमाज में शूद्रों का है।

शूद्रों के देवताओं में से पूषन् भेडों के देवता मालूम पडते है[230] जिससे आर्य विश्' के पशुपालन कार्य पर प्रकाश पड़ता है। ऋग्वेद के अतिम भाग में अश्विनों के विषय में बताया गया है कि वे मनुष्य के लिए हल जोतकर बीज बोते थे और उन्हें आहार देते थे[231] जिनसे विश्' के कृषिकर्म का पता चलता है। विश्वेदेव को विश् का देवता माना गया है, क्योंकि वे बडी सख्या में थे। यह तथ्य कि आर्य 'विश् के जो तीनों देवता थे वही बाद में प्रत्यक्षत या परोक्षत शूद्र के भी देवता माने जाने लगे इस बात का द्योतक है कि 'विश् के कुछ वर्ग शूद्र की स्थिति में पहुँच जाने पर भी अपने पुराने वैदिक देवताओं को ही मानते रहे।

कुछ ऐसे भी प्रमाण उपलब्ध हैं जिनसे सिद्ध होता है कि आर्य और आर्य से भिन्न निम्न कोटि के लोग रुद्र पशुपति की पूजा करते थे जो आर्यपूर्व देवता प्रतीत होते है। *शतरुद्रीय* में रुद्र की विभिन्न मूर्तियों (स्वरूपों) के अनुरूप भिन्न भिन्न हविष् चढाते हुए समाज के सभी वर्गों को (रुद्रस्वरूप मानकर) नमस्कार किया गया है जिसमें सबसे पहले ब्राह्मण का तब राजन्य सूत और वैश्य का और उसके बाद विभिन्न प्रकार के शिल्पियों और आदिवासी जनों का उल्लेख है। किंतु प्रथम तीन वर्णों का उल्लेख *यजुर्वेद* की केवल एक संहिता में हुआ है।[232] शूद्र का उल्लेख तो सामान्य रूप में एक भी सहिता में नहीं हुआ है किंतु *यजुर्वेद* की सभी सहिताओं की प्रस्तुत सूची में रथकारों कुलालों (कुम्हारों) कर्मारों निषादों पुजिष्टों (मछुओं या बहेलियों का काम करनेवाले आदिम जाति के लोग) श्वनियों (कुत्ते को खिलानेवाले या कुत्ते पालनेवाले) और मृगयों (शिकारियों) को नमस्कार

किया गया है [233] जिन्हें चतुर्थ वर्ण में रखा जा सकता है। इनके अतिरिक्त *तैत्तिरीय संहिता* में धनुकारों और इषुकारों [234] का वर्णन किया गया है, जो धनुष और तीर के निर्माता कहे जाते हैं। इन दोनों को भी इसी कोटि में रखा जा सकता है।

ये शिल्पी और जनजाति के लोग अपने संरक्षक देवता के रूप में रुद्र की पूजा करते थे।[235] वेबर का मत है कि 'रुद्राध्याय उस समय का है जब विजित जनजातियों और व्रात्यों या ब्राह्मणों में अगृहीत आर्यों का प्रत्यक्ष विरोध दबा दिया गया था किंतु आंतरिक संघर्ष बना हुआ था।[236] उनका यह भी कहना है कि विभिन्न मिश्रित जातियों का निर्माण आसानी से नहीं हो पाया, जिन लोगों को निम्नकोटि जातियों में रखा गया उन्होंने उस व्यवस्था का जोरदार विरोध किया।[237] इससे यह अर्थ लगाया जा सकता है कि उच्च वर्णों के बढ़ते विशेषाधिकार के विरुद्ध संघर्ष के क्रम में आर्य जातियों के पराजित वर्ग और विजित जनजातियों के सदस्य आपस में घुलमिल गए जिसका अपरिहार्य परिणाम यह हुआ कि कुछ आर्य यथा रथकार और कर्मार, आर्येतर देव रुद्र की आराधना करने लगे। यह ध्यान देने योग्य है कि रत्नहवींषि समारोह में रुद्र को गोविकर्तन का देवता माना गया है जिसे सायण ने निम्न कोटि की जाति का माना है।[238] पहले बताया गया है कि रुद्र पशुपति निषादप्रमुख के देवता थे।[239] अतः इसमें कोई संदेह नहीं कि शूद्रों के भी अपने देवी देवता थे जिनमें से कुछ आर्यों के थे और कुछ आर्येतर थे। इस प्रकार सृष्टि की कहानियों में ब्राह्मणों का यह कथन कि शूद्र का अपना कोई देवता नहीं था [240] वास्तविक स्थिति का चित्रण नहीं करता। सृष्टि संबंधी एक कथा से कम से कम यह पता तो चल जाता है कि दिन और रात शूद्रों के देवता थे।[241] ब्राह्मणों के आख्यानों से स्पष्ट पता चलता है कि उन्होंने जान बूझकर शूद्रों को पूजा और यज्ञ के अधिकार से वंचित रखने का प्रयास किया था हालाँकि पहले वे अपने आर्य बंधुओं के साथ पूजा में भाग लेते थे अथवा आदिम जनजाति के सदस्य के रूप में अलग से भी यज्ञादि में हाथ बँटाते थे।

शूद्र वैदिक यज्ञ में भाग लेते थे इसके समर्थन में जो विपुल प्रमाण है उसके विरोध में भी कुछ कम नहीं वरन अधिक ही प्रमाण है। बार बार यह कहा गया है कि शूद्र को यज्ञ का अधिकार नहीं था [242] क्योंकि वह जन्म से नीच है और वह यज्ञ हवन आदि करने के लिए अक्षम है।[243] अग्निचयन अग्नि की स्थापना संबंधी कर्म के बिना कोई वैदिक यज्ञ नहीं हो सकता है। कहा गया है कि इसका अर्थ है अग्नि को शूद्र से हटाना।[244] किंतु संहिताओं में ऐसे प्रत्यक्ष कथन नहीं मिलते हैं कि शूद्र को वैदिक यज्ञ से बहिष्कृत कर दिया गया था जिससे पता चलता है कि इस तरह की बात बाद में उठाई गई है। इतना ही नहीं उन संहिताओं में ऐसे अनेक संदर्भ हैं जिनका ऐसा अर्थ निकाला जा सकता है। यज्ञ के लिए अग्निस्थापन के बारे में जो अनुदेश दिए गए हैं उनमें प्रथम तीन वर्णों की ही चर्चा हुई

है, [245] और ब्राह्मण ग्रंथों में उनके लिए अलग अलग ऋतुओं का विधान किया गया है। इसमें रथकार को भी छाँट दिया गया है। इस विषय में कहा गया है कि अग्नि विश्वरूप है और उसके तीन अंग है — ब्राह्मण, क्षत्रिय और विश्। [246] यह भी बताया गया है कि राजन्य और विश् की उत्पत्ति यज्ञ अत ब्राह्मण, से हुई है। [247] पुन इस बात पर जो जोर दिया गया है कि केवल प्रथम तीन वर्ण के लोग यज्ञ कर सकते है, और शूद्र यज्ञस्थल में प्रवेश नही कर सकता, [248] वह उपर्युक्त विवरणों के अनुकूल प्रतीत होता है।

सामान्य वैदिक यज्ञ से शूद्र को वंचित रखने के अतिरिक्त उसे कतिपय विशेष कर्मों से भी अलग रखने की चेष्टा हो रही थी। यथा सोमयाग ब्राह्मण वैश्य और राजन्य के लिए ही विहित थे। [249] अग्निहोत्र जो अग्नि का तर्पण है कोई आर्य ही कर सकता है जिसे टीकाकार ने तीन उच्च वर्णों का ही सदस्य माना है। [250] यह विशेष रूप से कहा गया है कि अग्निहोत्र के लिए अपेक्षित दूध शूद्र न दुहे, [251] क्योंकि ऐसी धारणा है कि शूद्र की उत्पत्ति असत्य से हुई है। [252] तदनुसार दूध के लिए मिट्टी का पात्र (स्थली) किसी आर्य द्वारा ही तैयार किया जाना विहित है। [253] किंतु यजुओं के *वाजसनेयि* और *तैत्तिरीय* संहिताओं में ऐसे निषेध नही विहित किए गए हैं। यह तो केवल *मैत्रायणि* और *कपिष्ठल* संहिताओं के अनुपूरक अंश में मिलता है। *काठक संहिता* की इसी तरह की एक कंडिका में स्वराघात का अभाव है अत कहा जा सकता है कि यह बाद में सन्निविष्ट की गई है। इतना ही नही *आपस्तंब श्रौतसूत्र* जो अपने ढंग का प्राचीनतम ग्रंथ माना जाता है, [254] एक विकल्प प्रस्तुत करता है कि शूद्र गाय दुहे सकता है। [255] टीकाकार ने यह बताकर कि जब उसे अनुमति दी जाए तब वह गाय दुहे सकता है अर्थ समन्वय का प्रयास किया है। [256] इन बातों से पता चलता है कि अग्निहोत्र के लिए गाय दुहने के संबंध में शूद्रों पर जो निषेध लगाया गया है वह संहिताओं के मूल अंशों में संभवतया नही था। *तैत्तिरीय ब्राह्मण* के काल मे ऐसा निषेध लगाया गया होगा। [257]

वैदिक काल का अंत होते होते कुछ कटु बातें भी प्रकट होने लगीं। शूद्र के शरीर से स्पर्श होना और कुछ आचारिक अवसरों पर उसे देखना भी निषिद्ध किया जाने लगा। यज्ञ के लिए अर्पित व्यक्ति को शूद्र से बोलने की भी अनुमति नही है [258] और 'उपनीत' पर भी यही प्रतिबंध लगाया गया है। [259] *शतपथ ब्राह्मण* में विधान है कि प्रवर्ग्य समारोह (सोम संस्कार का आरंभ) में याजक को महिला और शूद्र से संपर्क नहीं करना चाहिए क्योंकि वे असत्य है। [260] *काठक संहिता* के एक प्रसंग को छोड महिला को शूद्र के समतुल्य बताने का यह सबसे पुराना उदाहरण है और यह ऐसी परिपाटी है जो बाद के ग्रंथों में यत्र तत्र चर्चित है। [261] यह भी उपबंध किया गया है कि जो महिला पुत्र की कामना से पूजा अर्चना कर रही हो उसके शरीर को कोई वृषल चाहे वह पुरुष हो या

स्त्री, नहीं छुए।[262] बाद में यह वृषल शूद्र माना जाने लगा और उसे ब्राह्मणविरोधी कहा गया। *शतपथ ब्राह्मण* में वर्णित है कि यदि यज्ञपात्र को बढ़ई छू दे तो आचार की दृष्टि से वह अपवित्र हो गया।[263] किंतु एक अन्य स्थल पर, यदि उस ग्रंथ का 'माध्यंदिन' पाठ सही है तो तक्षन् को आहुति के निमित्त मंत्रोच्चार करते हुए पाया जाता है।[264] यह ध्यान देने योग्य बात है कि शूद्रों का संपर्क न करने से संबंधित सारे निर्देश या तो *शतपथ ब्राह्मण* अथवा *श्रौतसूत्रों* में मिलते हैं, जिससे पता चलता है कि शूद्र को अपवित्र मानकर मांगलिक अवसरों पर उसकी उपस्थिति और उसके शरीर के स्पर्श दर्शन आदि को निषिद्ध मानने की बात वैदिक काल के अंत में प्रचलित थी।

उत्तर वैदिक काल के धार्मिक जीवन में शूद्र के स्थान की समीक्षा करने पर मालूम पड़ता है कि 'रथकार और निषाद' के अतिरिक्त जो वैदिक यज्ञ में भाग ले सकते थे शूद्र वर्ण के अपने देवता थे और शूद्र भी कतिपय वैदिक कर्मों में सम्मिलित हो सकता था। इसमें कोई संदेह नहीं कि अधिकांश मामलों में उसके भाग लेने का ढंग ऐसा है जो समाज में उसकी हीन स्थिति का द्योतक है। किंतु इस आधार पर उसे इस विशेषाधिकार से सर्वथा वंचित नहीं रखा गया है। उसके बहिष्कार की प्रक्रिया जो प्राचीन ग्रंथों में पहले से ही देखने में आती है वैदिक काल समाप्त होते होते अधिक तीव्र हो गई। मालूम होता है कि आर्थिक और सामाजिक विभेदों के बढ़ने से जनजाति के यज्ञ का स्वरूप ही क्रमश बदल गया और वह व्यक्तिसापेक्ष बन गया जिसमें पुरोहितों को अधिक से अधिक दान मिलने लगा। कालक्रम से यज्ञ उच्च वर्णों के परमाधिकार का विषय बन गया जिन्हें इसके लिए धनराशि खर्च करने की क्षमता थी। यह निष्कर्ष *बृहदारण्यक* उपनिषद् की शंकर द्वारा लिखित टीका से निकाला जा सकता है,[265] जिसमें उन्होंने बताया है कि ईश्वर ने वैश्यों का सृजन धन उपार्जित करने के लिए किया है जो यज्ञ करने का साधन है। इसी प्रकार *महाभारत* में युधिष्ठिर कहते हैं कि कोई गरीब आदमी यज्ञ नहीं कर सकता, क्योंकि यज्ञ के लिए विभिन्न प्रकार की सामग्री प्रचुर मात्रा में इकट्ठी करनी पड़ती है। उन्होंने यह भी कहा है कि यज्ञ करने की योग्यता राजाओं और राजकुमारों को हो सकती है न कि अकिंचनों और असहायों को।[266] इसका आशय यह हुआ कि साधारणतया शूद्र यज्ञ के अवसर पर दान देने में असमर्थ था अत वह यज्ञ में भाग लेने में सक्षम नहीं था। धनी शूद्र को यज्ञ में भाग लेने देना अनुचित नहीं समझा जाता था क्योंकि उसके घर से अग्नि ग्रहण करना विहित था।[267]

यह भी दलील दी जाती है कि आदिम जातियों की मूर्तिपूजन प्रथा से ब्राह्मण धर्म की विशुद्धता को जिस खतरे की आशंका उत्पन्न हुई उससे प्रथमत ब्राह्मणों को यह अनुभव हुआ कि मुक्त आर्य और पराधीन वर्गों के बीच दुर्लंघ्य दीवार खड़ी करना आवश्यक

है।'[268] लेकिन यह व्याख्या बडे सीधे-सादे किस्म की है। स्पष्ट है कि यह उस गलत धारणा पर आधारित है कि शूद्र पराजित जाति के ही लोग थे। *ऋग्वेद अथर्ववेद* और बहुत से उत्तरकालीन वैदिक साहित्य के पुराने सदर्भों में भी ऐसा कोई सकेत नहीं मिलता है कि शूद्रों और ब्राह्मणों के बीच दीवार खडी करके ब्राह्मण धर्म की विशुद्धता की रक्षा की जाए। सभव है कि जो शूद्र पराजित आदिवासियों से आए थे, उन्हें वैदिक यज्ञ से वचित रखा गया हो, क्योंकि उनकी धार्मिक प्रथाएँ भिन्न थी। किंतु इस तरह की स्थिति का यही एकमात्र कारण नही कहा जा सकता। शूद्रों के बहिष्कार के सभावित कारणों का उल्लेख हमने ऊपर कर दिया है।

वैदिक कर्मकाड के विश्लेषण से शूद्रों का जो चित्र उभरता है वह सुसगत और समनुरूप नहीं मालूम होता। आर्थिक दृष्टि से विश्लेषण करने पर पता चलता है कि जहाँ एक ओर वे मवेशी पालते थे और प्राय स्वतत्र किसान के रूप में अपना कार्य करते थे, वहीं दूसरी ओर उन्हें घरेलू नौकर, खेतिहर मजदूर और कुछ मामलों में गुलाम भी समझा जाता था। राजनीति के क्षेत्र में शूद्र रत्नियों की बात सुनी जाती है, किंतु ऐसे भी वृत्तात मिलते हैं कि शूद्र और वैश्य ब्राह्मण और क्षत्रिय से जुडे थे। सामाजिक दृष्टि से यह सोचना अनुपयुक्त होगा कि भोजन और विवाह के विषय में शूद्र पर प्रतिबध लगाए गए थे,[269] किंतु कुछ ऐसे प्रमाण भी मिलते है जिनसे चडाल परिवार में जन्म लेने के कारण उन्हें घृणा का पात्र समझा जाता था और उनमें कुछ दुर्गुणों का आरोप भी किया जाता था। धर्म के मामलों में शूद्रों को कुछ धार्मिक कृत्यों की अनुमति दी गई थी किंतु उन्हें बहुतेरे विशिष्ट कर्मों से तथा सामान्यतया वैदिक यज्ञ से वचित रखा गया था। यों कहें कि कीथ का यह कथन सही है कि सहिताओं और ब्राह्मण ग्रथों में शूद्र की स्थिति अस्पष्ट है।[270]

उत्तर वैदिक काल में शूद्रों की स्थिति के सबध में जो उल्लेख है उनके अतर्विरोध की व्याख्या अशत उन प्रसगों के कालक्रम के आधार पर की जा सकती है। साधारणतया धार्मिक अनुष्ठान में, जो जीवन के हर क्षेत्र में व्याप्त था शूद्रों के सहभाग या सहयोग का निषेध केवल उत्तरकालीन ग्रथों में दिखाई पडता है। किंतु इसमें अधिकारों और असमर्थताओं का वर्णन साथ ही साथ किया गया है। इसका कारण यह बताया जा सकता है कि ज्यों ज्यों जनजातीय समाज का विघटन हुआ और वर्णविभेद बढते गए, त्यों त्यों शूद्रों की अपनी जनजातीय विशेषताएँ विलीन होती गई। आर्य जाति के सदस्य के रूप में शूद्र ने विभिन्न कर्मों में भाग लेने के अपने जनजातीय अधिकारों को उस समय भी कायम रखा जब उसे दास की कोटि में रख दिया गया था।

इस अवधि में शूद्रों की स्थिति के बारे में विशेष ध्यातव्य बात यह है कि उस वर्ण के रथकार और तक्षन् जैसे शिल्पी वर्ग को खास ओहदा दिया गया था। प्राय काष्ठ और धातु

कर्म के सापेक्षिक महत्व की दृष्टि से ही ऐसा किया गया होगा, क्योंकि उनके बिना वैदिक काल के लोगों का विकास और विस्तार नहीं हो सकता था, और खेती बाड़ी नहीं चल सकती थी। पहले कहा गया है कि तक्षन् लोहार प्रतीत होता है। वैदिक समाज में उसे महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था क्योंकि प्राचीन कृषक समुदाय में उसका आदर होता था और वह राजा के पार्षद के रूप में भी कार्य करता था।[271]

वैदिक इंडेक्स में प्रस्तुत और विभिन्न ग्रंथकारों [272] द्वारा स्वीकृत इस तथ्य को मानना संभव नहीं है कि आरंभ में शूद्र कृषिदास थे और उनका जीवन असुरक्षित था किंतु बाद में क्रमश उनकी असमर्थताएँ हटने लगी। इस तरह के तथ्य उन आर्यों के संबंध में समीचीन नहीं जँचते जो शूद्र की स्थिति में पहुँच गए थे। प्राचीन काल के युद्ध में आर्येतर लोगों को मिटा डालने की नीति अपनाई गई थी किंतु इस तरह का कोई प्रमाण नहीं मिलता है कि उस समय जिन लोगों को पराजित किया गया उन पर ऐसी असमर्थताएँ लाद दी गईं। इसके विपरीत प्रक्रिया ठीक उल्टी मालूम पड़ती है। प्राचीन प्रसंगों में बताया गया है कि शूद्र सामुदायिक जीवन में भाग लेते थे किंतु उत्तरवर्ती प्रसंग उनके बहिष्कार का ही संकेत देते है। परिणामस्वरूप वैदिक काल का अंत होते होते जनजातियों के प्राचीन अधिकारों को पूर्णतया समाप्त कर दिया गया। ये बातें इतनी प्रमुख और प्राय इतनी दमनात्मक हो गई कि उपनिषदों ने इनका विरोध किया। *बृहदारण्यक उपनिषद*[273] में कहा गया है कि ब्रह्मलोक में चंडाल और पौल्कस भी हेय नहीं समझे जाते है। वहाँ सभी भेदभाव मिट जाते है। *छांदोग्य उपनिषद*[274] में कहा गया है कि *अग्निहोत्र* यज्ञ के चारों ओर भूखे बच्चे उसी प्रकार बैठते हैं जिस प्रकार वे अपनी माँ को घेरकर बैठते हैं। अत चंडाल को भी यज्ञ का अवशेष पाने का अधिकार है। हम यह नहीं जानते कि निम्न वर्ग के लोगों के हित में भेदभाव के प्रति जो विरोध प्रकट किए गए है वे कहाँ तक जनजातियों के बीच समता के प्राचीन आदर्श से प्रेरित थे। किंतु इसकी संभावना सर्वथा निराधार नहीं कही जा सकती। यह विचारधारा उत्तर वैदिक काल के सुधारवादी आंदोलन से आगे बढी पर गृह्यसूत्र और धर्मसूत्र के संकलनकर्ताओं ने विरोधी विचारधाराओं को चालू रखा जिससे शूद्र वर्ण की अशक्तताएँ और भी बढती गई।

संदर्भ

1 विंटरनिज हिस्ट्री ऑफ इंडियन लिटरेचर I पृ 195 6 कीथ हार्वर्ड ओरिएंटल सीरीज XVIII पृ XCIII कीथ का कथन है कि तैत्तिरीय मतावलंबी भी काठक मैत्रायणि वाजसनेयि और शतपथ के मतावलंबियों की भांति मध्यदेश के निवासी थे

2 वेबर इंडियन लिटरेचर पृ 86

3 वैकरनेगेल अलटिंश्वे ग्रामाटिक I पृ XXX XXXI कीथ हार्वर्ड आरिएटल सीरीज , XXV पृ 44
4 कीथ पूर्व निर्दिष्ट XXV पृ 46
5 विंटरनिज पूर्व निर्दिष्ट I पृ 191
6 बी के घोष वेदिक एज पृ 235
7 कीथ पूर्व निर्दिष्ट XVIII पृ XI I
8 बी के घोष पूर्व निर्दिष्ट पृ 476
9 वही पृ 467
10 यहाँ सामान्यतया मान्य प्राधिकारियों की राय का निर्देश देने के अलावा और कुछ कहना सभव नहीं है
11 मैकडानल ए वैदिक ग्रामर फार स्टूडेंट्स पृ 118
12 एच सी रायचौधरी 'पोलिटिकल हिस्ट्री ऑफ एनशिएट इडिया पृ 7 8
13 मैत्रायणि संहिता IV 2 7 और 10
14 पचविंश ब्राह्मण VI 1 11
15 जैमिनीय ब्राह्मण I 68-69 शूद्रो अनुष्टुप्छन्दा वेश्मपतिदेवस तस्माद उपादावनेज्येनैव जिजिविषति
16 सत्याषाढ श्रौत सूत्र XXVI 1 7 शुश्रूषा शूद्रस्येतरेषा वर्णानाम् किंतु यह किसी अन्य पूर्व श्रौतसूत्र में नहीं पाया जाता
17 जै ब्रा II 266 उत्थाता शूद्रोदक कर्मकर्ता सभवतया अन्य ब्राह्मण ग्रथों में ऐसी कोई कडिका नहीं है
18 तैत्तिरीय ब्राह्मण III 11 10 3 में कर्मकर शब्द का प्रयोग ऋत्विक पुरोहित के अर्थ में किया गया है न कि भाड़े के मजदूर के रूप में अन्य ब्राह्मण ग्रथों में कर्मकर का कोई उल्लेख नहीं है
19 बृहदारण्यक उपनिषद I 4 13
20 वही II 266
21 मुखर्जी एनशिएट इंडियन एजुकेशन पृ 158
22. वाजसनेयि संहिता XXX 5 शतपथ ब्राह्मण XIII 6 2 10 तैत्तिरीय ब्राह्मण III 4 1 1
23 वाजसनेयि संहिता XXX 6 21 तैत्तिरीय ब्राह्मण III 4 2 17
24 वैदिक इडेक्स II पृ 267
25 वही
26 ऐतरेय ब्राह्मण VIII 22 देशाद् देशात् समोहन्तानां सर्वासाम् आध्दुहितृणाम्, दशान्धाद् सहस्राणि आत्रेयो निष्कण्ठय यह अध्याय इस ग्रथ के उत्तर भाग का एक अ श है
27 बृहदारण्यक उपनिषद VI 2.7 इसमें भूमि की भी चर्चा नहीं है
28 महाभारत (कलकत्ता सस्करण) II 33.52 अग के सूत राजा कर्ण ने सगीत और ऐसी ही अन्य कलाओं में प्रशिक्षित सौ सम्पनी दासी कन्याएँ समर्पित की थीं महाभारत (कलकत्ता सस्करण) VIII 38 7 18

29 ऐतरेय ब्राह्मण VI 18 19 गोपथ ब्राह्मण II 4 2 6 I

30 वही III 5

31 रैप्सन कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इंडिया I 128 तुलनीय घोषाल हिस्टोरियोग्राफी III अन्य एसेज पृ 87 पाद टिप्पणी 9

32 लाट्या श्रौतसूत्र VIII 4 14 दासमिथुनौ धान्यपल्यम् सीरम् धेनुरिति

33 आश्व श्रौतसूत्र X 10 10

34 कात्यायन श्रौत सूत्र XXII 10

35 वही XXII 11 शूद्रान वा दर्शनाविरोधात्याम्

36 वही XXII 11 की टीका न च विरोध गर्भन्तस्य

37 शाखायन श्रौतसूत्र XVI 14 18 सहपुरुषम् च दीयते

38 वही XVI 15 20 सहभूमि च दीयते टीका में 'सपुरुष च' जोड़ा हुआ है

39 वैदिक इंडेक्स II पृ 389

40 छान्दोग्य उपनिषद IV 2 4 5

41 ऐतरेय ब्राह्मण VIII 21 शतपथ ब्राह्मण XIII 7 1 15

42 वही

43 कात्यायन श्रौतसूत्र की टीका XXII 11

44 अथर्ववेद III 24 VI 142 वाजसनेयि संहिता IV 10 शतपथ ब्राह्मण, I 6 1 1 8

45 दास दि इकनॉमिक हिस्ट्री ऑफ एन्शियंट इंडिया पृ 139 40 एस के दास ने सगत निर्देशों का संग्रह किया है

46 आश्वलायन श्रौतसूत्र VIII 4.5 8 IX 10 11 11 2

47 पास्ट एंड प्रेजेन्ट सं 6 पृ 1

48 विदेह के जनक का दृष्टांत

49 जायसवाल हिंदू पोलिटी II 20

50 चैडविक दि हिरोइक एज पृ 370

51 घोषाल हिस्टोरियोग्राफी एंड अदर एसेज पृ 253

52 मैत्रायणि संहिता II 6 5 तक्षरथकारयोर्गृहे आपस्तम्ब श्रौतसूत्र XVIII 10 17 सत्याषाढ श्रौतसूत्र XIII 4 8 यह ध्यातव्य है कि तैत्तिरीय संहिता में रत्निन के इसी प्रकार के वर्णन में तक्ष और रथकार का उल्लेख नहीं हुआ

53 वही सर्वाधसानि दक्षिण

54 शतपथ ब्राह्मण V 3 1 10 11

55 वही V 3 2 2 4 इत्यथैतावियम प्रविशत्येताम् वा तम प्रविशति यदयज्ञियानि यज्ञेन प्रसजत्यज्ञियात्रवा एतादृग्यज्ञेन प्रसजति शूद्रास्त्वाद्यास्तु सोम और रुद्र तथा मित्र और बृहस्पति को चढावा चढाकर प्रायश्चित करने का प्रावधान दो प्रतिकूल विचारों का सामंजस्य करने के प्रयास जैसा लगता है इनमें से एक विचार प्राचीन है और एक नवीन जो यज्ञ में शूद्र के भाग लेने के संबंध में है राजा शूद्र के साथ सांस्कारिक संबंध जोड सकता था किंतु इसके फलस्वरूप होनेवाले पाप को दूसरे धार्मिक संस्कार द्वारा हरना पड़ता था यह उल्लेखनीय है

कि इसका उल्लेख न तो कृष्ण यजु ग्रंथों में और न शुक्ल यजु ग्रंथों में हुआ है घोषाल हिंदू पब्लिक लाइफ I पृ 133

56 शतपथ ब्राह्मण की टीका V 3 2 2, शूद्रान सेनान्यादीन्

57 शांखायन श्रौतसूत्र XVI 4 4 शतपथ ब्राह्मण XIII 5 2 8

58 आपस्तम्ब श्रौतसूत्र (गार्बीज एडिशन) XVII 10 26

59 वही VI 3 12

60 मैत्रायणि संहिता II 6.5 आ श्रौतसूत्र (गार्बीज एडिशन), XVIII 10 20 सत्याषाढ श्रौतसूत्र XIII 4 8

61 शतपथ ब्राह्मण की टीका V 3 2.2-4

62 कीथ पूर्व निर्दिष्ट XVIII पृ 120 वह क्षद् अर्थात नक्काशी करना से यह अर्थ निकालते हैं

63 मोनियर विलियम्स संस्कृत इंगलिश डिक्शनरी देखें क्षत्तृ शब्द सायण के अनुसार वह क्षत्रिय पत्नी का शूद्रजात पुत्र है

64 संहिताओं और ब्राह्मणों में रत्निनों की सूची का संकलन घोषाल ने हिस्टोरियोग्राफी एंड अदर एसेज के पृष्ठ 249 के सामने के पृष्ठ पर किया है

65 एक सूची (मैत्रायणि संहिता II 6 5 IV 3 8) में उनकी संख्या तीन है और दो सूचियों में यह संख्या दो है (काठक संहिता XV 4 शतपथ ब्राह्मण V 3) अजीब बात यह है कि कृष्ण यजु के ग्रंथों में उनका उल्लेख नहीं हुआ है (तैत्तिरीय संहिता I 8 9 तै ब्रा I 7 3)

66 जायसवाल पूर्व निर्दिष्ट II पृ 21

67 अथर्ववेद III 5 6

68 वाराह श्रौतसूत्र III 3.3 24 तत्र पष्ठौहीं विदीयन्ते ब्राह्मणो राजन्यो वैश्य शूद्र मैत्रायणि संहिता IV 4 6 आपस्तम्ब श्रौतसूत्र (गार्बीज एडिशन) XVIII 19 2 3 सत्याषाढ श्रौतसूत्र XIII 6 29 30

69 वाजसनेयि संहिता X 29 शतपथ ब्राह्मण V 4 4 19 23 कात्यायन श्रौतसूत्र XV 7 7 11 20

70 काठक संहिता XXXVIII 1 वाजसनेयि संहिता कपिष्ठल संहिता तैत्तिरीय संहिता और मैत्रायणि संहिता में इस अनुच्छेद को जोड़ा नहीं है किंतु तैत्तिरीय ब्राह्मण II 7 9 1 और 2 में यह परिवर्तित रूप में आया है जिसमें दान और उसके फल का तो उल्लेख हुआ है पर चारों वर्णों का नहीं ओजस् के स्थान में यहाँ वीर्यम् का उल्लेख हुआ है देखें सत्याषाढ श्रौतसूत्र XXIII 4 21 जिसमें यह अनुच्छेद ओदनसव नैवेद्य के प्रसंग में आया है

71 फल और वर्चस वाजसनेयि संहिता X 10 13 में बल और वर्चस तैत्तिरीय संहिता I 8 13 में पुष्टम् और फलम् मैत्रायणि संहिता II 6 10 पुष्टम् और वर्चस् काठक संहिता XV 7 में आए है

72 पूर्वोद्धृत II 29 पाद टिप्पणी 2

73 घोषाल हिस्ट्री एंड एसेज पृ 264

74 एस वी वेंकटेश्वर इंडियन कल्चर थ्रू दि एजेज भाग I पृ 11

75 वैदिक इंडेक्स II पृ 57

76 बृहदारण्यक उपनिषद I 4 13

77 *महाभारत II 30 41* विशश्च मान्याशूद्राश्च सर्वानानयतेति च

78 वही II 33 9 न तस्या संनिधौ शूद्र कश्चिदासीत्र चाव्रत

79 वाजसनेयि संहिता XX 17 (सौत्रामणि यज्ञ के अवसर पर) यच्छूद्रे यदय यदेनश्चकृमा वय यदेकस्या धि धर्माणि तस्यावय जनमसि तैत्तिरीय संहिता I 8 3 1 काठक संहिता XXXVIII 5 देखें शतपथ ब्राह्मण XII 9 2 3

80 वाजसनेयि संहिता XX 9

81 पाणिनीज ग्रामर III 1 103 अर्य स्वामि वैश्ययो

82 वाजसनेयि संहिता XX 17 की टीका वैदिक इंडेक्स में इसकी व्याख्या आर्य के अर्थ में की गई है

83 ऐतरेय ब्राह्मण VII 29 ऊपर पृ 59 60

84 आपस्तम्ब श्रौतसूत्र (गार्बी संस्करण) XX 5 13 शत शूद्रा वरूथिन कात्यायन श्रौतसूत्र XX 50 ऐसा प्रतीत होता है कि बाद में कुछ विद्वेष के चलते सत्याषाढ श्रौतसूत्र जो आपस्तम्ब श्रौतसूत्र का लोकप्रिय संस्करण है में शूद्र वरूथिन को छोड दिया गया है सत्याषाढ श्रौतसूत्र XIV 1 46

85 तैत्तिरीय संहिता VI 4 8 तस्माद् राज्ञा राजानम् अशभुवा घ्नन्ति वैश्येन वैश्य शूद्रेण शूद्रम्

86 महाभारत V 94 7 अस्ति कश्चिद्विशिष्टो वा मद्विधो वा भवेद्युधि शूद्रो वैश्य क्षत्रियो वा ब्राह्मणो वापि शस्त्रभृत्

87 नैवामन्त्रकर युद्ध देहपाप प्रणाशनम्, शूद्र विट्क्षत्रविप्राणा धर्म्यं स्वर्ग्य यशस्करम् महाभारत VIII 32 18 क्रिटिकल एडिशन में विप्राणाम् के स्थान में वीराणाम् पाठ आया है किंतु उपर्युक्त मैं स के अनुवाद में भी आया है और अधिक उपयुक्त है

88 कात्यायन श्रौतसूत्र XX 37

89 शतपथ ब्राह्मण XIII 5 4 6

90 वही XIII 4 2 17 आपस्तम्ब श्रौतसूत्र (गार्बीज संस्करण) XX 5 18 कात्यायन श्रौतसूत्र XX 55 सत्याषाढ श्रौतसूत्र XIII 1 47

91 जैमि ब्राह्मण II 266 267

92 ऐतरेय ब्राह्मण VIII 4

93 तैत्तिरीय संहिता III 5 10 मजुओं के अन्य संग्रहों में समानांतर पाठ नहीं है

94 जैमि ब्राह्मण II 102 शाखायन श्रौतसूत्र *XIV 33 18 19* में यही विचार कुछ भिन्न रूप में दुहराया गया है

95 तैत्तिरीय स V 7 6 4 रुच वैश्येषु शूद्रेषु मयि धेहि रुचारुचम्, वाजसनेयि स XVIII 48 काठक संहिता XL 13 मैत्रायणि संहिता,III 4 8 तै स V 7 6 शतपथ ब्राह्मण IX 4 2 14 में रुच नो धेहि ब्राह्मणेष्विति कहा गया है जो एगेलिंग मानते हैं कि अन्य तीन वर्ण अंतर्निहित हैं अत इस परिच्छेद का अनुवाद करने में उनका उल्लेख

कोष्ठक में किया है (सैक्रेड बुक्स ऑफ दि ईस्ट xliii 238) किंतु इस ग्रंथ में प्राय ब्राह्मणों द्वारा अपने पौरोहित्यजन्य दावे के हित में प्राचीन धार्मिक कृत्यों के नाम पर धोखेबाजी करने का विशेष उदाहरण प्रस्तुत किया गया है

96 शतपथ ब्रा V 3 5 11 14 तैत्ति ब्रा I 7 8 7 वाराह श्रौतसूत्र III 3 2 48

97 जायसवाल पूर्व निर्दिष्ट II पृ 25 आगे चलकर जायसवाल ने जो कहा है उसका अर्थ है कि बाद में शूद्र हमेशा अभिषेक समारोह में भाग लेता हुआ जान पड़ता है किंतु जब तक हम अग्निपुराण जो मध्ययुग के आरम्भ की रचना है में वर्णित राज्याभिषेक समारोह तक नहीं पहुँचते (अध्याय 218 18 20) तब तक इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता

98 घोषाल पूर्व निर्दिष्ट पृ 265 66 और एस वी वेंकटेश्वर पूर्व निर्दिष्ट, भाग I पृ 11 विभिन्न प्रकार के अर्थों के लिए देखें

99 ऐतरेय ब्राह्मण VII 20

100 शतपथ ब्रा I 3 4 15 II 5 2 6 देखें XII 7 3 15

101 वही XI 2 7 16

102 शाख्यायन श्रौतसूत्र XVI 17 4 वैदिक इंडेक्स II 256 में उद्धृत

103 वाराह श्रौतसूत्र III 1 1 1 घोषाल पूर्व निर्दिष्ट पृ 283 लेकिन क्षत्रिय के साथ वैश्य भी वाजपेय यज्ञ के छोटे मोटे समारोहों से सबद्ध था (कात्यायन श्रौतसूत्र XIV 75)

104 तैत्तिरीय ब्राह्मण III 3 11 2 (भट्टभास्कर की टीका सहित)

105 घोषाल हिंदू पब्लिक लाइफ I पृ 73 80

106 तैत्तिरीय संहिता XVIII 39 41 काण्व संहिता XX 2

107 शतपथ ब्राह्मण III 5 2 11 III 6 1 17 18 IX 4 1 7 8

108 वही VI 4 4 12 13

109 वही VI 6 3 12 13

110 वही पृ 52

111 ऐतरेय ब्राह्मण VIII 4 विश वैवास्मै क्षत्राय च वर्णप्र अनुवर्तमानी कुर्वन्ति

112 ऐतरेय ब्राह्मण VII 29

113 वही VII 27 8

114 म्यूर, हेग और वेबर ने इस शब्द का अर्थ किया है इच्छानुसार गमन करनेवाला, किंतु इस क्रिया पद का प्रयोग प्रेरणार्थक अर्थ में हुआ है (वैदिक इंडेक्स ii पृ 255) जिसे सायण ने मान्यता दी है

115 ऐत ब्रा VIII 29 अथ यदि अट , शूद्राणा स भक्ष शूद्रविस्तेन भक्षेन जिमिष्यासि शूद्रकल्पस्ते प्रजायमाजनिष्यते

116 जीप पूर्व निर्दिष्ट XXV पृ 315

117 ऐतरेय ब्राह्मण का अनुवाद पृ 485

118 घोषाल पूर्व निर्दिष्ट I, पृ 158

119 मध्यराजारी यगाकदाचिदिन इच्छा भवति सदानैषु अयम् उत्पाद्यते

120 पाणिनि व्याकरण II 4 10

121 कीथ पूर्व निर्दिष्ट XXV पृ 315
122 वध्य = कुपितेय स्वामिना ताड्यो भवति इच्छामनतिक्रम्य
123 III 11 V 16 और X 11
124 III 9 IX 15 16 18 X 29
125 हेग ऐतरेय ब्राह्मण का अनुवाद पृ 485
126 वैदिक इंडेक्स ii पृ 256
127 कीथ कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इंडिया, i, पृ 128 9 दत्त पूर्व निर्दिष्ट पृ 166 घोषाल हिंदू पब्लिक लाइफ i पृ 167
128 वैदिक इंडेक्स ii पृ 331
129 तैत्तिरीय ब्राह्मण I 5 9 5 6 III 4 1 7
130 कीथ हार्वर्ड ओरिएंटल सीरीज XXV पृ 29 वैदिक इंडेक्स ii पृ 256
131 वाजसनेयि संहिता XIV 30 मैत्रायणि संहिता II 8 6 काठक संहिता XVII 5 कात्यायन संहिता XXVI 24 तैत्तिरीय संहिता IV 3 10 2
132 शतपथ ब्राह्मण XIII 2 9 8 तैत्तिरीय ब्राह्मण III 9 7 3 वाजसनेयि संहिता XXIII 30-31
133 वाजसनेयि संहिता XXIII 30 शूद्रा यदर्यजारा न पोषाये धनायति मैत्रायणि संहिता III 13 1 तैत्तिरीय संहिता VII 4 19 13 काठक संहिता (अश्वमेध) V 4 8 शांखा श्रौतसूत्र XVI 4 4 6
134 वाजसनेयि संहिता XXIII 30 पर महीधर और उवट की टीका
135 वैदिक इंडेक्स ii पृ 391
136 जे इगेलिंग सेक्रेड बुक्स आफ दि ईस्ट xliv पृ 326
137 कीथ कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इंडिया i पृ 126
138 पंचविंश ब्राह्मण XIV 6 6
139 वही
140 ऐतरेय ब्राह्मण VII 19 सायण की टीका सहित
141 वैदिक इंडेक्स ii पृ 259 बृहद्देवता IV 24 25
142 पंचविंश ब्राह्मण XIV 11 17
143 वायु पुराण ii 37 67 94
144 आदि पर्वन्, 98 25
145 मुखर्जी पूर्व निर्दिष्ट पृ 52
146 सायण के अनुसार वैदिक इंडेक्स i पृ 121 122
147 जैमिनीय उप II 2 5 6
148 वैदिक इंडेक्स 42 22 26
149 अनुशासन पर्वन् (कुम्ब संस्करण) 53 13 19
150 वही 53 38
151 शांखायन श्रौतसूत्र XVI 4 4

152 घुर्ये पूर्व निर्दिष्ट पृ 51

153 कीथ पूर्व निर्दिष्ट I पृ 129

154 शांखायन ब्रा XXVII 1 यह ब्राह्मण शतपथ और ऐतरेय ब्राह्मणों के बाद का माना जाता है

155 छांदोग्य उपनिषद्, VI 10 7

156 रामायण I 58 10 11 जान पड़ता है कि त्रिशंकु जो श्यामवर्ण का था सम्भवत चंडाल जाति का नेता था

157 वाजसनेयि संहिता, XXX 21 तैत्तिरीय ब्राह्मण III 4 1 17

158 वही 17 तैत्तिरीय ब्राह्मण III 4 1 14

159 ऐतरेय ब्राह्मण VII 15 17 शांखायन श्रौतसूत्र XV 24

160 वही 17 नापाग श्वपाकान् स्यात् असयेन त्वया कृतम्

161 वही 18

162 वही 18 की टीका चण्डालादि रूपान् नीचजातिविशेषान्

163 वाजसनेयि संहिता XXVI 2 यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्य ब्रह्म राजन्याभ्याम् शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय च

164 मुकर्जी पूर्व निर्दिष्ट पृ 53

165 उवट और महीधर द्वारा प्रस्तुत वाजसनेयि संहिता XXVI 2 की टीका

166 शतपथ ब्राह्मण I 1 4 12

167 छान्दोग्य उपनिषद्, II 23 1 2 जी सी पाण्डेय [illegible] ओरिजिंस ऑफ बुद्धिज्म पृ 322 23 जी सी पाण्डेय का विचार है [illegible] चार आश्रमों का सिद्धांत बुद्धदेव के पहले नहीं था

168 अथर्ववेद XI.5.3

169 अल्तेकर एजुकेशन इन एनशिएंट इंडिया पृ 10

170 तैत्तिरीय संहिता VI 3 10 गोपथ ब्राह्मण I 2 2 और 4 शतपथ ब्राह्मण XI 5 4 12

171 बृहदारण्यक उपनिषद्, V 2 1

172 अथर्ववेद XI 5 पंचविंश ब्राह्मण XVII 1 2 ब्लूमफील्ड की राय है कि परिवर्तित व्रात्य को शुद्ध ब्रह्मचारिन् कहा गया है अथर्ववेद पृ 94

173 वैदिक XVIII 9 और 54 9 स्टीगल अब्स्टिनेन्स्टेनसुन्डे III पृ 700 देखें पृ 548 49 भी

174 श्राडर सिविलाइजेशन ऑफ दि ईस्टर्न ईरानियंस इन एनशिएंट टाइम्स I पृ 58 9

175 टामसन स्टडीज [illegible] एनशिएंट ग्रीक सोसायटी I पृ 272

176 छान्दोग्योपनिषद्, IV 1 1 8 1 1 4

177 जैमिनीय ब्राह्मण III 7 3 2 इसे जैमिनीय उप ब्राह्मण III 7.3.2 में जानश्रुति पौत्रायण भी कहा गया है औपावि जानश्रुतेय ने वाजपेय यज्ञ किया था (शतपथ ब्राह्मण V 1 1 5 और 7)

178 सिटर्निश पूर्व निर्दिष्ट I पृ 229 पाद टिप्पणी 3

179 तैत्तिरीय ब्राह्मण III 12 9 2
180 शतपथ ब्राह्मण XIII 4.3 7 13
181 वही देखें छांदोग्य उपनिषद्, VII 1 1
182 छांदोग्य उपनिषद्, VIII 14 1
183 सत्या श्रौतसूत्र XIX 3 26
184 वही XIX 1 4 XXVI 1 20
185 वही XXVI 1 6
186 द्राह्य श्रौतसूत्र VII 3 14
187 सत्या श्रौतसूत्र XIX 4 13
188 बौधायन गृह्यसूत्र II 5 6
189 गेल्ड एथनालाजी ऑफ दि महाभारत पृ 241 2
190 सेनार्ट कास्ट इन इंडिया पृ 118
191 हापकिंस मुखर्जी पूर्व निर्दिष्ट पृ 10 11 11 हाल ही में हस्तिनापुर में हुई खुदाई में बहुत से औजार जो सुई की तरह नोकदार हैं प्राप्त हुए हैं जो नौ सौ से पाँच सौ ई पू के कहे जाते हैं किंतु यह निश्चित नहीं है कि उनका प्रयोग लिखने के लिए किया जाता था
192 हापकिंस मुखर्जी वही पृ 339 40
193 शाखायन गृह्यसूत्र II 7 21 25
194 तैत्तिरीय ब्राह्मण I 1 4 8 आपस्तम्ब श्रौतसूत्र (गार्बीज सस्करण) V 11 7 कात्यायन श्रौतसूत्र 1 9 सत्या श्रौतसूत्र III 1 वाराह श्रौतसूत्र I 1 1 4
195 आपस्तम्ब श्रौतसूत्र (कैलेंड और गार्बीज सस्करण) V 3 19 कात्यायन श्रौतसूत्र IV 179 III सत्या श्रौतसूत्र III 2 वाराह श्रौतसूत्र I 4 1 1 वैखानस श्रौतसूत्र I 1 आश्व श्रौतसूत्र II 1 13
196 तक्षकवर्मोपजीव्युपकुष्ट इत्युच्यते आश्व श्रौतसूत्र II 1 13 नारायण की टीका सहित
197 आप श्रौतसूत्र (गार्बीज सस्करण) IX 14 12 सत्या श्रौतसूत्र XV 4 20 वाराह श्रौतसूत्र I 1 1 5 कात्यायन श्रौतसूत्र I 12
198 आपस्तम्ब श्रौतसूत्र (गार्बीज सस्करण) IX 14 11 सत्या श्रौतसूत्र XV 4 19 वाराह श्रौतसूत्र I 1 1 5
199 सत्या श्रौतसूत्र III 1
200 सत्या श्रौतसूत्र की टीका III 1
201 महाभारत I 61 48
202 ऋग्वेद X 53 4
203 निरुक्त III 8 औपमन्यव निषाद शब्द को निषाद स्थपति मानते हैं निरुक्त III 8 के बारे में स्कन्दस्वामी और महेश्वर के विचार
204 मुकर्जी पूर्व निर्दिष्ट पृ 52 53
205 जैमिनीय ब्राह्मण II 184 निषादेषु हैव ता वसेद ~ वैश्ये वा ह ता भ्रातृव्ये वा वसेद् राजनि हैव ता वसेद्, पचविंश ब्राह्मण XVI 6 7 कौषीतकि ब्राह्मण XXV 15 आपस्तम्ब

श्रौतसूत्र (गार्बीज संस्करण) XVII 26 18 लाट्यायन श्रौतसूत्र VIII 2 8

206 लाट्यायन श्रौतसूत्र VIII 2 8 की टीका में निषाद ग्राम का प्रसंग आया है

207 शेफर एथनोग्राफी ऑफ एनशिएंट इंडिया' पृ 10

208 शतपथ ब्राह्मण I 1 4 11 12 आपस्तम्ब श्रौतसूत्र (कैलेंड संस्करण) I 19 9

209 शतपथ ब्राह्मण V 5 4 9 चत्वारो वो वर्णा, ब्राह्मणो राजन्यो वैश्य शूद्रो न हैतेषामेकश्चन भवति य सोम वमति स यत् हैतेषामेकश्चित्स्यात् तस्याद्वैव प्रायश्चिततति

210 ऐतरेय ब्राह्मण II 19 हापकिंस रैलिजस आफ इंडिया पृ 477

211 काठक संहिता XI 10

212 आज्यमन्थ ब्राह्मण पयोमन्थ राजन्यो दधिमन्थ वैश्य उदमन्थ शू सत्या श्रौतसूत्र XXIII 4 17 इस कंडिका से शूद्रों की सापेक्ष गरीबी का परिचय मिलता है

213 आश्व श्रौतसूत्र II 9 7

214 कात्या श्रौतसूत्र XIII 40-41 पंच ब्रा V 5 14 सत्या श्रौतसूत्र XVI 6 28 शूद्रार्यो चर्मणि परिमण्डले व्यायच्छेते अपत्यार्य

215 जैमिनीय ब्राह्मण II 404 5 आर्यवर्ण शब्द काठक संहिता में आया है XXXIV 5 किंतु उसमें शूद्र वर्ण का कोई उल्लेख नहीं है

216 शाखा श्रौतसूत्र XVII 6 1 2 लाट्यायन श्रौतसूत्र IV 3 9 5 6

217 तैत्तिरीय ब्राह्मण I 2 6 7

218 वाजसनेयि संहिता XXX 22 अशूद्रा अब्राह्मणास्ते प्राजापत्या

219 शाखायन श्रौतसूत्र XVII 6 1 2

220 शतपथ ब्राह्मण XIII 8 3 11 यह ध्यातव्य है कि क्षत्रियों की समाधि सबसे ऊँची होती थी और उसके बाद ब्राह्मणों की

221 बृहदारण्यक उप I 4 11 13

222 हापकिंस एपिक माइथालोजी पृ 168

223 शतपथ ब्राह्मण V 3 1 8

224 वही V 3 1 9

225 तैत्तिरीय ब्राह्मण II 7 2 1 और 2

226 तैत्तिरीय संहिता VII 1 1 4 5 पंचविंश ब्राह्मण VI 1 11

227 जैमिनीय ब्राह्मण II 101 शाख श्रौतसूत्र XV 10 1-4

228 शाखायन श्रौतसूत्र में प्रजापति की चर्चा नहीं है

229 जैमिनीय ब्राह्मण III 101

230 दत्त पूर्व निर्दिष्ट, 60 61

231 ऋग्वेद,I 117 21 यवं वृकेणाश्विना वपन्तेषम् दुहन्ता मानुषाय दस्रा

232 मैत्रायणी संहिता II 9 5

233 वाजसनेयि संहिता, XVI 27 काठक संहिता XVII 13 कपिष्ठल संहिता XXVIII 3 मैत्रायणी संहिता II 9 5 तैत्तिरीय संहिता IV 5 4 2 कण्व संहिता XVII 4

234 तैत्तिरीय संहिता IV 5 4 2.

235 वैदिक इंडेक्स ii पृ 249 50
236 वेबर इंडियन लिटरेचर पृ 110 111
237 वही
238 शतपथ ब्राह्मण V 3 1 10
239 ऊपर देखें पृ 71
240 तैत्तिरीय संहिता VIII 1 1 पंचविंश VI 1 6 11
241 वाजसनेयि संहिता XIV 30 शतपथ ब्राह्मण VIII 4.3 12
242 तैत्तिरीय ब्राह्मण III 2 3 9 कात्या श्रौतसूत्र I 5 देखें शाखा श्रौतसूत्र I 1 1 3 आश्वलायन श्रौतसूत्र I 3 3
243 तैत्तिरीय ब्राह्मण III 2 3 9
244 शतपथ ब्राह्मण VI 4 4 9
245 मैत्रायणि संहिता III 1-5 III 2 2 तैत्तिरीय संहिता V 1 4 5 कात्या संहिता XIX 4 और कपिष्ठल संहिता XXX 2 में केवल ब्राह्मण और राजन्य का उल्लेख हुआ है वैश्य को भी छोड़ दिया गया है
246 शतपथ ब्राह्मण II 5 2 36
247 वही III 2 1 40
248 वैदिक इंडेक्स ii 390
249 कात्यायन श्रौतसूत्र VII 105
250 आपस्तम्ब श्रौतसूत्र (गार्बीज संस्करण) VI 3 7 रुद्रदत्त की टीका सहित
251 तैत्तिरीय ब्राह्मण III 2 3 9 10 कपिष्ठल संहिता XLVII 2 मैत्रायणि संहिता IV 13 आपस्तम्ब श्रौतसूत्र (गार्बीज संस्करण) VI 3 11 बौधायन श्रौतसूत्र XXIV 31 शाखा श्रौतसूत्र II 8 3 सत्या श्रौतसूत्र III 7
252 आपस्तम्ब श्रौतसूत्र (गार्बीज संस्करण) VI 3 12 असतो वा एष सभूतो यच्छूद्र
253 मैत्रायणि संहिता 1 8 3
254 आपस्तम्ब श्रौतसूत्र (गार्बीज संस्करण) II भूमिका पृ XII
255 वही VI 3 13 दुग्धाद वा
256 आपस्तम्ब श्रौतसूत्र VI 3 13 की रुद्रदत्तीय टीका
257 तैत्तिरीय ब्राह्मण III 2 3 9 10
258 शतपथ ब्राह्मण III 1 1 10 न शूद्रेण सम्भाषेरन् ब्रा श्रौतसूत्र VIII 3 14 लाट्यायन श्रौतसूत्र III 3 15 16 के अनुसार यह शर्त सत्र यज्ञ के याजक पर भी लागू है सत्या श्रौतसूत्र X 2
259 द्रा श्रौतसूत्र VIII 3 14 सत्या श्रौतसूत्र XXIV 8 16 में कहा गया है कि महिला के साथ भी ब्रह्मचारिन् को ब्रह्मचर्य धारण करने के पश्चात बातचीत नहीं करनी चाहिए
260 शतपथ ब्राह्मण XIV 1 1 31 सत्या श्रौतसूत्र XXIV 1 12 में भी
261 आर एस शर्मा (जर्नल ऑफ दि बिहार रिसर्च सोसायटी XXXVI) 183 191
262 शतपथ ब्राह्मण XIV 9 4 12

263 शतपथ ब्राह्मण I. 1.3 12, अनुवादस्तथा बनर्जी 'स्टडीज इन दि ब्राह्मणाज पृ 127 पाद टिप्पणी 2 ब्रफ का कथन है कि यह प्राचीन काल के उस विचार के चलते हुए होगा जिसके अनुसार वृक्षों को अपवित्र करने से वन के देवी देवताओं का तिरस्कार होता था

264 शतपथ ब्राह्मण II 3 1.31 कण्व द्वारा निर्धारित पाठ में यह द्रष्टव्य है

265 I 4 12

266 न वै शक्या दरिद्रेण यष्टुं प्राप्त पितामह बहूपकरणा यज्ञा नाना संभारविस्तरा पार्थिवै राजपुत्रैर्वा शक्या प्राप्तुंपितामह, नार्थन्यूनैरवगुणैरेकात्मभिरसंहतै महाभारत (कुम्ब) XIII 164-2 3 (कल) XII 107-2 3 यह अनुच्छेद बहुत बाद का है किंतु इसे हम उत्तर वैदिक काल की परिस्थितियों का सूचक मान सकते हैं

267 यो ब्राह्मणो राजन्यो वैश्यशूद्रो वा असुर इव बहुपुष्टस्यात्तस्य गृहादाहृत्याधदध्यात् पुष्टिकामस्य आपस्तम्ब श्रौतसूत्र (गार्बी संस्करण) V 14 1 इसमें कोई संदेह नहीं कि विशेषण 'बहुपुष्ट' ब्राह्मण राजन्य और वैश्य पर भी लागू होता है किंतु शूद्र के मामले में यह विशेष महत्व का प्रतीत होता है जिसे अग्नि से निकाला हुआ कहा गया है

268 इगलिंग पूर्व निर्दिष्ट XII प्रस्तावना पृ XIII

269 इंडियन कल्चर XII 183

270 रैप्सन पूर्व निर्दिष्ट 1, 129

271 आर जी फब्र्स मेटलर्जी इन एंटिक्विटी' पृ 79

272 वैदिक इंडेक्स II पृ 390 दत्त ओरिजिन एंड ग्रोथ आफ कास्ट, पृ 101 5 वलवल्कर 'हिंदू सोशल इंस्टीट्यूशंस पृ 288

273 बृहदारण्यक उपनिषद शंकर की टीका सहित IV 3 22

274 छान्दोग्य उपनिषद V 24 4

दासता और अशक्तता

(लगभग छ सौ ई पू से लगभग तीन सौ ई पू तक)

वेदों के बादवाले युग में शूद्रों की स्थिति का अध्ययन करने के लिए ब्राह्मण ग्रंथों के अतिरिक्त बोद्ध और जैन ग्रंथों का भी सहारा लिया जा सकता है। ये ब्राह्मण ग्रंथ मुख्यतया धर्मसूत्र (विधिग्रंथ) गृह्यसूत्र (घरेलू कर्मकाड के ग्रंथ) और पाणिनि के व्याकरण है। इन ग्रंथों का कालक्रम मोटे तौर पर ही निर्धारित किया जा सकता है। काणे ने इस विषय से सबधित नवीनतम रचना में सिद्ध किया है कि प्रमुख धर्मसूत्र लगभग छ सौ तीन सौ ई पू के हैं।[1] इन सूत्रों में भाषागत प्रयोग की जो स्वतत्रता दीख पडती है, वह पाणिनि के प्रभाव के पूर्णतया व्याप्त हो जाने के बाद सभव नहीं रही होगी[2] और पाणिनि का व्याकरण ई पू पाँचवीं शताब्दी के मध्य का माना गया है।[3] गौतम का विधिग्रंथ जिसमें शूद्रों से सबधित अधिकाश सूचनाएँ मिलती हैं धर्मसूत्रों में सबसे प्राचीन ग्रंथ माना जाता है।[4] किंतु यह बतलाता है कि यवन की उत्पत्ति शूद्र स्त्री और क्षत्रिय पुरुष से हुई थी।[5] बाद के धर्मशास्त्रों की ही तरह इसमें वैश्यों और शूद्रों के सहोल्लेख के कई दृष्टात मिलते है।[6] इसमें सपूर्ण भारत में समान ढग के कानून चलाने का प्रयास[7] गोवध के लिए दडविधान[8] और लगभग बीस वर्णसकरों का वर्णन[9] मिलता है। इन सब बातों से पता चलता है कि गौतम के विधिग्रंथ में पीछे चलकर व्यापक सशोधन किए गए।[10] अत सभव है कि इस ग्रंथ में वर्णित समाज सबधी सभी कानूनों से मौर्यपूर्व काल की स्थिति का आभास नही मिले।

आर्यों के देश आर्यावर्त के अतर्गत जिस पर धर्मसूत्र लागू होनेवाले थे, पजाब बिहार तथा हिमालय और मालवा की पहाडियों के बीच के भूक्षेत्र है।[11] किंतु कानूनों के निर्माता बौधायन दक्षिण के निवासी थे। आपस्तब के बारे में यही बात निश्चयपूर्वक नही कही जा सकती क्योंकि उन्होंने उत्तर के निवासियों (उदीच्यों) में प्रचलित विशेष ढग की श्राद्ध प्रथा का उल्लेख किया है।[12] वसिष्ठ की विचारधारा सभवतया उत्तर पश्चिम भाग में फूली फली।[13] प्रमुख गृह्यसूत्र जो प्राचीन भारतीयों के दैनिक जीवन के बारे में

सर्वाधिक विश्वसनीय विवरण माने जाते हैं,[14] ई पू छ सौ-तीन सौ के बताए गए है।[15]

बौद्ध ग्रथों में सुत्तों (वार्तालाप) के चार सग्रह, अर्थात *दीघ मज्झिम सयुत्त* और *अगुत्तर*[16] और साथ ही *विनय पिटक*[17] सामान्यतया मौर्यपूर्व काल के माने जा सकते है। जातकों का कालनिर्धारण अधिक टेढा काम है,[18] क्योंकि इनकी गाथाएँ, जो धर्म से सबधित हैं, सर्वाधिक प्राचीन काल की हैं। किंतु अतीत की कथाएँ भी, जो टिप्पणी के रूप में गद्य में निहित हैं, मौर्यपूर्व काल की कही जा सकती हैं। वर्तमान कथाओं में कहीं-कहीं मौर्यकालीन परिस्थितियों का चित्रण मिलता है, जिससे स्पष्ट है कि वे बाद में जोडी गई हैं।[19] यद्यपि अतीत की कथाओं के घटनास्थल भारत के पश्चिमी या मध्यवर्ती भाग के है फिर भी वर्तमान की अधिकाश कथाओं का घटनास्थल सावत्थी या राजगृह है।[20] इसके अतिरिक्त, जातक के तृतीय, चतुर्थ और पचम खड सामान्यतया ऐसे खड समझे जा सकते हैं जिनके वर्तमान रूप प्रथम और द्वितीय खडों की अधिकाश साधारण कथाओं के बाद के हैं।[21]

हाल में यह सुझाव दिया गया है कि जातक' समाज के ऐसे चरण के प्रतीक है जो सभवतया सातवाहन काल में व्यापार के अनुकूल था।[22] किंतु चाँदी और ताबे की आहत मुद्राएँ तथा नार्थ ब्लैक पालिश्ड वेयर (उत्तरक्षेत्रीय परिष्कृत कृष्ण पात्र) के युग (लगभग छ सो दो सो ई पू) की बहुत सारी लोह वस्तुएँ जो मिली हैं, उनसे स्पष्ट है कि नगर जीवन का आरभ[23] और व्यापार एव वाणिज्य का विकास निश्चित रूप से बुद्धकालीन युग में हो चुका था।[24] इनके अलावा यदि उद्योग और वाणिज्य विषयक कौटिल्य के नियम विनियम मौर्य काल के बारे में सच हैं तो उनसे यह धारणा बन सकती है कि उससे पूर्वकाल में ऐसे आर्थिक कार्यकलाप कुछ प्रगति कर चुके थे। फिर जातकों में दक्षिण भारत के व्यापार और वाणिज्य का उल्लेख विरले ही है यद्यपि सातवाहनों के युग में उसके साथ रोमनों का सक्रिय सपर्क था। जातकों में उन बहुतेरे सघों ओर व्यवसायों का भी उल्लेख नहीं है जो हमें सातवाहन काल में मिलते हैं।[25] चूँकि बुद्ध की जन्मकथाएँ ई पू दूसरी शताब्दी में ही साँची और भारहूत के चित्रों और मूर्तियों में दिखाई गई हैं, इसलिए उन्हें खासकर ऐसे देश में जहाँ प्राचीन धार्मिक परपराएँ मध्यकाल तक कला का आधार बनी रहीं कम से कम दो शताब्दी पहले का मानना चाहिए। इस प्रकार यद्यपि जातक गाथाओं और अतीतकालीन कथाओं से पता चलता है कि मौर्य साम्राज्य की स्थापना के पहले दो तीन शताब्दियों में स्थिति कैसी थी फिर भी अध्ययन की दृष्टि से जातकों के वे भाग जिनमें चडालों का वर्णन किया गया है, बाद में जोडे गए माने जा सकते हैं क्योंकि इन उपेक्षित लोगों के प्रति जातक में जो निर्देश हैं उनकी पुष्टि मौर्यकाल से पूर्व के ब्राह्मण ग्रथों

से नहीं होती है। यह भी ध्यान देने योग्य है कि मनु ने वर्णसंकर अर्थात मिश्रित जातियों की जो सूची दी है, उस प्रकार की सूची जातकों में नहीं मिलती है ।

जैन ग्रंथों की कालावधि अधिक अनिश्चित है, क्योंकि उनका संपादन और अध्ययन उस रूप में नहीं हो पाया है जिस रूप में बौद्ध ग्रंथों का हुआ है। कहा जाता है कि जैन धर्मग्रंथों का संकलन सर्वप्रथम ई पू चौथी शताब्दी के अंत या तीसरी शताब्दी के आरंभ में किसी समय हुआ था।[26] किंतु इन ग्रंथों में चूँकि महावीर का जीवन वृतांत है, इसलिए इनका उपयोग मौर्यकाल के पूर्व की स्थिति के लिए किया जा सकता है, जिससे वे काल की दृष्टि से बहुत दूर नहीं हैं।

इन साहित्यिक रचनाओं की प्रामाणिकता पर अनेक प्रकार के मत व्यक्त किए गए हैं और ऐतिहासिक रचनाओं या पुरातात्विक अभिलेखों के अभाव में इन मतों की व्याख्या करना कठिन है। बौद्धग्रंथों के समर्थन की दृष्टि से ब्राह्मणग्रंथों की अवहेलना की भी मनोवृत्ति देखने में आई है।[27] कहा जाता है कि धर्मशास्त्रों में वर्णों को नियत ढाँचों में समाविष्ट करने का प्रयास सर्वथा कृत्रिम और आनुमानिक है।[28] इस मत के विरोध में तर्क दिया गया है कि अनेक धर्मसूत्रों में समान रूप से कही गई बातों का कुछ तथ्यात्मक आधार अवश्य होगा।[29] कहा जाता है कि ऐसा आरोप मध्यकालीन यूरोप के रूढिवादी लेखकों पर लगाया जाता था जिसका खंडन आधुनिक विद्वानों ने किया है।[30] किंतु ब्राह्मण अथवा ब्राह्मणेतर ग्रंथों पर ही सर्वथा निर्भर करना उचित नहीं होगा। मौर्यकाल के पूर्व की सामाजिक स्थिति के यथार्थ विवरण के लिए सभी प्रकार के ग्रंथों के समन्वित अध्ययन को ही आधार बनाया जा सकता है।[31] दुर्भाग्यवश ऐसा यथार्थ विवरण न तो 'कैंब्रिज हिस्ट्री ऑफ इंडिया', खंड 1[32] और न दि एज ऑफ इंपीरियल यूनिटी में ही उपलब्ध है। दूसरी पुस्तक में ई पू छः सौ से लेकर सन तीन सौ ई तक की कालावधि के साहित्यिक ग्रंथों में उपलब्ध सामग्री को एक जगह जुटाकर रखने का प्रयास तो किया गया है किंतु धर्मसूत्रों और गृह्यसूत्रों की बिल्कुल उपेक्षा कर दी गई है।[33]

इन सभी स्रोतों द्वारा अनुप्रमाणित तथ्यों को ग्रहण करने में कोई कठिनाई नहीं हो सकती है। जहाँ इन ग्रंथों में मत साम्य नहीं है, वहाँ बौद्ध और जैन ग्रंथों में प्रस्तुत सामग्री को धर्मसूत्रों में नियमबद्ध बातों की अपेक्षा सामाजिक अवस्थाओं का विशेष परिचायक माना जाना चाहिए। किंतु इनमें से किसी भी रचना में शूद्रों और समाज के अन्य अशक्त वर्गों के विचारों का वर्णन नहीं किया गया है। धर्मसूत्रों में ब्राह्मणों की श्रेष्ठता पर जोर दिया गया है तो बौद्ध और जैन ग्रंथों में क्षत्रियों के आधिपत्य की ओर झुकाव है। केवल छिटपुट ढंग से कहीं कहीं निम्न वर्गों के लोगों के प्रति थोड़ी बहुत सहानुभूति दिखलाई गई है। इनके अलावा धर्मसूत्रों से सामान्यतया उत्तर भारत की ही जानकारी मिलती है और बौद्ध तथा

जैन ग्रंथ उत्तरपूर्वीय भारत की स्थिति पर प्रकाश डालते हैं।

शूद्रों के बारे में कुछ प्रत्यक्ष जानकारी धर्मसूत्रों से, थोडी बहुत प्राचीन पालि ग्रंथों से और उससे भी कम जैन ग्रंथों से मिलती है। प्राय इतनी अल्प जानकारी के ही कारण फिक ने तर्क दिया है कि केवल सैद्धांतिक विवादों को छोडकर प्राचीन पालि ग्रंथों में कोई भी ऐसी बात नहीं है, जिससे सिद्ध होता हो कि शूद्र चतुर्थ वर्ण के रूप में वस्तुत विद्यमान थे।[34] ओल्डनबर्ग ने ठीक ही इस विचार को सही नहीं माना है।[35] ऐसे उदाहरण प्रस्तुत किए जा सकते है जिनसे पता चलेगा कि किसी भी व्यक्ति को लोग उसकी जाति से जानते थे और जाति के आधार पर ही उसकी हैसियत स्थिर होती थी। जैसे, एक धनुर्धर की पहचान के लिए पूछा जाता था कि वह क्षत्रिय है या ब्राह्मण, वैश्य अथवा शूद्र।[36] बुद्धदेव ने अपने धर्मोपदेश के एक सामान्य उदाहरण में कहा है कि बुद्धिमान व्यक्ति को यह जानकारी होनी चाहिए कि उसकी प्रियतमा क्षत्रिय ब्राह्मण वैश्य या शूद्र वर्ग में से किस वर्ग की है।[37] टी डब्ल्यू रीज डेविड्स भी जो प्राय ब्राह्मणों के साक्ष्य को बिल्कुल अस्वीकृत कर देते हैं बताते हैं कि बौद्ध ग्रंथों मे वर्णित चार वर्णों की व्यवस्था सामाजिक तथ्य के अनुकूल है।[38] इन बातों से स्पष्ट है कि बौद्धग्रंथों में शूद्रों को समाज का एक वर्ग माना गया है, यद्यपि इन ग्रंथों में उनके स्थान और कृत्यों को उतना स्पष्ट नहीं किया गया है जितना ब्राह्मण (कर्मकांड) विधियों में। शूद्र सेवक वर्ग के थे, यह बात उत्तर वैदिककालीन ग्रंथों से ध्वनित होती है। किंतु इस युग में धर्मसूत्रों ने साफ तौर पर जोर देकर कहा कि शूद्र को तीन उच्च वर्णों की सेवा करके अपने आश्रितों का भरण पोषण करना है।[39] शूद्र को स्वतंत्र रूप से अपनी गृहस्थी चलानी पडती थी जिसके लिए उसे नाना प्रकार के व्यवसाय करने पडते थे। गौतम कहते हैं कि शूद्र यांत्रिक शिल्पों का सहारा लेकर अपनी गुजर बसर करता था।[40] मालूम होता है कि शूद्र समुदाय के कुछ लोग बुनकर के रूप में कार्य करते थे तो कुछ लकड़हारे लोहार चर्मकार कुम्भकार रंगरेज आदि थे। यद्यपि इन शिल्पों का उल्लेख प्राचीन पालि ग्रंथों में हुआ है [41] फिर भी इन्हें अपनानेवाले वर्ण कौन कौन से थे इसका कोई संकेत नहीं किया गया है। गहपति[42] सामान्यतया ब्राह्मणकालीन समाज के वैश्य से मिलता जुलता है और उसके बारे में एक जगह कहा गया है कि वह कला और शिल्प का व्यवसाय करके जीवननिर्वाह करता था।[43] यदि साधनसपन्न व्यक्ति गहपति हो सकता था तो सभव है कि चुद लोहार, जिसने गौतम बुद्ध तथा उनके अनुयायियों को शानदार भोजन कराया था[44] और सपन्न कुम्भकार सद्दलपुत्त जो पाँच सौ कुम्भकारी की दूकानों का मालिक था और जिनमें अनेकानेक कुम्भकार कार्य करते थे,[45] जैसे कुछ धनवान शिल्पी गहपति थे। यह बात एक हजार लोहारों के गाँव के उस प्रधान के बारे में भी सत्य हो सकती है जिसने बौद्धिसत्त से अपनी कन्या का विवाह रचाया।[46] यद्यपि गहपति शब्द

का प्रयोग अब इस प्रकार के शिल्पियों के लिए किया जाता है, यह सभव है कि अपनी सपत्ति के कारण ही उनमें से कुछ लोग ऊँची जगह पा सके ।

हम यहाँ शिल्पों और शिल्पियों के इतिहास की गवेषणा नहीं कर सकते, वह अलग शोध का विषय है। फिर भी यहाँ कुछ मूल बिंदुओं पर विचार किया जा सकता है। शूद्र वर्ण के शिल्पी मौर्यपूर्व काल की कृषि अर्थव्यवस्था के बहुत ही महत्वपूर्ण अग थे। धातुशिल्पी न केवल बढई और लोहारों के लिए कुल्हाडी, हथौडा, आरा और छेनी बनाते थे,[47] बल्कि खेती के लिए हल, कुदाल और इसी प्रकार के अन्य औजार भी तैयार करते थे [48] जिससे किसान शहर के निवासियों के लिए अतिरिक्त खाद्यान्न उपजाने में समर्थ हो सके। खुदाइयों से पता चलता है कि बौद्धकालीन किसान पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार में लोहे के हथियारों का प्रयोग पहले पहल बड़े पैमाने पर करने लगे। पालि ग्रथों में लोहे के बने फाल की चर्चा है जिससे खेती होती थी। दक्षिण बिहार में लोहे की सबसे बडी खानें है जिसके कारण लोहे के काम में शिल्पियों की बहुत जरूरत थी। नगर जीवन[49] और उन्नतिशील व्यापार एव वाणिज्य जो उत्तरपूर्व भारत में पहली बार इस युग में दिखाई पडते हैं, शिल्पियों द्वारा प्रचुर वस्तु उत्पादन के बिना सभव नहीं हो पाते। मुख्य नगरों में शिल्पियों का सघ होता था और उनके प्रधान का राजा से विशेष सबध रहता था।[50] कुछ शिल्पी तो राजा के घरेलू कामों में लगे रहते थे और इस तरह उन्हें राजा का सरक्षण प्राप्त था। *पाणिनि व्याकरण* की टीका के अनुसार इन्हें राजशिल्पी कहा जाता था इनमें राज नापित और राज कुलाल (कुभकार) का उल्लेख विशेष रूप से हुआ है।[51] इसकी पुष्टि बाद की एक जातक कथा से भी होती है जिसमें राज कुभकार और राज मालाकार की चर्चा आई है।[52] सेट्ठियों और गहपतियों से भी कुछ शिल्पी जुडे हुए थे। हमें पता चलता है कि एक सेट्ठी का अपना दर्जी (तुन्नकार) था जो उसके सरक्षण में रहता था और उसके घर का काम करता था।[53] गहपति के बुनकरों का भी उल्लेख हुआ है जो उसके लिए कपडे बुनते थे।[54] किंतु अधिकाश शिल्पी प्राय ऐसे मालिकों से सबद्ध नहीं थे स्वतत्र शिल्पियों के दृष्टात के रूप में बढइयों[55] और लोहारों[56] के गाँवों और नगरों में रहनेवाले शिल्पियों[57] का उदाहरण प्रस्तुत किया जा सकता है। सभवतया राजा शिल्पियों के प्रमुख को प्रश्रय देकर उनके माध्यम से शिल्पी ग्रामों पर अपना थोडा बहुत नियत्रण रखता था। जैसे हजार लोहारों के ग्राम का जेत्थक (प्रधान) राजा का प्रिय पात्र कहा गया है।[58] गाँवों में बिखरे हुए शिल्पी परिवार जो कृषकों की आवश्यकताओं की पूर्ति करते थे इस तरह के नियत्रण में नही थे। पाणिनि ने उन्हें ग्रामशिल्पिन् बताया है।[59] पाणिनि के अनुसार बढई दो प्रकार के होते थे, ग्रामतक्ष जो गाँव में अपने ग्राहक के घर जाकर रोजाना मजूरी लेकर काम करते थे और कौटतक्ष जो अपने घर पर ही रहकर काम करते थे।[60] वह स्वतत्र शिल्पी था जो किसी

का काम स्वीकार करके उसके हाथ बँधता नहीं था।[61] एक जातक गाथा में किसी भ्रमणशील लोहार का प्रसग आया है जो कहीं भी बुलाए जाने पर अपनी भाथी साथ लेकर चलता था।[62] शिल्पियों के अपने औजार होते थे और कुछ मामलों में तो उन्हें निर्माण सामग्री प्राप्त करने की स्वतत्रता थी। हमें ऐसे ब्राह्मण बढई का पता चलता है जो जगल से लकडी लाता था और गाडियाँ बनाकर अपना जीविकोपार्जन करता था।[63] कुम्भकार के साथ भी यही बात रही होगी, जिसे मिट्टी और जलावन मुफ्त मिल जाते थे। बुनकरों और धातुकर्म करनेवालों के साथ यह स्थिति नहीं थी। लेकिन ये शिल्पी जिन लोगों की सेवा करते थे वे उनके मालिक नहीं होते थे, जैसी स्थिति ग्रीस और रोम में थी। वहाँ दासों से शिल्पी का काम लिया जाता था[64] जो अपने मालिक की सेवा करते थे। सामान्य रूप में शिल्पियों पर राज्य का नियत्रण उन पर बेगार लगाने तक ही सीमित था। कर देने के बदले उन्हें महीने में एक दिन राजा का काम करना पडता था।[65] अन्यथा धर्मशास्त्रों से मालूम होता है कि जो शूद्र शिल्पियों और कारीगरों का काम करते थे, वे स्वतत्र व्यक्ति थे। उनके लिए ये व्यवसाय तब विहित थे, जब वे सेवा करके अपना जीवनयापन नहीं कर पाते थे।[66]

लेकिन शूद्र समुदाय का अधिकाश सभवतया कृषि कार्यों में ही लगा रहता था। धर्मसूत्रों के अनुसार कृषि वैश्यों का विषय था[67] जो स्वतत्र किसान थे और उपज का एक हिस्सा राज्य को कर के रूप में चुकाते थे।[68] किंतु इस तथ्य से कि शूद्रों को जमीन की मालगुजारी नही चुकानी पडती थी पता चलता है कि वे भूमिहीन मजदूर थे। *आपस्तंब* में कहा गया है कि शूद्र चरण पखारकर अपना गुजर बसर करते थे अत उन्हें करों से मुक्त कर दिया गया था।[69] इससे आभास होता है कि जो शूद्र दास नही थे, उन्हें कर चुकाना पडता था। पर इस विधिग्रथ की एक पुरानी पाडुलिपि में पादावनेक्ता शब्द का प्रयोग नही हुआ है[70] अत अनुमान किया जाता है कि शूद्रों को कर से मुक्त बताने का औचित्य सिद्ध करने के अभिप्राय से उक्त शब्द बाद में सन्निविष्ट कर दिया गया है। सामान्यतया शूद्रों के पास कोई कर योग्य भूसपत्ति नहीं थी, इसलिए अधिकाश लोगों को दूसरों की जमीन में काम करना पड़ता था। *मज्झिम निकाय* के एक परिच्छेद में चारों वर्णों के उपार्जन का वर्गीकरण प्रस्तुत किया गया है जिससे यह विषय सुस्पष्ट हो जाता है। इससे हमें पता चलता है कि ब्राह्मण अपना जीवनयापन भिक्षा से क्षत्रिय तीर-धनुष के प्रयोग से, वैश्य खेती गृहस्थी और पशुपालन से तथा शूद्र हँसिया से फसल काटकर और उसे अपने कधों पर बहँगा से ढोकर करता था।[71]

प्राचीन पालि ग्रथों के अन्य प्रसगों में खेत पर काम करनेवालों के रूप में शूद्रों की तो नहीं लेकिन दासों और कम्मकरों (भाड़े के मजदूर) की चर्चा है। इसमें सन्देह की गुजाइश

नहीं कि भूमिहीन शूद्र कम्मकर के रूप में काम करते थे। ऐसे भी प्रमाण मिले हैं कि अधिकांश दास शूद्र वर्ण के थे। यह निष्कर्ष 'सुद्दो वा सुद्द दासो वा' वाक्यखंड से निकाला जा सकता है, जिसका प्रयोग बुद्धदेव ने प्रथम तीन वर्णों की गणना कराने के बाद शूद्र की स्थिति स्पष्ट करने की दृष्टि से किया था।[72] 'सुद्द दासो वा' का अनुवाद 'किसी व्यक्ति का गुलाम' करना गलत होगा।[73] यह महत्वपूर्ण वाक्यखंड समानाधिकरण का स्पष्ट उदाहरण है और इसका तात्पर्य है शूद्र जो गुलाम हो। क्षत्रिय ब्राह्मण और सेट्ठी को छोड़कर, जिन्हें अन्यत्र गुलामों का मालिक बताया गया है, यहाँ शूद्रों को गुलामों का मालिक कैसे बताया गया, इसकी कोई व्याख्या नहीं। अतएव ओल्डेनबर्ग ने ठीक ही यह निष्कर्ष निकाला है कि प्रसंगाधीन विवरण शूद्र और दास में कोई अंतर नहीं करता है।[74] यह महत्वपूर्ण है कि शूद्रों को दास के साथ मिलाने का प्रयास सबसे पहले प्राचीन पालि ग्रंथ में किया गया था न कि धर्मसूत्रों में जिनसे यह निष्कर्ष परोक्ष रूप में ही निकाला जा सकता है। कहीं मौर्योत्तर काल में जाकर मनु ने स्पष्ट और जोरदार शब्दों में इस स्थिति का उल्लेख किया है।

दासता केवल शूद्र वर्ण के सदस्यों तक ही सीमित नहीं थी। यहाँ तक कि ग्रामभोजक (ग्राम मुखिया)[75], मंत्रीगण[76], ब्राह्मण, क्षत्रिय और उच्चकुल में उत्पन्न लोग भी इस स्थिति में पहुँच जाते थे।[77] किसी भी हालत में ऐसे लोगों की संख्या अधिक नहीं रही होगी। अधिकांश दास मजदूर शूद्र वर्ण के होते थे।[78] ऋण, क्षुधा, अपनी स्वयं की इच्छा और भय से उत्पन्न दासता[79] की उम्मीद उच्च वर्णों की अपेक्षा निम्न वर्णों से ही अधिक की जा सकती है। उदाहरणार्थ एक गाड़ीवान की कन्या इसिदासी अपने पिता द्वारा कर्ज न चुकाए जाने के कारण एक व्यापारी द्वारा दासी के रूप में घर लाई गई थी।[80] किंतु जातकों में कहीं यह उल्लेख नहीं है कि दास युद्ध में बंदी बनाए गए, जिससे पता चलता है कि इस अवधि में दासों की संख्या कम थी।[81]

कुछ दासों, खासकर महिलाओं, को घरेलू कार्यों में नियोजित किया जाता था[82] और अन्य लोग कृषि कार्य में लगाए जाते थे। दास और भाड़े के मजदूर खेतों के छोटे छोटे टुकड़ों में भी काम करते थे[83] किंतु प्रायः उन्हें बड़े बड़े भूखंडों में काम करना पड़ता था। उत्तर वैदिक युग में लोगों के पास उतनी ही जमीन थी जितनी वे अपने घर के सदस्यों की मेहनत से सँभाल सकते थे। पर अब गंगा के निचले मैदानों में लोहे के फाल के उपयोग के कारण बड़े बड़े खेत कायम हुए। एक एक घर के पास इतनी अधिक जमीन आ गई जिसे वह अपनी मेहनत से नहीं जोत सकता था। इसलिए पहले पहल बुद्धकालीन युग में सम्पन्न घरों को खेती चलाने के लिए दासों और कम्मकरों की आवश्यकता पड़ी। प्राचीन पालि ग्रंथों में कम से कम ऐसे दो उदाहरण हैं जिनसे पता चलता है कि मगध में दो

बडे बड़े प्रक्षेत्र (फार्म) थे, जिनमें से हर एक का क्षेत्रफल एक हजार करीसा (चिल्डर्स के अनुसार 8 000 एकड़ के करीब) था। [84] एक अन्य कृषिक्षेत्र कासी में था, जिसकी जुताई पाँच सौ हलों से होती थी। [85] इन सबके मालिक ब्राह्मण थे। एक ऐसा प्रसग भी आया है, जिसमें एक ग्राम व्यापारी ने शहर के एक सौदागर के पास पाँच सौ हल जमा किए जिससे प्रकट होता है कि या तो उसके पास बहुत बडी भूसपदा थी या वह फाल खरीदकर गाँवों में बेचा करता था। [86] हो सकता है कि पाँच सौ या हजार रूढ सख्याएँ हों, किंतु इनसे चकबदी की प्रवृत्ति का पता तो चलता ही है। यह प्रवृत्ति तब अपनी चरम सीमा पर पहुँच गई, जब मौर्यकाल में कृषि को राज्य के नियत्रण में ले लिया गया। स्पष्ट है कि बडे बडे प्रक्षेत्रों का काम पर्याप्त सख्या में दासों और कम्मकरों के बिना नहीं चल सकता था।

नियोजकों (मालिक) की तुलना में दासों और खेत मजदूरों की सख्या कितनी थी, इसका अदाज लगाना मुश्किल है। ऐटिका के मामले में भी जहाँ आँकडे मौजूद हैं, स्वतत्र व्यक्ति और दास की आबादी के अनुपात के सबध में मतैक्य होना कठिन है। [87] भारत में आँकडों के अभाव के कारण इस सबध में कोई निश्चित जानकारी पा सकना और भी कठिन है। दीघ के एक सुत्त में कहा गया है कि वैसे लोग बहुत कम हैं जो दास या दासियों को ग्रहण नहीं करना चाहते। [88] ब्राह्मण [89] क्षत्रिय [90] और सेट्ठि तथा गहपति [91] दासों और मजदूरों को नियोजित करते थे इससे यह ब्राह्मणीय सिद्धात परिलक्षित होता है कि शूद्र तीन उच्च वर्णों की सेवा के लिए थे। धर्मसूत्रों के अनुसार ब्राह्मण एक दास को बदलकर दूसरा दास रख सकता था, किंतु उसे बेच नहीं सकता था। [92] इन बातों से पता चलता है कि दासता बड़े पैमाने पर प्रचलित थी, किंतु किसी भी हालत में इसकी तुलना ऐटिका की स्थिति से नहीं की जा सकती है जहाँ ई. पू. पाँचवीं शताब्दी में दासों की सख्या कुल आबादी की एक तिहाई थी। [93]

धर्मसूत्रों से शूद्र वर्ण के रहन-सहन की स्थिति पर कुछ प्रकाश पडता है। गौतम ने कहा है कि शूद्र नौकर को चाहिए कि वह उच्च वर्ण के लोगों द्वारा उतार फेंके गए जूते छाते, वस्त्र और चटाई का इस्तेमाल करे। [94] जातक कथा से भी यही स्थिति प्रकट होती है। एक कथा में बताया गया है कि चूहे द्वारा काटकर चिथडे बनाए गए वस्त्र दासों और कम्मकरों के लिए होते थे। [95] गौतम ने तो यहाँ तक बताया है कि भोजन का उच्छिष्ट (जूठन) शूद्र नौकरों के लिए रखा जाता था। [96] *आपस्तब धर्मसूत्र* में छात्रों को यह उपदेश दिया गया है कि उनकी थाली में जो उच्छिष्ट रह जाए उसे या तो किसी अदीक्षित आर्य के निकट अथवा अपने गुरु के शूद्र नौकर के निकट रख दें। [97] इसका स्पष्ट अर्थ हुआ कि शूद्र नौकर को जूठन खाना पडता था। *हिरण्यकेशिन् गृह्यसूत्र* से भी यह बात

पर निर्धारित किया जाता था। कम्मकरों की तुलना में दास अपने मालिक की संपत्ति समझा जाता था[121] और उसे पैतृक संपत्ति मानकर उसका बँटवारा भी किया जा सकता था।[122] दासों की स्थिति सर्वथा गुलाम जैसी थी, यह उनके विभेदक चिह्न से प्रकट होता है। उनके सिर के बाल मुँडे रहते थे और उसमें एक चोटी रहती थी।[123] एक स्थान पर तो दासों के साथ कम्मकरों को भी सेट्ठि की संपत्ति माना गया है।[124] इससे पता चलता है कि भाड़े के मजदूरों को भी दास बनाने की प्रवृत्ति थी। एक जातक कथा में बताया गया है कि दास अपने मालिक के ही घर में रह जाते थे, किंतु कम्मकर संध्या होने पर अपने अपने निवासस्थान को चले जाते थे।[125] स्पष्ट है कि भाड़े के मजदूर का जीवन कभी कभी दास से अधिक कठिन हो जाता था।[126] उसकी जीविका उतनी सुरक्षित नहीं समझी जाती थी, जितनी दासों या स्थाई घरेलू नौकरों की थी। गौतम ने नियम बनाया है कि यदि शूद्र काम करने में अक्षम हो जाए, तो वह जिस आर्य के संरक्षण में रहा हो, उसे चाहिए कि उस शूद्र का भरण पोषण करे।[127] किंतु इस सिद्धांत के अनुरूप व्यवहार नहीं किया जाता था, क्योंकि एक गाथा में बताया गया है कि लोग असमर्थ (जीर्णावस्था प्राप्त) नौकरों को हथिनी की तरह निष्कासित कर देते थे।[128]

कम्मकर और भटक (मजदूर) में कुछ अंतर दिखाई पड़ता है।[129] *विनय पिटक* में कम्मकर को भटक कहा गया है, जो आहतक है। *पालि-इंगलिश डिक्शनरी* के निर्माताओं ने 'आहतक' शब्द का अर्थ 'पिटा हुआ' किया है। इसका आशय यह हुआ कि कम्मकर ऐसा कार्यकर्ता है, जिसे पीटा जा सकता है। यह अर्थ आश्चर्यजनक लगता है और दास के बारे में भी इस तरह का उल्लेख नहीं हुआ है। प्राय: 'आहतक' शब्द को संस्कृत शब्द 'आहत' का समानार्थी नहीं माना गया है[130] बल्कि उसे 'आहृत' शब्द से मिलाया गया है जिसका अर्थ होता है लिया हुआ, अधिकरण किया हुआ या लाया हुआ।[131] इससे संकेत मिलता है कि कम्मकर अपने मालिक से विशेष रूप में संबद्ध रहते थे। मालिक के कब्जे में आने का कारण प्राय: यह होता था कि वे या तो उसका कर्ज अदा नहीं कर पाते थे या उसकी जमीन पर बसे होते थे। उनकी स्थिति अर्द्धदास जैसी थी, जिसे कभी कभी संपत्ति भी समझ लिया जाता था। इस प्रकार ऐसे विचार के समर्थन में शायद ही कोई प्रमाण मिलता है कि मौर्यपूर्व काल में कम्मकर स्वतंत्र मजदूर थे जो अपने काम और मजदूरी के बारे में संविदा करते थे और विवाद उठ जाने पर उनकी मजूरी विशेषज्ञों द्वारा तय की जाती थी।[132] इस विचार से भृतक की स्थिति अधिक स्पष्ट होती है, जिसके साथ उसका मालिक गुलाम जैसा बर्ताव नहीं करता था। भृतक की जीविका मजूरी, अर्थात भृति पर चलती थी, जिसका उल्लेख पाणिनि ने सेवा की ... या केवल मजूरी के अर्थ में किया है।[133] मालूम होता है कि भृतक को एक खास अवधि के लिए मजूरी पर रखा जाता था।[134] एक प्राचीन जैन ग्रंथ के

अनुसार भृतक चार प्रकार के होते थे (1) दिवसभयग, जो दैनिक मजूरी पर काम करते थे (2) जात्तभयग जो यात्रा भर के लिए रखे जाते थे, (3) उच्चतभयग जो निर्णीत समय पर काम पूरा करने के ठेके पर नियोजित किए जाते थे, (4) कब्बालभयग (यथा, भूमि खोदनेवाले) जिन्हें किए गए काम के अनुपात में भुगतान किया जाता था ।[135] ठेके के मजदूर के रूप में कुछ शिल्पियों को भृतक नियुक्त किया गया होगा । बाद की एक जातक कथा में अनुवसित दास (अन्तनो पुरिस) जिससे अपने मालिक के धान के खेत की रखवाली करने को कहा जाता था और भृतक जिसे उसी काम के लिए वेतन मिलता था और जो फसल का नुकसान होने पर मुआवजा (प्रतिकर) चुकाने का भागी होता था —के बीच विभेद किया गया है ।[136] एक गाथा में बताया गया है कि पुरिस को हमेशा वैसे व्यक्ति के हित का काम करना चाहिए, जिसके घर में उसे भोजन मिलता है ।[137] दासकम्मकरपोरिस' वाक्य खड से बोध होता है कि अनुवसित दास या तो भाड़े के मजदूर के रूप में कार्य करते थे या गुलाम के रूप में और इन विभिन्न प्रकार के मजदूरों में बहुत अतर नहीं था ।[138]

मालिक और मजदूरों के पारस्परिक सबध स्थिर करनेवाले नियमों से हमें शूद्रों की आर्थिक स्थिति का कुछ आभास मिल सकता है । मौर्यों के पहले की अर्थव्यवस्था मूलतया कृषिप्रधान और पशुचारी थी । जमीन और पशुओं के असमान बँटवारे के कारण कुछ लोगों के पास जोत की जमीन अधिक थी, और इसके लिए उन्हें मजदूरों की जरूरत थी । इस प्रकार बड़े गहपतियों के पास पशु भी बहुत अधिक थे, जिनके लिए उन्हें चरवाहे की जरूरत थी । ऐसी अर्थव्यवस्था को चलाने के लिए पहले पहल मालिक और उसके कृषि मजदूर तथा चरवाहों के सबध के विषय में कानून बने । *आपस्तम्ब* में कहा गया है कि यदि खेतिहर मजदूर काम छोड दे तो उसे शारीरिक दड दिया जाना चाहिए ।[139] इसी प्रकार के दड का विधान उस चरवाहे के लिए भी किया गया है, जो पशुओं को पालना छोड दे ।[140] इस विधान में यह व्यवस्था है कि ऐसी स्थिति आने पर मवेशी किसी दूसरे चरवाहे को दे दिए जाएँ ।[141] यदि चरवाहे की लापरवाही से मवेशी को नुकसान पहुँचे तो इसके लिए वह जिम्मेदार ठहराया जाएगा ।[142] गौतम ने इन प्रावधानों का कोई उल्लेख नही किया है किंतु उनके नियमानुसार यदि किसी व्यक्ति के पशु से किसी को नुकसान पहुँचे तो यथास्थिति उसका चरवाहा अथवा स्वय मालिक जवाबदेह होगा ।[143] इनमें से किसी भी नियम बनानेवाले ने चरवाहे या कृषि मजदूरों के प्रति मालिक के दायित्व की चर्चा नही की है । इस प्रकार ये मजदूर अपने मालिकों की अपेक्षा अलाभकर स्थिति में थे ।

धर्मसूत्रों द्वारा शूद्रों पर जो आर्थिक अशक्तताएँ लादी गई है, वे शूद्रों की आर्थिक स्थिति पर और भी अधिक प्रकाश डालते है । राजा ने महीने में एक दिन की अनिवार्य सेवा

प्रदान करने का जो भार शिल्पियों पर सौंप रखा था उसकी भी चर्चा आई है। गौतम का कथन है कि कन्या के विवाह का खर्च वहन करने के लिए और शास्त्रविहित किसी धार्मिक अनुष्ठान के लिए कोई व्यक्ति शूद्र से छल या बल का प्रयोग करके रुपया ले सकता है।[144] वैश्य क्षत्रिय और प्राय ब्राह्मण वर्ग के जो लोग, अपने अपने वर्ण, धर्म और आचार से च्युत हों उनके साथ भी सामाजिक हैसियत के क्रम से, इस तरह का व्यवहार किया जा सकता था। किंतु यह तभी किया जा सकता था जब शूद्र उपलब्ध नहीं हों।[145] यह नियम, जिसके अधीन उच्च वर्ग के लोगों को शूद्र वर्ण से धन ऐंठने की अनुमति दी गई है किसी अन्य धर्मसूत्र में नहीं मिलता। हाँ *मनुस्मृति* में इसके समानातर व्यवस्था दिखाई पडती है।[146] हो सकता है कि इस तथ्य का समावेश बाद में किया गया हो जिससे ब्राह्मण मतावलंबियों की इस धारणा का आभास मिलता है कि शूद्र का भरपूर शोषण किया जाना चाहिए।

उत्तराधिकार विधि में शूद्र पत्नी से उत्पन्न पुत्र के हिस्से के बारे में विभेदपूर्ण प्रावधान किए गए हैं। बौधायन के अनुसार विभिन्न वर्णों की पत्नियों से संतान रहने पर चार हिस्से ब्राह्मण को तीन क्षत्रिय को दो वैश्य को और एक शूद्र के बेटे को मिलेगा।[147] वसिष्ठ ने तो ऐसी स्थिति रहने पर मात्र तीन उच्चवर्णों के पुत्रों को हिस्सा देने की व्यवस्था की है और शूद्र पुत्र को छोड दिया है।[148] उन्होंने दूसरों के मत का उद्धरण दिया है, जिसमें बताया गया है कि शूद्र पुत्र परिवार का सदस्य माना जा सकता है, किंतु उत्तराधिकारी नही।[149] यह ऐसा नियम है जिसे बौधायन ने[150] ऐसे निषाद तक ही सीमित रखा है जिसका पिता ब्राह्मण और माता शूद्र हो।[151] गौतम ने ब्राह्मण के शूद्रपुत्र को उत्तराधिकार से वंचित करने का समर्थन बडे ही स्पष्ट और जोरदार शब्दों में किया है। उनका मत है कि यदि कोई ब्राह्मण निस्संतान मर जाए, और उसे शूद्र पत्नी से उत्पन्न पुत्र हो तो वह कितना भी आज्ञाकारी क्यों न हो अपने मृत पिता की संपत्ति में से मात्र खोरिस योग्य राशि ही पाएगा।[152] इससे प्रकट होता है कि धर्मसूत्र के लेखकों में से केवल बौधायन ने ब्राह्मण के शूद्र बेटे के लिए हिस्से का प्रबंध किया है वसिष्ठ और गौतम तो इसके विरोधी ही रहे हैं। संभव है कि बौधायन में उदारता इसलिए रही हो कि उनका संबंध दक्षिण भारत से था जहाँ ब्राह्मणवाद की जडें बहुत गहराई तक नहीं पहुँच पाई थी। इतना ही नहीं ऊपर जिन नियमों की चर्चा आई है उनसे पता चलता है कि वे केवल ब्राह्मण के शूद्रपुत्र के लिए थे। यह स्पष्ट नही होता कि उत्तराधिकार के ये नियम क्षत्रिय और वैश्य के शूद्रपुत्र पर भी लागू थे या नहीं यद्यपि संभावना इसी बात की है कि वैसे ही नियम लागू होंगे। इस तरह का कोई भी समर्थक साक्ष्य नही है जिसके आधार पर जाना जा सके कि नियम वस्तुत किस रूप में लागू थे। जो भी हो इन नियमों का प्रभाव बहुत कम शूद्रों पर ही पड़ा क्योंकि उच्च

वर्ण के लोगों के साथ शूद्र महिला के विवाह का प्रचलन बड़े पैमाने पर नहीं था।

मौर्य पूर्व काल में शूद्र की सामान्य आर्थिक स्थिति का विश्लेषण करने में सेवि वर्ग के रूप में उनकी विशेषता पर खासतौर से ध्यान देना होगा जिसकी चर्चा प्रथमत इस अवधि में स्पष्ट रूप में की गई है। सेवा कार्य के चलते इस वर्ण में सजातीयता का बोध हुआ जो विजातीयता के भाव से प्रभावित थे। सेवि वर्ग के सदस्य के रूप में, वैश्य किसानों के साथ [153] शूद्र मुख्य उत्पादकों का कार्य करते थे, जिससे समाज के विकास की नींव सुदृढ होती थी। कृषि मजदूरों के रूप में उन्होंने कोशल और मगध के घने जगलवाले क्षेत्रों को कृषियोग्य बनाने में सहायता पहुँचाई। इन क्षेत्रों के बारे में ग्रथों [154] में बताया गया है कि वे छोटे और बड़े टुकडों में बँटे थे, जिनमें दास और मजदूर खेती करते थे। आगे चलकर हम पाएँगे कि कौटिल्य ने यह नीति निर्धारित की थी कि नई बस्तियों में परती जमीन को आबाद करने के लिए शूद्र मजदूर लगाए जाएँ। इनके अतिरिक्त शिल्पियों के रूप में शूद्रों ने शिल्पविज्ञान के विकास में योगदान दिया और बिक्री योग्य बहुत सी सामग्रियाँ बनाईं। इनके चलते कई नगर बस गए, जहाँ वाणिज्य और व्यापार होते थे।

किंतु उच्च वर्ण के लोग जो शूद्रों के नियोजक भी थे जिस ढग का जीवन व्यतीत करते थे, वैसा जीवन शूद्र नहीं बिता सकते थे। पालि ग्रथों में खत्तिय ब्राह्मण और गहपति को महासाल [155] कहा गया है जिससे प्रकट होता है कि दास पेस्स कम्मकर, पुरिस और भटक उतने सुखी नहीं थे। सभव है कुछ धनी शूद्र शिल्पी उन्नतिशील गहपति रहे हों किंतु उस समय की अर्थव्यवस्था कृषिप्रधान थी और अधिकाश जमीन ब्राह्मणों क्षत्रियों [156] तथा सेट्ठियों [157] के कब्जे में थी। अत अधिक शूद्रों को मजूरी पर ही जीवन बिताना पडता था और इस मजूरी की दर तय करने में उनका कोई हाथ नहीं रहता था। कहा गया है कि सुखी किसान या हस्तशिल्पी जिनके पास अपनी जमीन थी, [158] काफी बडी सख्या में थे। यह बात वैश्य या गहपति वर्ग के सबध में भले ही लागू होती हो किंतु शूद्रों पर लागू नहीं होती क्योंकि वे दूसरों के खेतों में काम करके अपना निर्वाह करते थे। उनकी यह स्थिति केवल उनके जन्म के चलते नहीं बल्कि गरीब परिवारों में जन्म लेने के चलते हुई थी। ब्राह्मणों की श्रेष्ठता के दावे को झुठलाने के लिए बौद्धों के तर्कसग्रह में इस विषय पर स्पष्ट रूप से प्रकाश डाला गया है। कहा गया है कि यदि कोई शूद्र धनी बन जाए तो वह अपने सेवक के रूप में न केवल दूसरे शूद्र को बल्कि क्षत्रिय, ब्राह्मण या वैश्य को भी नियुक्त कर सकता है। [159] सामान्यतया ऐसे मामलों में किसी व्यक्ति की हीन सामाजिक अवस्था और उसकी सपन्न आर्थिक स्थिति के बीच असमानता तभी दूर की जा सकती है जब समाज में उसे ऊँचा स्थान दिया जाए। बाद में ब्राह्मणों ने इस नीति का अनुसरण किया और वे बाहरी शासकों को क्षत्रिय मानने लगे। इसलिए सभव है कि जो शूद्र सुखी सपन्न थे उन्हें

समाज में ऊँचा स्थान दे दिया गया हो।

उत्पादनकर्ता के रूप में शूद्रों की स्थिति तत्कालीन ग्रीक नगरों के दासों और गुलामों की स्थिति से मिलती जुलती है। सिद्धांतत जिस प्रकार ग्रीक नागरिक अपनी गुलाम जनता से सेवा का दावा कर सकते थे, उसी प्रकार भारतीय द्विज और आर्य भी शूद्रों की श्रमशक्ति का दावा करते थे। समाज में श्रमशोषण की व्यवस्था को कायम करने के लिए प्राचीन ग्रीस में नागरिकता के आधार पर समाज का गठन किया गया। नागरिकों को सामाजिक और राजनीतिक अधिकार सौंपे गए और अनागरिकों से, जिनमें दासों की सख्या अधिक थी ये सारे अधिकार छीन लिए गए। वे केवल अपनी श्रमशक्ति से नागरिकों की सेवा करते थे। इस प्रकार एक तरह से शूद्रों की तुलना यूनान के दासों से की जा सकती है। किंतु कई दृष्टियों से शूद्रों की आर्थिक स्थिति भिन्न थी। न तो शूद्र कृषि मजदूर और न शूद्र शिल्पी उस रूप में अपने मालिकों की कृपा पर पूर्णतया निर्भर थे जिस रूप में ग्रीक और रोम के दास अपने मालिकों पर निर्भर रहते थे। शूद्र के पास सपत्ति थी और यह स्थिति ग्रीस के दासों की स्थिति से भिन्न थी।[160] सपत्ति इतनी अधिक नहीं थी कि उस पर कर लगाया जाए फिर भी उस पर कुछ दायित्व तो रहता ही था। कानून के द्वारा उस पर यह दायित्व आरोपित किया गया था कि यदि उसका मालिक जो उच्च वर्ण का होता था, दुर्दिन में पड जाए तो वह अपनी बचत से उसका भरण पोषण करे।[161] यह भी निर्धारित किया गया था कि *वैश्य और शूद्र को चाहिए कि अपनी सपत्ति से मालिक के दुख दूर करे।*[162] दासभोग शब्द का प्रयोग बताता है कि दास भी सपत्ति के मालिक होते थे[163] हालाँकि सपत्ति रखने के लिए उनके मालिक की सम्मति अपेक्षित रही होगी। प्राय इन्हीं विभेदों के चलते वर्णव्यवस्था जो श्रम के मुख्य स्रोत के रूप में शूद्र वर्ग पर ही प्रधानतया निर्भर थी दासता की अपेक्षा उत्पादन का बहुत ही उपयोगी साधन साबित हुई। यद्यपि यह व्यवस्था ग्रीस की आबादी और क्षेत्र की अपेक्षा अधिक विशाल क्षेत्र और जनसख्या में प्रचलित थी फिर भी यह कभी आवश्यक नही मालूम हुआ कि शूद्रों से उन्ही स्थितियों में काम कराया जाए जिनमें दास या गुलाम काम करते थे।

इस काल में शूद्रों की राजनीतिक और कानूनी स्थिति उनकी आर्थिक स्थिति के प्रतिरूप मालूम होती है। उत्तर वैदिककालीन राज्यव्यवस्था में उनका स्थान महत्वपूर्ण था लेकिन अब राजनीतिक सगठन में उनका कोई स्थान नही रह गया। आपस्तब के अनुसार राजा गाँवों और शहरों के प्रभारी अधिकारियों के रूप में केवल आर्यों अर्थात प्रथम तीन वर्णों के सदस्यों की ही नियुक्ति कर सकता था।[164] उनके अधीन काम करनेवाले निचली पक्ति के अधिकारियों के लिए भी उसी प्रकार की योग्यता अपेक्षित थी।[165]

आपस्तब में कहा गया है कि राजा का दरबार शुद्ध और विश्वासी आर्यों से सुशोभित

रहना चाहिए जो राजा के पार्षद और न्यायाधीश के रूप मे काम करेंगे ।[166] इन प्रसगों में आर्य शब्द का अर्थ माना गया है प्रथम तीन वर्णों का सदस्य, और यह ठीक भी है ।[167] किसी भी शूद्र को मात्र इस अर्थ में आर्य समझा जाता था कि पुन जन्म ले सकता है ।[168] किंतु यह सोचना गलत है कि इस काल में भी आर्य शब्द का प्रयोग जातीय भेदभाव का संकेत करता है ।[169] यही कारण है कि पाणिनि[170] में आर्य कृत शब्द का अर्थ स्पष्ट रूप में ऐसा व्यक्ति किया गया है जो मुक्त कर दिया गया हो ।[171] एक बौद्ध ग्रथ में उल्लिखित है कि कम्बोजों और यवनों के बीच आर्य दास और दास आर्य बन जाते हैं।[172] इससे स्पष्ट सकेत मिलता है कि दास गुलाम की स्थिति में थे और उनकी तुलना में आर्य स्वतत्र थे । इसलिए आर्य और शूद्र में राजनीतिक विभेद उसी प्रकार का मालूम होता है जैसा ग्रीस और रोम में नागरिकों और उनसे भिन्न लोगों के बीच व्याप्त था । चूँकि शूद्र को पराधीन माना जाता था, इसलिए उसे प्रशासन सबधी कार्य में लगाना उचित नही समझा गया । इससे प्रकट होता है कि उस समय में निम्न वर्ग के लोगों का राजकाज में कोई प्रभाव नही था । एक जैन ग्रथ में ऐसे विभिन्न कोटियों के क्षत्रियों और ब्राह्मणों का उल्लेख हुआ है जो राजा की सभा में भाग लेते थे, किंतु उसमें गहपतियों (अर्थात वैश्यों)या शूद्रों की कही कोई चर्चा नहीं की गई है ।[173] यद्यपि पालि ग्रथों के अनुसार सेट्ठियों को प्रशासन सबधी कुछ कार्य दिए गए होंगे क्योंकि वे राजा से सेट्ठिछत्त पाते थे[174] फिर भी ऐसा जान पडता है कि वैश्यों को भी सामान्यतया पार्षद नियुक्त नही किया जाता होगा । एक जातक कथा से हमें यह जानकारी मिलती है कि एक दर्जी के बेटे को भाडागारिक नियुक्त किया गया था,[175] किंतु ऐसे दृष्टात तो बहुत कम ही मिलते हैं ।

कहा जाता है कि इस काल के अत्यत शक्तिसपन्न राजवंशों में से एक वश शूद्र उत्पत्ति का था और शूद्रों ने निचली गगा घाटी में सर्वोच्च सत्ता प्राप्त कर रखी थी ।[176] ये विवरण केवल इसी हद तक वास्तविक माने जा सकते हैं कि ये नद शासकों को हीन कुल का बताते है । उनका यह अर्थ नहीं लगाया जाना चाहिए कि राजनीतिक सत्ता शूद्र समुदाय के हाथ में चली गई, क्योंकि कोई भी ऐसे तथ्य नही है जो प्रमाणित कर सकें कि नद वश के उत्थान से शूद्रों की राजनीतिक अशक्तताएँ समाप्त हो गई ।

जहाँ तक इस काल के गणतत्रीय शासन में उनकी भूमिका का प्रश्न है, यह ठीक ही बताया गया है कि 'सघगण की शासिका सभा पर क्षत्रिय अभिजात वर्ग का दबदबा था और इसे समाज में ब्राह्मणों और गहपतियों से भी उच्च स्थान प्राप्त था फिर निम्नवर्गीय लोगों के विषय में तो कुछ कहना ही नहीं'।[177] *गौतम धर्मसूत्र* के एक परिच्छेद के आधार पर जायसवाल ने बताया है कि शूद्र (नगर या राजधानी के) पौर का सदस्य हो सकता था । यह ऐसा निकाय होता था जिससे राजा परामर्श लेता था ।[178] यदि हम यह मान लें कि पौर एक

नियमित निकाय था, तो शूद्र के संबंध में जायसवाल के विचार की मस्करिन् की टीका से पुष्टि नहीं होती, क्योंकि उन्होंने पौर की व्याख्या 'समानस्थानवासी' (एक जगह रहनेवाले) के रूप में की है।[179]

जहाँ तक विधि न्यायालयों में गवाहों के रूप में उपस्थित होने का प्रश्न है, बौधायन ने कुछ अपवादों को छोड़कर सभी वर्णों के सदस्यों को यह विशेषाधिकार दिया है।[180] उन्होंने उच्च वर्णों के विरुद्ध चल रहे मुकदमे में गवाही देने से शूद्र को वंचित नहीं किया है। यह ऐसा उपबंध है जो वसिष्ठ के विधि ग्रंथ में भी दिखाई पड़ता है।[181] गौतम ने बताया है कि शूद्रों को गवाही देने के लिए बुलाया जा सकता है, पर टीकाकारों की राय है कि ऐसा तभी हो सकता था जब अपेक्षित योग्यतावाले द्विज उपलब्ध न हों।[182] यह स्पष्ट नहीं कि इसका संबंध द्विज के मुकदमों में इनकी गवाही से है या उनके अपने मुकदमे में। प्राय: इसका संबंध पूर्ववर्ती स्थिति से है। किंतु वसिष्ठ ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि एक ही वर्ण के द्विज अपने वर्ण के लिए, भद्र शूद्र भद्र शूद्रों के लिए, और निम्न कुल में उत्पन्न लोग वैसे ही लोगों के लिए गवाही दे सकते हैं।[183] भद्र शूद्र वे लोग थे जो अपने कर्त्तव्यों के संबंध में ब्राह्मण ग्रंथों के उपदेशों का अनुसरण कड़ाई से करते थे। इससे पता चलता है कि भद्र शूद्रों के मुकदमे में अभद्र शूद्रों को गवाही के रूप में स्वीकार नहीं किया जाता था। इस प्रकार धर्मसूत्रों के बाद के लेखक, अर्थात गौतम और वसिष्ठ में यह प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है कि उच्च वर्णों के मुकदमे में शूद्र को गवाह नहीं रखा जाए। यह पता लगाने का कोई साधन नहीं कि इस प्रकार का भेदभाव रखा जाता था, किंतु यह वर्ण विधान की भावनाओं के अनुकूल है, जिससे धर्मसूत्र भी प्रभावित थे। फिर भी, यह ध्यान देने योग्य है कि इस काल में ग्रीस में दासों के बयान के लिए उनके तलवों पर बेंत लगाकर और अन्य यातनाएँ देकर प्रश्न पूछे जाते थे।[184] धर्मसूत्रों में अपराध स्वीकार कराने के लिए ऐसे निष्ठुर कार्य विहित नहीं किए गए हैं।

गौतम ने बताया है कि विभिन्न जातियों के सदस्यों और कृषकों, व्यापारियों, पशुपालकों, महाजनों तथा शिल्पियों के संघ अपने अपने कार्य की व्यवस्था अपने रिवाजों के अनुसार करते थे, परंतु शर्त यह थी कि ऐसे रिवाज धर्मसंबंधी नियमों का उल्लंघन न करते हों।[185] दूसरे शब्दों में, शूद्रों के वे वर्ग, जो शिल्पों या जातियों के आधार पर संघबद्ध थे, अपने आंतरिक कार्यों को सँभालने के लिए निजी नियमों का अनुसरण कर सकते थे। किंतु जब अन्य वर्णों के सदस्यों के साथ उनका दीवानी या फौजदारी मामला अंतर्ग्रस्त हो जाता था, तब वे कानूनी भेदभावों के शिकार हो जाते थे। पहले बताया जा चुका है कि दीवानी कानून के अंतर्गत ब्राह्मण पिता का शूद्र पुत्र उत्तराधिकार के आधार पर या तो मामूली हिस्सा पाने अथवा कोई भी हिस्सा पाने का हकदार नहीं था।[186]

फौजदारी मामलों में भी धर्मसूत्रों ने विधित शूद्रों को समानता नहीं प्रदान की है। गौतम के विधान के अनुसार यदि कोई ब्राह्मण किसी क्षत्रिय या वैश्य को गाली दे तो उसे जुर्माना चुकाना पड़ेगा, किंतु यदि वह शूद्रों को गाली दे तो उसे कोई भी सजा नहीं मिलेगी।[187] यदि शूद्र किसी द्विज की निंदा जान बूझकर आपराधिक शब्दों में करे या उस पर आपराधिक ढंग से प्रहार करे तो वह उस अंग के विच्छेदन का भागी होता था जिससे उसने अपराध किया हो।[188] *आपस्तंब* में तो रूखे, साफ शब्दों में कहा है कि यदि शूद्र किसी आचारवान आर्य को गाली दे तो उसकी जीभ काट ली जाए।[189] सम्भ्रांत लोगों को गालियाँ देने और झूठ बोलने के पाप के लिए विहित किए गए प्रायश्चित में भी शूद्रों के प्रति भेद भाव रखा गया है। ऐसी स्थिति में शूद्र को सात दिन तक उपवास करने का विधान किया गया है,[190] जबकि प्रथम तीन वर्णों के सदस्यों को केवल दूध, तीखे मसाले और नमक से तीन दिनों तक परहेज करने को कहा गया है।[191] अंत में *आपस्तंब* और *गौतम धर्मसूत्र* दोनों ही ने विहित किया है कि यदि बातचीत करने में या बैठने लेटने अथवा सड़क पर चलने में शूद्र किसी द्विज की बराबरी करे तो उसे कोड़े से पीटा जाना चाहिए।[192]

परस्त्रीगमन संबंधी विधियों में शूद्रों के लिए बहुत कठोर दंड की व्यवस्था की गई है। *आपस्तंब* में कहा गया है कि यदि कोई शूद्र किसी आर्य, अर्थात प्रथम तीन वर्ण की किसी स्त्री के साथ व्यभिचार करे तो उसकी हत्या कर दी जानी चाहिए,[193] और यदि उस संभोग के फलस्वरूप कोई संतान उत्पन्न न हो तो प्रायश्चित करवाकर उस स्त्री को पवित्र बना लिया जा सकता है।[194] पर उसी ग्रंथ में यह भी लिखा है कि यदि कोई आर्य किसी शूद्र स्त्री के साथ वैसा ही अपराध करे तो उसे निर्वासित कर देना चाहिए।[195] चोरी के मामले में गौतम के नियम के अधीन शूद्र के लिए मामूली जुर्माना विहित किया गया है पर किसी उच्च वर्ण का अपराधी होने की दशा में जुर्माने की राशि बढ़ा दी गई। इस प्रकार यदि किसी की संपत्ति चुराने के लिए शूद्र को संपत्ति का आठ गुना मूल्य चुकाना पड़ता था तो ब्राह्मण के लिए चौंसठ गुना चुकाना विहित था।[196] यद्यपि यह कहा जा सकता है कि शूद्र अधिक जुर्माना चुकाने में असमर्थ थे, फिर भी नियम में यह परिकल्पना की गई है कि उच्च वर्णों के सदस्यों का आचरण भी ऊँचे दर्जे का होना चाहिए और उनसे यह उम्मीद नहीं की जानी चाहिए कि वे चोरी करेंगे। यह बात उस उपबंध के अनुकूल है जिसमें विहित किया गया है कि जिस अधिकारी का प्रमुख कार्य चोरी से रक्षा करना हो उसके पद पर केवल प्रथम तीन वर्णों के सदस्यों को ही नियुक्त किया जाना चाहिए।[197]

जहाँ तक इन आपराधिक कानूनों के लागू होने का प्रश्न है *मज्झिम निकाय* के एक परिच्छेद में कहा गया है कि परस्त्रीगमन और चोरी के मामलों में अपराधी के लिए एक ही

निगमित निकाय था, तो शूद्र के संबंध में जायसवाल के विचार की मस्करिन् की टीका से पुष्टि नहीं होती क्योंकि उन्होंने पौर की व्याख्या 'समानस्थानवासी' (एक जगह रहनेवाले) के रूप में की है।[179]

जहाँ तक विधि न्यायालयों में गवाहों के रूप में उपस्थित होने का प्रश्न है बौधायन ने कुछ अपवादों को छोड़कर सभी वर्णों के सदस्यों को यह विशेषाधिकार दिया है।[180] उन्होंने उच्च वर्णों के विरुद्ध चल रहे मुकदमे में गवाही देने से शूद्र को वंचित नहीं किया है। यह ऐसा उपबंध है जो वसिष्ठ के विधि ग्रंथ में भी दिखाई पड़ता है।[181] गौतम ने बताया है कि शूद्रों को गवाही देने के लिए बुलाया जा सकता है, पर टीकाकारों की राय है कि ऐसा तभी हो सकता था जब अपेक्षित योग्यतावाले द्विज उपलब्ध न हों।[182] यह स्पष्ट नहीं कि इसका संबंध द्विज के मुकदमों में इनकी गवाही से है या उनके अपने मुकदमे में। प्रायः इसका संबंध पूर्ववर्ती स्थिति से है। किंतु वसिष्ठ ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि एक ही वर्ण के द्विज अपने वर्ण के लिए भद्र शूद्र भद्र शूद्रों के लिए और निम्न कुल में उत्पन्न लोग वैसे ही लोगों के लिए गवाही दे सकते है।[183] भद्र शूद्र वे लोग थे जो अपने कर्तव्यों के संबंध में ब्राह्मण ग्रंथों के उपदेशों का अनुसरण कड़ाई से करते थे। इससे पता चलता है कि भद्र शूद्रों के मुकदमे में अभद्र शूद्रों को गवाही के रूप में स्वीकार नहीं किया जाता था। इस प्रकार धर्मसूत्रों के बाद के लेखक अर्थात गौतम और वसिष्ठ में यह प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है कि उच्च वर्णों के मुकदमे मे शूद्र को गवाह नहीं रखा जाए। यह पता लगाने का कोई साधन नहीं कि इस प्रकार का भेदभाव रखा जाता था किंतु यह वर्ण विधान की भावनाओं के अनुकूल है जिससे धर्मसूत्र भी प्रभावित थे। फिर भी यह ध्यान देने योग्य है कि इस काल में ग्रीस में दासों के बयान के लिए उनके तलवों पर बेंत लगाकर ओर अन्य यातनाएँ देकर प्रश्न पूछे जाते थे।[184] धर्मसूत्रों में अपराध स्वीकार कराने के लिए ऐसे निष्ठुर कार्य विहित नहीं किए गए हैं।

गौतम ने बताया है कि विभिन्न जातियों के सदस्यों और कृषकों व्यापारियों पशुपालकों महाजनों तथा शिल्पियों के संघ अपने अपने कार्य की व्यवस्था अपने रिवाजों के अनुसार करते थे परंतु शर्त यह थी कि ऐसे रिवाज धर्मसंबंधी नियमों का उल्लंघन न करते हों।[185] दूसरे शब्दों में, शूद्रों के वे वर्ग जो शिल्पों या जातियों के आधार पर संघबद्ध थे अपने आंतरिक कार्यों को सँभालने के लिए निजी नियमों का अनुसरण कर सकते थे। किंतु जब अन्य वर्णों के सदस्यों के साथ उनका दीवानी या फौजदारी मामला अंतर्ग्रस्त हो जाता था तब वे कानूनी भेदभावों के शिकार हो जाते थे। पहले बताया जा चुका है कि दीवानी कानून के अंतर्गत ब्राह्मण पिता का शूद्र पुत्र उत्तराधिकार के आधार पर या तो मामूली हिस्सा पाने अथवा कोई भी हिस्सा पाने का हकदार नहीं था।[186]

फौजदारी मामलों में भी धर्मसूत्रों ने विधित शूद्रों को समानता नहीं प्रदान की है। गौतम के विधान के अनुसार यदि कोई ब्राह्मण किसी क्षत्रिय या वैश्य को गाली दे तो उसे जुर्माना चुकाना पड़ेगा किंतु यदि वह शूद्र को गाली दे तो उसे कोई भी सजा नहीं मिलेगी।[187] यदि शूद्र किसी द्विज की निंदा जान बूझकर आपराधिक शब्दों में करे या उस पर आपराधिक ढंग से प्रहार करे तो वह उस अंग के विच्छेदन का भागी होता था जिससे उसने अपराध किया हो।[188] *आपस्तंब* में तो रूखे, साफ शब्दों में कहा है कि यदि शूद्र किसी आचारवान आर्य को गाली दे तो उसकी जीभ काट ली जाए।[189] सभ्रांत लोगों को गालियाँ देने और झूठ बोलने के पाप के लिए विहित किए गए प्रायश्चित में भी शूद्रों के प्रति भेद भाव रखा गया है। ऐसी स्थिति में शूद्र को सात दिन तक उपवास करने का विधान किया गया है[190] जबकि प्रथम तीन वर्णों के सदस्यों को केवल दूध, तीखे मसाले और नमक से तीन दिनों तक परहेज करने को कहा गया है।[191] अंत में *आपस्तंब* और *गौतम धर्मसूत्र* दोनों ही ने विहित किया है कि यदि बातचीत करने में या बैठने लेटने अथवा सड़क पर चलने में शूद्र किसी द्विज की बराबरी करे तो उसे कोड़े से पीटा जाना चाहिए।[192]

परस्त्रीगमन संबंधी विधियों में शूद्रों के लिए बहुत कठोर दंड की व्यवस्था की गई है। *आपस्तंब* में कहा गया है कि यदि कोई शूद्र किसी आर्य अर्थात प्रथम तीन वर्ण की किसी स्त्री के साथ व्यभिचार करे तो उसकी हत्या कर दी जानी चाहिए[193] और यदि उस संभोग के फलस्वरूप कोई संतान उत्पन्न न हो तो प्रायश्चित करवाकर उस स्त्री को पवित्र बना लिया जा सकता है।[194] पर उसी ग्रंथ में यह भी लिखा है कि यदि कोई आर्य किसी शूद्र स्त्री के साथ वैसा ही अपराध करे तो उसे निर्वासित कर देना चाहिए।[195] चोरी के मामले में गौतम के नियम के अधीन शूद्र के लिए मामूली जुर्माना विहित किया गया है पर किसी उच्च वर्ण का अपराधी होने की दशा में जुर्माने की राशि बढ़ा दी गई। इस प्रकार यदि किसी की संपत्ति चुराने के लिए शूद्र को संपत्ति का आठ गुना मूल्य चुकाना पड़ता था तो ब्राह्मण के लिए चौंसठ गुना चुकाना विहित था।[196] यद्यपि यह कहा जा सकता है कि शूद्र अधिक जुर्माना चुकाने में असमर्थ थे, फिर भी नियम में यह परिकल्पना की गई है कि उच्च वर्णों के सदस्यों का आचरण भी ऊँचे दर्जे का होना चाहिए और उनसे यह उम्मीद नहीं की जानी चाहिए कि वे चोरी करेंगे। यह बात उस उपबंध के अनुरूप है जिसमें विहित किया गया है कि जिस अधिकारी का प्रमुख कार्य चोरी से रक्षा करना हो उसके पद पर केवल प्रथम तीन वर्णों के सदस्यों को ही नियुक्त किया जाना चाहिए।[197]

जहाँ तक इन आपराधिक कानूनों के लागू होने का प्रश्न है *मज्झिम निकाय* के एक परिच्छेद में कहा गया है कि परस्त्रीगमन और चोरी के मामलों में अपराधी के लिए एक ही

प्रकार का दंड विहित है, चाहे वह किसी भी वर्ण का क्यों न हो।[198] अतः धर्मसूत्रों में इससे संबंधित विभेदक नियमों पर बहुत गंभीरता से विचार करना आवश्यक नहीं है। किंतु ब्राह्मणेतर ग्रंथों से प्रकट होता है कि अपराध करनेवाले दासों, कम्मकरों और अन्य श्रमिक वर्गों को उनके मालिक शारीरिक दंड देते थे। पीटने के भी दो उदाहरण मिलते हैं, जो दासियों के संबंध में हैं।[199] एक में कार्य की उपेक्षा का अपराध है,[200] और दूसरे में बताया गया है कि दासी ने अपनी मजूरी अपने मालिक को नहीं लौटाई।[201] यद्यपि एक ऐसे दास का वर्णन मिलता है जिसे दुलार प्यार मिलता था और लिखना तथा हस्तशिल्प सीखने की अनुमति भी दी गई थी, फिर भी उसे निरंतर यह भय बना रहता था कि छोटी सी भी गलती होने पर वह पिटाई, कारावास, दागे जाने और दास का भोजन खाने का पात्र माना जा सकता है।[202]

शारीरिक दंड केवल दासों तक ही जो स्वाधीन नहीं थे, सीमित नहीं था। इनके साथ बौद्ध कथोपकथन में अधिकतर पेस्सों और कम्मकरों का वर्णन इस रूप में किया गया है कि वे कोड़ों की मार से पीड़ित और भयभीत होकर आँसू बहाते हुए राजा का काम करते थे।[203] जैन ग्रंथ के एक ऐसे ही उदाहरण से हमें पता चलता है कि प्रेष्यों (दूत या नौकर) को छड़ी मार-मारकर काम करने के लिए कहा जाता था।[204] जब निर्दोष कामगारों के साथ ऐसा व्यवहार किया जाता था, तब अपराधियों की स्थिति कैसे अच्छी रही होगी? *सूयगडंग* के निम्नलिखित परिच्छेद का विषय ही यह है कि श्रमजीवियों के छोटे से छोटे अपराध के लिए भी उन्हें अत्यंत कठोर दंड दिए जाते थे: 'कोई भी व्यक्ति (समय समय पर) घरेलू नौकरों अर्थात दास या दूत या वेतनभोगी नौकर या अधीनस्थ (भागिल्लभागिक)[205] अथवा आश्रितों को छोटे मोटे अपराध के लिए भी कठोर दंड दे सकेगा: अर्थात उसके बाल नोचेगा, उसे पीटेगा या लोहे के शिकंजों और बेड़ियों में जकड़ देगा; काठ में उसके पाँव ठोक देगा, उसे कारा में बंद कर देगा; उसके हाथ और पाँव को कड़ी में जड़ देगा और उन्हें तोड़ देगा; उसके हाथ या पाँव या कान या नाक या ओंठ या सिर अथवा चेहरे (?) को काट देगा;[206] उसकी टाँगें चीर देगा; आँखें और दाँत निकाल लेगा, जीभ काट लेगा, उसे रस्सी से लटका देगा; उसके ऊपर घोड़े दौड़ा देगा; चाक पर घुमा देगा; सूली पर चढ़ा देगा; उसे चीर देगा; उसके घावों पर तेजाब उँडेल देगा; गँड़ासे से काट देगा; उसे सिंह की दुम से या साँड की दुम से बाँध देगा, किसी जंगल में जला डालेगा; कौओं और गिद्धों से उसकी बोटियाँ नोचवाएगा; उसका खाना पीना बंद कर देगा; आजीवन कारावास में रख देगा तथा उसे ऊपर बताई गई किसी भी प्रकार की भीषण मृत्यु का शिकार बना देगा।[207]

उपर्युक्त अनुच्छेद व्यभिचारी व्यक्तियों के आचरण का वर्णन करता है; जो जैन धर्म के

दायरे से बाहर थे, अत हो सकता है कि बातें बढा चढाकर कही गई हों। किंतु यह निस्संदेह बताता है कि मालिक न केवल अपने दासों को बल्कि अपने अधीन काम करनेवाले विभिन्न कोटि के श्रमिकों को विभिन्न प्रकार के क्रूर दंड देता था। इन सब बातों से पता चलता है वैदिक वर्ग के जो व्यक्ति अपराध करते थे, उन्हें शारीरिक दंड देना असामान्य बात नहीं थी। हाँ शूद्र वर्ण के शिल्पियों को इस तरह नहीं सताया जाता था। ग्रीस में भी दासों को अपने छोटे मोटे अपराध के लिए शारीरिक दंड भोगना पड़ता था, जबकि उनसे भिन्न व्यक्तियों के प्रति ऐसे अमर्यादित व्यवहार नहीं किए जाते थे।[208]

सर्वप्रथम धर्मसूत्र विधि में ही विभिन्न वर्णों के लिए वैरदेय (हत्या करने के बदले हर्जाना) की विभिन्न दरें निर्धारित की गई हैं, यद्यपि वैदिक काल में ऐसा विभेद नहीं किया गया है। इनमें से तीन वैरदेयों में कहा गया है कि क्षत्रिय का वध करने पर अपराधी को एक हजार गायें देनी होंगी और किसी शूद्र का वध करने के लिए केवल दस गायें देनी पड़ेंगी, किंतु गायों के साथ साँड हर हालत में दिया जाएगा।[209] बौधायन का मत है कि यह वैरदेय राजा को मिलेगा,[210] किंतु आपस्तंब राजा के बदले ब्राह्मण का पक्ष लेता है।[211] किसी भी हालत में यह मारे गए व्यक्ति के संबंधी को नहीं मिलेगा। हत्याजन्य पाप के प्रायश्चित के रूप में भी मारे गए व्यक्ति के वर्ण के अनुसार अंतर था। गौतम के मतानुसार क्षत्रिय की हत्या करने के लिए अपराधी को छ वर्षों तक, वैश्य की हत्या के लिए तीन वर्षों तक और शूद्र की हत्या के लिए एक वर्ष तक इंद्रिय निग्रह (ब्रह्मचर्य) का व्रत धारण करना चाहिए।[212] किंतु वसिष्ठ ने प्रायश्चित की इस निरोधावधि को वैश्य की हत्या की दशा में तीन वर्ष तथा क्षत्रिय या शूद्र की हत्या की दशा में दो वर्ष बढा दिया है।[213] किंतु सामविधान ब्राह्मण में जिसे बर्नेल इस अवधि की रचना मानते हैं[214] यद्यपि प्रथम तीन वर्णों के सदस्यों की हत्या के लिए समान प्रायश्चित विहित किया गया है फिर भी शूद्र की हत्या के लिए निर्धारित प्रायश्चित भिन्न ढंग का है।[215] इससे पता चलता है कि वैरदेय के बारे में पहले शूद्रों और त्रैवर्णिकों' में विभेद किया गया। बाद में इसे पराकाष्ठा पर पहुँचा दिया गया और भिन्न भिन्न वर्णों के सदस्यों की हत्या के लिए जुर्माने की अलग अलग दरें विहित की गई। अधिकांश धर्मसूत्रों में जो वैरदेय के नियम पाए जाते हैं, उनका कुछ आधार अवश्य होगा। वर्ग के अनुसार वैरदेय की अलग अलग दरें न केवल परवर्ती समाजों में बल्कि सुप्रसिद्ध *हम्मुराबी संहिता* में भी पाई जाती हैं। किंतु शूद्र के मामले में इस विधि का अनुपालन कहाँ तक और किन रीतियों से किया जाता था इसका अनुमान नहीं किया जा सकता, क्योंकि इस विषय पर न्यायालय के निर्णयों का अभाव है।

आधुनिक जनतांत्रिक विचारवालों को जो बात सर्वाधिक अशोभनीय और दुखद लगेगी वह यह है कि *आपस्तंब* और *बौधायन* में शूद्र की हत्या करने के लिए वही

प्रायश्चित निर्धारित है जो किसी राजहंस, भास, मयूर, ब्राह्मणी बत्तख, प्रचलाक, कौवे, उल्लू, मेढक, छछूँदर, कुत्ते आदि की हत्या के लिए।[216] संभव है इस अतिवादी विचार को, जिसके अनुसार शूद्रों की जान को किसी जानवर या चिड़िया की जान के बराबर ही महत्व दिया गया है[217] सभी ने मान्यता न दी हो क्योंकि उन्हीं विधि प्रवर्तकों के अनुसार शूद्र की हत्या करने का वैरदेय दस गायें और एक साँड है।[218] किंतु इसमें संदेह नहीं कि आरंभिक ब्राह्मण ग्रंथों में शूद्र की जान को बहुत कम महत्व दिया गया है।

इस प्रकार वैदिक काल के पश्चात जनजातीय समाज के स्थान पर पूर्णतया वर्ण पर आधारित समाज के आ जाने से शूद्र वर्ण के सदस्यों का प्रशासन में कोई स्थान नहीं रह गया। संभवतया उन्हें सभी तरह के प्रशासकीय पदों से वंचित कर दिया गया और छोटे मोटे अपराधों के लिए भी शारीरिक दंड दिया जाने लगा। एक प्रकार से यह स्वाभाविक ही था क्योंकि वे साधारणतया जुर्माना नहीं चुका सकते थे। प्रायश्चित के नियम और दंडविधान के अनुसार शूद्रों के बारे में निर्धारित दंड वस्तुतः उच्च वर्णों द्वारा किए गए अपराधों के लिए विहित दंड के अनुपात में बहुत अधिक था। किंतु इससे कम से कम यह आभास तो मिलता है कि शूद्र को जान और जायदाद के अधिकार थे।[219] जिस प्रकार ग्रीस में दासों की हत्या दंड की संभावना के बिना की जाती थी उस प्रकार शूद्र का वध नहीं किया जा सकता था।

मौर्यपूर्व काल में शूद्र की सामाजिक स्थिति में परिवर्तन हुए तथा उसकी दशा और भी बिगड़ गई। विधि प्रवर्तकों ने उस पुरानी मान्यता पर जोर दिया कि शूद्र की उत्पत्ति सृष्टिकर्ता के पाँव से हुई है[220] और इस आधार पर उन्होंने संगति आहार विवाह और शिक्षा की दृष्टि से उस पर अनेक प्रकार की सामाजिक अशक्तताएँ आरोपित कर दीं। इनके फलस्वरूप कई मामलों में तो उच्च वर्ण के लोगों ने आमतौर से और ब्राह्मणों ने खासतौर से शूद्रों का सामाजिक बहिष्कार कर दिया। बौधायन ने यह विधान किया कि स्नातक को अछूत स्त्री या शूद्र के साथ यात्रा नहीं करनी चाहिए।[221] गौतम के एक परिच्छेद की टीका में कहा गया है कि यहाँ स्नातक शब्द का आशय है ब्राह्मण या क्षत्रिय[222] जिससे मालूम होता है कि यह नियम वैश्य पर लागू नहीं था। फिर, सफलता प्राप्त करने के लिए अनिवार्य नियम यह था कि सफलता के इच्छुक छात्र को स्त्री और शूद्र से बातचीत नहीं करनी चाहिए।[223] शूद्र से भिन्न वर्ण की स्त्री (संभवतया उच्च वर्ण की) के शूद्रजात पुत्र (पतित) का साहचर्य अवांछनीय माना जाता था।[224] इसका तात्पर्य स्पष्टतया यह था कि उच्च वर्णों के साथ शूद्र का सामाजिक संपर्क कम हो जाए। धर्मसूत्रों में ऐसी प्रवृत्ति साफ दिखाई पड़ती है कि ब्राह्मण और शूद्र का सामाजिक विभेद बढ़े। आपस्तंब और बौधायन का मत है कि यदि कोई शूद्र अतिथि के रूप में ब्राह्मण के घर आए तो उसे कुछ काम करने का भार सौंपना

चाहिए और जब काम सपन्न हो जाए तब उसे भोजन देना चाहिए।[225] ब्राह्मण न तो उसका सत्कार करे और न स्वय खाना खिलाए, बल्कि ब्राह्मण का नौकर राजा के भडार से चावल लाकर उसे भोजन कराए।[226] गौतम का विचार है कि ब्राह्मणेतर जाति को, यज्ञ का अवसर छोड़ अन्यथा ब्राह्मण का अतिथि नहीं होना चाहिए,[227] किंतु यज्ञ के अवसर पर भी वैश्य और शूद्र को ब्राह्मण का नौकर ही भोजन कराएगा।[228] वैश्वेदेव यज्ञ के अवसर पर यदि चडाल, कुत्ते और कौवे भी यज्ञ समाप्ति के समय उपस्थित हो जाएँ तो उन्हें भी कुछ अश दिया जाएगा।[229] मालूम होता है कि इस यज्ञ में अनेकानेक देवताओं को नैवेद्य अर्पित किया जाता था जिससे इसका साप्रदायिक और जनजातीय स्वरूप कुछ कुछ बना रहा और नए वर्गविभेद का उस पर बहुत असर नहीं पडा।

गौतम के मतानुसार यदि कोई शूद्र अस्सी वर्ष का बूढ़ा हो तो उस शहर के रहनेवाले नौजवान को उसके प्रति सम्मान प्रकट करना चाहिए।[230] इसका मतलब यह हुआ कि उसका आदर करने में उसकी आयु का सम्मान किया जाता था, न कि अन्य गुणों का। इसकी तुलना में शूद्र के लिए यह बाध्यकारी था कि वह आर्य का आदर करे भले ही वह उम्र में उससे छोटा ही क्यों न हो।[231] धर्मसूत्रों में वर्ण के अनुसार वदना और अभिवादन के जो स्वरूप निर्धारित किए गए हैं, उनसे प्रकट होता है कि समाज में शूद्र कितने पराधीन थे। *आपस्तब* में बताया गया है कि ब्राह्मण अपनी दाहिनी बाँह को अपने कान के समानातर क्षत्रिय उसे अपनी छाती के स्तर तक वैश्य अपनी कमर तक और शूद्र उसे अपने पाँव की सीध में रखकर अभिवादन करे।[232] विभिन्न वर्णों के लोगों के क्षेम-कुशल और स्वास्थ्य के सबध में जिज्ञासा करने के लिए भिन्न भिन्न शब्द विहित किए गए हैं। क्षत्रिय के स्वास्थ्य की जिज्ञासा के लिए प्रयुक्त किया जानेवाला शब्द है अनामय और शूद्र के लिए आरोग्य।[233] यह भी बताया गया है कि किसी क्षत्रिय अथवा वैश्य का अभिवादन करने में लोगों को केवल सर्वनाम का प्रयोग करना चाहिए न कि उसके नाम का।[234] इसका अर्थ हुआ कि मात्र शूद्र को उसके नाम से सबोधित किया जा सकता था। इस सबोधन की दृष्टि से द्विज वर्गों की स्थिति बहुत अच्छी थी। प्राचीन पालि ग्रथों में निम्न वर्गों के लोगों ने किसी क्षत्रिय को उसके नाम से या उत्तम पुरुष में सबोधित नहीं किया है।[235] राजा उदय को भगमाल हजाम पारिवारिक नाम से सबोधित करता है इस पर उसकी माँ बडे रोष के साथ कहती है, इस नीच नापितपुत्र को अपनी स्थिति का इतना भी ज्ञान नहीं है कि वह मेरे बेटे को जो पृथ्वी का मालिक है और क्षत्रिय जाति का है ब्रह्मदत्त कहकर पुकारता है।[236]

यह विचार कि जिस भोजन को शूद्र ने छू दिया वह अपवित्र हो गया और ब्राह्मण उसे ग्रहण नहीं कर सकता, सबसे पहले धर्मसूत्रों में मिलता है। आपस्तब के मतानुसार किसी

अशुद्ध ब्राह्मण या उच्च वर्ण के व्यक्ति द्वारा स्पर्श किया गया भोजन अपवित्र तो हो जाता है किंतु इतना अपवित्र नहीं कि उसे ग्रहण ही नहीं किया जा सके।[237] लेकिन कोई अपवित्र शूद्र यदि उसे उठाकर लाए तो उसे ग्रहण नहीं किया जा सकता।[238] यही स्थिति उस आहार की है जिस पर किसी कुत्ते या पतित अथवा चडाल की कोटि के अपपात्र की नजर पड़े।[239] एक अन्य नियम में कहा गया है कि यदि भोजन करते समय किसी ब्राह्मण को कोई शूद्र स्पर्श कर दे तो उसे भोजन रोक देना चाहिए, क्योंकि शूद्र स्पर्श के कारण वह अपवित्र हो जाता है।[240] *आपस्तंब* के इस कथन से तो उसकी कट्टरता और भी प्रकट होती है कि यदि कोई शूद्र विहित विधियों का अनुसरण भी करे तो भी उसके द्वारा लाया गया भोजन ग्राह्य नहीं है।[241] किंतु 'शूद्रवर्जम्' शब्द जिसका अर्थ यह किया जाता है कि शूद्रों का अन्न ग्रहण करना निषिद्ध है पुरानी पाडुलिपि में नहीं मिलता।[242] इससे पता चलता है कि पहले ऐसा विचार प्रचलित नहीं था जब केवल अपवित्र शूद्र का अन्न ग्रहण करना वर्जित था। फिर भी धर्मसूत्रों में निर्विवाद रूप से ब्राह्मणों को आदेश दिया गया है कि वे किसी शूद्र का अन्न ग्रहण नहीं करें।[243] हरदत्त की टीकावाले *आपस्तंब धर्मसूत्र* के एक अनुच्छेद[244] में ब्राह्मण को अनुमति दी गई है कि नितात अभावग्रस्तता की स्थिति में वह शूद्र का अन्न ग्रहण कर सकता है किंतु शर्त यह है कि वह अन्न स्वर्ण और अग्नि को स्पर्श कराकर पवित्र बना लिया जाए और जैसे ही ब्राह्मण को कोई वैकल्पिक जीविका मिल जाए वैसे ही वह शूद्र का अन्न ग्रहण करना छोड दे।[245] गौतम ने ऐसी कोई शर्त नहीं लगाई है। उन्होंने जीवननिर्वाह का साधन समाप्त हो जाने पर ब्राह्मण को शूद्र का अन्न ग्रहण करने की अनुमति देते समय[246] यह छूट दी है कि वह पशुपालक खेतिहर मजदूर परिवार के परिचित व्यक्ति और सेवक से प्राप्त अन्न ग्रहण करे।[247] किंतु गौतम उसे यह अनुमति नहीं देते कि वह शूद्र के व्यवसायों को अपनाकर जीवननिर्वाह करे।[248] इतना ही नहीं उन्होंने यह नियम भी बनाया है कि स्नातक (अर्थात हरदत्त के अनुसार, ब्राह्मण या क्षत्रिय) को शूद्र का पानी तक नहीं पीना चाहिए।[249] ऐसा नियम केवल गौतम ने ही बनाया है। कुछ मामलों में तो ब्राह्मण द्वारा शूद्र के अन्न के बहिष्कार सबधी नियमों को धमकियों और प्रायश्चित के आधार पर लागू कराया गया है। वसिष्ठ की दृष्टि में पूर्णतया योग्य ब्राह्मण वह है, जिसके उदर में शूद्र का एक भी दाना नहीं गया हो।[250] ऐसे नियम के अनुसार स्वभावतया अपराधी ब्राह्मण यज्ञ का दान ग्रहण करने से वंचित कर दिया गया होगा, जो उसकी आय का मुख्य साधन था। उन्होंने यह भी घोषित किया है कि यदि किसी ब्राह्मण के पेट में शूद्र का दाना हो और वह मर जाए तो उसका जन्म या तो ग्राम शूकर के रूप में अथवा शूद्र के ही परिवार में होगा।[251] इतना ही नहीं यदि कोई ब्राह्मण शूद्र के अन्न पर पला हो तो वह नित्य वेद का पाठ और पूजा अर्चना क्यों न करे उसे स्वर्ग नहीं मिल

सकता। पुन , यदि वह शूद्र का अन्न खाकर स्त्री से सभोग करे तो उसके पुत्र शूद्र जाति के होंगे और खुद उसे स्वर्ग की प्राप्ति नही हो सकेगी।[252] बौधायन का मत है कि यदि कोई व्यक्ति किसी शूद का अन्न ग्रहण करने या शूद्रस्त्रीगमन करने का अपराध करे तो उसके पाप का प्रायश्चित एक सप्ताह तक प्रति दिन सात बार प्राणायाम करने से होगा।[253] इसी कर्म के लिए उन्होंने ऐसे प्रायश्चित की भी व्यवस्था की है कि प्रायश्चित करनेवाला उबाले हुए यव के दाने ग्रहण करने का समारोह आयोजित करे।[254] किंतु ये प्रायश्चित इस काल की वास्तविक स्थिति के द्योतक नहीं माने जा सकते। पहला प्रायश्चित चतुर्थ प्रश्न में आया है जिसके बारे में एक मत यह है कि यह ई सन् की दसवी शताब्दी का है,[255] और दूसरे प्रायश्चित का उल्लेख तृतीय प्रश्न में हुआ है जो बुहलर के मतानुसार मूल रचना में पीछे चलकर जोड़ दिया गया है।[256]

धर्मसूत्रों से यह धारणा बनती है कि सामान्यतया आदर्श ब्राह्मण शूद्र का अन्न[257] खासकर यदि शूद्र अपवित्र हो नही ग्रहण करते थे। लेकिन इस प्रतिबध को लागू कराने के लिए जिस प्रायश्चित और धमकी का विधान है, वह बाद में सन्निविष्ट किया गया मालूम होता है। ऐसा कोई विधान इस काल में समवतया लागू नही था। यह स्पष्ट है कि क्षत्रिय और वैश्य पर ऐसा कोई भी प्रतिबध नहीं लगाया गया था। वैश्वेदेव यज्ञ के अवसर पर प्रथम तीन वर्णों के लोगों की देख रेख में शूद्र भोजन सामग्री तैयार करता था।[258] रसोई करते समय उसे बिल्कुल साफ सुथरा रहना पड़ता था, ताकि भोजन दूषित न होने पाए। इस प्रयोजन के लिए उसे हर महीने के पूर्वार्ध और उत्तरार्ध के आठवें दिन अथवा पूर्णमासी या द्वितीया तिथि को अपने सर के बाल दाढी और शरीर पर के केश मुडवाने पडते थे और नाखून भी कटवाने पडते थे। इसके अलावा उसे अपने शरीर पर वस्त्र धारण किए हुए स्नान भी करना पड़ता था।[259] सामान्यतया यह उपबध किया गया था कि आर्य की नौकरी करनेवाले शूद्रों को प्रति मास अपने बाल एव नाखून कटवाने चाहिए। बौधायन के विचारानुसार उनके पानी पीने का ढग आर्यों के समान ही था।[260] धार्मिक अनुष्ठान में अत्यधिक पवित्रता का ध्यान रखा जाता है लेकिन उसमें भी शूद्र को भोजन बनाने की अनुमति दी जा सकती थी। इससे पता चलता है कि उच्च वर्णों के लोग जिनमें प्राय ब्राह्मण सम्मिलित नही थे सामान्यतया शूद्र द्वारा बनाया गया भोजन ग्रहण करते थे। बाद की भी एक जातक कथा में रसोइया के व्यवसाय के बारे में कहा गया है कि यह व्यवसाय गुलामों और भाडे के मजदूरों को करना चाहिए।[261] एक ऐसा दृष्टांत मिला है जिसमें एक क्षत्रिय पिता अपनी दासी पत्नी से उत्पन्न पुत्री के साथ खाने से परहेज करता है। किंतु यह परिच्छेद बाद के एक जातक की वर्तमान कथा में आता है,[262] अत इसे उस कालावधि का नही माना जा सकता। जिन आदेशों के अधीन अपवित्र व्यक्ति द्वारा स्पर्श किया गया भोजन

और खासकर उसके जूठन का सपर्क तक करना निषिद्ध था तथा जिनके अधीन नियमों के उल्लघन के लिए दड दिया जाता था, वे प्राचीन पालि ग्रथों में देखे जा सकते हैं।[263] किंतु उनमें कोई भी ऐसी बात नहीं है जिससे सिद्ध होता हो कि वे खासकर शूद्रों के लिए बताए गए थे। ऐसा प्राय इस कारणवश हुआ था कि प्राचीन भारोपीय प्रथा के अनुसार कुल के सभी सदस्य विशेष अवसरों पर सहभोज का आयोजन करते थे[264] जिसका प्रभाव जनजातियों के वर्णों में विभक्त हो जाने के बाद भी बना रहा।

धर्मसूत्रों के वैवाहिक नियम वर्ण के आधार पर बने थे। विवाह के आठ प्रकारों का उल्लेख सर्वप्रथम इसी अवधि में मिलता है। इनमें से गाधर्व और पैशाच (प्रलोभन देकर किया गया विवाह जिसमें सम्मति ध्वनित होती है) विवाह वैश्यों और शूद्रों के लिए विधिसगत समझे जाते थे। बौधायन के अनुसार प्रथम कोटि का विवाह वैश्यों के लिए और द्वितीय कोटि का विवाह शूद्रों के लिए विहित था।[265] इस विचार का औचित्य सिद्ध करने के लिए उन्होंने बताया है कि चूँकि वैश्य और शूद्र कृषिकर्म और सेवा में व्यस्त रहते थे इसलिए उनकी पत्नियाँ उनके नियत्रण में नहीं रह सकती थी।[266] इससे सकेत मिलता है कि निम्न वर्ग की महिलाओं को अपनी जीविका अर्जित करने के लिए नौकरी करनी पडती थी, जिससे वे अपेक्षाकृत अपने अपने पतियों से स्वतत्र रहती थीं। उच्च वर्णों की महिलाएँ अपना जीविकोपार्जन करने में असमर्थ थीं अत उन्हें अधिक आश्रित बनकर रहना पडता था किंतु समाज में उनकी मर्यादा अधिक थी।

वैवाहिक सबध के स्थायित्व का विचार वर्ण की दृष्टि से किया जाता था। वसिष्ठ का मत है कि जितना ही ऊँचा वर्ण होगा वैवाहिक जीवन उतना ही अधिक स्थाई होगा। इसी दृष्टि से विहित किया गया है कि यदि पति घर छोडकर चला जाए तो ब्राह्मण या क्षत्रिय की पत्नी जिसे सतान हो पाँच वर्ष तक प्रतीक्षा करेगी वैश्य की पत्नी चार वर्ष तक और शूद्र की तीन वर्ष तक राह देखेगी। यदि उसे सतान नहीं हो तो ब्राह्मण की स्थिति में प्रतीक्षा की अवधि एक वर्ष घट जाएगी और क्षत्रिय वैश्य तथा शूद्र की प्रतीक्षा अवधि दो दो वर्ष कम हो जाएगी।[267] इसके फलस्वरूप शूद्र की पत्नी को केवल एक वर्ष तक प्रतीक्षा करनी होगी। इस तरह के नियम से पुन यह अर्थ निकलता है कि निम्न वर्ण की स्त्रियाँ अपेक्षाकृत अधिक स्वाधीन होती थी और उनका विवाह सबध आसानी से विच्छेदन योग्य था।

किंतु उच्च वर्ण के पति अपनी शूद्र पत्नियों के प्रति समान बर्ताव नहीं करते थे। वसिष्ठ का कहना है कि काली जाति की शूद्र पत्नी को सुख सभोग के लिए रखैल रखा जा सकता है[268] पर उससे विवाह नहीं किया जा सकता।[269] इसी ग्रथ के एक परिच्छेद में यह अनुमति दी गई है कि आर्य शूद्र जाति की महिलाओं से विवाह कर सकता है यदि उस विवाह में समुचित वेदमत्रों का पाठ न किया जाए। किंतु स्वय वसिष्ठ इसे वाछनीय नहीं

मानते,[270] क्योंकि इस तरह के विवाह से परिवार की मर्यादा का ह्रास होता है और मृत्यु के पश्चात उस व्यक्ति को स्वर्ग नहीं मिलता।[271] आपस्तंब के मतानुसार यह श्रेयस्कर नही कि कोई ब्राह्मण शूद्र महिला का सभोग करे या कृष्ण वर्ण के व्यक्ति की नौकरी करे।[272] आपस्तब और बोधायन, दोनों ने ही ऐसे व्यक्तियों के लिए शुद्धिकरण सस्कार विहित किए है जिनका शूद्र वर्ण की महिला के साथ सबध है।[273] किंतु बोधायन *धर्मसूत्र* के ये दोनों परिच्छेद चतुर्थ प्रश्न में आए हैं जो बाद में जोडे गए है, जैसा कि पहले भी बताया जा चुका है। अत ऐसे प्रायश्चित इस काल पर लागू नही माने जाने चाहिए। यह विचार कि शूद्र पत्नी वर्जनीय है, वसिष्ठ के एक पूर्ववर्ती नियम के प्रतिकूल पड़ता है, जिसमें कहा गया है कि ब्राह्मण तीन पत्नियाँ रख सकता है, क्षत्रिय दो, और वैश्य तथा शूद्र एक एक।[274] इसके द्वारा प्रथम दो वर्णो के लोगों को स्पष्ट अनुमति मिली हुई है कि वे शूद्र स्त्री से नियमित रूप में विवाह कर सकते हैं। अत सभव है कि यह विचार बाद में सन्निविष्ट हुआ हो कि शूद्र पत्नियाँ केवल सुख सभोग के लिए अगीकृत की जाएँ। यह भी स्पष्ट है कि कोई सुखी सपन्न व्यक्ति कई पत्नियों का निर्वाह कर सकता है। इस प्रकार उच्च वर्णों में जहाँ बहुविवाह का चलन उनकी आर्थिक सपन्नता का परिचायक है वहाँ शूद्रों में एक विवाह की प्रथा[275] उनकी आर्थिक विपन्नता सूचित करती है।

यद्यपि नीच जातियों की स्त्रियों से विवाह करने की अनुमति है, किंतु धर्मसूत्रों में इसके विपरीत क्रम के विवाह को बहुत हेय समझा गया है।[276] गोतम का मत है कि यदि कोई शूद्र अपनी जाति से भिन्न किसी महिला से पुत्र उत्पन्न करे तो उसे पतित समझा जाएगा।[277] इन्ही विवाहों और सबधों के कारण अधिकतर प्राचीन विधिग्रथों में लगभग एक दर्जन मिश्रित (वर्णसकर) जातियों की उत्पत्ति का वृतात दिया गया है। इस प्रकार क्षत्रिय वर्ण की स्त्री से शूद्र द्वारा उत्पन्न सतान को 'क्षतृ' कहा गया है और वैश्य जाति की स्त्री से उत्पन्न सतान को 'मागध' कहा गया है।[278] ब्राह्मण स्त्री से उत्पन्न शूद्रपुत्र चडाल माना गया है।[279] गोतम के मतानुसार किसी शूद्र पत्नी से ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य और शूद्र द्वारा उत्पन्न व्यक्ति क्रमश 'पारशव' 'यवन' 'करण' और 'शूद्र' कहलाता है।[280] किसी शूद्र पत्नी से उत्पन्न ब्राह्मण पुत्र 'निषाद' कहलाता है।[281] उसकी सतान जो किसी शूद्र स्त्री से उत्पन्न हो, 'पुलकस' कहलाती है और निषाद जाति की स्त्री से किसी शूद्र द्वारा उत्पन्न पुत्र 'कुक्कुटक' कहलाता है।[282] क्षत्रिय और शूद्र पत्नी के सयोग से उत्पन्न सतान 'उग्र' कहलाती है[283] तथा वैश्य और शूद्र की सतति को रथकार माना गया है।[284] जातियों की उपर्युक्त सूची बताती है कि धर्मसूत्रों के मतानुसार शूद्र और उच्च वर्णों के लोगों के बीच अनुलोम वर्णों के क्रम में और प्रतिलोम (वर्णक्रम के विपरीत) सबधों को सकर जातियों के उद्भव का महान स्रोत माना गया है और इन्हीं में से अनेक को अछूत की श्रेणी

में रखा गया है। किंतु इनमें से अधिकतर सकर जातियाँ पिछड़ी जनजाति की थीं जिन्हें मनमाने ढग से वर्णों से जैसे तैसे जोड़कर चातुर्वर्ण्य व्यवस्था में मिला लिया गया था।[285] इतना ही नहीं, ऐसी व्याख्याओं के कारण कालक्रम से नई-नई जातियाँ बनी होंगी क्योंकि आधुनिक काल में भी ऐसा हुआ है।[286]

यद्यपि पूर्वकालीन गृह्यसूत्रों में कहीं भी शूद्रों को दीक्षा सस्कार से वचित करने का स्पष्ट उल्लेख नहीं है, फिर भी *आपस्तब धर्मसूत्र* से पता चलता है कि उसे उपनयन और वेदाध्ययन की अनुमति नही दी जा सकती है।[287] किसी शूद्र और खासकर चडाल की उपस्थिति को वेदपाठ बद कर देने का पर्याप्त कारण माना गया है।[288] ऐसी स्थितियों को बौधायन और गौतम दोनों ही, सभी प्रकार के अध्ययन के लिए बाधक मानते है।[289] गौतम तो यहाँ तक कहते है कि हमेशा एक ही शहर में नहीं पढते रहना चाहिए।[290] मस्करिन का ख्याल है कि यह ऐसे शहर के बारे में कहा गया होगा जिसके निवासी मुख्यतया शूद्र हों।[291] केवल गौतम ने बताया है कि यदि कोई शूद्र वेद की ऋचाओं का पाठ करे तो उसकी जीभ काट ली जानी चाहिए और यदि वह उन ऋचाओं को स्मरण रखे तो उसके शरीर के दो टुकडे कर दिए जाने चाहिए।[292] इस तरह के भीषण दड विधान में मनु की कट्टर मनोवृत्ति का आभास मिलता है अत यह सोचा जा सकता है कि इसे गौतम के विधि ग्रथ में बाद में जोड दिया गया होगा।[293] किंतु यह स्पष्ट है कि इस काल में भी शूद्र को वेद की शिक्षा देने का तीव्र विरोध किया जाता था।

आपस्तब के एक परिच्छेद में शूद्र को वेद पढाने का समर्थन किया गया है जहाँ उन्होने यह बताया है कि छात्र को चाहिए कि वेद पढाने के लिए अपने गुरु को शुल्क दे वहीं उनकी यह भी स्पष्ट अनुमति है कि गुरु (शिक्षक) सभी परिस्थितियों में किसी उग्र अथवा किसी शूद्र से शुल्क ग्रहण कर सकता है।[294] यह किसी प्राचीन स्थिति का परिचायक हो सकता है जब शूद्र को वैदिक शिक्षा के लिए अनुमति प्राप्त थी। किंतु आगे चलकर न केवल गौतम और वसिष्ठ ने बल्कि स्वय आपस्तब ने भी उसे इस सुविधा से वचित कर दिया। वेद विधि (धर्म) का स्रोत है और वसिष्ठ का मत है कि शूद्र धर्मसबधी कोई भी विषय जानने का पात्र नही है।[295] स्पष्ट है कि ऐसे विचार का आशय यह था कि शूद्रों को उस विधि से सर्वथा अपरिचित रखा जाए जिससे वे शासित होते थे।

आपस्तब में कहा गया है कि स्त्रियाँ और शूद्र *अथर्ववेद* के परिशिष्ट का अध्ययन कर सकते हैं।[296] इसके अतर्गत नृत्य सगीत और दैनिक जीवन से सबधित कला और विद्या है।[297] *गौतम के एक परिच्छेद की टीका करते हुए मस्करिन ने इसी तरह की शिक्षा का* उल्लेख किया है। उन्होंने स्मृतियों से उद्धरण प्रस्तुत किए है जिनमें बताया गया है कि निषाद को हस्ति प्रशिक्षण (पीलवानी) की शिक्षा दीक्षा दी जानी चाहिए।[298] इन सबका

आशय यह हो सकता है कि शूद्रों को कला और शिल्प का प्रशिक्षण तो दिया जा सकता था, किंतु उन्हें वेद के अध्ययन से वंचित रखा गया था जो बहुत कुछ साहित्यिक शिक्षा के समान था। इस तरह धर्मसूत्रों ने शास्त्रीय शिक्षा, जो द्विज वर्णों तक ही सीमित थी और शिल्पशिक्षा जो शूद्रों के लिए अभिप्रेत थी— दोनों को पृथक करने का प्रयास किया। यह भी उल्लेख किया गया है कि वेद अध्ययन से कृषिकर्म में बाधा पड़ती है और कृषिकर्म से वेद के अध्ययन में।[299] स्वभावतया इस प्रकार के नियम से न केवल शूद्र बल्कि ऐसे वैश्य भी प्रभावित हुए जो स्वयं खेती गृहस्थी करते थे। हम यह नहीं जानते कि व्यवहार में यह नीति कहाँ तक सफल हुई। बाद के एक जातक से जानकारी मिलती है कि दो चंडालपुत्र तक्षशिला में शिक्षा पाने के लिए छद्म वेश धारण करके गए, किंतु जब उन्होंने असावधानी से अपनी बोलचाल की भाषा का प्रयोग किया तो भेद खुल गया और उन्हें संस्था से निकाल दिया गया।[300] लेकिन अन्य जातक कथाओं से पता चलता है कि विद्यालयों में सौदागरों और दर्जियों[301] तथा मछुओं के भी पुत्र पढ़ते थे।[302] इस प्रकार इस काल में भी शूद्र पूर्णतया शिक्षाप्राप्ति से वंचित नहीं थे।

धर्मसूत्रों में शूद्र के लिए वेद का अध्ययन निषिद्ध था, जिसके फलस्वरूप वे यज्ञों और धार्मिक कृत्यों में भाग नहीं ले सकते थे, क्योंकि इनमें केवल वैदिक मंत्रों का प्रयोग होता था। *आश्वलायन गृह्यसूत्र* के एक नियम[303] का अर्थ इस प्रकार किया गया है कि शूद्र मधुपर्क समारोह के अवसर पर होनेवाले वेदमंत्रों का पाठ सुन सकते थे।[304] इसी प्रकार जैमिनी ने एक प्राचीन गुरु बादरि का उद्धरण दिया है जिसमें कहा गया है कि चारों वर्णों के लोग वैदिक यज्ञ कर सकते हैं।[305] किंतु उन्होंने बादरि के विचार का समर्थन नहीं किया है[306] जिससे मालूम होता है कि वह भी उस युग के कट्टर विचारों से प्रभावित थे। वैदिक यज्ञ के लिए शूद्र अग्निस्थापन नहीं कर सकता था।[307] वह किसी संस्कार का अधिकारी नहीं था।[308] वैदिक यज्ञ से उसका बहिष्कार इस सीमा तक कर दिया गया था कि कुछ धार्मिक कृत्यों में तो उसकी उपस्थिति वर्जित थी और उसे देखना भी मना था।[309] शूद्र सामान्यतया 'नमः' का उच्चारण भी नहीं कर सकता था।[310] इसका उच्चारण वह विशेष रूप से अनुमति मिलने पर ही कर सकता था।[311] किंतु गौतम ने कुछ ऐसे ऋषियों का उल्लेख किया है, जिन्होंने पाक यज्ञ (साधारण गृह्य कर्म) नाम से विदित कुछ छोटे छोटे यज्ञों की सूची बनाई है, जिनका संपादन शूद्र कर सकता है।[312] बौधायन ने अन्य आचार्यों का भी उल्लेख किया है जिन्होंने कहा है कि जल में निमज्जन और स्नान सभी वर्णों के लिए विहित है किंतु मार्जन *(मंत्रों का उच्चारण करते हुए शरीर पर पानी छिड़कना)* केवल द्विज का कर्तव्य है।[313]

यह तर्क दिया जाता है कि विभिन्न प्रकार के धार्मिक समारोह और यज्ञों का संपादन

नहीं करना शूद्र के लिए लाभकर ही था, क्योंकि उनके संपादन के दायित्व से वह मुक्त था।[314] किंतु आधुनिक दृष्टि से जो बात उसके लिए लाभकर समझी जाती है वह उस काल के सामाजिक दृष्टिकोण के अनुसार अलाभकर थी, जिसके अनुसार यज्ञ न करनेवाले लोगों को समाज में हेय समझा जाता था।[315]

गौतम ने यह नियम बनाया है कि शूद्र अपनी पत्नी के संग रहेगा।[316] हरदत्त ने एक अन्य टीकाकार का उद्धरण दिया है जिसने इसका अर्थ किया है कि शूद्र केवल गृहस्थ के रूप में जीवन व्यतीत कर सकता है, छात्र, आश्रमवासी या तपस्वी के रूप में नहीं।[317] मालूम होता है कि आगे चलकर ब्राह्मण के लिए सामान्यतया चार, क्षत्रिय के लिए तीन, वैश्य के लिए दो तथा शूद्र के लिए एक आश्रम विहित थे।[318] हो सकता है कि बराबर ऐसी स्थिति नहीं रही हो, किंतु शूद्र के साथ जो भेदभाव रखा गया वह संगत ही मालूम होता है, क्योंकि यह कार्य ऐसा था जिसे वह एक गृहवासी के रूप में ही संपन्न कर सकता था।

किंतु शूद्र को श्राद्ध कर्म की अनुमति थी।[319] लेकिन गौतम और वसिष्ठ ने विहित किया है कि किसी सपिंड के जन्म या मरण से वह एक महीने तक अशौच में रहेगा।[320] वसिष्ठ के मतानुसार ब्राह्मण, राजन्य और वैश्य के लिए यह अवधि क्रमश: दस, पंद्रह और बीस दिन की होती है।[321] गौतम ने इस अवधि में से चार दिन क्षत्रिय के लिए और आठ दिन वैश्य के लिए घटा दिया है।[322] अशौच की सबसे लंबी अवधि को मानने के कारण शूद्र को भारी कठिनाई का सामना करना पड़ता था। अपनी जीविका उपार्जित करने में असमर्थ होने के कारण उसे अपने महाजन या मालिक की कृपा पर निर्भर रहने को बाध्य होना पड़ता था। हाल में भी देखा गया है कि मृत्यु के कारण हुए अशौच की अवधि में गरीब शूद्र घर घर भीख माँगता था। किंतु एक दृष्टि से उसकी स्थिति अच्छी थी, वह इतना अपवित्र नहीं समझा जाता था कि उच्च वर्णों का मुर्दा छूना उसके लिए वर्जित हो। वह ब्राह्मण के शव को भी श्मशान घाट ले जा सकता था,[323] और वहाँ चिता का स्पर्श कर सकता था।[324]

तीन उच्च वर्णों में से ब्राह्मण से यह आशा की जाती थी कि वह पूरी नियम निष्ठा से अपना धार्मिक कर्तव्य निभाएगा। बौधायन ने कहा है कि राजा को चाहिए कि जो ब्राह्मण प्रात और सायंकाल संध्यावंदन नहीं करे, उससे शूद्र का कार्य कराए।[325] जो ब्राह्मण शारीरिक श्रमवाली जीविका अपनाएगा वह ब्राह्मणत्व खो बैठेगा। बौधायन का मत है कि जो ब्राह्मण पशुपालन करे, व्यापार करके जीविका चलाए, शिल्पी अभिनेता सेवक या सूदखोर का काम करे उसके साथ शूद्रवत् व्यवहार किया जाना चाहिए।[326] गौतम इससे भी आगे बढ़कर कहते हैं कि यदि कोई आर्य किसी आर्येतर (अर्थात शूद्र) व्यक्ति का

व्यवसाय अपनाए तो वह उसी कोटि का बन जाएगा।[327] इस परिच्छेद पर टिप्पणी करते हुए हरदत्त ने कहा है कि यदि कोई व्यक्ति ब्राह्मण होकर भी किसी आर्येतर व्यक्ति का पेशा अपनाए तो शूद्र को उसकी सेवा नहीं करनी चाहिए। उनका यह मत भी है कि जो शूद्र किसी आर्य का काम करे, उससे आर्येतर व्यक्तियों का पेशा अपनानेवालों को घृणा नहीं करनी चाहिए। सामान्यतया ऐसी घृणा में कोई तथ्य तो नहीं दीख पड़ता, क्योंकि आर्यों का दर्जा ऊँचा था। फिर भी, ये नियम बताते हैं कि उच्च वर्णों के सदस्य, खासकर ब्राह्मण, शारीरिक श्रम संबंधी व्यवसायों के प्रति घृणा का भाव रखते थे और यही कारण था कि जब उन्हें शारीरिक श्रम करके अपनी जीविका चलाने के लिए बाध्य होना पड़ता था, तब वे शूद्र समझे जाते थे।[328] *विनय पिटक* में कृषि व्यापार और पशुपालन को उच्च कोटि का काम माना गया है।[329] जाहिर है कि यह वैश्य के कर्मों का उल्लेख करता है। दूसरी ओर बढ़ई और भंगी का काम हीन कोटि का समझा जाता था।[330] इसी ग्रंथ में नलकार (बाँस का काम करनेवाला), कुंभकार, पेसकार (बुनकर), चम्मकार और नहापित (हज्जाम), पाँचों के व्यवसाय को हीन कोटि का बताया गया है।[331] किंतु एक स्थान पर बुनकर, नलकार, कुंभकार और हज्जाम के कार्य को सामान्य शिल्प की सूची में रखा गया है,[332] जिससे पता चलता है कि पाँचवें व्यवसाय अर्थात चर्मकार के व्यवसाय को सभी लोग हेय समझते थे।

इन शिल्पों को समाज में कैसा दर्जा मिला था, उसका अलग अलग आकलन करने पर पता चलता है कि सामान्यतया कुंभकार के कर्म को बुरा नहीं माना गया है।[333] किंतु एक जगह बुनकर (तंतुवाय) के काम को हीन कोटि का बताया गया है।[334] मालूम होता है कि हज्जाम भी उपहास का पात्र होता था।[335] इस प्रकार यद्यपि उपाल नामक हज्जाम भिक्षु बन गया था, फिर भी भिक्षुणियाँ उसे ऐसे हीन कुल में उत्पन्न कहकर निंदित करती थीं जिसका पेशा लोगों के सिर की मालिश करना और गंदगी को साफ करना है।[336] इससे मालूम होता है कि कुछ व्यवसायों को हीन कोटि का मानने की प्रवृत्ति प्रचलित थी। चूँकि ऐसे कार्य विभिन्न वर्ग के शूद्रों द्वारा किए जाते थे इसलिए कालक्रम में पूरे शूद्र वर्ण के पेशे को कलंकित किया जाने लगा। *दीघ निकाय* के एक परिच्छेद से यह बात स्पष्ट हो जाती है जिसमें शूद्रों के कृत्यों का निर्धारण करने में लुद्दाचार खुद्दाचार ति वाक्यखंड का प्रयोग किया गया है।[337] इसका अर्थ यह हुआ कि शूद्र वे हैं जो शिकार और अन्य हीन कर्म द्वारा जीवन निर्वाह करते हैं। एक जैन ग्रंथ में भी वृषल गृहदास (जन्मजात दास) और हीन कुल में उत्पन्न अधम व्यक्ति जैसे शब्दों का प्रयोग उसी रूप में किया गया है जिस रूप में कुत्ता, चोर डकैत ठग, मकार आदि को दुत्कारा जाता है।[338]

प्राचीन पालि ग्रंथों में पाँच हीन जातियों यथा चंडाल नेसाद वेण रथकार और

पुक्कुस जातियों की चर्चा बार-बार हुई है।[339] उन्हें नीच कुल[340] और हीन जाति[341] का बताया गया है। हीन व्यवसायों, कार्यों और जातियों की गणना मूलत मौर्यपूर्व काल की मानी जाती है, क्योंकि बुद्ध अपने भिक्षुओं को निदेश देते हैं कि वे भिक्षुओं की पूर्व जाति, सिप्प, कम्म आदि का हवाला देकर उन्हें अपमानित न करें और इस प्रकार सघ में भेदभाव उत्पन्न न करें।[342]

बौद्ध ग्रंथों की अनेक हीन जातियाँ ब्राह्मणकालीन समाज के अछूत वर्गों से मोटे तौर पर मिलती जुलती हैं। बौद्ध और जैन ग्रंथों के अनुसार चडाल और पुक्कुस शूद्र वर्ण में सम्मिलित नहीं थे।[343] किंतु धर्मसूत्रों ने उन्हें मिश्रित जातियों की सूची में रखा है, और इनमें शूद्र जातियों का खून मिला है। पतजलि का कथन है कि पाणिनि ने चडाल और मृतप (शवों की रखवाली करनेवाला) को उन शूद्रों की कोटि में रखा है जो नगरों और गाँवों से बाहर रहते थे, जिनका स्पर्श हो जाने से ब्राह्मणों का कास्य पात्र सदा के लिए अपवित्र हो जाता था।[344]

मूलत चडाल आदिवासी प्रतीत होते हैं। यह उनकी बोली से ही स्पष्ट हो जाता है।[345] एक जैन ग्रंथ में अन्य जनजातियों अर्थात शबर, द्रविड, कलिंग गोड और गाधारों के साथ उनका उल्लेख किया गया है।[346] किंतु कालक्रम से चडाल अछूत समझे जाने लगे। आपस्तब का मत है कि चडाल को छूना और देखना पाप है।[347] किंतु यह परिच्छेद उसके धर्मसूत्र की पहले की दो पाडुलिपियों में नहीं मिलता,[348] जिससे पता चलता है कि अस्पृश्यता प्राय मौर्यपूर्व काल के अत में आई। इसी प्रकार का एक उपबध गौतम के परवर्ती ग्रंथ में मिलता है कि यदि किसी चडाल के स्पर्श से शरीर अपवित्र हो जाए तो सभी वस्त्रों के साथ स्नान करके उसे पवित्र किया जा सकता है।[349]

पालि ग्रंथों में चडालों को स्पष्टतया अछूत बताया गया है। बाद के एक जातक में चडाल को अधमाधम कोटि का माना गया है।[350] चडाल का शरीर स्पर्श करके आनेवाली हवा दूषित समझी जाती थी।[351] चडाल पर दृष्टि पडना अपशकुन माना जाता था।[352] यही कारण है कि बनारस के एक सेट्ठि की लडकी चडाल को देखने पर अपनी आँखें धोने लगती है क्योंकि वे आँखें अधम व्यक्ति को देखने के कारण दूषित हो गई थीं।[353] यदि चडाल भोजन या पेय सामग्री को देख ले तो उसे ग्रहण करना वर्जित था।[354] अज्ञानवश भी उसका अन्न ग्रहण कर लेने पर लोगों को सामाजिक बहिष्कार का भागी बनना पडता था। कहा जाता है कि सोलह हजार ब्राह्मण अपनी जाति से इसलिए बहिष्कृत कर दिए गए कि उन्होंने अनजाने ऐसा अन्न ग्रहण किया जो शूद्र के जूठन के स्पर्श से दूषित हो गया था।[355] ऐसे ब्राह्मण का भी वर्णन आया है जिसने भूख की पीडा में चडाल का जूठा खा लिया और अपनी जाति के लोगों की निंदा से बचने के लिए आत्महत्या कर ली।[356] एक

जातक कथा में बताया गया है कि जब चडाल शहर में प्रवेश करता है तब लोग उसे मार मारकर बेहोश कर देते हैं।[357] इसी प्रकार की कथा बाद के जैन ग्रथ में आई है। कहा गया है कि जब कामदेव की पूजा के अवसर पर बनारस के मातग नेता के दो बेटे गायक और नर्तक दल को लेकर पहुँचे तो उच्च जाति के लोगों ने उन्हें लातों और थप्पडों से मारा और शहर से बाहर निकाल दिया।[358] जो भी हो, जातक प्रसगों से पता चलता है कि यद्यपि उच्च वर्णों के सभी लोग चडालों को अस्पृश्य समझकर घृणा करते थे, फिर भी ब्राह्मण उनसे विशेष नफरत करते थे।

जब ब्राह्मणप्रधान समाज में चडालों को सभवतया शिकारी और बहेलिया होने के कारण स्थान मिला तब उन्हें पशुओं और मनुष्यों के शव फेंकने का काम सौंपा गया। वे हमेशा शवों को हटाने और जलाने के काम[359] से सबद्ध दीख पडते हैं।[360] यह काम पण भी करते थे, जो चडाल कहलाते थे।[361] चडालों को कभी कभी सडक पर झाडू लगाने के लिए कहा जाता था।[362] धर्मसूत्रों में चडाल को जल्लाद के रूप में चित्रित नहीं किया गया है, जो अपराधियों को फाँसी पर चढाता है। जातक में उसे अपराधी को कोड़ा मारने और उसका अगविच्छेद करनेवाला बताया गया है।[363] कहा गया है कि जातक में जिस चोरघातक की चर्चा आई है, सभव है कि वह चडाल हो।[364] कुछ चडाल बाजीगरी और कलाबाजी का व्यवसाय करके अपनी जीविका चलाते थे।[365] आज भी उत्तर भारत में पिछडी जाति के घुमक्कड लोग एक स्थान से दूसरे स्थान में जाकर यह पेशा करते है। चडाल दुखपूर्ण और गदा जीवन व्यतीत करते थे। पालि ग्रथ में दी गई एक उपमा से पता चलता है कि जब चडाल के बच्चे फटा चिटा कपडा पहने हुए अपने हाथ में भिक्षापात्र लेकर गाँव या शहर में प्रवेश करते हैं, तब वे सिर झुकाए हुए आगे बढते हैं।[366] बाद के एक जातक से हमें मालूम होता है कि चडाल के पास एक जोड़ा रगीन वस्त्र (जो अन्य लोगों से उसका विभेद कर सके) एक कमरबद जीर्ण शीर्ण वस्त्र और मिट्टी का एक पात्र रहता था।[367]

साधारण बोलचाल की भाषा में वह व्यक्ति चडाल कहलाता था जिसमें कोई भी गुण न हो जो धर्म और नैतिक चरित्र से विहीन हो।[368] फिक ने ठीक ही कहा है कि जातकों से प्रकट होता है कि चडालों का जो चित्रण उन्होंने किया है, उसमें व्यवहार और सिद्धात में बहुत अतर नहीं है।[369] किंतु यह बडा महत्वपूर्ण है कि चडालों के सबध में अधिकाश प्रसग बाद के जातकों में खासकर चाथे खड में आए है अत ये मौर्यपूर्व काल के अत अथवा उसके बाद के भी माने जा सकते हैं।

पुल्कस और पुक्कुस ऐसी आदिम जाति के ज्ञात होते है जो शिकार करके या बाँस की वस्तुएँ बनाकर जीवनयापन करते थे,[370] किंतु धीरे धीरे उन्हें ब्राह्मणकालीन समाज में खास खास ढग के कार्यों के लिए रख लिया गया यथा मदिर और राजमहल से फूलों को

हटाना ।[371] फूल हटाने के लिए वे मंदिर के प्रागण में प्रवेश कर सकते थे, जिससे पता चलता है कि वे चडाल जैसे अधम नहीं माने जाते थे।

वेण एक दूसरी जनजाति थी जो शिकार और बाँस का काम करके निर्वाह करती थी।[372] एक परवर्ती जातक में वेणुकार या वेलुकार का वर्णन आया है जो बाँस काटकर बोझा बनाने के लिए चाकू लेकर जगल जाता है, ताकि उसका व्यापार कर सके।[373] धर्मसूत्रों में वेणों की भी उत्पत्ति का अन्वेषण किया गया है। बौधायन का मत है कि वैण वैदेहक पिता (वैश्य पिता और क्षत्रिय माता से उत्पन्न) और अबष्ठ माता (ब्राह्मण पिता और वैश्य माता से उत्पन्न) की सतति था।[374] इस प्रकार चडाल और पुल्कस की भाँति वैण में शूद्र का रक्तसपर्क नहीं था। यद्यपि एक परवर्ती जातक में वेणी शब्द को चडाल के साथ कोष्ठबद्ध किया गया है,[375] फिर भी ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिलता जिससे यह पता चले कि वेणों को चडाल के समान अस्पृश्य समझा जाता था। *विनय पिटक* की टीका में स्पष्ट बताया गया है कि वेण के रूप में जन्म लेने का अर्थ हुआ बढ़ई (तक्षक) के रूप में जन्म लेना।[376] जब वैण और तक्षक शब्द समान अर्थबोधक है तब यह बात विचित्र लगती है कि जिस तक्षक को वैदिक समाज में ऊँचा दर्जा मिला हुआ था उसे बौद्ध ग्रथों में अधम जाति की कोटि में दिखाया जाए।

बौद्ध ग्रथों में रथकार को भी अधम जाति का माना गया है किंतु ब्राह्मण ग्रथों में उसकी सामाजिक हैसियत उच्च कोटि की ही रखी गई है। गृह्यसूत्र में उसके उपनयन का भी उपबध किया गया है।[377] रीज डेविड्स का विचार है कि रथकार आदिम जाति के थे।[378] यह सही नहीं मालूम पडता, क्योंकि वैदिक काल में वे आर्य विश् के अग थे। किंतु सभव है, बाद में कुछ आदिम जातियाँ रथकारों की पक्ति में मिला दी गई हों। परवर्ती जातक के एक अनुच्छेद[379] के आधार पर यह सुझाव दिया गया है कि रथकार का ओहदा इसलिए गिर गया कि उसने चर्मकार का काम आरभ कर दिया।[380] किंतु रथकार भी राजा के रथ के पहिए बनाने में सलग्न रहता था।[381] इतना ही नहीं यद्यपि चर्मकार का काम हीन कोटि का माना जाता था फिर भी वह अधम जातियों की सूची में नहीं रखा गया था। बौद्ध ग्रथों में रथकार को अधम जाति का मानने का एक कारण प्राय यह था कि बौद्धों को युद्ध से घृणा थी और रथकार युद्ध के लिए रथों का निर्माण करते थे। जो भी हो इतना तो स्पष्ट है कि वे चडाल और पुक्कुस के स्तर तक नीचे नहीं गिरे थे।

बौद्धों ने हीन जातियों की जो सूची बनाई उसमें नेसादों को कैसे सम्मिलित किया गया, इसकी व्याख्या करना बहुत कठिन नहीं है। यह धर्मसूत्रों में उनकी हीन स्थिति से मिलता जुलता है। वे लोग आर्यपूर्व जनजातियों में से थे जो नाटे कद के होते थे। उनका रग कोयले जैसा काला आँखें लाल[382] कपोल उभरे हुए नाक चिपटी और बाल ताँबे के

रंग के थे।[383] उनके संबंध में विचित्र परंपरा चली आ रही है कि वे वेण राजा के तन से उत्पन्न हुए थे,[384] जिसने मुनियों पर बहुत अत्याचार किए। इससे अनुमान किया जा सकता है कि उन्होंने ब्राह्मणवाद के विकास का विरोध किया था। जब उन्हें ब्राह्मणप्रधान समाज में समाविष्ट कर लिया गया तब भी निषाद मुख्यतया शिकारी ही बने रहे[385] और अपने गाँवों में निवास करते रहे।[386] संभव है कि कुछ निषादों ने ब्राह्मणों के वर्ग में स्थान पा लिया हो। यद्यपि गोत्रों की किसी भी मानक सूची में निषाद गोत्र का उल्लेख नहीं है, फिर भी पाणिनि के गणपाठ[387] में निषाद गोत्र की चर्चा हुई है। ऐसा तभी संभव हुआ होगा, जब आदिवासी पुरोहितों में से कुछ को ब्राह्मणों का दर्जा दे दिया गया होगा या जब ब्राह्मण आदिम निवासियों के पुरोहितों के रूप में काम करने लगे होंगे।[388] इतना तो स्पष्ट है कि इस काल में निषाद उस दर्जे से नीचे अवश्य आ गए थे जो वैदिक समाज में उन्हें मिला था।

पालि ग्रंथों में उल्लिखित कुछ हीन जातियों खासकर निषादों और चंडालों को तो अवश्य ही अछूत माना जाता था। सामूहिक रूप से अछूत अंत्य या बाह्य कहे जाते थे, अर्थात वे लोग गाँव या नगर के बाहर रहनेवाले थे। गौतम ने अंत्य को पापिष्ठ माना है।[389] वसिष्ठ ने भद्र शूद्रों और अंत्ययोनियों के बीच अंतर करते हुए बताया है कि अंत्ययोनि के लोग केवल अपने मुकदमे में गवाह बनकर उपस्थित हो सकते थे।[390] *आपस्तंब धर्मसूत्र* में अंत शब्द का प्रयोग चंडाल के प्रसंग में हुआ है और उसमें बताया गया है कि वह गाँव के आखिरी छोर पर रहता था।[391] इसी संदर्भ में हरदत्त ने बाह्यों को, जिनके सामने वेदपाठ करना निषिद्ध था उग्र और निषाद कहा है।[392] वसिष्ठ के मतानुसार अंतावसायिन् ऐसी जाति थी जिसकी उत्पत्ति शूद्र पुरुष और वैश्य स्त्री से हुई थी।[393] कहा गया है कि जो ब्राह्मण पिता अंतावसायिनी के साथ रहे या उस समुदाय की किसी स्त्री का संभोग करे उसे जाति से बहिष्कृत कर देना चाहिए।[394] अछूत साधारणतया गाँवों और नगरों के छोर पर अथवा अपनी बस्तियों में रहते थे। उनका विलगाव किन्हीं प्राचीन आर्य बस्तियों से जान बूझकर बाहर निकाले जाने की नीति के फलस्वरूप नहीं हुआ था। मालूम होता है कि आदिम जातियों के गाँवों की पूरी आबादी को ब्राह्मणों ने अस्पृश्य घोषित कर दिया था।

धर्मसूत्रों में अस्पृश्यता की उत्पत्ति की जो व्याख्या की गई है उसे स्वीकार करना संभव नहीं है क्योंकि इसमें अस्पृश्य उसे कहा गया है जो विभिन्न जातियों से उत्पन्न हो। बताया गया है कि अधिकांश मामलों में अस्पृश्यों की उत्पत्ति बाह्य समुदायों के सर्वथा विलग और परंपरारहित जीवन के परिणामस्वरूप हुई।[395] किंतु यह विचार तर्कसंगत नहीं लगता क्योंकि यह सामाजिक तथ्य मौर्यपूर्व काल में प्रकट हुआ जब बौद्ध धर्म का उद्भव

और विकास हुआ। यह भी कहा गया है कि जिन लोगों ने गोमांस खाना जारी रखा, उन्हें अछूत करार दिया गया।[396] हो सकता है कि इस कारण आगे चलकर उनकी संख्या बढ़ी हो, किंतु यह उनकी उत्पत्ति की व्याख्या नहीं मानी जा सकती, क्योंकि मात्र *गौतम धर्मसूत्र*[397] को छोड़ कहीं भी कुछ ऐसा नहीं दिखाई पड़ता, जिससे पता चलता हो कि इस युग में ब्राह्मण समाज में गोमांस खाना निषिद्ध था। यह भी तर्क दिया जाता है कि घृणा की जिस भावना से अस्पृश्यता का विकास हुआ, वह भारतीय आर्यों में मूलतया नहीं थी, बल्कि उसका प्रवेश द्रविड़ों के माध्यम से हुआ जिनके बीच दक्षिण में आज भी अस्पृश्यता की भावना प्रबल है।[398] किंतु इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता कि ब्राह्मणप्रधान समाज में द्रविड़ों के आत्मसात्करण के पहले उनके द्वारा ब्राह्मणवाद के अंगीकार के पहले दक्षिण में अस्पृश्यता प्रचलित थी। इसके विपरीत दक्षिण के विधिप्रवर्तक बौधायन ने तथा आपस्तंब ने आहार और स्पर्श के विषय में शूद्रों के प्रति उतना कट्टर दृष्टिकोण नहीं अपनाया है, जितना धर्मसूत्रों के दो अन्य उत्तरक्षेत्रीय लेखकों ने अपनाया है। इसके अलावा पहले यह भी बताया गया है कि उच्च वर्ण के लोग जो आर्य होने का दावा करते थे, किस प्रकार कुछ शिल्पों और व्यवसायों को हेय समझते थे। अतः यह निष्कर्ष निकलता है कि अस्पृश्यता की भावना का उद्भव कुछ व्यवसायों को अपवित्र मानने के सिद्धांत के आधार पर हुआ है।[399] किंतु महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि कुछ व्यवसाय क्यों अपवित्र माने जाएँ ?

अस्पृश्यता की उत्पत्ति का एक कारण आदिम जातियों का संस्कारहीन जीवन था क्योंकि वे मुख्यतया शिकारी और बहेलिए के रूप में जीवन बिताते थे और उनकी तुलना में ब्राह्मण समाज के लोग धातुकर्म और कृषि का ज्ञान रखते थे तथा नगरजीवन का विकास कर रहे थे।[400] बौद्ध ग्रंथों में इन जातियों के हीन संस्कार और तज्जन्य उनकी दुरवस्था का वर्णन इन शब्दों में किया गया है 'यदि वह मूढ़ इतनी लंबी अवधि के बाद मनुष्य की कोख में जन्म लेता भी है तो वह नीच जाति के घर जाता है जैसे चंडाल, नेसाद वेण रथकार और पुक्कुस। इनका पुनर्जन्म घुमक्कड़ और अकिंचन के रूप में अभावग्रस्त जीवन बिताने के लिए होता है, इन्हें पेट भर भोजन और शरीर पर वस्त्र शायद ही मिल पाता है।[401] इससे पता चलता है कि इन अधम जातियों का जीवन बड़ा संकटमय था और इनकी हालत वैसे शूद्रों से कहीं बदतर थी जो दासों और कम्मकरों के रूप में नियोजित थे और जीविका की दृष्टि से कुछ हद तक सुरक्षा का अनुभव करते थे। भौतिक जीवन की यह विषमता युद्ध ब्राह्मण समाज में बढ़ रही घृणा की भावना के साथ उग्र होती चली गई। तत्कालीन ग्रीक समाज[402] की भाँति ही वैदिक काल के पश्चातवर्ती समाज में शारीरिक श्रमवाले कार्यों और व्यवसायों के प्रति घृणा के भाव दिखाई पड़ते हैं। उच्च वर्ण के लोग खासकर ब्राह्मण और क्षत्रिय धीरे धीरे उत्पादन कार्य से हाथ खींचने लगे और अपनी

स्थिति तथा कृत्यों के संबंध में वंश-परंपरा का निर्वाह करने लगे जिसका परिणाम यह हुआ कि उनके मन में न केवल शारीरिक श्रमवाले कार्यों के प्रति घृणा बढी, बल्कि वे उन्हें भी हेय समझने लगे जो इस तरह का कार्य करते थे।

आदिम जातियों की हीन संस्कृति श्रमसाध्य कार्य के प्रति बढते हुए घृणा के भाव, और निषेध तथा अपवित्रता संबंधी अतिप्राचीन विचारों की पृष्ठभूमि में अस्पृश्यता जैसी असाधारण भावना का उदय हुआ। यह खासकर चंडाल के कार्य के बारे में सत्य था जो शवों को निपटाता था और जिस कार्य को पुराने विचार के लोग अपवित्र और घृणास्पद समझते थे। नतीजा यह हुआ कि लोग ऐसे व्यक्तियों का संग साथ छोड़ने लगे। आगे चलकर न केवल निषादों और पुल्कसों को ही, वरन चमड़े के व्यवसायियों और बुनकरों को भी अस्पृश्य माना जाने लगा। यों इस काल में यद्यपि चम्मकारों और पेसकारों का कार्य हेय समझा जाता था फिर भी खुद उन्हें अस्पृश्य नहीं माना जाता था।

अततः हमें यह देखना है कि इस काल के धार्मिक सुधार आंदोलनों ने शूद्रों की स्थिति को कहाँ तक प्रभावित किया। जहाँ तक धार्मिक उद्धार का संबंध है, बौद्ध धर्म ने न केवल चारों वर्णों के लिए अपना दरवाजा खोलकर उन्हें संघ में प्रवेश करके भिक्षु बनने की अनुमति दी[403] बल्कि चंडालों और पुक्कुसों को भी निर्वाण प्राप्त करने योग्य बताया।[404] जब डाकू अंगुलिमाल को बौद्ध संप्रदाय में लिया गया तब उसने प्रसन्नतापूर्वक कहा 'वस्तुतः अब मेरा आर्य कुल में जन्म हुआ है।'[405] इससे पता चलता है कि बौद्धों ने अपने मठों में शूद्रों को जो प्रवेश दिया उससे जनजातियों के दीक्षा पाने के प्राचीन अधिकार उन्हें वापस मिल गए जिनसे वे ब्राह्मण समाज द्वारा वंचित कर दिए गए थे। किंतु जहाँ जनजातियों की जीवन दीक्षा उन्हें इस संसार के व्यावहारिक जीवन के लिए तैयार करती थी वहाँ यह नई दीक्षा उन्हें इस जीवन के कष्टों से त्राण पाने के लिए आध्यात्मिक दृष्टि देती थी।[406]

ज्ञान प्रदान करने में बौद्ध धर्म किसी प्रकार का भेदभाव नहीं करता था। बुद्धदेव कहते थे कि जिस प्रकार राजा या राज्यक्षेत्र के स्वामी के लिए सारा राजस्व अपने ही हित में लगाना श्रेयस्कर नहीं है उसी प्रकार ब्राह्मण या श्रमण का सारे ज्ञान पर एकाधिकार कर लेना उचित नहीं।[407] बुद्धदेव के विचारानुसार कोई भी व्यक्ति चाहे वह किसी भी जाति का क्यों न हो अध्यापक बन सकता है। कहा गया है कि अध्यापक शुद्ध चंडाल या पुक्कुस क्यों न हो उसका हमेशा आदर किया जाना चाहिए।[408] बौद्ध धर्म की मनोवृत्ति का एक विशिष्ट उदाहरण जातक कथा में मिलता है, जिसमें कहा गया है कि एक ब्राह्मण ने चंडाल से जादू सीखा किंतु लज्जावश उसे गुरु नहीं स्वीकार करने के कारण वह जादू भूल गया।[409] दूसरा उदाहरण एक बोधिसत्त चंडाल का है जिसने शास्त्रार्थ में पराजित अपने एक ब्राह्मण

शूद्रों जैसे गरीब लोग भौतिक लाभ की दृष्टि से संघ की शरण लेते थे। वे भिक्खुओं के जीवन की कामना करते थे, जो अच्छा भोजन करके बाहर की हवा से बचकर आराम से बिछावन पर लेटते हैं।[431]

किंतु बौद्ध और जैन मठों के नियमानुसार यह इष्टकर नहीं समझा जाता था कि बहुत बड़े श्रमिक वर्ग को संघ में लेकर सांसारिक कर्तव्यों से विरत कर दिया जाए। कोई दास या ऋणी बौद्ध मठ में तब तक नहीं प्रवेश पा सकता था[432] जब तक कि दास का मालिक उसे दासत्व से मुक्ति न दे दे और ऋणी अपना ऋण-शोधन न कर दे। संघ में प्रवेश करने के लाभ स्पष्ट थे। एक उपदेश वार्ता के क्रम में बुद्धदेव अजातशत्रु से खासतौर से पूछते हैं कि क्या आप ऐसे भूतपूर्व दास को, जो संघ का सदस्य बन गया है, अपना दास मानेंगे और उसे पुन: दास कर्म के लिए बाध्य करेंगे। राजा का उत्तर स्पष्टतया नकारात्मक है।[433] संभवतया इस प्रसंग में ऐसे दास की चर्चा है जो स्वामी की अनुमति से संघ में दाखिल हुआ हो। जैन मठ में भी जिन लोगों के लिए प्रवेश वर्जित था, वे थे डकैत राजा के शत्रु, ऋणी, अनुचर सेवक और ऐसे लोग जिनका बलात् धर्म परिवर्तन किया गया हो।[434]

बौद्ध और जैन धर्म ने तात्कालिक सामाजिक और आर्थिक संबंधों को स्वीकार करते हुए भी दासों की स्थिति सुधारने के कुछ दूसरे तरीके अपनाए। एक धर्मसूत्र ने केवल ब्राह्मणों के लिए मनुष्य का व्यापार वर्जित किया था[435] किंतु वह भी दासों के बदले दासों का विनिमय कर सकता था।[436] पर बौद्ध और जैन धर्मग्रंथों ने अपने साधारण अनुयायियों के लिए भी मनुष्य का व्यापार निषिद्ध किया है।[437] फिर भी एक बौद्ध ग्रंथ में कहा गया है कि आर्य शिष्य दासों और कम्मकरों से समृद्ध बनते हैं।[438] इससे पता चलता है कि साधारण उपासक अपने दासों की संख्या अन्य तरीकों से बढ़ा सकता था। भिक्खु दास नहीं रखते थे। जातक कथा के एक अनुच्छेद[439] का यह अर्थ लगाया गया है कि भिक्खुओं के दास अपने बीमार मालिकों के लिए रुचिकर भोजन प्राप्त करने के उद्देश्य से नगर में जाते थे।[440] किंतु यह अर्थ उक्त परिच्छेद के गलत रूपांतर के आधार पर किया गया है।[441] इस परिच्छेद में दासों और मालिकों की चर्चा नहीं की गई है बल्कि ऐसे अन्य भिक्खुओं का उल्लेख किया गया है जो अपने बीमार बंधुओं की सुश्रूषा करते थे और जिन्हें 'आवुसो' शब्द से संबोधित किया जाता था। यह ऐसा शब्द है जो सामान्यतया भिक्खुओं के लिए प्रयुक्त होता है।[442]

बौद्ध और जैन धर्म ने अपने अनुयायियों में अपने कर्मचारियों के प्रति उदारता और दयालुता की भावना जगाने का प्रयास किया। *दीघ निकाय* के एक परिच्छेद में यह आदेश दिया गया है कि मालिकों को चाहिए कि वे अपने दासों और कामगारों के प्रति भद्र व्यवहार करें उन्हें सामर्थ्य से बाहर कार्य नहीं दें। उन्हें भोजन और मजूरी दें अस्वस्थावस्था में

उनकी देखभाल करें, समय समय पर उन्हें छुट्टी दें, और अपने असाधारण सुस्वादु भोजन में से हिस्सा दें। नौकर को भी चाहिए कि मजूरी से संतुष्ट रहे, ठीक से काम करे और अपने मालिक का नाम बनाए रखे।[443] अशोक ने भी अपनी प्रजा को ऐसे अनुदेश दिए थे। जातक में भी कहा गया है कि यदि मालिक बोधिसत्व हो तो वह दास से अच्छा व्यवहार करता है।[444] एक जैन ग्रंथ में कहा गया है कि धन का संचय न केवल सगे संबंधियों और राजाओं के लिए बल्कि दासों, दासियों, कम्मकरों और कर्मचारियों के लिए भी किया जाना चाहिए। इस तरह यह सुझाव दिया गया है कि ये दास, दासियाँ, कम्मकर आदि अपने मालिक से भरण पोषण पाने के हकदार हैं।[445]

हमें इस बात का स्पष्ट ज्ञान नहीं हो पाता है कि निम्नवर्गीय लोगों में अपधर्मी संप्रदाय के अयाजकीय अनुयायियों की संख्या कितनी थी। शिल्पी समुदायों के बीच बौद्ध धर्म के कुछ अनुयायी अवश्य थे।[446] आजीविक संप्रदाय कुंभकारों के बीच विशेष रूप से प्रचलित था और उनके बीच इसका विशेष आकर्षण था।[447] सुधारवादी धर्मों ने कृषि तथा कुछ अंश तक शिल्प व्यापार पर आधारित वर्ण व्यवस्था को मजबूत अवश्य किया, पर उन्होंने निम्न वर्ग के लोगों की स्थिति में किसी तरह कोई मूलभूत परिवर्तन नहीं किया। बौद्ध मठों में ऐसे लोगों का अनुपात और महत्व नगण्य मालूम होता है। प्राचीन बौद्ध धर्म में समता के सिद्धांत का अवलंबन रहने पर भी अभिजात तंत्र (तीनों प्रकार के, जन्म विद्या और वैभव) की ओर विशेष झुकाव था, जिसे परंपरा की देन कहा जा सकता है।[448] यह कहना तो अतिरंजना होगी कि बुद्धदेव के प्रादुर्भाव से भारत के सामाजिक संघटन पर कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा।[449] किंतु बौद्धों ने उस वर्ण व्यवस्था के आधारभूत तथ्यों का शायद ही कभी खुलकर विरोध किया जिसके अनुसार शूद्रों को सेवि वर्ग के अंतर्गत रखा गया था। ब्राह्मणों का यह दावा था कि वे अन्य तीन वर्णों से श्रेष्ठ हैं, किंतु गौतम बुद्ध ने इसका खंडन करते हुए बताया है कि जहाँ तक उद्भव का प्रश्न है, क्षत्रिय उच्च है और ब्राह्मण निम्न। पर वे वैश्यों और शूद्रों की अपेक्षा न तो ब्राह्मणों और न क्षत्रियों की ही श्रेष्ठता पर कोई आपत्ति करते हैं।[450] बौद्ध धर्म केवल यह बताने का प्रयास करता है कि मुक्ति की खोज में जाति का कोई महत्व नहीं।[451] ईसाई धर्म की ही तरह इस काल के धार्मिक सुधार आंदोलनों ने भी दासता की बुनियाद पर कभी कोई आघात नहीं किया। उन्होंने शूद्रों की आर्थिक एवं राजनीतिक अशक्तताओं को भी दूर करने का कोई प्रयास नहीं किया। उलटे बौद्ध संघ का दरवाजा गुलामों और कर्जखोरों के लिए बंद था, और बौद्ध धर्म कर्ज की अदायगी पर जोर देता था।

ऊपर के विचार विमर्श से पता चलता है कि वैदिक काल के पश्चात शूद्रों की स्थिति अस्पष्ट नहीं रह गई। इस काल में वे शेष जातीय अधिकारों से वंचित कर दिए गए और

आर्थिक, राजनीतिक सामाजिक तथा धार्मिक अशक्तताएँ उनके सिर मढ दी गईं। तीनों उच्च वर्णों से उनमें स्पष्ट विभेद कर दिया गया, उन्हें वैदिक यज्ञ, दीक्षा शिक्षा और प्रशासनिक पदों पर नियुक्ति से वंचित रखा गया और सबसे बड़ी बात तो यह हुई कि उन्हें दास, कृषि मजदूर और शिल्पियों के रूप में द्विजों की सेवा करने का भार सौंपा गया। इस संबंध में प्राचीन बौद्ध और जैन ग्रंथों में निम्नवर्गीय लोगों का जो चित्र उभरता है, वह सारतः भिन्न नहीं है। बौद्ध ग्रंथों में बार-बार प्रथम तीन वर्णों के लोगों को धनधान्य से परिपूर्ण बताया गया है,[452] किंतु दासों शूद्रों और कम्मकरों की चर्चा भी नहीं की गई है। ऐसा उल्लेख मिलता है कि बुद्धदेव ने ब्राह्मण, क्षत्रिय और गहपति उपासकों[453] की सभाओं में भाग लिया था पर शूद्रों की सभा का कोई उल्लेख नहीं है।

ऐसा कहना सतही होगा कि शूद्रों को यज्ञ कर्म और उच्च वर्णों की पंगत से विलग रखने के पीछे केवल यही भावना थी कि धर्म कर्मों की पवित्रता और शुचिता बनी रहे।[454] यह विशेष रूप से ध्यातव्य है कि इस तरह की भावना तभी पनपी होगी जब समाज के अनेक लोगों को पीढ़ियों तक श्रमजीवी बने रहने की स्थिति में पहुँचा दिया गया होगा और परिणामस्वरूप उन्हें अपने कार्य के आधार पर अपवित्र मान लिया गया होगा। निम्नवर्गीय लोगों के शारीरिक श्रम के प्रति घृणा की इस भावना ने अंततः अस्पृश्यता को जन्म दिया।

धर्मसूत्रों, खासकर वसिष्ठ और गौतम के धर्मसूत्रों में यह प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है कि पवित्रता भोजन और विवाह की दृष्टि से वैश्यों को शूद्र ही समझना चाहिए। यह ऐसी प्रक्रिया है जो समान रूप में बौद्ध ग्रंथों में भी पाई जाती है। बुद्धदेव कहते हैं कि संबोधन सत्कार, उपगम और बर्ताव के विषय में वैश्यों और शूद्रों की अपेक्षा क्षत्रियों और ब्राह्मणों को प्राथमिकता दी जानी चाहिए।[455] बाद के (संभवतया मौर्यकालीन) एक बौद्ध ग्रंथ में गोत्र केवल क्षत्रियों और ब्राह्मणों के ही बताए गए हैं।[456] जातक के एक प्रारंभिक परिच्छेद में यह दावा किया गया है कि बौद्धों का जन्म वैश्य या शूद्र जाति में कभी नहीं होता है बल्कि उनका जन्म दो अन्य उच्च जातियों में होता है।[457] किंतु यह परिच्छेद खास जातक का अंश नहीं है और इसे बाद का माना जा सकता है। इसी प्रकार का विचार जैन गुरुओं के जन्म के संबंध में भी प्रकट किया गया है और यह माना गया है कि उनका जन्म नीच पतित, गरीब अकिंचन या ब्राह्मण परिवारों में कभी नहीं होता है।[458] स्पष्ट है कि इस सूची में ब्राह्मण को शामिल करने का कारण धार्मिक वैरभाव है। किंतु सूची के शेष सदस्य सामान्यतया निम्न वर्ग के कहे जा सकते हैं। वैश्यों को शूद्रों में मिलाने की प्रवृत्ति प्रायः इस काल के अंत की मालूम होती है। इससे शूद्रों की संख्या बढ़ी होगी क्योंकि दरिद्र वैश्यों को इन शूद्रों की कोटि में रख दिया गया होगा। किंतु ऐसा लगता है कि इस काल में वैश्यों की सामाजिक स्थिति पर इस बात का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। इसी प्रकार सुधारवादी धर्मों ने भी

मोजूदा समाज व्यवस्था में कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन नहीं किया और शूद्रों की आर्थिक, राजनैतिक तथा कानूनी अशक्तताएँ पूर्ववत बनी रहीं।

शूद्रों की अशक्तताओं और वर्णप्रथा के ढाँचे को समझने के लिए बौद्धकालीन भौतिक परिवेश की समझ आवश्यक है। लोहे का बड़े पैमाने पर प्रयोग होने के कारण गगा के मैदान खेती के लायक बनाए गए और पहले पहल लोहे के फाल के उपयोग के कारण बडे बडे खेत कायम हुए। खेती की जमीन का बँटवारा असमान हुआ और कुछ लोगों के पास इतनी अधिक जमीन हो गई कि वे उसे अपने कुटुब की सहायता से नहीं जोत सकते थे। इसके लिए उन्हें श्रम की आवश्यकता थी जो दास और कम्मकर ही दे सकते थे। उल्लेखनीय है कि वैदिक साहित्य में 'कर्मकर शब्द का प्रयोग भाडे के मजदूर के अर्थ में नही हुआ है, यह प्रयोग वैदिकोत्तर सूत्र साहित्य में होता है और पालि में कर्मकर को कम्मकर कहा गया है।

खेती में श्रम की आवश्यकता केवल बडे बडे कृषकों और गहपतियों को ही नही थी, बल्कि साधारण गृहस्थों को भी एकाध दास अथवा कर्मकर की जरूरत होती थी। कृषकों के कर देने के कारण महाजनपदों अथवा बडे राज्यों का जन्म हुआ, जिनके अधिकारी वर्ग टैक्सों पर जीते थे और उत्पादन कार्य से मुक्त थे। उनकी सेवा और घरेलू काम के लिए भी दासों और कर्मकरों की आवश्यकता थी। ऐसे पुरोहित अथवा ब्राह्मण को भी सेवकों की आवश्यकता थी जो राजाओं और कृषकों के दान दक्षिणा से धनाढ्य बन गए थे। राजाओं के हथियार बनाने के लिए और कृषकों के औजार बनाने के लिए बडे पैमाने पर कामगरों की जरूरत थी। इस प्रकार खेती और कारीगरी को चलाने के लिए खेतिहर मजदूर और शिल्पी लगाए जाने लगे। उन्हें अपने श्रम के अनुरूप पारिश्रमिक नहीं मिलता था और उनकी मेहनत के फल का खासा हिस्सा उच्च वर्ग के लोगों को मिलता था।

इस प्रकार की सामाजिक सरचना को कायम रखने के लिए वर्णव्यवस्था का निर्माण किया गया। इसके अनुसार दासों कर्मकरों शिल्पियों और घरेलू सेवकों को शूद्र वर्ण की सज्ञा दी गई। उन पर भाँति भाँति की अशक्तताएँ इसलिए लादी गई ताकि वे उच्च वर्ण के लोगों की अनवरत सेवा करते रहें अपने श्रम का यथेष्ठ भाग उनकी सुख सुविधा के लिए देते रहें, और उनके विरुद्ध किसी प्रकार का विरोध न करें। इन अशक्तताओं के प्रति शूद्रों की क्या प्रतिक्रिया हुई इसकी बहुत कम जानकारी मिलती है। किंतु इस मामूली जानकारी के आधार पर भी इस मत को स्वीकार करना कठिन है कि 'जीवनयापन के लिए भीषण सघर्ष नही चल रहा था और समाज व्यवस्था शातिपूर्ण ढग से चलती जा रही थी।[459] *वसिष्ठ धर्मसूत्र* की एक कडिका में शूद्रों के निम्नलिखित लक्षण बताए गए हैं चुगली खाना असत्य बोलना निर्दयी होना छिद्रान्वेषण करना ब्राह्मणों की निन्दा करना और उनके प्रति निरतर वैर भाव रखना।[460] इससे यह सकेत मिलता है कि शूद्र आमतौर से

तत्कालीन वर्णव्यवस्था के प्रति और खासकर आदर्श वर्णनेता ब्राह्मणों के प्रति शत्रुता का भाव रखते थे। किंतु जैसा ऊपर बताया गया है, मालिक अपने दासों और मजूरों के प्रति अधिक कठोर रहता था।[461] दास और मजूर की कठोरता अपने मालिक के प्रति अपेक्षाकृत कम होती थी। दासों की क्रांति का एकमात्र उदाहरण विनय पिटक में मिलता है,[462] और यह बड़े साधारण प्रकार की थी। कहा जाता है कि एक बार कपिलवस्तु के शाक्यों के दास काबू से बाहर हो गए और जंगल में भिक्खुओं को खाना पहुँचाने के लिए गई हुई स्त्रियों के साथ छीना झपटी की तथा उनका सतीत्व भंग किया।[463]

निम्न वर्ग के लोग सामान्यतया विरोध का जो तरीका अपनाते थे वह था अपने मालिक का काम छोड़कर चल देना। यह स्थिति केवल कर के बोझ से दबे हुए गहपतियों की ही नहीं थी, [464] बल्कि शिल्पियों और दासों का भी यही हाल था। बाद के एक जातक से हमें जानकारी मिलती है कि लकड़हारों की एक बस्ती को एक काम संपन्न करने के लिए पहले ही भुगतान कर दिया गया था पर जब उन्होंने उसे पूरा नहीं किया तो काम पूरा करने के लिए उन्हें बाध्य किया गया। किंतु तथाकथित 'प्राच्य वैराग्य भावना' से अपने भाग्य के भरोसे न बैठकर उन्होंने चुपचाप मजबूत नाव बनाई और अपने परिवार सहित रातोंरात गंगा नदी के रास्ते समुद्र में पहुँच गए और तब तक चलते रहे जब तक उन्हें एक उपजाऊ द्वीप नहीं मिला।[465] काम छोड़कर भाग निकलना दासों के लिए आम बात थी। श्रीमती रीज डविड्स का यह कथन गलत है कि भगोड़े दासों के उदाहरण नहीं मिलते।[466] जातक में कम से कम दो ऐसे उदाहरण मिलते हैं जिनसे पता चलता है कि दासों ने भागकर मुक्ति पाई।[467] यह भी कहा गया है कि भागे हुए दासों ने बौद्ध मठ में शरण ली।[468] बाद के एक जातक में कहा गया है कि बलि के लिए रखे गए कुछ व्यक्तियों ने अपनी जान बचाने के लिए अत्याचारी पुरोहित को बताया कि वे जंजीर में बँधे रहकर भी उसका दास बनकर सेवा करने को तैयार हैं।[469] इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि कुछ मामलों में दासों को कड़ियों में बाँधकर रखा जाता था ताकि वे भाग न निकलें। मक्खलि गोसाल विषयक बौद्ध परंपरा में आजीवक नेता को भगोड़ा बताया गया है जो भले ही सत्य न हो [470] पर इससे ऐसा संकेत तो मिलता ही है कि दास के भाग निकलने की संभावना रहती थी। एक जगह कहा गया है कि मालिक का नियंत्रण नहीं रहने के कारण दास और कम्मकर अपनी संपत्ति के साथ भाग निकले।[471] इन उदाहरणों से पता चलता है कि सामान्यतया मजदूर वर्ग के लोग अपना कार्य छोड़कर भाग जाते थे और इस तरह तत्कालीन व्यवस्था के प्रति अपना रोष प्रकट करते थे। ग्रीस या रोम के दासों के विद्रोह जैसे दृष्टांत नहीं मिलते हैं। फिर भी धर्मसूत्रों में कहा गया है कि वर्णसंकर की स्थिति आने पर ब्राह्मण और वैश्य भी आत्मरक्षा के लिए शस्त्र धारण कर सकते थे। क्षत्रियों को तो

हमेशा से यह अधिकार था ही।[472] यह तथ्य कि आपतकालीन स्थिति में तीन वर्णों के लोग ही शस्त्र धारण कर सकते हैं,[473] यह सूचित करता है कि नियम बनानेवाले के मन में ऐसी आकस्मिक स्थिति की कल्पना रही होगी, जब शूद्र बलपूर्वक वर्ण की सीमाओं को तोड़ने का प्रयास करेंगे। यद्यपि कपिलवस्तु के दासों की सामान्य क्रांति को छोड़, इस तरह के प्रयास का कोई दृष्टांत नहीं मिलता, फिर भी वसिष्ठ के नियम से पता चलता है कि उच्च वर्णों के लोगों को आशंका थी कि शूद्रों पर जो अशक्तताएँ लादी गई हैं, उनके चलते कहीं वे व्यापक विद्रोह न कर बैठें।

संदर्भ

1 काणे 'हिस्ट्री ऑफ धर्मशास्त्र' II भाग I पृ XI अल्टिन रेस्टिम्स्टेन पृ VII मेयर बौधायन धर्मसूत्र और आपस्तंब धर्मसूत्र को बुद्ध से पहले का मानते हैं और वसिष्ठ धर्मसूत्र को ई पू चौथी शताब्दी का बताते हैं हापकिंस ' कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इंडिया I पृ 249
2 कीथ कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इंडिया I पृ 113
3 अग्रवाल इंडिया ऐज नोन टु पाणिनि पृ 475
4 बुहलर सेक्रेड बुक्स ऑफ दि ईस्ट' II पृ XLV काणे पूर्व निर्दिष्ट,I पृ 13
5 गौतम धर्मसूत्र IV पृ 21 हापकिंस पूर्व निर्दिष्ट, I पृ 240 पाद टिप्पणी 1 हापकिंस मानते हैं कि यह बैक्ट्रियन और अन्य एशियाई ग्रीकों के बारे में है
6 गौतम धर्मसूत्र V पृ 41-42, पृ 45
7 बुहलर पूर्व निर्दिष्ट,II पृ XLIX
8 गौतम धर्मसूत्र XXII पृ 18
9 वही IV पृ 16 21
10 बी के घोष (इंडियन हिस्टारिकल क्वार्टर्ली कलकत्ता पृ III) 6 7 11
11 हापकिंस पूर्व निर्दिष्ट I, पृ 242
12 बौधायन धर्मसूत्र II 7 17 17 काणे पूर्व निर्दिष्ट, I पृ 44
13 हापकिंस पूर्व निर्दिष्ट I, पृ 249 50
14 विंटरनिज हिस्ट्री ऑफ इंडियन लिटरेचर I पृ 274
15 काणे पूर्व निर्दिष्ट II भाग I पृ XI
16 ला हिस्ट्री ऑफ पालि लिटरेचर I पृ 30-33
17 वही पृ 15
18 टी डब्ल्यू आर डेविड्स बुद्धिस्ट इंडिया पृ 207 जातकों के प्राचीन तिथि निर्धारण के लिए देखें
19 ला पूर्व निर्दिष्ट I पृ 30 हापकिंस पूर्व निर्दिष्ट I पृ 260 पाद टिप्पणी 1 इस विषय का नवीनतम विवेचन ओ फाइजर के निबंध दि प्राब्लम ऑफ [illegible] एट्रिज इन बुद्धिस्ट जातकाज (आर्कीव ओरियेंटैलिनी भाग XXII) पृ 238 9 में मिल सकता है

20 फाइजूर पूर्व निर्दिष्ट पृ 238 9
21 वही XXII 249 टी डब्ल्यू आर डेविड्स पूर्व निर्दिष्ट पृ 208
22 डी डी कोसम्बी 'एन इट्रोडक्शन टु द स्टडी ऑफ इडियन हिस्ट्री पृ 259 60 डैनियल एच एच इगल्स (जर्नल ऑफ दि अमेरिकन ओरिएटल सोसायटी बाल्टीमोर LXXVII) पृ 223-4
23 हस्तिनापुर और कतरा (मथुरा) में हुई हाल की खुदाई के आधार पर कहा जा सकता है कि एक प्रकार के नगर जीवन का आरम्भ छ सौ ई पू के लगभग हो चुका था
24 इस विषय पर और भी अध्ययन करना है एन बी पी काल के पुरातात्विक अवशेषों और प्राचीन पालि ग्रथों की विषयवस्तु की तुलना से न केवल इन साहित्यिक स्रोतों की तिथि दृढतापूर्वक निश्चित करने में सहायता मिलेगी बल्कि मौर्य पूर्वकालीन भौतिक जीवन का भी ज्ञान बढेगा और हम उसे अच्छी तरह समझ भी पाऍंगे
25 नीचे देखें अध्ययन VI
26 जैकोबी 'सेक्रेड बुक्स ऑफ दि ईस्ट ' XXII प्रस्तावना पृ XLIII मजूमदार और पुसलकर 'दि एज ऑफ इपीरियल यूनिटी पृ 423 चार्पेटियर (उत्तरा, प्रस्तावना पृ 32 और 48) उन्हें ई पू तीन सौ और ईस्वी सन के आरम्भ होने के बीच के काल का बताते हैं
27 टी डब्ल्यू रीज डेविड्स 'डायलाग्स ऑफ दि बुद्ध I पृ 286
28 सेनार्ट कास्ट इन इंडिया पृ 101 लेखक की टिप्पणी पृ Y सेन्सस रिपोर्ट ऑफ इडिया 1901 पृ 546 से लेखक का उद्धरण बैंस ने इथनोग्राफी पृ 11 पर दिया है
29 के वी रगस्वामी अय्यगर आस्पेक्ट्स ऑफ सोशल ऐंड पोलिटिकल सिस्टम ऑफ मनु पृ 56 देखें हापकिंस पूर्व निर्दिष्ट I पृ 293 4
30 के वी रगस्वामी अय्यगर इंडियन कैमेरलिज्म पृ 48
31 अभी तक इन ग्रथों का अध्ययन छिटपुट ढग से किया गया है जाली के हिंदू लॉ ऐंड कस्टम तथा काणे के हिस्ट्री ऑफ दि धर्मशास्त्र में विधि ग्रथों की विषयवस्तु को कालक्रम से नहीं रखा गया है पालि ग्रथों के आधार पर फिक रीज डेविड्स आर मेहता और ए एन बोस के जो ग्रथ प्रकाशित हुए हैं उनमें भी यही त्रुटि है जे सी जैन के लाइफ ऐज डिपिक्टेड इन दि जैन कैनन्स में भी सभी सामग्री को एकत्रित करके रख दिया गया है पर समय और स्थान का ध्यान नहीं रखा गया है कुछ मामलों में कालक्रमानुसार विषय रखने के प्रयास हुए हैं किंतु भारतीय वर्ण व्यवस्था सबधी रचनाओं में ब्राह्मणेतर ग्रथों पर विचार ही नहीं किया गया है
32 प्राचीन बौद्ध साहित्य और धर्मसूत्र से क्रमश जिन सामाजिक स्थितियों का पता चला है उन्हें अलग अलग अध्यायों (VIII IX) में लिखा गया है
33 मजूमदार और पुसलकर पूर्व निर्दिष्ट अध्याय XXI
34 फिक दि सोशल आर्गेनाइजेशन ऑफ नार्थ ईस्टर्न इंडिया पृ 314 दत्त ओरिजिन ऐंड ग्रोथ ऑफ कास्ट , पृ 268 9
35 *(साइटश्रिफ्ट डेर डोयचेन मेर्गेनलैंडिशेन गेजेलशाफ्ट)* II पृ 286
36 मज्झिम निकाय I पृ 429
37 दीघ निकाय I 193 मज्झिम निकाय II पृ 33 और 40
38 डेविड्स बुद्धिस्ट इडिया पृ 54

39 आपस्तब धर्मसूत्र I 1 1 7 गौतम धर्मसूत्र X पृ 54-57
40 शिल्पवृत्तिश्च X 60
41 मेहता प्री बुद्धिस्ट इंडिया पृ 194 204
42. इन्हें जैन ग्रंथों में गाथावई कहा गया है
43 अगुत्तर निकाय iii पृ 363 सिप्पाधिट्ठाना
44 दीघ निकाय ii 126
45 उवासग पृ 184
46 जात iii 281
47 वही V 45
48 मेहता पूर्व निर्दिष्ट पृ 198 9
49 दीघ निकाय ii 147 सावत्थि जैसे बड़े बड़े शहरों की सख्या बीस थी और उनमें से छ इतने महत्वपूर्ण समझे जाते थे कि उन्हें बुद्ध के महानिर्वाण का स्थल माना गया
50 श्रीमती रीज डेविड्स 'केम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इंडिया I पृ 206
51 पाणिनि व्याकरण की वृत्ति VI 2 63
52. जात V 290 और 292
53 वही VI 38
54 गहपतिकस्स ततुवायेहि जात III 258 9 स्पष्ट है कि ऐसे गहपति प्राय उनसे व्यापार सामग्री का उत्पादन कराते थे
55 जात IV 159
56 वही 281
57 केम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इंडिया i 208
58 जातक III 281
59 वैदिक इंडेक्स 2.62
60 पाणिनि व्याकरण V 4 95
61 पाणिनि व्याकरण भाष्य V 4 95
62. जात VI 189
63 वही IV 207
64 दीघ निकाय i, 51 में गृह दासों के शिल्प का निर्देश किया गया है किंतु इससे गृहसेवा का संकेत मिल सकता है जात IV 16 एक अन्य प्रसग में दासों और नौकरों के बारे में बताया गया है कि उन्हें कोई ब्राह्मण व्यापार में लगाए हुए था
65 गौतम धर्मसूत्र X 31 वसिष्ठ धर्मसूत्र XIX 28 शिल्पिनो मासि मासयैकैक कर्म कुर्यु
66 गौतम धर्मसूत्र X 53 55 घोषाल 'इंडियन कल्चर XIV पृ 26
67 गौतम धर्मसूत्र X 47 आपस्तब धर्मसूत्र II 11 28 1 हरदत्त की टीका के साथ
68 वसिष्ठ धर्मसूत्र I 42
69 आपस्तब धर्मसूत्र II 10 26.5 शूद्राश्च पादावनेजा
70 मैत्रायणि संहिता बुल्लर के वर्गीकरण के अनुसार
71 मज्झिम निकाय II 180 सुद्दस्स् सपतम् असितव्याभगिम्
72. दीघ निकाय I 104
73 टी डब्ल्यू रीज डेविड्स सेक्रेड बुक्स ऑफ दि बुद्धिस्ट्स II पृ 128
74 (जाइटश्रिफ्ट डेर डोयत्शेन मोर्गेनलैंडिशेनगेसेलशाफ्ट, li) पृ 286 दत्त पूर्व निर्दिष्ट, पृ 272 एन के दत्त लिखते हैं कि बौद्ध साहित्य में गुलामों को कहीं भी शूद्र नहीं कहा गया है लेकिन

वर्तमान उदाहरण से स्पष्टतया विपरीत तथ्य का संकेत मिलता है

75 जात I पृ 200
76 वही VI पृ 389
77 बंद्योपाध्याय स्लेवरी इन एनशिएंट इंडिया (कलकत्ता रिव्यू, 1930 सं 8 पृ 254)
78 बोस 'सोशल ऐंड रूरल इकानमी आफ नार्दर्न इंडिया II पृ 423
79 जात , VI पृ 285 (गाथा) विनय पिटक IV पृ 224
80 जी पी मललसेकेरा पालि डिक्शनरी ऑफ प्रापर नेम्स I पृ 323 देखें इसिदासी शब्द
81 फिक पूर्व निर्दिष्ट पृ 308
82 दासी भार पाणिनि व्याकरण VI 1 42 सूयगडम्, I 14 8 जात , III पृ 59 98 99
83 'कैंब्रिज हिस्ट्री ऑफ इंडिया' I 207 विनय पिटक I 240 देखें सूयगडम् , II 1 1, जो बड़े और छोटे दोनों प्रकार के खेतों का हवाला देते हैं जात V पृ 413 शाक्यों और कोलियों के दास और कम्मकर खेतों की सिंचाई करने में लगाए जाते थे
84 जातक III 293 IV पृ 276
85 सुत्तनिपात I 4
86 जात II पृ 181
87 वेस्टरमन्न दि स्लेव सिस्टम्स ऑफ ग्रीक ऐंड रोमन एंटिक्विटी पृ 8 9
88 सुत्तनिपात V 472
89 जात IV पृ 15 मज्झिम निकाय II पृ 186
90 जात , V पृ 413
91 विनय पिटक I पृ 243 272 II पृ 154
92 आपस्तम्ब धर्मसूत्र I 7 20 15 वसिष्ठ धर्मसूत्र II 39 गौतम धर्मसूत्र VII 16
93 वेस्टरमन्न पूर्व निर्दिष्ट पृ 9
94 गौतम धर्मसूत्र X 58 जीर्णान्युपानच्छत्रवास· कूर्चानि.
95 जात० I 372 (वर्तमान कथा)
96 गौतम धर्मसूत्र X 59
97 आपस्तम्ब धर्मसूत्र I 1.3 40 उज्ज्वला की टीका सहित अतर्पिने वा शूद्राय
98 हिरण्यकेशिन गृह्यसूत्र I 2 8 1 2 (सेक्रेड बुक्स ऑफ दि ईस्ट अनुवाद)
99 अग्रवाल पूर्व निर्दिष्ट पृ 114
100 विनय पिटक IV पृ 272 यापू एव सप्पि दासान वा कम्मकरान वा पादभञ्जन वा पादीपकरणे वा आसित्तम्
101 विनय पिटक I पृ 220
102 आपस्तम्ब धर्मसूत्र II 4 9 11 कामभात्मान भार्या पुत्र वोपरुध्यान्न त्वेव दासकर्मकरम्
103 जातक I पृ 355 (वर्तमान कथा) दासकम्मकरादि नो सालिमसोदन भुजति कालिकवत्थ निवासेन्ति
104 अंगुत्तर निकाय I पृ 145 कणजक भोजन दिय्यति
105 वही I पृ 451 459
106 वही III पृ 406 7
107 वही VI पृ 372
108 जात I पृ 475 II पृ 139 III पृ 325 406 444 परेस भति

कत्थाकि च्चेन जीवति

109 जात III पृ 326
110 जात III 130 नगरद्वारे विनिगिल्या मासके गहेत्वा
111 'पालि इंगलिश डिक्शनरी देखें मासक शब्द
112 एस के चक्रवर्ती 'एनशिएंट इंडियन न्युमिसमेटिक्स पृ 56
113 हार्नर दि बुक ऑफ दि डिसिप्लिन I (अनुवाद सेक्रेड बुक्स ऑफ दि बुद्धिस्ट्स में आई बी हार्नर का किया हुआ है, X पृ 71 2)
114 बोस पूर्व निर्दिष्ट II पृ 428
115 जातक III पृ 446 50 अप्पापि कामा न अलम्, बहूहि पि न तत्पति
116 सूय I 4 2 18
117 दीघ निकाय I पृ 141 अगुत्तर निकाय II पृ 207 8 III पृ 37 IV पृ 266 393
118 गौतम धर्मसूत्र XX 4
119 जात III पृ 300
120 कैंब्रिज हिस्ट्री ऑफ इंडिया I 203 पाद टिप्पणी 8 में उद्धृत निर्देश इस विचार का समर्थन नहीं करते
121 सुत्तनिपात 769 ओवेया छब्द 6 उत्तर III 17 सूयगडग्, II 7 1
122 गौतम धर्मसूत्र XXVIII 13
123 जातक VI 135
124 वही III 129
125 जात III पृ 445 अत्तनो वसनट्ठान मत्वा
126 रैप्सन कैंब्रिज हिस्ट्री ऑफ इंडिया I पृ 205
127 गौतम धर्मसूत्र X पृ 61
128 जातक III पृ 387 यावतासीसति दासोताबय एव पवीणति अद्धापाये जहन्ति
129 भतक के रूप में भी लिया गया है
130 पालि इंगलिश डिक्शनरी यह व्युत्पत्ति उपर्युक्त ग्रंथ आहतक में अंगीकृत की गई है
131 अहितक (अर्थात बंधक रखा गया) शब्द की वैकल्पिक व्युत्पत्ति व्याकरण के सिद्धात के अनुसार ग्राह्य नहीं है
132 बद्योपाध्याय इकनामिक लाइफ ऐंड प्रोग्रेस इन एनशिएंट इंडिया पृ 94
133 पाणिनि व्याकरण I 3 36 III 2 22
134 वही V 1 80
135 धम्मपद IV पृ 271 आधपेक्सुरि की टीका
136 जातक IV पृ 276 8
137 जात VI पृ 426 यस्सेव घरे भुजेय्य भोग तस्सेव अत्थ पुरिसो चरेय्य
138 जातक IV अगुत्तर निकाय I पृ 206 विनय पिटक I पृ 240
139 आपस्तब धर्मसूत्र II 11.28 2.
140 वही, 3
141 वही 4
142. वही 6
143 गौतम धर्मसूत्र XII 16-7
144 गौतम धर्मसूत्र XXVII 24 हरदत्त की टीका सहित द्रव्यदान विवाहसिध्यर्थम धर्मतत्रसयोगे

च शूद्रात्
145 वही XXVIII 25 हरदत्त की टीका सहित अन्यत्रापि शूद्राद् बहुपशोर्हीनकर्मण
146 मनु, XI 13
147 बौधायन धर्मसूत्र II 2 3 10
148 वसिष्ठ धर्मसूत्र XVIII 47.50
149 वही XVII 38 शूद्रापुत्र एव षष्ठो भवतीत्याहुरित्येते दायादबान्धवा
150 बौधायन धर्मसूत्र II 2 3 32
151 वही II 2 3 10
152 गौतम धर्मसूत्र XXVIII 37 शूद्रापुत्रोप्यनपत्यस्य शुश्रूषुश्चेल्लभेत् वृत्तिमूलमन्तवासिविधिना
153 वही X 42 गौतम ने यह नियम बनाया है कि वैश्य और शूद्र को अपनी मेहनत से ही आय प्राप्त करनी चाहिए, निर्दिष्ट वैश्यशूद्रयो
154 कोसंबी एनशिएंट कोसल ऐंड मगध (जर्नल ऑफ दि बाबे ब्राच ऑफ दि रायल एशियाटिक सोसायटी बाबे XXVII) पृ 195 201
155 अंगुत्तर निकाय IV पृ 239 जात I पृ 49 इस शब्द का शाब्दिक अर्थ है बड़े प्रकोष्ठवाला बिहार में आज भी धनी व्यक्तियों का सकेत करने के लिए सामान्य बोलचाल में इसी आशय के मुहावरों का प्रयोग किया जाता है
156 फिक पूर्व निर्दिष्ट पृ 119 गौतम के अनुसार (X 5 6) कृषि व्यापार और सूदखोरी ब्राह्मण के लिए विधिसंगत है किंतु शर्त यह है कि वह ये काम स्वय न करे
157 फाइजर पूर्व निर्दिष्ट (आर्काव ओरियंटेलनी प्राग XXII) पृ 238 265
158 रीज डेविड्स बुद्धिस्ट इंडिया पृ 102
159 मज्झिम निकाय II पृ 84 85
160 वेस्टरमन पूर्व निर्दिष्ट पृ 16 क्रीट के कृषिदास को अपवाद माना गया है जो ऐसी सपत्ति धारण कर सकता था जिसमें महिला दासियों के दहेज सबधी अधिकार को सुरक्षित रखा गया था
161 गौतम धर्मसूत्र X पृ 62 3
162 वसिष्ठ धर्मसूत्र XXVI 16 क्षत्रियो बाहुवीर्येण तरेदापदमात्मन धनेन वैश्यशूद्रौ
163 विनय पिटक III पृ 136
164 आपस्तब धर्मसूत्र II 10 26 4 ग्रामेषु नगरेषु च आर्याञ्छुचीन् सत्यशीलान् प्रजागुप्तये निदध्यात्
165 वही II 10 26.5
166 वही II 10 25 12 13
167 आपस्तब धर्मसूत्र की हरदत्तीय टीका II 10 25 13
168 हापकिंस कैंब्रिज हिस्ट्री ऑफ इडिया I पृ 240
169 वही
170 पाणिनि ग्रामर IV 1 30
171 अग्रवाल पूर्व निर्दिष्ट पृ 79
172 दीघ निकाय II पृ 149
173 सूयगडगु, III 1 9
174 फाइजर पूर्व निर्दिष्ट (आर्काव ओरियंटलनी प्राग XII) पृ 261
175 जातक IV पृ 43

176 रायचौधरी पूर्व निर्दिष्ट पृ 71
177 घोषाल दि कास्टीट्यूशनल सिग्निफिकेंस ऑफ संघ गण इन दि पोस्ट वैदिक पीरियड (इंडियन कल्चर कलकत्ता XII) पृ 62
178 जायसवाल पूर्व निर्दिष्ट II पृ 69 70
179 गौतम धर्मसूत्र की टीका VI 10
180 बौधायन धर्मसूत्र I 10 19 13 चत्वारो वर्णा पुत्रिण साक्षिण स्यु
181 वसिष्ठ धर्मसूत्र XVI 29 सर्वेषु सर्व एव वा
182 गौतम धर्मसूत्र XIII 3 मस्करिन और हरदत्त की अपि शूद्र की व्याख्या
183 वसिष्ठ धर्मसूत्र XVI 30 शूद्राणाम् सत शूद्राश्चान्यानामन्त्ययोनय
184 वेस्टरमन पूर्व निर्दिष्ट पृ 17
185 गौतम धर्मसूत्र XI पृ 20 21
186 पीछे पृ 100 1
187 गौतम धर्मसूत्र XII पृ 11 13 ब्राह्मणस्तु क्षत्रिये पचाशत्, तदर्ध वैश्ये न शूद्रे किंचित्
188 वही XII 1 शूद्रो द्विजातीनतिसन्धायाभिहत्य वाग्दण्डपारुष्याभ्यामग मोच्यो येनोपहन्यात
189 आपस्तब धर्मसूत्र II 10 27 14 जिव्हाच्छेदन शूद्रस्य आर्यम् धार्मिकम् आक्रोशत
190 वही I 9 26.4 यह महिलाओं के लिए भी विहित है
191 वही I 9 26 3
192 वही II 10 27 15 वाचि पथि शय्यायामासन इति समीभवतो दण्डताडनम् गौतम धर्मसूत्र XII 7
193 आपस्तब धर्मसूत्र II 10 27 9 वध्य शूद्र आर्यायाम्
194 वही II 10 27 10
195 वही II 10 27 8 न्वाश्य आर्य शूद्रायाम्
196 गौतम धर्मसूत्र XII 15 16 अष्टपाद्य स्तेयकिल्बिष शूद्रस्य द्विगुणोत्तराणीतरेषाम्, प्रतिवर्णम्
197 आपस्तब धर्मसूत्र II 10 26 6 8
198 मज्झिम निकाय II पृ 88 एव सन्ते इमे चत्तारो वण्णा समसमा होन्ति
199 रैप्सन कैंब्रिज हिस्ट्री ऑफ इंडिया I पृ 205
200 वही
201 जातक I पृ 402
202 वही I पृ 451
203 मज्झिम निकाय I पृ 344 दण्ड तज्जिता भय तज्जिता अस्सुमुखा रुदमाना परिकम्मानि करोति संयुत निकाय I पृ 76 अंगुत्तर निकाय II पृ 207 8 II पृ 172 दीघ निकाय I पृ 141
204 सूयगडम्, I 5 2.5
205 सेक्रेड बुक्स ऑफ दि ईस्ट xlv पृ 374 पाद टिप्पणी 9 वह व्यक्ति जिसे उस उत्पादन (कृषि का) का छठा भाग प्राप्त होता है जिसके लिए उससे मजूरी पर काम कराया गया है
206 वही 375 पाद टिप्पणी 1 वेयमच्छहिय और अगच्छहिय शब्दों का अनुवाद करना जैकोबी की दृष्टि से कठिन है
207 सूयगडम् II 2 20 जैकोबी का अनुवाद सूयगडम् II 2.63 'सेक्रेड बुक्स ऑफ दि ईस्ट XVI, पृ 374 5 जा विय से बाहिरिया परिसा भवै त जहादासे इ वा पेसे इ वा भय

ए इ वा भाइल्ले इ वा कम्मकरए इ वा भोगपुरिसे इ वा तेसिं पि यण अन्नयरंसि अहालहुगंसि अवराहंसि सयमेव गणुय दण्ड निवतेह तं जहाइम दण्डेह इम मुण्डेह इम तजेह इम तालेह इम अदुयबन्धनं करेह इम नियलबन्धन करेह इम हडिबन्धन करेह इम चारगबन्धन करेह इम नियलजुयल सकोंचियमोडिय करेह इम हत्यच्छिन्न करेह इम पायच्छिन्नम् करेह इम कण्णच्छिन्नह करेह इम नक्कओट्ठ सीसमुहच्छिनय करेह वेयगच्छहियम अगच्छहियम्, पक्खाफोडिग करेह इमं नयणुप्पाडिय करेह इम दसणुप्पाडियं वसणुप्पाडिय जीमुप्पाडिय ओलम्बियं करेह घंसिय करेह घोलिय करेह सूलाइयं करेह सूलाभिन्नय करेह खारवत्तिय करेह वज्झवत्तियम् करेह सीहपुच्छिय करेह वसभपुच्छियण करेह दवग्गिदड्ढयग कागणिमसखावियम भत्तपाणनिरुद्धम इम जवज्जीवं वहबन्धन करेह इम अन्नयरेन असुभेण कुमारेण मारेह

208 वेस्टरमन पूर्व निर्दिष्ट पृ 17

209 *बौधायन धर्मसूत्र I 10 19 1 आर 2 आपस्तब धर्मसूत्र I 9 24 1-4 गौतम धर्मसूत्र* XXII पृ 14 16

210 बौधायन धर्मसूत्र I 10 19 1

211 आपस्तब धर्मसूत्र I 9 24 1 हरदत्त की टीका सहित

212 गौतम धर्मसूत्र XXII 14 16

213 वसिष्ठ धर्मसूत्र XX 31 33

214 सामविधान ब्राह्मण (इंट्रोडक्शन) पृ X

215 वही I 7 5 6

216 आपस्तब धर्मसूत्र I 9 25 13 बौधायन धर्मसूत्र I 10 19 6

217 यह जानने योग्य है कि साम विधान ब्राह्मण 1 7 7 में शूद्र की हत्या के लिए वही प्रायश्चित *विहित किया गया है जो गाय को मारनेवाले के लिए विहित है*

218 पीछे पृ 109

219 घोषाल पूर्व निर्दिष्ट (इंडियन कल्चर कलकत्ता XIV) पृ 27

220 वसिष्ठ धर्मसूत्र IV 2 बौधायन धर्मसूत्र I 10 19 5 6

221 बौधायन धर्मसूत्र II 3 6 22

222 गौतम धर्मसूत्र IX 1 की टीका (सेक्रेड बुक्स ऑफ दि ईस्ट II पृ 216)

223 बौधायन धर्मसूत्र IV 5 4 देखें भारद्वाज गृह्यसूत्र III ॥ कौशिक सूत्र III 4 24

224 *गौतम धर्मसूत्र IV 27 असमानायां च शूद्रात् पतितवृत्ति*

225 आपस्तब धर्मसूत्र II 2 4 19 शूद्रमभ्यागतम् शूद्रोवेदागतस्त कर्मणि नियुञ्ज्यात्, बौधायन धर्मसूत्र II 3 5 14

226 आपस्तब धर्मसूत्र II 2 4 20 ब्राह्मणों के लिए राजा के भंडार में इस प्रयोजन की सामग्री रखी जाएगी

227 गौतम धर्मसूत्र V 43

228 वही V 45 अन्यानुभूत्यै सहानृशसार्थम्

229 *आपस्तब धर्मसूत्र II 4 9 5 बौधायन धर्मसूत्र II 3 5 11 वसिष्ठ धर्मसूत्र XI 9*

230 गौतम धर्मसूत्र VI 10

231 वही VI 11 अवरोप्यार्य शूद्रेण

232 आपस्तब धर्मसूत्र I 2 5 16

233 आपस्तब धर्मसूत्र I 4 14 26 29 गौतम धर्मसूत्र V 41-42

234 आपस्तब धर्मसूत्र I 4 14 23 सर्वनाम्ना स्त्रियो राजन्यवैश्यौ च न नाम्ना

235 फिक पूर्व निर्दिष्ट पृ 83
236 जातक III पृ 452
237 आपस्तंब धर्मसूत्र, I 5 16 21
238 वही I 5 16.22
239 वही I 5 16.30 हरदत्त की टीका सहित
240 वही, I. 5 17 1
241 वही I 6 18 13 सर्ववर्णानां स्वधर्मे वर्तमानानां भोक्तव्यं शूद्रवर्ज्यमित्येके
242 आपस्तंब धर्मसूत्र प्रस्तावना पृ III बुह्लर के वर्गीकरण के अनुसार पाडुलिपि जी
पृ 2
243 वही II 8 18 2 बौधायन धर्मसूत्र II 2.3 1 वसिष्ठ धर्मसूत्र XIV 2-4
244 आपस्तंब धर्मसूत्र I 6 18 14 तस्यापि धर्मोपनतस्य
245 वही I 6 18 15
246 गौतम धर्मसूत्र XVII 5 वृत्तिश्चेन्नान्तरेण शूद्रात्
247 वही XVII 6 पशुपालक्षेत्रकर्षककुलसंगतकारयितृपरिचारका भोज्यान्नाः
248 गौतम धर्मसूत्र VII 22
249 वही IX 11
250 वसिष्ठ धर्मसूत्र VI 26
251 वही VI 27 29
252 वही
253 बौधायन धर्मसूत्र IV 1 5
254 वही III 6 5
255 हुल्श दि बौधायन धर्मशास्त्र इंट्रोडक्शन पृ IX
256 वही
257 निरुक्त III 16 ब्राह्मण और वृषल के वैषम्य पर निरुक्त में जोर दिया गया है
258 आपस्तंब धर्मसूत्र II 2 3 1 4 आर्याधिष्ठिता वा शूद्राः संस्कर्तारः स्युः बाद की पाडुलिपियों में यह परिच्छेद नहीं मिलता (जैसा कि बुह्लर के वर्गीकरण से प्रतीत होता है) स्पष्ट है कि बाद में इसे हटा दिया गया ताकि शूद्रों को भोजन बनाने से बिल्कुल बहिष्कृत कर दिया जाए
259 वही II 2 3 6 8
260 बौधायन धर्मसूत्र I 5 10 20 (हुल्श के वर्गीकरण के अनुसार) यह परिच्छेद उस पाडुलिपि में नहीं मिलता, जो कि दक्षिण से प्राप्त हुई है और उत्तर की पाडुलिपि की अपेक्षा अधिक मौलिक है (दि बौधायन धर्मसूत्र इंट्रोडक्शन पृ VIII)
261 जातक V 293
262 वही IV 145 8
263 फिक पूर्व निर्दिष्ट पृ 47
264 सेनार्ट पूर्व निर्दिष्ट पृ 182 3
265 बौधायन धर्मसूत्र I 11.20 13
266 अयंत्रितकलत्रा हि वैश्यशूद्रा भवन्ति कर्षणशुश्रूषाधिकृतत्वात् बौधायन धर्मसूत्र I 11.20 14 15 बुह्लर का अनुवाद कि वैश्य और शूद्र अपनी पत्नी का बहुत ध्यान नहीं रखते थे सबद्ध

परिच्छेद का सही अर्थ नहीं बताता है (सेकेड बुक्स ऑफ दि ईस्ट XIV 207)
267 वसिष्ठ धर्मसूत्र XVII 78
268 वही XVIII 18 निरुक्त XII 13 कृष्णवर्णा या रामा रमणायैव न धर्माय
269 वही घोषाल पूर्व निर्दिष्ट (इंडियन कल्चर कलकत्ता XIV) पृ 22
270 वसिष्ठ धर्मसूत्र I 25 26 शूद्रामप्येके मन्त्रवर्जम् तद्वत्, तथा न कुर्यात्
271 वही I 27 अतो हि ध्रुव कुलापकर्ष प्रेत्य चास्वर्ग प्राचीन जर्मन लोगों में यह प्रथा प्रचलित थी कि यदि कोई स्वतंत्र व्यक्ति दास पत्नी से विवाह कर लेता था तो वह भी दास बन जाता था लैंटमैन दि ओरिजिन ऑफ दि इनइक्वलिटी ऑफ दि सोशल क्लासेस पृ 282
272 आपस्तम्ब धर्मसूत्र 1 9 27 10 11
273 वही I 9 26 7 27 11 बौधायन धर्मसूत्र IV 2 13 6 5 6
274 वसिष्ठ धर्मसूत्र I 24 बौधायन (I 8 16 1 4) ने ब्राह्मण को चार पत्नियाँ क्षत्रिय को तीन वैश्य को दो और शूद्र को एक पत्नी रखने की अनुमति दी है
275 वसिष्ठ और बौधायन दोनों ने शूद्र के लिए एक पत्नी की अनुमति दी है हालाँकि वसिष्ठ ने वैश्य के लिए भी एक ही पत्नी की अनुमति दी है
276 फिक पूर्व निर्दिष्ट पृ 51 इस समय में सामान्यतया जातियों में सगोत्र विवाह प्रचलित था

277 गौतम धर्मसूत्र IV 27
278 बौधायन धर्मसूत्र I 9 17 7
279 वही वसिष्ठ धर्मसूत्र XVIII 1
280 गौतम धर्मसूत्र IV 21 बौधायन धर्मसूत्र II 2 3 30
281 वही II 2 3 29 गौतम धर्मसूत्र IV 16 वसिष्ठ धर्मसूत्र XVIII 8
282 बौधायन धर्मसूत्र I 9 17 13 14
283 वही I 9 17 5
284 वही I 9 17 6
285 फिक पूर्व निर्दिष्ट पृ 9
286 छोटा नागपुर में इस तरह की कई जनजातियाँ हैं और पूर्वी नेपाल में भी इस तरह की कुछ जातियाँ हैं
287 आपस्तम्ब धर्मसूत्र I 1 1 6 अशूद्राणाम् अदुष्टकर्मणामुपायनम् वेदाध्ययनमग्न्याधेय फलवन्ति च कर्माणि
288 वही I 3 9 9 शाखायन गृह्यसूत्र IV 7 33
289 बौधायन धर्मसूत्र I 11 21 15 गौतम धर्मसूत्र XVI 19
290 गौतम धर्मसूत्र XVI 46
291 तत्र शूद्रादिभूयिष्ठे अनध्याय
292 गौतम धर्मसूत्र XII 4 ॥ उदाहरणे जिह्वा छेद धारणे शरीर भेद
293 वही VIII 270 272
294 आपस्तम्ब धर्मसूत्र I 2 7 19 21 सर्वदा शूद्र उग्रतो वाचार्यर्थस्याहरण धर्म्यमित्येके
295 वसिष्ठ धर्मसूत्र XVIII 14 न शूद्राय मतिं दद्यात् न चास्योपदिशेद्धर्मम्
296 आपस्तम्ब धर्मसूत्र II 11 29 11 12 हरदत्त की टीका सहित
297 सेकेड बुक्स ऑफ दि ईस्ट II पृ 169
298 गौतम धर्मसूत्र IV 26

299 वेद कृषिविनाशाय कृषिवेदविनाशिनी बौधायन धर्मसूत्र 1.5 10 30
300 जातक कथा IV 391 2
301 वही IV 38
302 वही III 171
303 अश्वलायन गृह्यसूत्र I 21 12 (त्रिवेन्द्रम सस्करण) I 24 12 15 (सेक्रेड बुक्स ऑफ दि ईस्ट अनुवाद)
304 हापकिंस म्यूचुअल रिलेशस ऑफ दि फोर कास्ट्स इन मनु पृ 86 पाद टिप्पणी I
305 जैमिनी मीमासा सूत्र VI 1 25 27
306 वही VI 1 33
307 आपस्तब धर्मसूत्र I 1 1 6
308 वसिष्ठ धर्मसूत्र IV 3 शूद्रमित्यसस्कार्यो विज्ञायते
309 पारस्कर गृह्यसूत्र II 8 3
310 गौतम धर्मसूत्र X 64
311 वही
312 गौतम धर्मसूत्र X 65
313 बौधायन धर्मसूत्र II 4 7 3
314 दत्त पूर्व निर्दिष्ट पृ 175
315 दत्त ने इस तथ्य को अपनी पुस्तक के पृ 177 78 में एक तौर पर स्वीकारा है
316 गौतम धर्मसूत्र X 55
317 गौतम धर्मसूत्र की टीका X 55 भाभ्रमान्तारा प्रातिरिति
318 मैक्समूलर हिबर्ट लेक्चर्स पृ 343
319 गौतम धर्मसूत्र X 53
320 वही XIV 2 4 वसिष्ठ धर्मसूत्र IV 30
321 वसिष्ठ धर्मसूत्र IV 27 29
322 गौतम धर्मसूत्र XIV 2 4 दूसरों के मतानुसार वैश्य के लिए अशुचि की अवधि आधे महीने रखी गई थी (वही)
323 आर एल मित्र इडो एरियस II पृ 131 2
324 अश्वलायन गृह्यसूत्र (सेक्रेड बुक्स ऑफ दि ईस्ट अनुवाद) IV 2 19 21 यहाँ प्रयुक्त शब्द वृषल है
325 बौधायन धर्मसूत्र II 4 7 15
326 वही, I 5 10 24 वसिष्ठ धर्मसूत्र II 27
327 गौतम धर्मसूत्र X 67 आर्यानार्ययोर्व्यतिक्षेपे कर्मण साम्यम्
328 जातकों में शारीरिक श्रम करके अपना जीवन निर्वाह करनेवाले ब्राह्मणों के उदाहरण मिलते हैं
329 विनय पिटक IV 6
330 वही विनय पिटक अट्ठकथा पृ 439 में कोट्टककम्मम् शब्द की व्याख्या तच्छक कम्म के रूप में की गई है किंतु हार्नर ने इसका अनुवाद भडारपाल के काम के रूप में किया है सेक्रेड बुक्स ऑफ दि ईस्ट XI पृ 175
331 विनय पिटक IV 6
332 दीघ निकाय I 51
333 बोस पूर्व निर्दिष्ट II 460
334 लायक कम्म जातक I 356

335 जातक III 452 53
336 कसवतो मलमज्जनो निहीनजच्चो विनय पिटक IV 308
337 दीघ निकाय III 95
338 आयारगसुत्त II 4 1 8 दीघ निकाय I 92 3
339 मज्झिम निकाय III 169 78 II 152, 183-4
340 वही
341 विनय पिटक II 6 देखें अगुत्तर निकाय II 85 सयुत निकाय I 93
342 विनय पिटक IV 4 11
343 सयुत निकाय I 102, 166 सूयगडमृ, 1 9 2 3 फिक पूर्व निर्दिष्ट पृ 20 30
344 पाणिनि II 4 10 महाभाष्य I 475 शूद्राणामनिरवसितानाम्
345 जातक IV पृ 391 2.
346 सूयगडम् (सैक्रेड बुक्स ऑफ दि ईस्ट अनुवाद) II 2 27
347 आपस्तब धर्मसूत्र II 1 2.8
348 मैत्रायणि संहिता बुहलर के वर्गीकरण (पूर्वोद्धृत इट्रोडक्शन पृ III) के अनुसार पाडुलिपि जी पृ 2 3
349 गौतम धर्मसूत्र XIV 30
350 जातक IV 397
351 वही III 233
352 वही IV 376 390 1
353 वही
354 वही IV 390
355 वही IV 387
356 वही II 82 84
357 वही IV 376 391
358 उत्तराध्ययन सूत्र टीका 13 पृ 185a जैन लिखित पूर्व निर्दिष्ट ग्रथ पृ 144 में उद्धृत
359 रामायण I 58 10
360 घटवड्डक घडाला जातक टीका III 195
361 अ तगड दसाओ 65
362 जातक IV 390
363 वही III 41 179
364 बोस पूर्व निर्दिष्ट II पृ 439
365 वही पृ 439 440
366 अगुत्तर निकाय IV पृ 376 कलोपिहत्थो अन्तिक्वासी गाम वा निगम वा पविसन्तो नीचचित्त येवा उपट्ठपैत्वा पविसति
367 जातक IV पृ 379
368 अगुत्तर निकाय III पृ 206
369 फिक पूर्व निर्दिष्ट पृ 318
370 पालि ग्रथों में इसका कोई संकेत नहीं है किंतु मनु (X 49) और विष्णु (XVI 9) ने शिकार को उनका पेशा विहित किया है
371 जातक III 195 देखें फिक पूर्व निर्दिष्ट पृ 321

372 बोस पूर्व निर्दिष्ट II पृ 454 5
373 जातक IV पृ 251
374 बौधायन धर्मसूत्र 1 9 17 12
375 जातक V पृ 306
376 सेक्रेड बुक्स ऑफ दि बुद्धिस्ट्स, XI पृ 173 जातक V पृ 306 वेणज्ञति नि तच्छकजाति
377 भारद्वाज गृह्यसूत्र, I 1 वसन्ते ब्राह्मणमुपनीत वर्षा रथकार शिशिरे वा बौधायन गृह्य सूत्र II 5 6 II 8 5 जैमिनी मीमांसा सूत्र, VI 1 50
378 रीज डेविड्स डायलाग्स ऑफ दि बुद्ध I पृ 100
379 जातक VI 51 देखें पतवत्थु अठकथा III 1 13
380 बोस पूर्व निर्दिष्ट II पृ 456
381 अंगुत्तर निकाय I पृ 111 113
382 महाभारत XII 59 102 3
383 दत्त पूर्व निर्दिष्ट पृ 107
384 महाभारत XII 59 99 101 ला पूर्व निर्दिष्ट पृ 100 बी सी ला का कथन है कि वे निषध थे न कि निषाद किंतु महाभारत के आलोचनात्मक संस्करण में स्पष्टतया निषाद शब्द का उल्लेख हुआ है
385 जातक II पृ 200 VI पृ 71 170
386 वही VI पृ 71
387 पाणिनि IV 1 100
388 कोसंबी (जर्नल ऑफ दि अमेरिकन ओरिएंटल सोसायटी बाल्टीमोर LXXV 44) यह इस धारणा पर निर्भर है कि निषाद गोत्र ब्राह्मणीय गोत्र था जो संदिग्ध है
389 गौतम धर्मसूत्र IV 28 एक अन्य स्थान पर गौतम ने कहा है कि अत्यों को अपवित्र वस्त्र दिए जाने चाहिए (XIV 42)
390 वसिष्ठ धर्मसूत्र XVI 30
391 आपस्तंब धर्मसूत्र 1 3 9 15
392 वही 1 3 9 18
393 वसिष्ठ धर्मसूत्र XVIII 3
394 गौतम धर्मसूत्र XX 1 देखें XXIII 32
395 (माडर्न रिव्यू, दिसंबर 1923) पृ 7 12 13 अंबेडकर दि अनटचेबुल्स अध्याय IX अंबेडकर ने इस विचार को और भी विकसित किया है
396 अंबेडकर पूर्व निर्दिष्ट अध्याय X
397 गौतम धर्मसूत्र XXII 13 में गोवध को मामूली अपराध बताया गया है जिसका मोचन प्रायश्चित से किया जा सकता है
398 दत्त पूर्व निर्दिष्ट पृ 106 7 पृ 31
399 घुर्ये कास्ट ऐंड क्लास पृ 159
400 फिक पूर्व निर्दिष्ट पृ 324
401 मज्झिम निकाय III न लाभी अन्नस्स पानस्स वत्थस्स यानस्स पृ 169 70 अंगुत्तर निकाय II पृ 85
402 (पास्ट ऐंड प्रेजेंट स 6)
403 मज्झिम निकाय I पृ 211 II पृ 182 III संयुत्त निकाय I 99 विनय पिटक II

पृ 239 अगुत्तर निकाय IV पृ 202 देखें मज्झिम निकाय III पृ 60-1 पृ 384 दीघ निकाय III पृ 80 98
404 जातक III पृ 194 IV पृ 303
405 मज्झिम निकाय II पृ 103 अरियाय जातिया जातो
406 टामसन स्टडीज इन एनशिएंट ग्रीक सोसायटी II पृ 238
407 दीघ निकाय I पृ 226 30
408 जातक IV पृ 200
409 वही
410 जातक III पृ 233
411 दस कु पृ 45 पूर्वोद्धृत जैन ग्रंथ में उद्धृत पृ० 229
412 उत्तरा XII
413 आयारंगसुत्त II 1 2 2
414 विनय पिटक III 181 5 IV पृ 80 177
415 सुत्त निपात 137 और 138
416 मलसेकेरा डिक्शनरी ऑफ पालि प्रापर नेम्स I पृ 174
417 फिक पूर्व निर्दिष्ट पृ 77 79
418 बोस पूर्व निर्दिष्ट II पृ 285 पाद टिप्पणी I
419 हिस्ट्री ऑफ पालि लिटरेचर की विधि में दी गई सूची के आधार पर सगणित II पृ 509 16
420 वही II पृ 501 509 508 516
421 जैन लाइफ एज डिपिक्टिड इन जैन कैनन्स पृ 107
422 बोस पूर्व निर्दिष्ट II पृ 485
423 ठाणाग X 712 परिजुना रोगिणोतीआ रोसा और अणाढिता पव्वज्जा
424 सूयगडम् II 2 54
425 वही I 7 25
426 विनय पिटक I पृ 74 76 कारभेदको चोरो चोरो कसाहतो कतण्डकम्मो इणायिको दासो हर मामले में कहा जाता है पत्नायित्वा भिक्खुसु पव्वजितो होति
427 दीघ निकाय I 51 हत्थारोहा अस्सारोहा दासकपुत्ता आलारिका कप्पका नहापका सूदा मालाकारा रजका पेसकारा
428 वही I 60 दासो कम्मकरो पुब्बुट्ठायी पच्छा निपाती किंकरपटिस्सावी मनापचारी पिय वादी मुखुल्लोकको
429 वही I 60 61
430 दीघ निकाय I 61 कस्सको गहपतिको कार कारको रासि वड्ढको
431 विनय पिटक I पृ 77 समणा सक्यपुत्तिया सुभोजनानि भुंजित्वा निवातेसु सयनेसु सयन्ति
432 दीघ निकाय I 5
433 वही I पृ 60
434 ठाणाग III 202 जैन पूर्व निर्दिष्ट पृ 194
435 आपस्तंब धर्मसूत्र I 7 20 11 12
436 वही I 7 20 15 मनुष्यणा च मनुष्ये वसिष्ठ धर्मसूत्र II 39
437 अगुत्तर निकाय II 208 केसावणिज्जे उवासग पृ 51

438 अंगुत्तर निकाय V 137 दासकम्मकरपोरिसेहि वड्ढति
439 जातक III पृ 49
440 बोस पूर्व निर्दिष्ट II पृ 414
441 जातक III अनुवाद 33 मूल 48
442 वही
443 दीघ निकाय III पृ 191
444 जातक I पृ 451
445 आयारंगसुत्त I 2 5 1
446 मलालसेकेरा पूर्व निर्दिष्ट,I 876 77 जैसे लोहार चुंद
447 बैशम हिस्ट्री ऐंड डाक्ट्रिन्स ऑफ आजीविकाज, पृ 134
448 ओल्डेनबर्ग बुद्ध पृ 155 9
449 फिक पूर्व निर्दिष्ट पृ 32
450 दीघ निकाय I पृ 91 98
451 फिक पूर्व निर्दिष्ट पृ 31
452 अंगुत्तर निकाय IV पृ 239 संयुत्त निकाय IV 239 जातक I पृ 49
453 अंगुत्तर निकाय III पृ 307 एवं आगे
454 दत्त ओरिजिन ऐंड ग्रोथ ऑफ कास्ट इन इंडिया पृ 133 इस अवधि में भी शूद्र वैश्वदेव यज्ञ के अवसर पर उच्च वर्णों के लिए भोजन तैयार करते थे
455 मज्झिम निकाय II 128 देखें II 147 एवं आगे
456 सुत्त निपात 314 15
457 जातक I 49 ललितविस्तर I 20
458 अन्त कुलेसु वा पन्त तुच्छ दरिद्द किविण भिक्खाग माहण कल्पसूत्र II 17 तुल 22
459 बंद्योपाध्याय पूर्व निर्दिष्ट पृ 302 309 10
460 वसिष्ठ धर्मसूत्र, VI 24 दीर्घवैरमसूया चासत्यं ब्राह्मणदूषणम्, पैशुन्यं निर्दयत्वं च जानीयात् शूद्रलक्षणम्
461 ऊपर देखें पृ 108 9
462 विनय पिटक IV पृ 181 2
463 वही IV पृ 181 2, साकियदासका अवरुद्धा होन्ति 'साकियनियो अच्छिदिंसु च
464 जातक V पृ 98 99
465 जातक IV 159 कैंब्रिज हिस्ट्री ऑफ इंडिया I पृ 210
466 वही I पृ 205
467 जातक I पृ 451 2, 458
468 विनय पिटक I पृ 74 6
469 जातक VI पृ 138
470 बैशम पूर्व निर्दिष्ट पृ 37
471 जातक VI 69 (वर्तमान कथा)
472 बौधायन धर्मसूत्र II 2 4 16 आत्मत्राणे वर्णसवर्गे वसिष्ठ धर्मसूत्र III 21 25 वर्णसवर्गे शब्द पाण्डुलिपि "बी" में आया है, जिसे फुहरर ने बहुत महत्वपूर्ण माना है (वसिष्ठ धर्मसूत्र प्रस्तावना पृ 5) अन्य पाण्डुलिपियों में वर्णसवर्गे और वर्णसंकरे पाठ है
473 वेस्टरमान दि स्लेव सिस्टम्स ऑफ ग्रीक ऐंड रोमन एंटिक्विटी पृ 37 ग्रीकों और रोमनों के युद्ध में दासों से योद्धा का काम नहीं लिया जाता था

मौर्यकालीन राज्यनियंत्रण और सेवि वर्ग

(लगभग तीन सौ ई पू से दो सौ ई पू तक)

मौर्यकाल में शूद्रों की स्थिति के अध्ययन का मुख्य स्रोत कौटिल्य का *अर्थशास्त्र* है और इसके पूरक हैं मेगस्थनीज की रिपोर्ट के कुछ अश तथा अशोक के उत्कीर्ण लेख । किंतु प्राचीन भारतवर्ष के इतिहास के किसी प्रश्न को लेकर उतना विवाद नहीं हुआ है जितना सभवतया *अर्थशास्त्र* की तिथि और प्रामाणिकता के सबध में हुआ है ।[1] एक ओर जोरदार शब्दों में कहा जाता है कि यह रचना चद्रगुप्त के मत्री कौटिल्य की है, तो दूसरी ओर इसे सर्वथा अस्वीकार करते हुए रचना को ई सन की पहली या तीसरी शताब्दी का माना जाता है । इस विवाद के पूरे अश को दुहराना तो सभव नहीं है किंतु कुछ विचारों को यहाँ उद्धृत करना आवश्यक जान पड़ता है । विरोध करनेवालों के तर्कों की सबसे बड़ी कमजोरी यह है कि उनका स्वरूप नकारात्मक है । *अर्थशास्त्र* के अत में उल्लिखित पद्य से स्पष्ट है कि यह रचना उस व्यक्ति की है जिसने नद वश का नाश किया[2] और यह ऐसी ऐतिहासिक परपरा है जो बाद के ब्राह्मण और जैन ग्रथों में भी मिलती है । यह पद्य इस दृष्टि से भी विशेष महत्वपूर्ण समझा जाता है कि धर्मसूत्रों और स्मृतियों के लेखकों के सबध में ऐसे जीवनचरित सबधी लेख अन्यत्र नहीं मिलते । इतना ही नहीं, किसी भी ग्रथ से कोई वैकल्पिक सूचना नहीं मिलती कि कौटिल्य किसी अन्य काल के थे ।

एक लेख में कुछ नए आधार प्रस्तुत करके बताया गया है कि अर्थशास्त्र ई सन की पहली से लेकर तीसरी शताब्दी तक की रचना है ।[3] कहा जाता है कि कौटिल्य ने जब ज्ञान का वर्गीकरण किया तब प्रत्यक्ष विज्ञान दर्शन से अलग होने लगा था । अलग होने की यह प्रक्रिया ईस्वी सन की आरभिक शताब्दियों की कही जा सकती है ।[4] किंतु इसमें कोई संदेह नहीं कि कौटिल्य ने शिक्षा की जिन मुख्य शाखाओं का, अर्थात कल्प (कर्मकांड), व्याकरण और निरुक्त का उल्लेख किया है वे मौर्यपूर्व काल में अध्ययन के विषय थे । यह भी ध्यान देने योग्य है कि *अर्थशास्त्र* में दर्शनशास्त्र की लोकायत शाखा का जो उल्लेख हुआ है उससे उक्त ग्रथ का रचनाकाल बाद का नहीं कहा जा सकता ।[5] सभवतया लोकायत शाखा

बुद्ध से पहले की है,[6] और इतना तो निश्चय ही है कि यह मौर्यों से पहले की है, क्योंकि प्राचीन बौद्ध ग्रंथों में इसका स्पष्ट उल्लेख है।[7]

यह भी तर्क प्रस्तुत किया जाता है कि *अर्थशास्त्र* जैसे ग्रंथ के संकलन में राजनीति विज्ञान की दीर्घकालीन परंपरा का आभास मिलता है जिसका विकास कई सौ वर्षों में हुआ होगा।[8] स्वयं कौटिल्य ने इस बात को स्वीकार किया है और अपने विषय के दस पूर्ववर्ती विद्वानों का उल्लेख किया है।[9] मौर्यपूर्व काल में इस तरह की दीर्घकालीन परंपरा थी जो धर्मसूत्रों से सिद्ध है। एक आकलन के अनुसार *आपस्तंब धर्मसूत्र* का 1/15 *बौधायन धर्मसूत्र* का 1/12 *गौतम धर्मसूत्र* का 1/6 और *वसिष्ठ धर्मसूत्र* का 1/5 भाग अर्थविषयक है।[10] इससे पता चलता है कि अर्थ की महत्ता बढ़ रही थी, और उसकी चरम परिणति कौटिल्य के स्वतंत्र ग्रंथ *अर्थशास्त्र* के रूप में हुई।

यह भी कहा जाता है कि अतिशयता को छोड़ने और मध्यम मार्ग अपनाने की अर्थशास्त्रीय नीति *मध्यान्त विभंग* जैसे दार्शनिक ग्रंथ में भी पाई जाती है।[11] यह ग्रंथ ईसा की तीसरी शताब्दी का बताया जा सकता है। किंतु मध्यम मार्ग का सिद्धांत जिसे मज्झिम पटिपदा कहा जाता है उतना ही पुराना है जितना *विनय पिटक ग्रंथ*।[12] इसमें बुद्धदेव ने अपने प्रथम प्रवचन में ही अपने अनुयायियों को बताया है कि वे सन्यास और विलास जैसे दो चरम बिंदुओं का परित्याग करें।

अंततः यह कहा गया है कि *अर्थशास्त्र* में उत्पादन सामाजिक पद्धति और राजनीतिक संस्थाओं के जिस तरह के संबंधों का उल्लेख हुआ है वे मेगस्थनीज की रिपोर्टों और अशोक के उत्कीर्ण लेखों में किए गए वर्णन से कहीं अधिक विकसित हैं और उनसे ईसा की प्रथम और तृतीय शताब्दी के बीच के काल की विशिष्टता का बोध होता है।[13] किंतु इस विचार का समर्थक साक्ष्य नगण्य सा है। *अर्थशास्त्र* में उत्पादन के संबंधों का प्रमुख तथ्य यह है कि आर्थिक व्यवस्था के सभी क्षेत्रों पर राज्य का बहुत बड़ा नियंत्रण था। कौटिल्य के अनुसार राज्य व्यापार उद्योग और खान का नियंत्रण तो करता ही है, ग्रामीण प्रक्षेत्रों (सेतों) का अध्यक्ष दासों और कर्मकरों से काम कराने के साथ ही इस कार्य के लिए लोगरों बढ़इयों और मिट्टी खोदनेवालों से भी काम लेता है।[14] स्ट्रैबो ने मेगस्थनीज की रिपोर्ट से जो अंश उद्धृत किए हैं, उनसे भी इस बात के प्रमाण मिलते हैं। ऐसा पता चलता है कि राज्य के बड़े बड़े अधिकारी न केवल नदियों की निगरानी और सिंचाई की देखभाल करते थे, बल्कि जमीन की पैमाइश भी करते थे और जमीन से संबंधित पेशेवरों अर्थात लकड़हारों बढ़इयों लोहारों और खानों में काम करनेवालों पर भी नजर रखते थे।[15] फिर *अर्थशास्त्र* में सामाजिक व्यवस्था की जो रूपरेखा निर्धारित की गई है वह ब्राह्मण ग्रंथ के ढांचे पर निरूपित है।

अर्थशास्त्र की राज्य व्यवस्था की खास विशेषता यह है कि वह सभी प्रकार के प्राधिकारों में राज शासन को आगे बढाना चाहती है,[16] और प्रजा को लगभग तीस विभागों के माध्यम से शासन के अस्तित्व का अनुभव कराना चाहती है। यह मौर्य साम्राज्य की आम नीति थी जिसका पता मुख्यतया अशोक के उत्कीर्ण लेखों से चलता है। अशोक ने धर्मप्रचारक के रूप में काम किया था और उसके पास सुसगठित अधिकारीतंत्र था। महत्वपूर्ण बात तो यह है कि राज्य को, राज के रूप में, सर्वव्यापी सत्ता के तौर पर स्थापित करने की मनोवृत्ति सिकन्दर के साम्राज्य में भी प्रकट हुई और उस साम्राज्य का पतन होने पर जो यूनानी राजतंत्र आया, उसने भी इस व्यवस्था को अपनाया।[17] इस प्रकार मेगस्थनीज की रिपोर्ट से उद्धरण देकर स्ट्रेबो ने ठीक ही भारत के मजिस्ट्रेटों की तुलना यूनानी मिस्र के ऐसे ही अधिकारियों से की है।[18] कौटिल्य का दावा है कि उसने तत्कालीन राज्यों में प्रचलित शासन व्यवस्थाओं का अध्ययन किया है।[19] अतः उसने जिस राजतंत्र की स्थापना की उससे उस युग की व्यापक चेतना का आभास मिलता है।

किंतु इस तथ्य को अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि बहुत से अन्य ग्रंथों की तरह *अर्थशास्त्र* में भी परिवर्तन किए गए होंगे। अतएव समस्या है कि इस ग्रंथ के तात्विक अंशों में किए गए परिवर्तन का पता कैसे लगाया जाए।[20] फिर भी, अब सामान्यतया यह माना जाता है कि अर्थशास्त्र में वस्तुतः मौर्यकाल के संस्मरणात्मक तथ्य हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि द्वितीय अधिकरण सबसे प्राचीन है। प्रस्तुत अध्याय में द्वितीय तृतीय तथा चतुर्थ अधिकरण से अधिक सामग्री ली गई है, बाद के अधिकरणों का उतना उपयोग नहीं किया गया है।

यद्यपि सुदूर दक्षिण को छोड़ प्रायः संपूर्ण भारत पर मौर्यों का शासन छाया हुआ था और यद्यपि कौटिल्य ने *अर्थशास्त्र* में व्यापक भौगोलिक पृष्ठभूमि का खयाल रखा है, फिर भी इसमें जिन बातों की चर्चा आई है वे संभवतया उत्तर भारत में विद्यमान परिस्थिति को ही प्रतिबिंबित करती हैं। जहाँ तक संकीर्ण और स्थानीय नीतियों से दूर हटकर सारे साम्राज्य की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए *अर्थशास्त्र* में बताए गए उपायों का प्रश्न है उन्हें पूरे साम्राज्य में लागू किया जा सका होगा किंतु आर्थिक कार्यकलापों पर नियंत्रण रखने या परती जमीन को जोतने के संबंध में दी गई हिदायतें साम्राज्य के निकटवर्ती इलाकों तक ही सीमित रही होंगी।

शूद्र वर्ण के कृत्यों का निरूपण करने में कौटिल्य ने धर्मशास्त्र के पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग किया है। उनका कहना है कि शूद्र का निर्वाह द्विजों की सेवा से होता है।[21] किंतु वे शिल्पियों नर्तकों अभिनेताओं आदि का व्यवसाय करके भी अपना निर्वाह करते हैं।[22] ये व्यवसाय स्पष्टतया स्वतंत्र थे और इनमें द्विजों की सेवा करना आवश्यक नहीं था।

कौटिल्य ने धर्मसूत्र की जिस पारिभाषिक शब्दावली का प्रयोग किया है, उससे यह प्रतीत होता है कि शूद्रों को अपनी जीविका के लिए पूर्णतया उच्च वर्ण के मालिकों पर निर्भर रहना पड़ता था। इसका आभास उसके जनपदनिवेश संबंधी नियमों से मिलता है। कौटिल्य का कथन है कि सौ से लेकर पाँच सौ परिवारों की बस्तियाँ बसाने में एक बस्ती से दूसरी बस्ती की दूरी दो या चार मील की होनी चाहिए और उसके निवासी मुख्यतया शूद्र और कर्षक ही होने चाहिए।[23] विद्वानों ने शूद्र और कर्षक शब्दों का द्वंद्व समास (शूद्रकर्षक प्रायम्) माना है,[24] और इस तरह उनके अनुसार शूद्र किसान नहीं थे, किंतु कुछ लोगों ने शूद्र शब्द को कर्षक का विशेषण माना है।[25] इस वाक्यखंड का अर्थ लगाना इसलिए कठिन हो गया है कि इसका प्रयोग *अर्थशास्त्र* में कहीं अन्यत्र नहीं हुआ है। *अर्थशास्त्र* पर जो टीकाएँ उपलब्ध हैं उनमें जनपदनिवेश प्रकरण का समावेश नहीं है। एक स्थल पर कर्षक को कर्मकर अर्थात भाड़े का मजदूर माना गया है[26] किंतु संभवतया यहाँ इस शब्द को ऐसे अर्थ में प्रयुक्त नहीं किया जा सकता। संभव है कि शूद्र से दास कर्मकरों का और कर्षक से वैश्य किसानों का बोध होता हो।

कौटिल्य के अनुसार राज्य को चाहिए कि नई बस्तियों में भूमि को कृषि योग्य बनाकर करदाताओं को जीवन भर के लिए दे दे।[27] मालूम होता है कि यह बंदोबस्त कृषकों के साथ किया जाता था जो राज्य को कर चुकाने के लिए जिम्मेदार थे। किंतु इन्हें जमीन रखने का अधिकार निर्धारित अवधि के लिए दिया जाता था जो बात संभवतया पुराने गाँवों के कृषकों (प्रायः वैश्यों) पर लागू नहीं थी। कृषकों को अनाज, मवेशी और रुपए देने का उपबंध किया गया है।[28] उन्हें इस उम्मीद पर ऐसी सुविधा दी गई थी कि वे स्वेच्छया राज्य को कर चुकाएँगे। दूसरे यह कि कृषकों को यह सुरक्षा संभवतया नहीं मिली थी कि भूमि उनकी बनी रहेगी। कौटिल्य ने बताया है कि यदि बस्तियों में कृषक अपना कार्य ठीक से नहीं करें तो उन्हें अपनी भूमि से निकाल दिया जाए और भूमि वैदेहक या ग्रामभृतक को कृषि हेतु दे दी जाए।[29]

नई बस्तियों में शूद्र को कृषि के अलावा अन्य कार्यों में लगाया जा सकता था। कहा गया है कि नई बस्ती जिसके निवासी मुख्यतया शूद्र (अवर वर्णप्राय) होते हैं, निश्चित रूप से फल देने वाली होती है और उसमें राज्य द्वारा आरोपित सभी भारों को वहन करने की क्षमता रहती है।[30] नयचंद्रिका के अनुसार 'भोग' शब्द के अर्थ से पता चलता है कि शूद्रों को न केवल खेती में लगाया जाता था, बल्कि उनसे भार ढोने और किला बनाने का काम भी लिया जाता था।[31] यह भी कहा गया है कि शूद्रों की बस्ती का एक लाभ यह था कि उसकी जनसंख्या अधिक होती थी।[32] नई जमीनों को जोतकर खेती करने तथा पूर्ववर्ती खेतों का पुनरुद्धार करने के लिए शूद्रों को घनी आबादीवाले क्षेत्रों से मँगाया जाता था,

अथवा दूसरे राज्यों से उन्हें वहाँ आ जाने के लिए प्रेरित किया जाता था।[33] कहा गया है कि जनपद में निम्न वर्ण की आबादी अधिक होनी चाहिए।[34] इन सारी बातों से पता चलता है कि देश में शूद्रों की जनसंख्या काफी थी। देश में मुख्यतया वैश्य कृषि का कार्य करते थे, अतएव शूद्र भूराजस्व और अन्य व्ययभार चुकाने के लिए मुख्यतया दायी नहीं रहे होंगे, जैसा कि घोषाल ने सुझाव दिया है।[35] नई बस्तियों के किसान शूद्रों के समान बेगारी से मुक्त नहीं थे क्योंकि जनपदनिवेश प्रकरण में कौटिल्य ने बताया है कि राजा को चाहिए कि अत्याचारी विष्टि (बेगार) से किसान की रक्षा करे।[36]

अधिकांश शूद्र, पहले ही की तरह कृषि मजदूरों और दासों के रूप में काम करते रहे। धर्मसूत्रों से ज्ञात होता है कि दासों को घरेलू कार्यों में लगाया जाता था। कौटिल्य ही एकमात्र और प्रथम ब्राह्मण लेखक हैं, जिनसे पता चलता है कि दासों को बड़े पैमाने पर कृषि उत्पादन कार्य में लगाया जाता था।[37] प्राचीन पालि ग्रंथों में तो बड़े बड़े प्रक्षेत्रों (फार्मों) के केवल तीन उदाहरण मिलते हैं, किंतु मौर्यकाल में ऐसे अनेक प्रक्षेत्र थे जिनमें दास और भाड़े के मजदूर सीधे सीताध्यक्ष (कृषि अधीक्षक) के अधीन रहकर काम करते थे। वह इन लोगों को कृषि के उपकरण और अन्य साधन देता था और कृषिकर्म के लिए बढ़ई, लोहार तथा अन्य शिल्पियों की सेवाएँ प्राप्त करता था।[38] मेगस्थनीज के विवरण से भी इस तथ्य की मोटे तौर पर पुष्टि होती है। उसने ऐसे अधिकारियों का उल्लेख किया है जो भूमि संबंधी धंधों और शिल्पियों की निगरानी करते थे।[39] एरियन ने कृषि अधीक्षकों की चर्चा की है[40] जो प्राय सीताध्यक्ष का काम करते थे। स्ट्रेबो का कहना है कि गड़ेरिए और शिकारियों की एक तीसरी जाति थी जो खानाबदोश का जीवन बिताती थी और खेतों से जंगली जानवरों तथा पक्षियों को भगाने के लिए राजा से अनाज के रूप में भत्ता पाती थी।[41] ये खानाबदोश आदिवासियों (सर्पग्राहादिवा अर्थात साँप या अन्य जीवों को पकड़नेवाले) से मिलते जुलते मालूम होते हैं।[42] सीताध्यक्ष उनसे कृषि संबंधी काम लेते थे।[43] इस तरह मौर्य साम्राज्य दासों, कर्मकरों, शिल्पियों और आदिवासियों का, जोकि स्पष्टतया शूद्र वर्ग के थे बहुत बड़ा नियोजक था। इस दृष्टि से इस काल का कृषि उत्पादन संगठन ग्रीस और रोम के संगठन से कुछ हद तक मिलता जुलता था।

कौटिल्य ने बताया है कि यदि (श्रमिकों के अभाव के कारण) खेतों की बोआई नहीं हो पाए तो खेत उन लोगों को पट्टे पर दे दिए जाएँ जो आधी उपज देकर उनकी जुताई करें।[44] जो व्यक्ति केवल शारीरिक श्रम करके जीवनयापन करते थे (अर्थात कर्मकर) उनके पास स्वभावतया खेती के आवश्यक उपकरण यथा बीज और बैल नहीं रहते थे। ऐसे व्यक्ति यदि उपज का चतुर्थांश अथवा पंचमांश लेना स्वीकार करते थे तो उन्हें राज्य की ओर से बैल और बीज दिए जाते थे।[45] कौटिल्य ने यह सिद्धांत प्रतिपादित किया है कि

बटाईदारों को चाहिए कि स्वयं कोई कठिनाई न सहकर जितना अधिक राजा को दे सकते हों, दिया करें ।[46] किंतु उन्होंने कठिनाइयों का कोई संकेत नहीं दिया है । मालूम होता है कि बटाईदारों को कुछ कड़ी मिट्टीवाली जमीन दी जाती थी जिसके लिए उन्हें राज्य को कुछ भी नहीं चुकाना पड़ता था ।[47] बटाईदार दो प्रकार के होते थे —एक वह जो उपज का आधा हिस्सा रखता था और दूसरा वह जो 1/4 या 1/5 हिस्सा रखता था । प्रथम कोटि के बटाईदार को भट्टस्वामिन् जैसे टीकाकार ने 'ग्राम्य कुटुंबिन' के रूप में चित्रित किया है ।[48] दुर्गनिवेश (राजधानी का निर्माण) प्रकरण के सिलसिले में कौटिल्य ने बताया है कि कुटुंबिनों को राजधानी की सीमा पर बसाया जाना चाहिए, ताकि वे खेती संबंधी कार्य कर सकें और अन्य व्यवसायों की जरूरतें पूरी कर सकें ।[49] कहा गया है कि वे फुलवारियों, वनों, सब्जी के बागानों और धान के खेतों में [50] काम करेंगे और दिए गए अधिकार के अनुसार पर्याप्त अन्न तथा दूसरे प्रकार का सौदा आदि एकत्रित करेंगे । इस प्रसंग में टी० गणपति शास्त्री ने 'कुटुंबिन' शब्द की व्याख्या करते हुए बताया है कि वह निम्नतम वर्ण का व्यक्ति था (वर्णावराणाम्),[51] पर शामा शास्त्री ने उसे कामगरों का परिवार बताया है ।[52] इस प्रकार कुटुंबिन संभवतया शूद्र बटाईदार और कृषि मजदूर थे । इस शब्द का ऐसा प्रयोग अस्वाभाविक-सा लगता है, क्योंकि अधिकांश स्रोतों में 'कुटुंबिन' का अर्थ केवल परिवार का प्रधान किया गया है ।[53] किंतु प्रसंग से ऐसा मालूम पड़ता है कि यहाँ इसका विशेष अर्थ लगाया गया है ।

संभवतया पुरानी बस्तियों में उच्च वर्णों के मालिक बहुत-से शूद्रों, कृषि मजदूरों, दासों और शिल्पियों को काम देते थे । कृषकों से कर उगाहने का प्रभारी गोप कहलाता था और उससे कहा जाता था कि वह हर गाँव के निवासियों की कुल संख्या और समाज में उत्पादन कार्य करनेवाले विभिन्न वर्ग, जिनकी संख्या आधा दर्जन थी के लोगों अर्थात कर्षक (किसान), गोरक्षक (चरवाहा या पशुधन रखनेवाला) वैदेहक (व्यापारी), कारुक (शिल्पी) कर्मकर और दासों की कुल संख्या लिखकर रखे ।[54] मालूम होता है कि इस सूची में दो निम्न वर्णों के लोग हैं, जिनमें से प्रथम तीन वर्ग वैश्य वर्ण के हैं और शेष तीन शूद्र वर्ण के । मेगस्थनीज ने इस प्रसंग में उत्पादन करनेवाली जातियों को नहीं गिनाया है । कौटिल्य के वैश्य कर्षक जहाँ सामान्यतया मेगस्थनीज द्वारा वर्णित खेतिहरों से मिलते जुलते हैं,[55] वहाँ वैश्य व्यापारी और शूद्र शिल्पी तथा श्रमिक मेगस्थनीज की तीसरी जाति से मिलते हैं जो व्यापार करते हैं बर्तन बेचते हैं और शारीरिक श्रमवाले कार्य में नियोजित होते हैं ।[56] मेगस्थनीज ने यह भी बताया है कि इनमें से कुछ लोग कर चुकाते हैं और राज्य की कुछ विहित सेवाएँ करते हैं ।[57] इस विवरण का प्रथम भाग संभवतया व्यापारियों के संबंध में है और दूसरे भाग में शिल्पियों और श्रमिकों की चर्चा की गई है ।

अर्थशास्त्र में शूद्र सभवतया करदाता की कोटि में नहीं रखा गया है, किंतु गोप को उनकी भी सख्या लिखकर रखनी होती थी।[58] जिन गाँवों के लोग कर का भुगतान करते थे उनमें ऐसे लोगों की सूची रखनी पड़ती थी जो राज्य को नि शुल्क श्रम (विष्टि) प्रदान करते थे।[59] *अर्थशास्त्र* के एक परिच्छेद की टीका करते हुए भट्टस्वामिन् ने बताया है कि एक प्रकार के गाँव ऐसे थे जहाँ से कर के बदले श्रमिकों की मुफ्त आपूर्ति होती थी और उन गाँवों के निवासी किला आदि का निर्माण करने के लिए रहते थे।[60] टी गणपति शास्त्री ने ठीक ही कहा है कि इस तरह का काम कर्मकरों द्वारा किया जाता था[61] क्योंकि दासों और कर्मकरों का वर्ग हमेशा बेगार करने का भागी समझा जाता था।[62] इन बातों से पता चलता है कि शूद्रों को कर से मुक्त रखा गया था और उनसे सामान्यतया कृषि मजदूरों और दासों का काम कराया जाता था तथा उनकी कोई स्वतत्र जीविका नहीं थी।

कौटिल्य ने उन पशुपालकों की जीवनस्थिति की जानकारी दी है जिन्हें राज्य ने पशु अधीक्षक के सामान्य नियत्रण के अधीन बहाल कर रखा था।[63] उन्होंने इन लोगों की मजूरी घी का दसवाँ भाग नियत किया है, किंतु इनके कार्य के बारे में वे विशेष रूप से सतर्क हैं।[64] पशुपालकों के उत्तरदायित्व पर जोर देते हुए कौटिल्य ने बताया है कि यदि चरवाहे की गलती के कारण मवेशी खो जाए तो उसे शारीरिक दड भी दिया जा सकता है।[65] इतनी कठोर सजा, जिसका उल्लेख मौर्यपूर्वकालीन विधिग्रथों में नहीं किया गया है या तो पशुधन को अधिक आर्थिक महत्व दिए जाने के कारण या बौद्ध और जैन धर्मों के उपदेश के कारण अथवा दोनों ही कारणों से निर्धारित की गई थी। कठोर सजा का जो भी कारण हो, इतना स्पष्ट है कि मौर्यकाल तक असमान भूमि वितरण और असमान पशु वितरण उत्पादन सबधों के अभिन्न अग बन गए थे। इसलिए भूस्वामियों और बटाईदारों तथा खेत मजदूरों के बीच और पशुस्वामियों तथा चरवाहों के बीच, सबध निर्धारित करने के लिए *अर्थशास्त्र* तथा विधिग्रथों में नियम बनाए गए।

अब हम *अर्थशास्त्र* के उस साक्ष्य का विश्लेषण करें जो शिल्पियों के नियोजन, नियत्रण और मजूरी के बारे में है और जिससे शूद्रों की सामान्य स्थिति पर प्रकाश पड़ता है। कृषि कार्य में सहायता पहुँचाने के लिए राज्य की ओर से जिन शिल्पियों को नियोजित किया जाता था उनकी चर्चा पहले ही की जा चुकी है। बहुत से अन्य शिल्पियों को राज्य की ओर से बुनाई[66] खनन,[67] भडारपालन[68] आयुधनिर्माण[69] धातुकर्म[70] आदि में लगाया जाता था। पहले बुनकर जैसे शिल्पी गृहपति के अधीन काम करते थे किंतु बाद में राज्य उन्हें भारी सख्या में नियोजित करने लगा था।[71] औजार प्राय शिल्पियों का अपना ही रहता था, किंतु कच्चा माल राज्य की ओर से दिया जाता था। कहीं भी यह उल्लेख नहीं है कि इनमें से किन्हीं भी शिल्पों में दासों को लगाया जाता था। उन्हें खनन कार्य भी नहीं

करने दिया जाता था और यह काम कर्मकर से कराया जाता था।[72] ध्यातव्य है कि ग्रीस और रोम की खानों में भी दासों से काम लिया जाता था।

किंतु राज्य द्वारा शिल्पियों का नियोजन मुख्यतया राजधानी और प्राय महत्वपूर्ण नगरों में ही सीमित था, जहाँ शिल्पी पर्याप्त सख्या में रहते थे। दुर्ग निवेश विधान से पता चलता है कि शिल्पी राजमहल के उत्तर में रह सकते थे, और मजदूरों के शिल्पिसघों तथा अन्य लोगों को राजधानी के विभिन्न कोणों में आवासस्थान दिए जाएँगे।[73] यह भी कहा गया है कि जो शूद्र और शिल्पी ऊनी और सूती वस्त्र, बाँस की चटाई, चमडा कवच, हथियार ओर म्यान बनाते है उन्हें राजभवन से पश्चिम की ओर निवासस्थान दिया जाना चाहिए।[74] सभवतया इनमें से कुछ लोग सूत्राध्यक्ष के अधीन[75] और कुछ शस्त्रागार अधीक्षक के अधीन कार्य करते थे।[76] मेगस्थनीज ने बताया है कि शस्त्रनिर्माता ओर जहाज बनानेवालों को राजा से मजदूरी और रसद मिलती थी और वे केवल उसका काम करते थे।[77] इनके अलावा, ओद्योगिक शिल्प से सबधित प्रत्येक बात की देख-भाल के लिए नगर में पाँच व्यक्तियों की एक कमेटी बनाई गई थी।[78] इनसे पता चलता है कि राज्य का नियत्रण और शिल्पियों का रोजगार मुख्यतया नगरों तक ही सीमित था। किंतु मेगस्थनीज ने यह भी बताया है कि लकडहारे बढइयों लोहारों और खनिकों के कार्यों की निगरानी राज्य के उच्च अधिकारी करते थे।[79] इसका अर्थ यह हुआ कि नगर से बाहर रहनेवाले शिल्पियों पर किसी न किसी ढग का सामान्य नियत्रण रखा जाता था।

अर्थशास्त्र प्राचीनतम भारतीय ग्रथ है जिसमें मालिकों (नियोजकों) और मजदूरों (नियोजितों) के आपसी सबध के बारे में सामान्य नियम दिए गए है। शिल्पियों को विवाद का कारण माना गया है और कारुकररक्षणम् प्रकरण में इनसे बचने के बहुत से उपाय बताए गए हैं। शिल्पियों के लिए यह आवश्यक है कि वे समय स्थान और काम के स्वरूप के विषय में किए गए करार की पूर्ति करें। सकटों और आपदाओं को छोड अन्यथा चूक होने पर न केवल उनकी मजूरी का चौथा भाग जब्त कर लिया जाएगा, बल्कि उन्हें मजूरी की दुगनी राशि जुर्माने के रूप में चुकानी होगी और उनकी चूक के चलते जो घाटा होगा, उसे भी पूरा करना पडेगा।[80] काम के सिलसिले में अनुदेशों का उल्लघन करने पर मजूरी जब्त कर ली जाएगी और उसका दुगुना जुर्माना लिया जाएगा।[81] जो सेवक किसी ऐसे काम को पूरा करने में टालमटोल करेगा जिसके लिए उसे पहले ही भुगतान कर दिया गया है वह 12 पण जुर्माना चुकाने का भागी होगा और उसको तब तक काम करते रहना पडेगा जब तक काम पूरा न हो जाए।[82] किंतु यदि वह अपने बूते के बाहर के किन्हीं कारणों के चलते काम करने में असमर्थ हो तो उससे ऐसा जुर्माना नहीं लिया जाएगा।[83] दूसरी ओर कौटिल्य ने शिल्पियों के सरक्षण सबधी कुछ विनियम भी विहित किए हैं। तदनुसार जो कोई

शिल्पियों के काम का दर्जा घटाकर या सामानों की खरीद बिक्री में बाधा डालकर उन्हें अपनी उचित कमाई से वंचित करने का प्रयास करेगा, उस पर एक हजार पण जुर्माना लगाया जाएगा।[84] अपने मजदूर से काम न लेनेवाले मालिक से 12 पण जुर्माना लिया जाएगा।[85] और यदि वह पर्याप्त कारण के बिना काम लेने से इंकार करे तो माना जाएगा कि काम कराया गया है।[86] कौटिल्य ने संघबद्ध शिल्पियों को एक विशेषाधिकार प्रदान किया है। उन्हें अपनी संविदा के निष्पादन के लिए जो अवधि स्वीकृत की गई हो, उसके अतिरिक्त और भी सात रातों की मुहलत दी जाएगी।[87]

जहाँ तक मजदूरी नियत करने का प्रश्न है, कौटिल्य ने इसके लिए एक सामान्य सिद्धांत का प्रतिपादन किया है कि काम की किस्म और उसमें लगनेवाले समय को ध्यान में रखकर मजूरी नियत की जानी चाहिए। उन्होंने यह भी बताया है कि शिल्पियों, संगीतज्ञों, चिकित्सकों, रसोइयों और अन्य कामगरों को उतनी ही मजूरी मिलेगी, जितनी अन्यत्र काम में लगे इसी प्रकार के लोगों को मिलती है *अथवा जितनी विशेषज्ञ नियत करें।*[88] सेवकों को वादे के अनुसार मजूरी मिलेगी किन्तु यदि मजूरी का निर्णय पहले नहीं किया गया हो तो कृषक को (अर्थात कृषि मजदूर को) उपज का 1/10 भाग, पशुपालक को मक्खन का 1/10 भाग और व्यापारी को बिक्री से हुई आमद का 1/10 भाग मिलना चाहिए।[89] राजा की भूमि में उपजाई गई फसल का 1/4 या 1/5 भाग पाने के हकदार बटाई कृषि मजदूरों और फसल का 1/10 भाग पानेवाले सामान्य कृषि मजदूरों में विभेद किया गया है।

कौटिल्य के अनुसार मजूरी संबंधी विवादों का निपटारा गवाहों द्वारा प्रस्तुत साक्ष्य के आधार पर किया जाता था। यदि ऐसे साक्ष्य उपलब्ध नहीं होते थे तो नियोजक से पूछताछ की जाती थी।[90] विवाद के सिलसिले में कर्मचारी की जाँच नहीं की जाती थी, जिससे स्पष्ट है कि मालिक का अपराध सिद्ध करना कठिन था। किंतु यदि यह पाया जाता था कि उसने मजूरी का भुगतान नहीं किया है तो मालिक को *या तो मजूरी की राशि का दस गुना अथवा* 6 पण जुर्माना किया जाता था। इसके अतिरिक्त मजूरी का दुर्विनियोग करने पर 12 पण या मजूरी की रकम का पाँच गुना जुर्माना किया जाता था।[91] इन नियमों के आधार पर हमें मजूरी की दो विभिन्न दरों का पता चलता है, अर्थात 3/5 पण या 2 3/5 पण। इस तरह मालूम होता है कि श्रमिक की दैनिक मजूरी 3/5 पण से लेकर 2 2/5 पण तक थी। एक स्थान पर कौटिल्य ने बताया है कि इन उपबंधों के अतिरिक्त कृषि मजदूरों को 1 1/4 पण मासिक मजूरी मिलनी चाहिए। *अर्थशास्त्र* में उच्च वर्ग से नियुक्त उच्च अधिकारियों के वेतन और निम्न वर्ग के शिल्पियों के वेतन में बहुत बड़ा अंतर दिखाया गया है। सबसे अधिक वेतन की व्यवस्था ऋत्विज, अध्यापक, मंत्री, पुरोहित, सेनापति आदि के लिए की गई है और उन्हें प्रति मास अड़तालीस हजार पण वेतन मिलता था।[92] इनसे नीचे की

पंक्ति के अधिकारियों के लिए चौबीस हजार, बारह हजार या आठ हजार पण की सिफारिश की गई है,[93] किंतु शिल्पियों के लिए एक सौ बीस पण की ही अनुशंसा है।[94] फिर भी, यह उल्लेखनीय है कि वर्द्धकि के लिए, जो मुख्य बढ़ई होता था, चिकित्सक और सारथी की भाँति दो हजार पण का वेतन रखा गया है।[95] ग्रामभृतक (ग्राम अधिकारी)[96] और गुप्तचरों के मार्गदर्शक सेवक पर भी विचार किया गया है और प्रथम को पाँच सौ पण तथा द्वितीय को दो सौ पण वेतन दिया गया है।[97] चतुष्पदों और द्विपदों के प्रभारी सेवकों विविध कार्य करनेवाले कामगरों, राजपुरुषों के अनुचरों, अगरक्षकों और स्वतंत्र मजदूरों को जुगने के लिए अल्पतम वेतन 60 पण की सिफारिश की गई है।[98] मान लिया जाए कि यह भुगतान मासिक आधार पर किया जाता था तो सामान्य मजदूर के लिए इसकी दर प्रतिदिन दो पण होती है। किंतु ऐसे भी मजदूर थे जिन्हें केवल 20 पण की मासिक मजूरी दी जाती थी। पहले जो 3/5 पण प्रतिदिन की दर से वेतन दिखाया गया है उससे महीने की मजूरी 18 पण आती है।

समाज में सबसे कम भुगतान शिल्पियों और वेतनभोगियों को किया जाता था, किंतु हमें उनके रहन सहन के स्तर का स्पष्ट ज्ञान नहीं हो सकता क्योंकि पण की क्रयशक्ति की जानकारी नहीं मिल पाती है। कौटिल्य ने बताया है कि राज्य की सेवा करनेवाले दासों और कर्मकरों को अपने निर्वाह के लिए भडार के अधीक्षक से खुदी मिलनी चाहिए।[99] इन्हें देने के बाद जितनी खुदी बच जाए वह रोटी पकानेवाले रसोइयों को दी जाए।[100] संभव है कि ये रसोइए दास रहे हों क्योंकि मौर्यपूर्व काल में इन्हें रसोई के काम में लगाया जाता था। जहाँ तक विकृत मदिरा को निपटाने का प्रश्न है कहा गया है कि यह दासों और कर्मकरों को मजूरी के रूप में दी जानी चाहिए, क्योंकि उनका काम हीन ढंग का है।[101] कौटिल्य ने सामान्य आर्य और शूद्र के आहार में विभेद किया है। आर्य को राशन के रूप में एक प्रस्थ शुद्ध चावल, 1/61 प्रस्थ नमक 1/4 प्रस्थ शोरबा और 1/64 प्रस्थ मक्खन या तेल मिलना चाहिए, और अवर को चावल और नमक तो उतनी ही मात्रा में मिलना चाहिए किंतु शोरबा 1/6 प्रस्थ और तेल की मात्रा आर्य के लिए अनुशंसित मात्रा की आधी होनी चाहिए।[102] उसके लिए मक्खन की सिफारिश नहीं की गई है। इस प्रसंग में अवर का अर्थ है नीच जाति का व्यक्ति (निकृष्टात्म) जो शूद्र होता है। किंतु आर्य को उच्च वर्गों का सामान्य सदस्य माना गया है।[103] उच्च कोटि के आर्यों यथा राजा रानी और सेनाध्यक्षों के लिए और अधिक मात्रा में राशन की व्यवस्था की गई है।[104] इन बातों से स्पष्ट है कि शूद्रों को हीन कोटि का भोजन दिया जाता था।

ऐसा ज्ञात होता है कि मौर्य काल में शूद्रों की आर्थिक स्थिति में बहुत-से परिवर्तन हुए। पहली बार शूद्रों को जो अभी तक कृषि मजदूर थे राज्य की भूमि में बटाईदारी भी

दी जाने लगी। किंतु कृषि-उत्पादन के लिए राज्य की ओर से शूद्रों को बहुत बड़े पैमाने पर दासों और श्रमिकों के रूप में नियोजित किया जाता था। नीचे दर्जे के लोग या तो खास खास किसानों के अधीन अथवा स्वतंत्र रूप से काम करते थे और गाँवों में रहते थे। उनसे धर्मसूत्र काल की अपेक्षा बड़े पैमाने पर कर्मी (बेगार) ली जाती थी, हालाँकि उक्त कालावधि में यह मुख्यतया शिल्पियों तक ही सीमित रखी गई थी।[105] यह बात अब इतनी व्यापक हो गई थी कि सरकारी सेवक का एक वर्ग जो विष्टिबंधक कहलाता था, लोगों से निःशुल्क सेवा कराने की धुन में लगा रहता था।[106] यद्यपि समाज में शूद्र को मजदूर और शिल्पी के रूप में सबसे कम मजूरी दी जाती थी, फिर भी संभव है कि मजूरी की दर नियत हो जाने से उनकी दशा सुधरी हो। किंतु प्रायः उनके रहन सहन के स्तर में कोई विशेष परिवर्तन नहीं दिखाई देता।

कौटिल्य ने स्पष्ट शब्दों में यह नहीं कहा है कि शूद्रों को उच्च प्रशासकीय पद नहीं दिए जाएँ जबकि धर्मसूत्रों में ऐसा विधान किया गया है। किंतु राजा और उच्च शासकीय पद धारण करने के लिए अपेक्षित योग्यता की जो सूची उन्होंने बनाई है, उससे पता चलता है कि ये पद तीन उच्च वर्णों के लिए विशेष रूप से सुरक्षित रखे गये थे। उन्होंने बताया है कि हीन जाति के किसी बली राजा की अपेक्षा लोग अच्छे कुल के राजा की आज्ञा मानेंगे भले ही वह कमजोर क्यों न हो।[107] अतएव उनकी राय है कि राजा को उच्च कुल में उत्पन्न होना चाहिए।[108] उनका कथन है कि जिस प्रकार चंडालों का जलाशय केवल उनके उपयोग के लिए होता है उसी प्रकार नीच कुल में उत्पन्न राजा नीच जाति के लोगों को ही संरक्षण देता है, न कि आर्यों को। नीच कुल में उत्पन्न राजा के प्रति कौटिल्य को जितनी घृणा थी उससे पता चलता है कि वे किसी शूद्र माँ से उत्पन्न राजा के अधीन सेवा करने को कभी तैयार नहीं हुए होंगे। अतः यह संभव नहीं लगता कि मौर्यों की उत्पत्ति शूद्र जाति से हुई हो *जैसा कहीं कहीं कहा गया है*।[109] *यह प्रायः निश्चित है कि चंद्रगुप्त क्षत्रिय* समुदाय के मोरिय वंश के थे।[110]

अर्थशास्त्र में अमात्यों का संवर्ग अधिकारियों का सबसे ऊँचा संवर्ग माना गया है। इसी संवर्ग से पुरोहित, मंत्री, समाहर्ता, सन्निधाता, अन्तःपुर के प्रभारी अधिकारी, राजदूत और दो दर्जन से भी अधिक विभागों के अधीक्षक नियुक्त किए जाते हैं।[111] किंतु कौटिल्य और उनके द्वारा उद्धृत अन्य विद्वानों ने अमात्यों की योग्यताओं के बारे में जो सामान्य मानदंड निर्धारित किया है, वह है उच्चे कुल में जन्म लेना। यह बात विभिन्न रूपों में व्यक्त की गई है यथा 'जिसका पिता और पितामह अमात्य हो, जो अभिजन और जानपदोभिजात हो।'[112] यह संदिग्ध है कि इस तरह का मानदंड रहने पर शूद्रों के प्रवेश की कोई गुंजाइश रही हो। अरस्तू ने बताया है कि आभिजात्य परंपरागत समृद्धि और

गुणोत्कर्ष का समन्वित रूप है[113] —ऐसा गुण तो शूद्रों में विरल ही होगा। मेगस्थनीज ने ऐसे व्यावसायिक पार्षदों और करनिर्धारकों का उल्लेख किया है जो कम सख्या में होते हुए भी सरकार के उच्च कार्यपालक और न्यायपालक पदों पर एकाधिकार रखे हुए थे।[114] उन्होंने बताया है कि अतिभद्र और अतिधनवान व्यक्ति राज काज के सचालन में भाग लेते थे, न्याय व्यवस्था करते थे और राजा के साथ परिषद में बैठते थे।[115] इनकी जाति बिल्कुल भिन्न थी, यह तथ्य इस नियम से स्पष्ट होता है कि वे अपनी जाति से बाहर विवाह नहीं कर सकते थे, अपने व्यवसाय या व्यापार को छोड़ दूसरा ग्रहण नहीं कर सकते थे और एक से अधिक कारबार नहीं चला सकते थे।[116] इन बातों से स्पष्ट है कि निम्न जाति के लोगों के लिए उच्च आधिकारिक पदों पर पहुँचने के मार्ग बद थे।

शूद्रों को जासूसी का कार्य दिया जाता था जो मौर्य प्रशासनतत्र का महत्वपूर्ण अग था। कौटिल्य ने बताया है कि अन्य लोगों के साथ साथ शूद्र महिलाओं को घुमक्कड़ जासूस के रूप में नियुक्त किया जा सकता है।[117] यह भी कहा गया है कि जो स्नान के लिए पानी लानेवाले, मालिश करनेवाले, शय्याकार, हज्जाम प्रसाधन सामग्री निर्माता पानी भरनेवाले सेवक, कलाकार, नर्तक और गायक के रूप में नियोजित हैं उन्हें राजा के अधिकारियों के व्यक्तिगत चरित्र पर नजर रखनी चाहिए।[118] स्पष्ट है कि इनमें से अधिकाश लोग शूद्र होते थे। भृत्य के रूप में काम करते हुए वे निरतर अपने मालिक के सपर्क में रहते थे अत उन्हें अपने मालिक के व्यक्तिगत चरित्र पर रिपोर्ट करने का सबसे अच्छा साधन माना गया था। इतना ही नहीं कौटिल्य का मत है कि समाज के सभी वर्ग के लोगों को जिनमें कृषक पशुपालक और जगली जातियाँ भी हैं, दुश्मनों की गतिविधि जानने के उद्देश्य से जासूस नियुक्त किया जाना चाहिए। यह ऐसा उपबध है जिसमें शूद्र भी आ जाते हैं।[119] निम्न जाति के लोग सवादवाहक के रूप में भी काम करते थे क्योंकि कौटिल्य ने बताया है कि यद्यपि सवादवाहक अछूत होते हैं फिर भी वे मृत्युदड के पात्र नहीं हैं।[120]

विशेष महत्व की बात यह है कि *अर्थशास्त्र* में शूद्रों को सेना में बहाल करने का उपबध किया गया है। धर्मसूत्रों से तो ऐसी धारणा बनती है कि सामान्यतया केवल क्षत्रिय और आपातिक स्थिति में केवल ब्राह्मण तथा वैश्य शस्त्र धारण कर सकते हैं। सेना को राज्य का अनिवार्य अग बताते हुए कौटिल्य ने यह भी स्पष्ट कहा है कि परपरानुसार वह सेना सर्वोत्कृष्ट है, जिसमें केवल क्षत्रिय सिपाही हों।[121] किंतु उन्हें ब्राह्मण सेना पसद नहीं है, जिसे प्रणाम और अनुनय विनय करके रिझाया जा सकता है।[122] दूसरी ओर, वह वैश्यों और शूद्रों की सेना पसद करते हैं, क्योंकि उसमें लोगों की सख्या अधिक होती है।[123] किंतु यह सदिग्ध है कि इन दो निम्न वर्णों के सदस्य इस काल में वस्तुत सैनिक के रूप में नियुक्त किए जाते थे। मेगस्थनीज ने साफ साफ कहा है कि कृषक (जो सामान्यतया

वैश्य होते थे) सैनिक सेवा से मुक्त रखे गए थे और सेना उनकी रक्षा के लिए रहती थी।[124] एरियन और स्ट्रेबो, दोनों ने ही बताया है कि भारत में लड़ाकू लोगों की पाँचवीं जाति थी और उनके निर्वाह का खर्च राज्य वहन करता था।[125] अशोक के समय के उत्कीर्ण लेखों में 'भटमयेसु' शब्द के प्रयोग से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि सैनिकों का भी एक वर्ग था।[126] मेगस्थनीज से हमें जानकारी मिलती है कि सेना का एक अनुभाग (डिवीजन) ऐसा था जो विविध प्रकार के कार्य, यथा वाद्यवृंद वादक, अश्वपाल, मिस्त्री या उसके सहायक का काम करने के लिए आदमी भेजता था।[127] एरियन ने भी उन सेवकों की चर्चा की है जो न केवल सैनिकों की सेवा करते थे, बल्कि घोड़े हाथी और रथों की भी देखभाल करते थे।[128] संभवतया स्थायी सेना में शूद्रों को भृत्यों और अनुचरों के रूप में बहाल किया जाता था, न कि सैनिकों के रूप में किंतु कौटिल्य के नियम से संकेत मिलता है कि आपातिक स्थिति में शूद्रों को सेना में बहाल किया जा सकता था। नई बस्तियों में वागुरिक, शबर पुलिंद तथा चंडाल जैसी जनजातियों को आतरिक प्रतिरक्षा का भार सौंपा जाता था।[129]

विधि और न्याय के प्रशासन में कौटिल्य ने वर्णविधान का सिद्धांत अपनाया है। उनके अनुसार पतित चंडाल और हीन व्यवसाय करनेवाले अपने अपने समुदायों के दीवानी मामलों को छोड अन्यत्र गवाह नहीं बन सकते है।[130] उन्होंने यह भी बताया है कि नौकर अपने मालिक के विरुद्ध गवाही नहीं दे सकता है।[131] उसी प्रकार बधक मजदूर और दास अपने मालिक की ओर से करारपत्र निष्पादित नहीं कर सकता है।[132] कौटिल्य ने इस *बात का भी विधान बताया है कि विभिन्न वर्णों के लोगों को न्यायालय किन रूपों में चेतावनी* दे सकता है। सबसे कड़ी चेतावनी शूद्र के लिए विहित की गई है जिसे स्मरण करा देना है कि गलत बयान देने पर उसे कितने बुरे दैविक और भौतिक परिणाम भुगतने पड़ेंगे।[133] इस विषय में न्यायालय शूद्र को केवल जुर्माना और सेवा के लिए अवद्ध कर सकता है। तीनों उच्च वर्णों के लोगों के बारे में ऐसी किसी बात का कोई उल्लेख नहीं है।[134] इस उपबंध के तुरत बाद एक और उपबंध है जिसमें कौटिल्य ने गलत बयान देनेवाले गवाहों के लिए 12 पणों का जुर्माना विहित किया है।[135] इससे यह आभास मिलता है कि दंड का विधान प्राय शूद्र गवाह के लिए ही विहित था। मेगस्थनीज ने लिखा है कि गलत बयान देने के लिए सिद्धदोष गवाहों के अंग काट लिए जाते थे।[136] हो सकता है कि यह दंडविधान या तो नीच जाति के लोगों अथवा किसी खास क्षेत्र के लोगों के लिए विहित किया गया हो।

दंड देने के संबंध में कौटिल्य ने धर्मसूत्रों के वर्णविभेदों को माना है। तदनुसार यदि चारों वर्णों और अंतावसायिनों (अछूतों) में से हीन जाति का कोई व्यक्ति उच्च जाति के किसी व्यक्ति की निंदा करे तो उसे अधिक जुर्माना चुकाना होगा, और यदि हीन जाति के

किसी व्यक्ति को उच्च जाति वाला बदनाम करे तो उसे कम जुर्माना देना होगा।[137] *अर्थशास्त्र* में यह नियम भी दिया गया है कि शूद्र जिस अंग से ब्राह्मण पर प्रहार करे, वह अंग ही काट लिया जाए।[138] हमें संदेह है कि यह परिच्छेद कौटिल्य के ग्रंथ का है क्योंकि यह मनु के अतिवादी विचार से मिलता है। कौटिल्य ने एक दूसरा नियम यह भी बनाया है कि यदि कोई क्षत्रिय किसी अरक्षित ब्राह्मण महिला का गमन करे तो उसे उच्च से उच्च अर्थदंड दिया जाएगा, वैश्य की संपत्ति छीन ली जाएगी और शूद्र को चटाई में लपेटकर जिंदा जला दिया जाएगा।[139] आर्य स्त्री का अवैध संभोग करनेवाले श्वपाक को मृत्यु दंड मिलेगा और महिला के नाक कान काट लिए जाएँगे।[140] यह आश्चर्य की बात नहीं कि शूद्रों और श्वपाकों को ऐसे कठोर दंड दिए जाते थे, क्योंकि श्वपाक जाति की महिला के साथ अवैध समागम के लिए भी कौटिल्य ने अपराधी को दागने और निष्कासित करने की सजा विहित की है।[141]

कौटिल्य ने कुछ प्रकार के भोजन-पान के संबंध में जो निषेध किए हैं, वे सभी समान रूप में सभी वर्णों पर लागू नहीं होते। अतः यदि कोई व्यक्ति किसी ब्राह्मण को निषिद्ध भोजन-पान में सम्मिलित होने के लिए प्रेरित करे तो उसे प्रथम कोटि के अपराध का दंड दिया जाएगा क्षत्रिय के संबंध में यही अपराध होने पर मध्यम कोटि का वैश्य के विरुद्ध होने पर प्रथम कोटि के अपराध का दंड और शूद्र के विरुद्ध होने पर 54 पण का अर्थदंड दिया जाएगा।[142] गबन या दुर्विनियोग के मामले में सबसे कड़ी सजा भृत्यों के बारे में निर्धारित की गई है। यदि कोई अधिकारी या किरानी इस तरह का अपराध करे तो उस पर जुर्माना किया जाएगा किंतु सेवक को ऐसे मामले में शारीरिक दंड दिया जाएगा।[143]

दायविधि में कौटिल्य ने वर्णों के बीच प्राचीन विभेद माना है। अंतर्मिश्रित (वर्णसंकर) जातियों से उत्पन्न पुत्र यथा सूत मागध व्रात्य और रथकार अपना हिस्सा पाने के हकदार तभी हैं जब पैतृक संपत्ति प्रचुर मात्रा में हो।[144] कौटिल्य ने यह भी व्यवस्था की है कि जो पुत्र ऊपर बताए गए पुत्र से हीन कोटि के हों उन्हें कोई भी हिस्सा नहीं मिलेगा किंतु वे अपने निर्वाह के लिए सबसे बड़े पुत्र पर निर्भर कर सकते हैं।[145] स्वाभाविक ही है कि इसके अनुसार आयोगव, क्षत्ता निषाद पुल्कस और चंडाल हिस्सा पाने से वंचित रखे गए हैं। लेकिन पारशव (अर्थात शूद्र महिला से ब्राह्मण द्वारा उत्पन्न पुत्र) की स्थिति अपेक्षाकृत अच्छी है। कहा गया है कि यदि कोई ब्राह्मण संतानविहीन हो तो उसकी पैतृक संपत्ति में एक तिहाई हिस्सा उसके पारशव पुत्र को मिलेगा[146] और शेष दो हिस्से या तो उसके जीवित सपिंडों को अथवा, उनके अभाव में उसके गुरु या शिष्य को मिलेंगे।[147] इससे संकेत मिलता है कि यदि ब्राह्मण पिता को संतान न हो तो शूद्र पत्नी से भी उत्पन्न पुत्रों को पर्याप्त हिस्सा मिलेगा। यदि किसी ब्राह्मण को चारों जातियों की पत्नियों से पुत्र हों तो उनके

लिए कौटिल्य ने संपत्ति के बँटवारे में धर्मसूत्र का सिद्धांत अपनाया है।[148] उन्होंने इस सिद्धांत का विस्तार क्षत्रिय और वैश्य पिता की तीन या दो जातियों की पत्नियों से उत्पन्न पुत्र तक किया है, किंतु हर हालत में शूद्रपुत्र को लघुतम हिस्सा दिया गया है।[149]

अर्थशास्त्र में दासों की स्थिति को ध्यान में रखते हुए शूद्र की नागरिक हैसियत के प्रश्न पर सावधानी से विचार करने की आवश्यकता है। धर्मसूत्रों के लेखकों की तरह कौटिल्य ने आर्य को स्पष्टतया स्वतंत्र माना है और कहा है कि किसी भी स्थिति में आर्य को दास नहीं बनाया जा सकता।[150] इसके परिणामस्वरूप उन्होंने नियम बनाया है कि जो शूद्र जन्मजात दास न हो, वयस्क नहीं हुआ हो और आर्यप्राण (आर्य से उत्पन्न) हो उसका रिश्तेदार यदि ऐसे शूद्र को बेचे या बंधक रखे तो उसे 12 पण जुर्माना किया जाएगा तथा इस तरह के कार्य से जितने भी लोग संबद्ध होंगे उन सबको कठिन दंड दिया जाएगा।[151] इससे ध्वनित होता है कि शूद्र पत्नी से उत्पन्न तीन उच्च वर्णों के पुत्रों को खरीद या बंधक के जरिए दास नहीं बनाया जा सकता था।[152] प्रायः उन्हें न्यायदंड, युद्धबंदी और ऐच्छिक दासता आदि के जरिए इस स्थिति में लाया जाता था।[153] इसी प्रसंग में कौटिल्य ने युद्ध में बंदी बनाए गए आर्यप्राण को दास बनाए जाने का हवाला दिया है।[154] अतएव उनके नियम में स्पष्ट बताया गया है कि तीन उच्च वर्णों के अवयस्क शूद्रपुत्रों को छोड़ चौथे वर्ण के अन्य सदस्यों को दास बनाया जा सकता था। इन बताए गए शूद्रों में भी जिनकी संख्या अवश्य ही छोटी रही होगी दास बनाने के लिए विहित किया गया जुर्माना अल्पतम है, अर्थात् 12 पण, जो वैश्य क्षत्रिय या ब्राह्मण के मामले में क्रमशः बढ़ता जाता है।[155]

किंतु कुछ विशेष परिस्थितियों में, यथा घरेलू संकट या जुर्माना अथवा ऋण का भुगतान करने में अक्षम रहने पर आर्य का भी जीवन बंधक रखा जा सकता था।[156] जहाँ तक इन बंधक रखे गए लोगों (आहितकों) का संबंध है, कौटिल्य ने कई उदार नियम बनाए हैं। यह विधान किया गया है कि रिश्तेदार बंधक रखे गए व्यक्तियों को यथाशीघ्र विमुक्त करा लेंगे। उसे अपवित्र कार्य करने के लिए नहीं कहा जाएगा। यदि बंधक रखी गई किसी महिला का मालिक नंगा होकर स्नान करते समय उसे किसी कार्य के लिए अपने पास बुलाएगा अथवा उस महिला का शीलहरण करेगा या गाली देगा अथवा मारे पीटेगा तो वह ऐसी महिला का बंधक मूल्य पाने का हकदार नहीं रह जाएगा और महिला स्वतः मुक्त हो जाएगी। बंधक रखी गई किसी युवती पर बलात्कार करने की दशा में उसके मालिक का न केवल क्रयमूल्य जब्त हो जाएगा बल्कि वह युवती को कुछ रकम शुल्क के रूप में देगा और शुल्क की दुगुनी राशि सरकार को चुकाएगा। यदि परिचारिका के रूप में बंधक रखी गई दासी के साथ उसका मालिक समागम करे तो उसे प्रथम कोटि का दंड दिया जाएगा। इसी प्रसंग में कहा गया है कि यदि किसी उच्च वर्ण के परिचारक के प्रति हिंसात्मक प्रयोग किए

जाएँ, तो उसे भाग जाने का अधिकार होगा।[157] इससे स्पष्ट है कि संभवतया आहितक भी उच्च वर्ण के थे। दुर्भाग्यवश, उपर्युक्त परिच्छेद के अनुवाद में शामा शास्त्री ने दास और आहितक के बीच भेद नहीं करके दोनों के लिए मनमाने ढंग से 'दास' शब्द का प्रयोग किया है।[158] किंतु कौटिल्य के कई कथनों से जाहिर होता है कि दास और आहितक दो भिन्न कोटियों के कर्मचारी थे। उन्होंने विहित किया है कि दास और आहितक द्वारा किए गए करारपत्र अवैध घोषित कर दिए जाने चाहिए।[159] उन्होंने यह भी बताया है कि राजा को देखना चाहिए कि लोग अपने दासों और आहितकों के दावों पर ध्यान देते हैं।[160] कौटिल्य ने यह भी विहित किया है कि जो औरतें अपने आप को किसी दास, परिचारक (सेवक) या आहितक के प्रति समर्पित करें, उनका वध कर दिया जाए।[161] इन सभी मामलों में शामा शास्त्री ने माना है कि आहितक दास से भिन्न थे। वे या तो बंधक रखे गए मजदूर थे या भाड़े के मजदूर।[162] चूँकि दासकर्मकरकल्प के अध्याय में आहितकों को दासों जैसा ही समझा गया, इसलिए आहितकों पर लागू होनेवाले नियम दासों पर भी लागू माने गए हैं।[163] किंतु उपर्युक्त विश्लेषण बताते हैं कि कौटिल्य के ये नियम बंधक रखे गए दासों पर लागू होते थे जो अधिकांशतया आर्य वर्ण की महिलाएँ होती थीं। उपर्युक्त नियमों से यह भी प्रकट होता है कि सामान्य दासों को उसका मालिक पीट सकता था और उसे गालियाँ दे सकता था तथा गंदे कार्य करने के लिए भी कह सकता था।

कौटिल्य के अनेक नियम जो दासों की मुक्ति के बारे में हैं, मात्र दासता की स्थिति में पहुँचा दिए गए आर्यों पर लागू होते हैं। नियम बताता है कि जिसने अपने को बेच लिया हो, उसके बेटे को आर्य (स्वतंत्र) समझना चाहिए।[164] कोई व्यक्ति अपने मालिक के कार्य में विघ्न डाले बिना अर्जन करके और अपने पूर्वजों की संपत्ति विरासत में प्राप्त करके अपना क्रयमूल्य चुका सकता है और इस प्रकार अपना आर्यत्व पुनः प्राप्त कर सकता है।[165] युद्ध में बंदी बनाया गया आर्यप्राण मुक्ति मूल्य चुकाकर मुक्त हो सकता है।[166] समुचित मुक्ति मूल्य पा लेने के बाद किसी दास को आर्य नहीं मानने पर 12 पण जुर्माना किया जाएगा।[167] ऐसे सभी मामलों में आर्यत्व की पुनः प्राप्ति का प्रश्न केवल उन्हीं लोगों के लिए उठ सकता है जो पहले से ही आर्य रहे हों। शूद्रों के लिए यह प्रश्न नहीं उठ सकता। उपर्युक्त उपबंध अधिक से अधिक तीन उच्च वर्णों के उन पुत्रों पर लागू हो सकेंगे, जो शूद्र माताओं से उत्पन्न हुए हों।

कौटिल्य ने पराधीनता से मुक्ति के लिए दो अलग-अलग शब्दों का प्रयोग किया है। आर्यों के लिए 'आर्यत्वम्' शब्द प्रयुक्त हुआ है। किंतु जब आर्येतर गुलामों को मुक्त करने का प्रसंग आया है तब 'अदास' शब्द का प्रयोग किया गया है। उदाहरणस्वरूप यह बताया गया है कि यदि कोई मालिक अपनी दासी से बच्चा पैदा करे तो माँ और बच्चा दोनों

ही मुक्त समझे जाएँगे।[168] यदि ऐसी कोई माँ अपने परिवार के भरण पोषण के विचार से दास बने रहने का ही निश्चय करे तो उसकी माँ, भाई और बहन को मुक्त कर दिया जाएगा (अदासा स्यु)।[169] मालूम होता है कि ये दास गुलाम तो नहीं रह जाते थे, किंतु आर्य नहीं बन सकते थे। प्राचीन पालि ग्रंथों में दासों की दासत्व मुक्ति के लिए 'भुज्जीस'[170] शब्द का प्रयोग हुआ है और स्पष्ट रूप से यह बता दिया गया है कि केवल यवनों में ही आर्य दास बन सकता है, और दास आर्य बन सकता है।

यह कहना कठिन है कि क्रयमूल्य चुकाकर मुक्ति पाने का नियम आर्येतर दासों पर भी उसी रूप में लागू था, जिस रूप में वह आर्य दासों पर था। प्राय मूल्य चुका देने पर भी शूद्र दासों का मुक्त किया जाना उनके मालिक की इच्छा पर निर्भर था। किंतु कभी कभी उन लोगों को भी मुक्ति मिल जाती थी, क्योंकि यह विहित किया गया है कि जिस दास या दासी को एक बार उन्मुक्त करा दिया जाए उसे बेचने या बंधक रखने पर 12 पण जुर्माना देना होगा। किंतु यदि कोई इच्छापूर्वक दास बने तो ऐसा जुर्माना नहीं किया जाएगा।[171] मालूम होता है कि सामान्य दास भी संपत्ति अर्जन कर सकता था और उसका मालिक धन से उसे वंचित नहीं कर सकता था।[172] स्वभावतया इस संपत्ति से उसे अपनी मुक्ति में सहायता मिलती थी।

दासों के प्रति किए जानेवाले बर्ताव को विनियमित करने के लिए कौटिल्य ने कुछ नियम बनाए हैं जो शूद्र दासों तथा उच्च वर्ण के दासों पर भी लागू होते हैं। उन्होंने बताया है कि जो दास आठ वर्ष से कम उम्र का हो और सगा संबंधी विहीन हो, उसे हीन व्यवसायों में नहीं लगाया जा सकता और न उसे विदेश में बेचा या बंधक रखा जा सकता है।[173] इसी प्रकार किसी गर्भवती दासी को प्रसव की व्यवस्था के बिना बेचा या बंधक नहीं रखा जा सकता है।[174] पुन, मालिक बिना किसी कारण के अपने दास को कैद में नहीं रख सकता।[175] जनपदनिवेश संबंधी अध्याय में यह आदेश दिया गया है कि राजा को चाहिए लोगों को बाध्य करे कि वे अपने दासों और आहितकों के दावे पर ध्यान दें।[176] यह तथ्य अशोक द्वारा बार बार दिए गए उन अनुदेशों से मिलता है जिनमें कहा गया है कि दासों और सेवकों के प्रति दयालुतापूर्ण व्यवहार किया जाना चाहिए।[177]

कौटिल्य के उदार नियम अधिकांशतया आहितकों और भूतपूर्व आर्य दासों पर लागू थे, जिनकी संख्या निश्चय ही कम रही होगी। उनमें से कुछ ही नियम सामान्य दासों की बड़ी संख्या पर लागू होते थे, जो शूद्र थे। इस तथ्य पर ध्यान न देने के कारण यह गलत निष्कर्ष निकाला गया है कि कौटिल्य के विधान परोक्ष रूप से दासता का उन्मूलन करते हैं अथवा उनकी नीति ऐसी है कि उनका देश स्वतंत्र व्यक्तियों का देश बन जाए।[178] उनके उदार नियम से मुख्यतया यह जान पड़ता है कि वे आर्येतर या शूद्र दासों की अपेक्षा भूतपूर्व

आर्य दासों की स्थिति बचाने के लिए चिंतित थे। यह स्वाभाविक है, क्योंकि मालूम होता है कि कौटिल्य ने साक्ष्य, परस्त्रीगमन और दाय संबंधी विधियों में शूद्र और उच्च वर्णों के बीच भेद रखा है।[179] यद्यपि कौटिल्य ने धर्मशास्त्रों की भाँति आर्य और शूद्र के बीच स्पष्ट विभेद नहीं किया है, फिर भी उन्होंने आहार सामग्री देने के विषय में आर्य और अवर के बीच स्पष्ट विभेद किया है[180] और इसमें कोई संदेह नहीं कि 'अवर' शब्द का प्रयोग शूद्र के लिए किया गया है।

दासता के बारे में कौटिल्य ने अपेक्षाकृत अधिक विस्तार से नियम बनाए हैं, जैसा कि धर्मसूत्रों में नहीं पाया जाता। इससे यह पता चलता है कि मौर्यकालीन भारत में दासों की संख्या पर्याप्त थी। मेगस्थनीज का उद्धरण देते हुए एरियन ने बताया है कि कोई भी भारतीय दास नहीं रखता था।[181] किंतु ओनेसिक्रितोज के विवरण से इस उक्ति में बहुत अंतर आ जाता है। स्ट्रेबो ने ओनेसिक्रितोज को अधिक विश्वसनीय और मेगस्थनीज को झूठा बताया है।[182] ओनेसिक्रितोज ने बताया है कि मौसिकैनो देश—जिसमें आधुनिक सिंध का अधिकांश भाग शामिल था—के निवासियों में दास नहीं रखने की विचित्र प्रथा थी।[183] उसका कथन है कि वे लोग दासों के बदले नवयुवकों से काम लेते थे, जिस प्रकार क्रीटवासी स्कैमियोतई[184] और लैसिडिमोनिया के लोग गुलामों को रखते थे।[185] इससे पता चलता है कि मौसिकैना में भी ऐसा वर्ग था जो पूरे समाज की गुलामी करता था और किसी खास व्यक्ति के अधीन नहीं था। इस प्रथा से ब्राह्मण काल के उस सिद्धांत की पुष्टि होती है जिसके अनुसार दास और भाड़े के मजदूर बनकर शूद्र तीन उच्च वर्णों की सेवा करते थे।

आमतौर पर इस तरह का कोई संकेत नहीं मिलता कि मौर्यकाल में शूद्रों की नागरिक और आर्थिक स्थिति में कोई मूलभूत परिवर्तन हुआ। मौर्यकाल से पहले उन पर जो राजनीतिक और कानूनी अशक्तताएँ लादी गई थीं वे मुख्यतया बनी रहीं। अशोक ने अपने चतुर्थ स्तंभ आदेश में राजुक को बताया है कि अपने प्रभार के अधीन रखे गए जनपद में वह व्यवहार समता और दंड समता लागू करे।[186] इन दोनों शब्दों का निर्वचन 'न्याय संबंधी कार्यवाहियों में निष्पक्षता और 'दंड में निष्पक्षता' किया गया है।[187] किंतु प्राचीन विधियों में वर्ण पर आधारित भेदभावों को देखते हुए कह सकते हैं कि उपर्युक्त शब्द आदर्शवादी शासकों द्वारा ऐसे भेदभावों को छोड़ने के प्रयास के सूचक हैं। यह नीति वस्तुतया किस प्रकार और कहाँ तक लागू की जाती थी यह स्पष्ट नहीं होता है। संभवतया दीर्घकालीन पूर्वाग्रहों के चलते यह नीति सफल नहीं हो सकी। इतना ही नहीं, चूँकि उपर्युक्त राज्यादेश 238 ई. पू.[188] में निर्गत हुआ जबकि उसका राज्यकाल समाप्त हो रहा था इसलिए उसकी मृत्यु से बहुत पहले शायद ही उस आदेश को कार्यान्वित किया गया होगा।

इस प्रकार इस निर्णय से केवल ब्राह्मणों की शत्रुता बढ़ी होगी और निम्न वर्ण के लोगों को कोई लाभ नहीं पहुँचा होगा।

मुख्यतया आर्थिक और राजनीतिक प्रश्नों से सबद्ध ग्रंथ के रूप में *अर्थशास्त्र* शूद्रों की सामाजिक स्थितियों पर उतना प्रकाश नहीं डालता, जितना धर्मसूत्र डालते हैं। किंतु इसमें शूद्रों की विवाह प्रथा और उनकी महिलाओं की स्थिति की विशद चर्चा की गई है। इससे हमें जानकारी मिलती है कि ब्याही जानेवाली लडकी को पाणिग्रहण संस्कार से पहले तक अस्वीकार कर देना तीन उच्च वर्णों में मान्य समझा गया है, किंतु शूद्रों में यह मान्यता संभोग के पूर्व तक दी गई है।[189] यह भी कहा गया है कि प्रथम चार प्रकार के अनुमोदित विवाहों में तलाक की अनुमति नहीं है,[190] जिससे ध्वनित होता है कि गांधर्व, आसुर, राक्षस और पैशाच विवाह में इसकी अनुमति दी गई है। पहले बताया जा चुका है कि गांधर्व और पैशाच विवाह वैश्यों और शूद्रों में प्रचलित था[191] जिससे पता चलता है कि वे लोग विवाह के बंधन को तोड़ना आसान समझते थे। कौटिल्य ने यह भी बताया है कि अनुमोदित ढंग के विवाहों के लिए पिता की सहमति अपेक्षित थी, और अनुमोदित ढंग के विवाहों के लिए माता की भी सहमति लेना आवश्यक था।[192] इससे परोक्ष रूप में यह सिद्ध होता है कि निम्न वर्णों में मातृप्रधानता के कई तत्वों के बने रहने के कारण उनके बीच स्त्रियों का कुछ स्थान था।

कौटिल्य ने जो उपर्युक्त नियम बनाए हैं वे प्राचीन धर्मसूत्रों में नहीं दिखाई पडते। किंतु विभिन्न वर्णों के प्रवासी पतियों की पत्नियों के लिए कौटिल्य ने प्रतीक्षा की अवधि प्राय वही रखी है जो वसिष्ठ द्वारा निर्धारित है और इसके लिए अल्पतम अवधि शूद्र की पत्नी के लिए विहित है।[193] ये सभी निषेधाज्ञाएँ बताती हैं कि शूद्रों में विवाह का बंधन उतना प्रबल नही था जितना उच्चवर्णों में, जिनकी महिलाएँ पुरुषों पर अधिक निर्भर रहती थीं।

कहा गया है कि कौटिल्य ने विवाह के लिए लड़कों की उम्र 16 वर्ष और लड़कियों की 12 वर्ष निर्धारित की है,[194] जो ब्राह्मण से भिन्न जातियों के लिए और खासकर ऐसे श्रमजीवी वर्ग के लिए है जो शीघ्र ही संतान पाने के इच्छुक रहते हैं।[195] यह उपबंध जिस प्रसग में आया है उसे ध्यान में रखते हुए ऐसा सोचना उचित नहीं लगता। दूसरी तरफ, ऐसा कोई निर्देश नहीं है कि यह उपबंध निम्न वर्णों पर ही लागू होगा। इसलिए माना जा सकता है कि यह उपबंध चारों वर्णों के लिए उनकी श्रेष्ठता के क्रम में आचरण का मानदंड स्थापित करता है।

कौटिल्य ने बताया है कि अभिनेता खिलाड़ी, गायक मछुआ शिकारी पशुपालक आसवक और ऐसे ही अन्य लोग साधारणतया अपनी औरतों के साथ घूमते थे।[196] उच्च वर्णों की महिलाओं के साथ ऐसी बात नहीं थी। उनका कार्यकलाप केवल घर तक सीमित

रहता था। शूद्र वर्ण की महिलाएँ इसलिए घर से बाहर जाती थीं कि उन्हें अपने परिवार के गुजारे के लिए खेतों और चरागाहों में काम करना पड़ता था। कौटिल्य ने नियम बनाया है कि बटाईदारों और पशुपालकों की स्त्रियों पर अपने पति द्वारा लिए गए ऋण की अदायगी का दायित्व रहेगा।[197]

सामान्यतया इस काल में जातियों में सगोत्र विवाह प्रचलित था। एरियन का कहना है कि किसान शिल्पियों के वर्ग में और शिल्पी किसानों के वर्ग में विवाह नहीं कर सकते थे।[198] किंतु कौटिल्य की दाय विधि और वर्णसंकर जातियों के बारे में उनके द्वारा तैयार की गई अंतराल नामक सूची से स्पष्ट है कि कुछ विवाह उच्च वर्ण के लोगों और शूद्रों के बीच भी हुए थे। उन्होंने निषाद, पारशव चंडाल, पुल्कस, श्वपाक, क्षत्ता, आयोगव, कुटक (धर्मसूत्रों में कुक्कुटक) रथकार, वैण्य आदि की उत्पत्ति के विषय में ब्राह्मणकालीन सिद्धांत की ही पुनरावृत्ति की है।[199] कौटिल्य ने कहा है कि वैण्य और रथकार के कार्य समान ढंग के थे।[200] उन्होंने यह भी बताया है कि इन वर्णसंकर जातियों के लोगों को अपनी ही जातियों में विवाह करना चाहिए।[201] राजा को देखना चाहिए कि ये लोग अपना अपना ही व्यवसाय करें।[202] उन्होंने बताया है कि राजा इस व्यवस्था को मान्यता दे और उसके अनुसार प्रजा को चलाए।[203] यह भी निर्धारित किया गया है कि पैतृक संपत्ति में सभी संकर जातियों के हिस्से समान होंगे।[204] उनका मत है कि चंडालों को छोड़कर संकर जातियाँ (अंतराल) शूद्र का पेशा अपनाकर अपना निर्वाह कर सकती हैं।[205] अतएव केवल चंडाल को घृणित जाति माना गया है और बौद्ध सूची के रथकारों, वेणों, पुक्कुसों और नेसादों को छोड़ दिया गया है।

पहले बताया गया है कि पाणिनि ने संभवतया चंडालों को शूद्र वर्ण में सम्मिलित किया है। किंतु कौटिल्य उन्हें शूद्र नहीं मानते।[206] उन्हें चतुर्वर्ण व्यवस्था में कोई स्थान नहीं है। इस प्रकार कौटिल्य का मत है कि चंडालों और जंगली जातियों को पशु और पक्षियों को नुकसान पहुँचाने के लिए उस राशि का आधा दंड दिया जाएगा जो चार वर्णों को वैसे ही पशुओं और पक्षियों को नुकसान पहुँचाने के लिए दिया जाता है।[207] चार वर्णों के अतिरिक्त कौटिल्य ने अंतावसायिनों की जाति का उल्लेख किया है,[208] जो संभवतया चंडालों के समान ही थे क्योंकि वे गाँव के बाहर श्मशान के निकट रहते थे।[209] यह विहित किया गया है कि यदि चंडाल किसी आर्य महिला को छू दे तो उस पर 100 पण का जुर्माना किया जाएगा।[210] इससे यह अर्थ निकाला जा सकता है कि यदि वह किसी शूद्र महिला का स्पर्श करे तो उसे ऐसा कोई दंड नहीं दिया जाएगा। इसी प्रकार चंडाल जिस तालाब के पानी का प्रयोग करता हो उसे कोई दूसरा अपने उपयोग में नहीं ला सकता है, जिससे स्पष्ट है, चंडालों का पानी नहीं चलता था और उन्हें अलग रखा जाता था।[211]

इसलिए कोई संदेह नहीं कि चंडालों को अछूत माना जाता रहा। किंतु अन्य संकर जातियों यथा पारशवों और निषादों के बारे में यही नहीं कहा जा सकता क्योंकि कौटिल्य ने नियम बनाया है कि यदि ब्राह्मण पिता को कोई दूसरी संतान न हो तो उसके पारशव पुत्र को हिस्सा मिलेगा।[212] *अर्थशास्त्र* में चंडाल के नए व्यवसाय का उल्लेख किया गया है। उसे बीच गाँव में पापिनी औरत को कोड़े मारने के लिए बुलाया जा सकता है।[213] उससे यह भी कहा जा सकता है कि जो पुरुष या महिला भिन्न भिन्न प्रकार से आत्महत्या करें, उनकी लाश को रस्सी से बाँधकर सड़क पर घसीटता हुआ ले जाए।[214]

कौटिल्य ने शूद्रों की धार्मिक स्थिति के बारे में कुछ जानकारी दी है। उन्होंने बताया है कि यदि कोई व्यक्ति देवता या पूर्वजों को अर्पित भोजन बौद्ध और आजीविक जैसे वृषल सन्यासी को खिलाए तो उस पर 100 पण का जुर्माना किया जाएगा।[215] शामा शास्त्री ने वृषल को शूद्र माना है, किंतु यह परिच्छेद वस्तुतया शूद्रों का नहीं बल्कि तपस्वियों का उल्लेख करता है, जिन्हें ब्राह्मणों ने मनमाने ढंग से शूद्र करार दिया था। फिर भी अशोक तपस्वियों का आदर जाति का विचार किए बिना करता था। कहा जाता है कि एक अवसर पर जब अशोक के मंत्री ने इस कार्य के लिए उसकी निंदा की तब उसने उत्तर दिया कि जाति का विचार विवाहों और निमंत्रणों में किया जाना चाहिए न कि धम्म के पालन में।[216]

कौटिल्य के एक नियम से ऐसा संभव दिखाई पड़ता है कि कुछ शूद्रों को धार्मिक और शैक्षिक सुविधाएँ प्राप्त थीं। अमात्यों के चरित्र की जाँच के लिए कुछ रीतियाँ विहित करते हुए उन्होंने ऐसा तरीका बताया है जिसके जरिए यह जाँच की जा सकती है कि धार्मिक विश्वास के कारण राजाज्ञा की अवहेलना करने की प्रवृत्ति तो उसमें नहीं है। राजा को चाहिए कि उस पुरोहित को बर्खास्त कर दे जो आदेश होने पर किसी अनधिकारी को वेद पढ़ाने अथवा यज्ञ के अनधिकारी (अयाज्यायजनाध्यापने) द्वारा किए जानेवाले यज्ञ में भाग लेने से इंकार करे।[217] बर्खास्त पुरोहित को कोशिश करनी चाहिए कि अधर्मी राजा को उखाड़ फेंकने के लिए अमात्यों का समर्थन प्राप्त करे। यदि अमात्य इस धार्मिक दुर्बलता का शिकार नहीं बनें तो समझना चाहिए कि वे सच्चरित्र हैं।[218] इस परिच्छेद में जयमंगला ने अयाज्य शूद्रापुत्र बताया है।[219] अतः इस नियम से यह संभव जान पड़ता है कि उच्च वर्णों के शूद्रापुत्र राजा के कहने पर यज्ञ का संपादन और विद्याध्ययन भी कर सकते हैं। इससे पता चलता है कि मौर्यकाल में राजा पूर्ण शक्तिसंपन्न होता था। किंतु सामान्य स्थिति का ज्ञान कौटिल्य के दूसरे कथन से होता है जिसमें उन्होंने बताया है कि यदि यज्ञ का संपादन किसी ऐसे व्यक्ति के संग किया जाए जिसे शूद्र पत्नी हो, तो उस यज्ञ का महत्व घट जाता है।[220] इसलिए उन्होंने हिदायत की है कि ऐसे पुरोहित को स्थान नहीं मिलना

चाहिए।[221]

मौर्यकाल में राज्य की ओर से शूद्रों को बड़े पैमाने पर गुलाम, मजदूर और शिल्पी के रूप में नियोजित किया जाता था। यद्यपि इनकी मजूरी निर्धारित थी, फिर भी इनकी आर्थिक दशा सकटपूर्ण थी। चूँकि राज्य की ओर से की जाने वाली खेती के लिए पर्याप्त दास और कर्मकर उपलब्ध नहीं थे इसलिए यह आवश्यक समझा गया कि राजकीय भूमि बटाईदारों को पट्टे पर दी जाए। ये बटाईदार प्राय निम्न वर्ग के होते थे। दूसरी बात यह मालूम होती है कि राज्य के घनी आबादीवाले क्षेत्रों से शूद्रों को मँगाकर उन्हें नई भूमि में कृषिकार्य में लगाया जाता था। राजनीतिक और सामाजिक क्षेत्र में शूद्रों के प्रति पुराना भेदभाव बना रहा, किंतु ऐसा लगता है कि कौटिल्य ने उच्च वर्गों के लोगों के शूद्रापुत्रों को अनेक रियायतें दी थीं। वे दास नहीं बनाए जा सकते थे, उन्हें पैतृक सपत्ति में हिस्सा मिल सकता था,[222] और विशेष परिस्थितियों में वे वैदिक यज्ञ और वेदाध्ययन के अधिकारी हो सकते थे। किंतु अधिकाश शूद्रों की पुरानी अशक्तताएँ बनी रहीं।

अर्थशास्त्र से हमें निम्न वर्गों के सामान्य आचरण की झलक मिलती है। यह बताता है कि इस वर्ग के लोग जिस स्थिति में रहते थे, उससे वे बिल्कुल खुश नहीं थे। कौटिल्य ने अपराधियों और सदिग्धों की जो सूची दी है उसमें बहुतेरे ऐसे लोग हैं जिनकी जातियों और व्यवसायों को समाज में हीन माना जाता था (हीनकर्मजातिम्)। उन्हें हत्यारा, डकैत या कोषों और निक्षेपों के दुर्विनियोग का दोषी समझा जाता था।[223] कौटिल्य का विचार है कि चोरी या सेंधमारी होने पर गरीब औरतों और अपराधशील नौकरों की भी जाँच करनी चाहिए।[224] उन्होंने यह भी बताया है कि यदि मालिक की हत्या हुई हो तो उसके सेवकों की परीक्षा करके यह जानना चाहिए कि मालिक ने उनके प्रति कोई हिंसापूर्ण या निर्दयतापूर्ण व्यवहार तो नहीं किया है।[225] इससे प्रकट होता है कि कभी कभी घरेलू नौकर अपने मालिक की जान लेने का प्रयास करता था। कौटिल्य ने यह भी विहित किया है कि जब कोई शूद्र अपने को ब्राह्मण कहे देवताओं की सपत्ति चुराए या राजा का वैरी हो तो विषैली दवाओं का प्रयोग करके उसकी आँखें नष्ट कर दी जाएँ या उससे आठ सौ पण जुर्माना वसूला जाए।[226] इससे पता चलता है कि पुरोहितों और राजसत्ताधारियों के प्रति कुछ शूद्र वैरभाव रखते थे। एक ऐसा भी प्रसग आया है जो पारशव के राजविद्रोहात्मक कार्यकलाप के सबध में है। उसकी राज्यविरोधी गतिविधियों के दमन के लिए वही उपाय किए जाएँ जो किसी राज्यविरोधी मत्री के लिए किए जाते हैं। कहा गया है कि राजा को चाहिए कि सदिग्ध व्यक्ति के परिवार में झगडा लगाने के लिए खुफिया बहाल करे, ताकि अतत सरकार उसे फाँसी पर लटका सके।[227] उपर्युक्त प्रसग बताते हैं कि शूद्र वर्ण के सदस्यों का झुकाव अपने मालिक के प्रति अच्छा नहीं था। चूँकि उस समय उनकी प्रतिक्रिया

व्यक्त करने का कोई शांतिपूर्ण तरीका नहीं था, इसलिए कभी कभी वे अपनी प्रतिक्रिया डकैती, सेंधमारी, मंदिर की संपत्ति की चोरी, मालिक की हत्या ब्राह्मणों के आडंबर पर प्रहार और राज्य के प्रधान के प्रति विद्रोह जैसे आपराधिक कार्यकलापों के रूप में करते थे। ये कार्य उनके मन में व्याप्त असंतोष के प्रतीक थे। किंतु एक भी ऐसा प्रमाण नहीं मिलता, जिससे पता चल सके कि उन लोगों ने संगठित होकर विद्रोह किया था। इस संबंध में मौर्यकाल की परिस्थितियाँ प्राचीन काल की परिस्थितियों से कुछ अच्छी थीं। *अर्थशास्त्र* में शूद्रों के संगठित विद्रोह का मुकाबला करने के लिए वैसी कोई व्यवस्था नहीं मिलती जिसका आभास धर्मसूत्रों की कुछ कंडिकाओं में पाया जा सकता है। दूसरी ओर, शूद्रों को सेना में भर्ती करने के लिए कौटिल्य का तैयार होना उस विश्वास भावना का परिचायक है जो समझौता और निष्ठुर नियंत्रण की उनकी दुहरी नीति से उत्पन्न हुई थी।

संदर्भ

1 मजुमदार और पुसलकर दि एज ऑफ इंपीरियल यूनिटी पृष्ठ 285 6 में इस विषय के संदर्भ ग्रंथों का निर्देश है आर० पी० कांगले 'दि कौटिलीय अर्थशास्त्र (बंबई 1964) तथा टामस आर० ट्रौटमैन कौटिल्य ऐंड दि अर्थशास्त्र (लाइडेन 1971) में संदर्भ ग्रंथों की और भी बड़ी सूची है
2 अर्थशास्त्र XV 1
3 वी कल्यानोव 'डेटिंग दि अर्थशास्त्र (23वीं इंटरनेशनल कांग्रेस ऑफ ओरिएंटलिस्ट्स में सोवियत प्रतिनिधि मंडल द्वारा प्रस्तुत निबंध) पृ 40-54
4 वही पृ 44-45
5 वही पृ 45
6 आर गार्बे हेस्टिंग्स एनसाइक्लोपीडिया ऑफ रिलिजन ऐंड एथिक्स VIII पृ 138 ड्यूबन आइनफुहरुंग इन डी इंडियेनकुण्डे पृ 126
7 दीघ निकाय I पृ 130 मज्झिम निकाय II पृ 165
8 कल्यानोव पूर्व निर्दिष्ट पृ 46
9 अर्थशास्त्र I. 2, 8
10 के० वी० रंगस्वामी अय्यंगर इंडियन कैमेरेलिज्म पृ 50
11 कल्यानोव पूर्व निर्दिष्ट पृ 48
12. विनय पिटक I 10 संयुत्त निकाय V 421
13 कल्यानोव पूर्व निर्दिष्ट पृ 52.
14 *अर्थशास्त्र II 14*
15 मैक्क्रिंडल एनशिएंट इंडिया ऐज डिस्क्राइब्ड बाइ मेगास्थनिज ऐंड एरियन, पृ 86
16 *अर्थशास्त्र* III 1
17 के ए नीलकंठ शास्त्री रायल पावर इन एनशिएंट इंडिया (दि प्रोसीडिंग्स ऑफ दि इंडियन हिस्टारिकल कांग्रेस *1944)* पृ *46*

18 मैक्रिंडल एनशिएंट इंडिया ऐज डिस्क्राइब्ड इन क्लासिकल लिटरेचर पृ 53

19 अर्थशास्त्र II 10

20 कल्यानोव पूर्व निर्दिष्ट पृ 54 टामस आर० ट्रोटमैन ने कम्प्यूटर की सहायता से अपनी पुस्तक कौटिल्य ऐंड [illegible] अर्थशास्त्र' में दिखलाया है कि विभिन्न अधिकरणों के अलग अलग लेखक हैं (पृ 168 187)

21 अर्थशास्त्र I 3 शूद्रस्य द्विजातिशुश्रुषा वार्ता' वाक्यखंड में वार्ता शब्द का प्रयोग तीन व्यवसायों, यथा कृषि पशुपालन और व्यापार के अर्थ में नहीं किया गया है जैसा कि शामा शास्त्री (अनुवाद पृ 7) ने माना है बल्कि इसका प्रयोग जीविका के अर्थ में किया गया है (जयमंगला जर्नल ऑफ ओरियंटल रिसर्च मद्रास) XX 11

22. अर्थशास्त्र I 3

23 अर्थशास्त्र II 1 शूद्रकर्षकप्रायं कुलशतावरं पञ्चशतकुलपरं ग्रामं क्रोशद्विक्रोशसीमानमन्योन्यारक्षं निवेशयेत्

24 आई जे सोराबजी सम नोट्स ऑन दि अध्यक्षप्रचार बुक II ऑफ [illegible] कौटिलीयम् अर्थशास्त्रम्, अर्थशास्त्र II 1 में शूद्रकर्षकप्रायम्, जे जे मायर 'दस अलिमीदिस्ते बुक काम स्टेट उण्ड स्टाटलेबेन' अर्थशास्त्र II 1 का अनुवाद

25 टी गणपति शास्त्री का अर्थशास्त्र का संस्करण I, पृ 109 शामा शास्त्री का अर्थशास्त्र का अनुवाद II 1

26 टी गणपति शास्त्री की अर्थशास्त्र के दासकर्मकरकल्प शब्द की टीका III 13

27 अर्थशास्त्र II 1 टी० गणपति शास्त्री के अर्थशास्त्र के संस्करण में ऐकपुरुषिकानि शब्द का अर्थ एक व्यक्ति किया गया है (I 111) और शामा शास्त्री (अनुवाद) ने इसका अर्थ आजीवन किया है

28 अर्थशास्त्र II 1

29 वही

30 तस्यां चातुर्वर्ण्याभिनिवेशे सर्वभोगसहत्वादवरवर्णप्राया श्रेयसी बाहुल्यात् ध्रुवत्वाच्च अर्थशास्त्र VII 11 नयचंद्रिका (पृ 33) में अवरवर्णप्राय की व्याख्या शूद्रप्राय के रूप में की गई है

31 नयचंद्रिका पृ 33 कर्षणभारवहनदुर्गकरणादिविनियोग, सयोग्यत्वादित्यर्थ

32. अर्थशास्त्र, VII 11

33 अर्थशास्त्र II 1 परदेशापवाहनेन स्वदेशाभिष्यन्दवमनेन वा

34 अर्थशास्त्र VI 1 अवरवर्णप्राय

35 घोषाल हिंदू रेवेन्यू सिस्टम पृ 55

36 अर्थशास्त्र, II 1

37 वही, II 24

38 वही

39 मैक्रिंडल एनशिएंट इंडिया ऐज डिस्क्राइब्ड बाइ मेगास्थनिज ऐंड एरियन', पृ 86 खंड 34

40 मैक्रिंडल एनशिएंट इंडिया एज डिस्क्राइब्ड [illegible] क्लासिकल लिटरेचर पृ 53 पाद टिप्पणी 4

41 वही, पृ 48 खंड 41

42- (जर्नल ऑफ दि बॉबे ब्रांच ऑफ दि रायल एशियाटिक सोसाइटी बंबई XII) पृ 143 भट्टस्वामिन् के अनुसार रज्जुवर्तक स्वपाक और अन्य लोग थे तथा सर्पग्राहादिक शबर और अन्य लोग थे

43 अर्थशास्त्र II 24
44 अर्थशास्त्र II 24
45 वही II 24 भट्टस्वामिन् की टीका पूर्व निर्दिष्ट पृ 137
46 अर्थशास्त्र II 24
47 वही अन्यत्र कृष्टेभ्य
48 (जर्नल ऑफ दि बिहार ऐंड उड़ीसा रिसर्च सोसायटी पटना XII) पृ 137
49 अर्थशास्त्र II 4 कर्मान्तक्षेत्रवशेन वा कुटिम्बिनाम् सीमानम् स्थापयेत्
50 अपने अनुवाद में शामा शास्त्री ने बताया है कि ये काम उन्हें सौंपे गए थे किंतु इस बात का समर्थन करने के लिए ग्रंथ में कोई तथ्य नहीं मिलता
51 टी गणपति शास्त्री का अर्थशास्त्र का संस्करण' I पृ 130
52 शामा शास्त्री का अर्थशास्त्र का अनुवाद पृ 54
53 घोषाल पूर्व निर्दिष्ट पृ 200 पाद टिप्पणी 2
54 अर्थशास्त्र II 35
55 मैक्रिंडल एनशिएंट इंडिया ऐज डिस्क्राइब्ड बाइ मेगास्थनिज ऐंड एरियन पृ 83 84 खंड 33
56 मैक्रिंडल एनशिएंट इंडिया एज डिस्क्राइब्ड इन क्लासिकल लिटरेचर पृ 53 स्ट्रैबो पूर्व निर्दिष्ट खंड 46
57 वही
58 अर्थशास्त्र II 35
59 वही
60 अर्थशास्त्र II 15 एतावन्तो विष्टिप्रतिकरा दुर्गादिकर्मोपयोगिनि (जर्नल ऑफ दि बिहार ऐंड उड़ीसा रिसर्च सोसायटी पटना XII) पृ 198
61 टी गणपति शास्त्री पूर्व निर्दिष्ट I पृ 344
62 अर्थशास्त्र II 15 दासकर्मकारवर्गश्च विष्टि
63 अर्थशास्त्र II 29
64 वही III 13
65 वही II 29 स्वयम् हन्ता घातयिता हर्ता हारयिता च बध्य'
66 अर्थशास्त्र II 23
67 वही II 12
68 वही II 15
69 वही II 18
70 वही II 17
71 वही II 23
72 वही II 12
73 वही II 4
74 अर्थशास्त्र II 4 तत परपूर्णासूत्रवेणुचर्मवर्मशस्त्रावरणकारव शूद्राश्च पश्चिमम् दिशमधिवसेयु'
75 वही II 23
76 वही II 18
77 मैक्रिंडल एनशिएंट इंडिया ऐज डिस्क्राइब्ड इन क्लासिकल लिटरेचर, पृ 53 स्ट्रैबो पूर्व निर्दिष्ट खंड 46
78 मैक्रिंडल एनशिएंट इंडिया ऐज डिस्क्राइब्ड बाइ मेगास्थनिज ऐंड एरियन' पृ 87 खंड 34

109 बी एन दत्त स्टडीज इन इंडियन सोशल पालिटी पृ 185 7 जायसवाल मनु ऐंड याज्ञवल्क्य पृ 171
110 रायचौधरी पालिटिकल हिस्ट्री ऑफ एनशिएट इंडिया' पृ 267
111 अर्थशास्त्र I 8 और 9
112 वही
113 अरस्तू पालिटिक्स, पृ 163
114 मैक्रिंडल एनशिएट इंडिया ऐज डिस्क्राइब्ड बाइ मेगास्थनिज ऐंड एरियन, पृ 85 खड 33
115 वही पृ 138 खड 56
116 वही पृ 85 6 खड 33
117 अर्थशास्त्र I 12
118 वही
119 वही
120 अर्थशास्त्र I 16 अन्तावसायिनोप्यवध्या
121 वही
122 अर्थशास्त्र IX 2
123 वही बहुलसार वा वैश्यशूद्रबलमिति
124 मैक्रिंडल पूर्व निर्दिष्ट पृ 83 84 खड 33
125 वही पृ 217 एरियन खड 12 एनशिएट इंडिया ऐज डिस्क्राइब्ड इन क्लासिकल लिटरेचर पृ 53 स्ट्रैबो खड 47
126 राक एडिक्ट ऑफ अशोक 4 (शाहबाजगढ़ी) I 12
127 मैक्रिंडल पूर्व निर्दिष्ट पृ 88 खड 34
128 वही पृ 217 खड 12
129 अर्थशास्त्र II 1
130 वही III 1
131 वही
132 वही III 1
133 वही III 11
134 वही अन्यथावादे दडश्चानुबन्ध शामा शास्त्री ने जो अनुवाद किया है (पृ 200) उसमें अनुबन्ध शब्द को छोड़ दिया गया है
135 अर्थशास्त्र III 11
136 मैक्रिंडल पूर्व निर्दिष्ट पृ 70 खड 27
137 अर्थशास्त्र III 18
138 वही III 19
139 वही IV 13 ब्रह्मन्यामगुप्तायाम् क्षत्रियस्योत्तम सर्वस्वम् वैश्यस्य शूद्र कटाग्निना दह्येत
140 टी गणपति शास्त्री ने इस अनुच्छेद को शामा शास्त्री से भिन्न ढग पर बताया है जहाँ गणपति शास्त्री ने लिखा है श्वपाकस्यार्यागमने वध (II 181) वहा शामा शास्त्री शूद्रश्वपाकस्य भार्यागमनेवध (अर्थशास्त्र IV 13 पृ 236) लिखते हैं टी गणपति शास्त्री ने आर्य शब्द का प्रयोग ठीक ही किया है जो म्यूनिख की पांडुलिपि में भी पाया जाता है (अनुवाद पृ 264)
141 अर्थशास्त्र IV 13

142 वही
143 वही II 5
144 वही III 6
145 वही
146 वही
147 वही
148 वही III 6
149 वही
150 वही III 13
151 वही III 13 उदरदासवर्जमार्यप्राणमप्राप्तव्यवहार शूद्रम् विक्रयाधान नयतस्वजनस्य द्वादशपणो दड
152 जायसवाल पूर्व निर्दिष्ट पृ 242
153 अर्थशास्त्र (III 3) में कुल मिलाकर दास बनने के नौ स्रोत बताए गए हैं हो सकता है कि अन्य प्रकार का भी दासत्व रहा हो
154 अर्थशास्त्र III 13
155 वही
156 वही III 13 अथ वार्यमायाय कुलबन्धनत्वार्याणामापदि निष्क्रयम् चाधिगम्यबाल साहाय्यदातारं वा पूर्वम् निष्क्रीणीरन्
157 अर्थशास्त्र III 13 सिद्धमपचारकस्याभिप्रजातस्य अपक्रमणम्
158 शामा शास्त्री का अनुवाद पृ 206
159 अर्थशास्त्र III 1
160 वही II 1
161 वही IV 13
162 शामा शास्त्री का अर्थशास्त्र का अनुवाद III 1 और II 1
163 जायसवाल पूर्व निर्दिष्ट पृ 209
164 अर्थशास्त्र III 13 आत्मविक्रयिण प्रजामार्या विद्यात्
165 वही III 13
166 वही
167 वही
168 वही III 13 समातृकम् अदासम् विद्यात्
169 वही III 13 गणपति शास्त्री के अनुसार
170 पालि इंगलिश डिक्शनरी देखें 'भुजिस्स'
171 अर्थशास्त्र III 13
172 वही
173 वही
174 वही
175 वही
176 वही II 1
177 रॉक इडिक्ट ऑफ अशोक 9 (गिरनार) I 4 पिलर इडिक्ट ऑफ अशोक II (गिरनार) 1.2
178 जायसवाल पूर्व निर्दिष्ट, पृ 209 बी एन दत्त पूर्व निर्दिष्ट पृ 184 187
179 ऊपर देखें पृ 161 2

180 अर्थशास्त्र II 15 तुलनीय अर्थशास्त्र में आर्य और नीच के बीच भेद अर्थशास्त्र I 14
181 मैक्रिंडल पूर्व निर्दिष्ट पृ 211 3 खड 10
182 वही पृ III 19
183 मैक्रिंडल एनशिएंट इंडिया ऐज डिस्क्राइब्ड इन क्लासिकल लिटरेचर पृ 58 स्ट्रैबो खड 54
184 गुलामों की तरह वे भी भूमि से सबद्ध थे
185 मैक्रिंडल पूर्व निर्दिष्ट पृ 41 स्ट्रैबो खड 34
186 पिलर इडिक्ट ऑफ अशोक 4 (दिल्ली टोपरा शिलालेख) 1 15
187 कारपस इसक्रिप्सनम इडिकैरम I 125
188 वही इंट्रोडक्शन पृ XXXVI
189 अर्थशास्त्र III 15 विवाहानान्तु त्रयाणाम् पूर्वेषां वर्णानाम् पाणिग्रहणातिसिद्धमपावर्तनम् शूद्राणा च प्रकर्मणा टी गणपति शास्त्री ने प्रक्रमण बताया है (II पृ 92) उन्होंने इसे योनिक्षतिमवरीकृत्य अर्थात लड़की का कौमार्य भग बताया है शामा शास्त्री के विवाह के अर्थ में इसके अनुवाद से कोई अर्थ नहीं निकलता
190 अर्थशास्त्र III 3
191 ऊपर देखें पृ 116
192 अर्थशास्त्र III 2
193 वही III 4
194 वही III 3
195 के वी रगस्वामी अय्यगर पूर्व निर्दिष्ट पृ 66 पाद टिप्पणी 5
196 अर्थशास्त्र III 4 तालापचारणमत्स्यबन्धकलुब्धकगोपालक शौण्डिकानामन्येषाम् च प्रसृष्टस्त्रिकाणाम् पथ्यनुसरणमदोष
197 वही III 11 स्त्री वा प्रतिश्राविणी पतिवृत्तम् ऋणम् अन्यत्र गोपालकार्धसीतिकेभ्य
198 (इडियन ऐंटीक्वेरी बम्बई V) पृ 92
199 अर्थशास्त्र III 7 कौटिल्य ने व्रात्यों की नई परिभाषा की है जो उनके मतानुसार चारों वर्णों में से किसी वर्ण के पतित पुरुषों द्वारा निम्न वर्ण की महिला से उत्पन्न पुत्र थे
200 अर्थशास्त्र III 7 कर्मणा वैश्यो रथकार
201 वही टी गणपति शास्त्री द्वारा एक अनुच्छेद के दिए गए पाठ के आधार पर यह अर्थ किया गया है (II 44) शामा शास्त्री ने दूसरे ढग की व्याख्या की है जिससे पता चलता है कि सजातीय विवाह केवल वैश्य तक ही सीमित थे
202 वही III 7 पूर्वविरपधर्मित्वम् वृत्तानुवृत्तम् च स्वधर्मान् स्थापयेत्
203 वही III 7
204 वही
205 वही III 7 टी गणपति शास्त्री II 44 के अनुसार
206 वही III 7
207 वही IV 10 चण्डालारण्यचराणामर्धदण्ड
208 वही III 18
209 वही II 4
210 वही III 20
211 वही I 14

212 वही III 6

213 वही III. 3 इन आदिम जातियों की क्रूरता के कारण इस कार्य के लिए चंडालों को विशेष रूप से चुना गया होगा

214 अर्थशास्त्र IV 7 रज्जुना पढ़ें, शामा शास्त्री ने घातयेत्स्वयमात्मान का अनुवाद किया है दूसरों से आत्महत्या करवाना जो सही नहीं मालूम पड़ता

215 वही III 20

216 पी एल नरसू दि एसेन्स ऑफ बुद्धिज्म पृ 137 से उद्धृत

217 अर्थशास्त्र I 10

218 वही

219 (जर्नल ऑफ ओरियंटल रिसर्च मद्रास XXII) 32 टी गणपति शास्त्री ने अपाम्य का अर्थ वृषलीपति अर्थात शूद्र स्त्री का पति किया है (I 48)

220 अर्थशास्त्र III 14

221 वही अदोष स्त्यक्तुमन्योन्यम्

222 यह रथकार और पारशव तक सीमित थी

223 अर्थशास्त्र IV 6

224 वही

225 वही IV 7 रज्वास्य कण्ठमवेक्ष्य दृष्ट्वा वा तस्य परिचारकजन वा दण्डपारुष्यादति मार्गेत्

226 अर्थशास्त्र IV 10 शूद्रस्य ब्राह्मणवादिनो देवद्रव्यमवस्तृणतो राजद्विष्टमादिशतो द्विनेत्रभेदिनश्च योगाञ्जनेनान्धत्वमष्टशतो वा दण्ड ब्राह्मणवादी शूद्र को देव संपत्ति चुरानेवाले या राजा के बैरी व्यक्ति से भिन्न मानने का कोई औचित्य नहीं दीखता जैसा कि शामा शास्त्री ने इस अनुच्छेद के अनुवाद में किया है (अनुवाद पृ 255)

227 वही V 1 टी गणपति शास्त्री की टीका के आधार पर

प्राचीन व्यवस्था का कमजोर पडना

(लगभग दो सौ ई पू से लगभग दो सौ ई सन्)

इस काल में शूद्रों की स्थिति की अधिकाश सीधी जानकारी मनु के विधिग्रथ से प्राप्त हुई है जो सामान्यतया दो सौ ई पू से दो सौ ई सन तक की मानी जाती है।[1] मनु ने ब्रह्मावर्त (सरस्वती और दृषद्वती के बीच का प्रदेश)[2] और ब्रह्मर्षिदेश (कुरु मत्स्य, पाचाल और शूरसेन की समतल भूमि) को पवित्र माना है।[3] इस आधार पर सुझाव दिया गया है कि अपेक्षाकृत इस छोटे प्रदेश में ही विधिग्रथ का उद्भव हुआ और सर्वप्रथम उसे प्राधिकृत माना गया।[4] इस तरह का विचार यद्यपि सभव है किंतु किसी भी तरह आवश्यक नहीं है और हो सकता है कि *मनुस्मृति* का प्रभाव अधिक व्यापक क्षेत्र पर पडा हो।

मनु ने जिस प्रकार की ब्राह्मणकालीन घोर कट्टरता का परिचय दिया है उससे उनके ग्रथ में प्रस्तुत प्रमाण का मूल्याकन करना कठिन हो गया है। किंतु शूद्रों की स्थिति से सबधित परिच्छेद का विश्लेषण पतजलि के *महाभाष्य*, भास के नाटक[5] और बौद्धग्रथों, यथा मिलिंदपञ्हो (प्रश्न) *दिव्यावदान*, *महावस्तु* और *सद्धर्मपुण्डरीक* से प्राप्त जानकारी के आधार पर किया जा सकता है।[6] जैन ग्रथ *प्रज्ञवणा* भी, जिससे शिल्पियों के सबध में महत्वपूर्ण जानकारी मिलती है, इसी काल का कहा जा सकता है।[7] इस काल के स्मृतिमूलक और सकल्पित लेख भी शूद्र समुदाय की स्थिति पर पूर्ण प्रकाश डालते हैं।

कतिपय प्राचीन पुराणों में कलियुग के जो वर्णन मिलते हैं वे प्राय इसी युग का सकेत करते हैं[8] जबकि वर्ण के आधार पर विभाजित ब्राह्मण समाज की नींव अपधर्मी सप्रदायों के कार्यकलाप और बैक्टेरियन ग्रीक शक पार्थियन और कुषाणों जैसे विदेशियों की चढाई के कारण हिल गई थी। अशत अशोक की बौद्धों की समर्थक नीति और अशत इन नए लोगों के आगमन के चलते ब्राह्मण समाज पर जो आघात हुआ उससे मनु ने उसे बचा रखने की जी तोड कोशिश की है, और इसके लिए उन्होंने न केवल शूद्रों के विरुद्ध कठोर दड का विधान किया है, बल्कि बाहरी तत्वों को वर्णसमुदाय में समाविष्ट करने के उद्देश्य से उनकी समुचित वशावली भी बनाई है। इतना ही नहीं, उन्होंने तलवार (दड) की शक्ति की जो अत्यधिक महिमा बताई है उसका भी अभिप्राय यही है।[9]

मनु ने इस पुराने सिद्धांत को दुहराया है कि ईश्वर ने शूद्रों को आदेश दिया है कि वे उच्च जातियों की सेवा करें।[10] राजा को चाहिए कि वैश्य को आदेश दे कि वह व्यापार करे, रुपए का लेन देन करे खेती करे या मवेशीपालन करे और शूद्र को यह आदेश दे कि वह तीन उच्च वर्णों की सेवा करे।[11] आपद्धर्म के अध्याय में मनु ने यह भी कहा है कि शूद्र ब्राह्मण की सेवा करे, जिससे उसके सभी उद्देश्य पूरे होंगे।[12] ऐसा नहीं होने पर वह क्षत्रिय की सेवा करे, अथवा किसी धनी वैश्य की भी चाकरी करके अपना जीवन निर्वाह करे।[13] इस संदर्भ में 'अपि' (भी) शब्द पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए, क्योंकि इससे ध्वनित होता है कि वैश्य शायद ही शूद्र का मालिक होता था।[14] इससे यह भी पता चलता है कि आपतकाल में शूद्र की सेवा मुख्यतया ब्राह्मणों और क्षत्रियों के लिए सुरक्षित रहती थी। एक अन्य स्थान पर मनु ने विहित किया है कि राजा सावधानी के साथ वैश्यों और शूद्रों को बाध्य करे कि वे अपने नियत कार्य किया करें क्योंकि यदि ये दोनों वर्ण अपने कर्तव्यों से विमुख हो जाएँगे तो सारे संसार में गड़बड़ी फैल जाएगी।[15] इस परिच्छेद का विशेष महत्व है क्योंकि यह किसी भी प्राचीन ग्रंथ में नहीं मिलता। इस तरह के विधान से सामाजिक आर्थिक संकट का आभास होता है। *युग पुराण* से भी इस बात की पुष्टि होती है, जिसमें कहा गया है कि इस काल में स्त्रियाँ भी हल जोतती थीं।[16] मनु के एक नियम की जो टीका कुल्लूक ने की है उससे यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि कुछ ऐसे ह्रासोन्मुख किसान और व्यापारी थे जिन्हें राजा ने अपना गुप्तचर बहाल कर रखा था।[17] मनु का दूसरा नियम है कि जिन शूद्रों को जीवन निर्वाह में कठिनाई हो, वे देश के किसी भी भाग में (अर्थात म्लेच्छों के देश में भी) बस सकते हैं।[18] इस नियम से ऐसे संकट का संकेत मिलता है जिसका प्रभाव उत्पादन करनेवाली जनता पर गंभीर रूप से पड़ा था। वैश्यों और शूद्रों से काम कराने का सुझाव देने की आवश्यकता मनु को इसलिए पड़ी होगी कि विदेशी आक्रमणों के कारण सामाजिक विप्लव गंभीर रूप धारण कर चुका होगा। प्राय जब मौर्यों के कठोर शासन का अंत हुआ तब वैश्यों और शूद्रों को उनके विहित कर्तव्यों की सीमा बाँध रखना और भी कठिन हो गया।

उपर्युक्त निर्देशों से यह भी पता चलता है कि वैश्यों और शूद्रों के कार्यों में पड़नेवाले अंतर क्रमश मिटते जा रहे थे। मनु ने विहित किया है कि यदि आपतकाल में वैश्य के लिए अपने व्यवसाय से भरण पोषण करना कठिन हो तो उसे शूद्रों के व्यवसाय अपनाने चाहिए, अर्थात द्विजों की सेवा करके जीवनयापन करना चाहिए।[19] *मिलिंदपञ्हो* के एक प्रश्न से भी इस बात की पुष्टि होती है जिसमें कृषि व्यापार और पशुपालन वैश्य और शूद्र जैसे सामान्य जन के कार्य माने गए हैं,[20] और इन दोनों वर्गों के कार्यों का अलग से कोई उल्लेख नहीं किया गया है।

यद्यपि वैश्य को शूद्र के निकट बताने की प्रवृत्ति चल पड़ी थी फिर भी कोई ऐसा

प्रमाण नहीं मिलता जिससे पता चले कि शूद्र स्वतंत्र रूप से जीविकोपार्जन करते थे। सामान्यतया वे भाड़े के मजदूर और गुलाम के रूप में नियोजित होते रहे, क्योंकि मनु ने उस पुराने नियम को ही दुहराया है कि शिल्पी, यांत्रिक और शूद्र, जो शारीरिक श्रम करके अपना निर्वाह करते हैं, कर चुकाने के बदले महीने में एक दिन राजा का काम करें।[21] उन्होंने एक नया नियम बनाया कि वैश्य (अतिरिक्त) कर के रूप में अपने गल्ले का 1/8 हिस्सा चुकाकर और शूद्र शारीरिक श्रम लगाकर आपतकालीन स्थिति को सँभाले।[22] इस प्रसंग में कुल्लुक ने जोरदार शब्दों में कहा है कि बुरे दिनों में भी शूद्रों पर कर नहीं लगाए जाएँ।[23] मनु ने शूद्रों को करों से विमुक्ति दी है, जिसकी पुष्टि *मिलिंदपन्हो* से होती है। इससे हमें यह जानकारी मिलती है कि हर गाँव के अपने दास या दासी, भटक और कर्मकर होते थे, जिन्हें करों से मुक्त रखा जाता था।[24] अतः शूद्र को राज्य का कर चुकानेवाला किसान नहीं बताया गया है और यह स्थिति वैश्यों से भिन्न मालूम होती है। राजा के अष्टविध कर्म की चर्चा करते हुए मेधातिथि ने व्यापार, कृषि, सिंचाई, खनन बस्तीविहीन *जिलों की बंदोबस्ती, वनों की कटाई आदि का उल्लेख किया है*,[25] किंतु इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता कि राज्य अपनी पहल पर दासों और कर्मकरों को कृषिकर्म में नियोजित करता था जैसा मौर्यकाल में होता था। *महावस्तु* में ग्राम मुखिया का वर्णन आया है जो खेत का काम देखने के लिए तेजी से जा रहा है। किंतु यह पता नहीं चलता है कि वह इस कार्य का संपादन राजा की ओर से करता था।[26] मालूम होता है कि अलग अलग मालिक शूद्रों से कृषि मजदूर का काम कराते थे। पतंजलि ने एक ऐसे भूस्वामी का जिक्र किया है जो एक जगह बैठकर भाड़े के पाँच मजदूरों द्वारा की जानेवाली जुताई का निरीक्षण करता है।[27] मनु ने किसान मालिक के नौकरों की भी चर्चा की है।[28] उनका कथन है कि कृषक को अपनी पारिवारिक संपत्ति के बँटवारे में ब्राह्मणपुत्र के लिए एक अतिरिक्त हिस्सा बनाकर रखना चाहिए।[29] स्पष्ट है कि यह ब्राह्मणों के अधीन रहनेवाले कृषि मजदूरों का हवाला देता है।

यद्यपि मनु ने इस विचार की पुनरावृत्ति की है कि शूद्रों को शिल्पियों का व्यवसाय तभी अपनाना चाहिए जब सीधे उच्च वर्णों की सेवा से उनकी जीविका नहीं चल सके,[30] फिर भी मालूम होता है कि इस काल में शिल्पियों की संख्या तो काफी बढ़ी ही, उनकी परिस्थिति में भी सुधार हुआ। यह बात बढ़इयों, लोहारों, गंधियों जुलाहों, सुनारों और चर्म व्यवसायियों द्वारा बौद्ध भिक्षुओं को उपहारस्वरूप दी गई अनेक गुफाओं, स्तंभों पट्टों, ताबूतों आदि से प्रमाणित होती है।[31] इनके अतिरिक्त उत्कीर्ण लेखों में रंगसाजों, धातु और हाथी दाँत के काम करनेवालों, जौहरियों मूर्तिकारों और मछुओं के भी कार्य दिखाई पड़ते हैं।[32] गंधियों और कुछ हद तक स्वर्णकारों को बार बार उदार उपासक कहा गया

है, जिससे लक्षित होता है कि शिल्पियों के कई समृद्ध वर्ग बन गए थे। यद्यपि गंधियों की तरह जुलाहों की चर्चा दानपत्रों में बार-बार नहीं मिलती फिर भी *मनुस्मृति* में उपलब्ध प्रमाण से ज्ञात होता है कि शिल्पियों के रूप में उनका स्थान महत्वपूर्ण था, क्योंकि कहा गया है कि वे ग्यारह पल का भुगतान करें और चूक होने पर बारह पल दें।[33] स्पष्ट है कि ये कर जुलाहों द्वारा तैयार किए गए सामान पर वस्तु के रूप में लिए जाते थे। प्राय मथुरा[34] और अन्य नगरों में उत्पन्न वस्त्रों के व्यापार में इन जुलाहों की खूब चलती थी। उत्कीर्ण लेखों से पता चलता है कि अधिकाश शिल्पी मथुरा और पश्चिमी दक्कन क्षेत्र में सीमित थे जहाँ रोम के साथ बढते हुए व्यापार से उन्हें अपना विकास करने का अवसर मिलता था।

पुरालेख बताते हैं कि शिल्पी अपने प्रधानों के अधीन सगठित थे जो प्राय राजा के प्रिय पात्र होते थे। हमें अनद के उपहार की भी बात सुनने में आई है, जो श्री शातकर्णि के शिल्पियों का प्रमुख था।[35] किंतु साहित्यिक प्रमाण बताते हैं कि पूर्व काल की अपेक्षा इस काल में शिल्पियों के सघ बहुत बड़े पैमाने पर बने थे। महावस्तु ने एक सूची में 11 प्रकार के शिल्पियों का उल्लेख किया है यथा मालाकार, कुभकार, बढई, धोबी, रगरेज, पात्र निर्माता, स्वर्णकार, जौहरी, शखसीपी वस्तु निर्माता, आयुधिक और रसोइया—जो अपने अपने प्रधानों के अधीन काम करते थे।[36] इसी स्रोत से राजगृह के अष्टदश श्रेणियों का उल्लेख मिलता है जिसके अतर्गत स्वर्णकार, गधी, जौहरी, तेली, आटा पीसनेवाले आदि भी हैं। इस सूची में फल, कद, आटा और चीनी के विक्रेता भी शामिल हैं।[37] स्वर्णकार और जौहरी का उल्लेख दोनों ही सूचियों में हुआ है और मालूम होता है कि इस काल में लगभग दो दर्जन शिल्पी सघ वर्तमान थे।[38] यह भी ध्यान देने योग्य है कि शिल्पी सघों की दूसरी सूची जातकों में वर्णित सूची से बिल्कुल भिन्न है।[39] यद्यपि शिल्पियों की नियुक्ति राजा करता था,[40] फिर भी सभव है कि शिल्पी सघों की सख्या बढने से शिल्पियों पर राज्य का सीधा नियत्रण कमजोर पड़ गया हो। विशेष महत्व की बात यह है कि *अर्थशास्त्र* में भी उतने प्रकार के शिल्पी नहीं दिखाई पडते जितने इस अवधि में देखने में आते हैं। *महावस्तु* में छत्तीस प्रकार के कामगारों की एक सूची दी गई है जो राजगृह नगर में रहते थे।[41] यह सूची व्यापक नहीं मालूम होती क्योंकि इसके अत में कहा गया है कि सूची में जितने कामगारों का उल्लेख हुआ है, उनके अतिरिक्त और भी कामगार थे।[42] *मिलिंदपन्हो* में इससे भी लबी सूची दी गई है, जिसमें लगभग 75 प्रकार के व्यवसाय गिनाए गए हैं जो अधिकतर शिल्पियों के थे।[43] बौद्धों की सूचियों के बहुत से शिल्पियों की चर्चा एक जैन ग्रथ में भी हुई है, जिसमें 18 प्रकार के शिल्पियों का उल्लेख हुआ है और एक खास बात यह है कि इस ग्रथ में दर्जियों बुनकरों और रेशम बुनकरों को भी आर्य शिल्पी बताया गया है।[44] इससे प्रकट होता है कि जैन इन शिल्पों को हीन नहीं मानते थे।

इन शिल्पियों की सूची का विश्लेषण करने पर पता चलता है कि इस काल में कई नए शिल्पों का विकास हुआ। *दीघ निकाय* में दिए गए लगभग दो दर्जन शिल्पों[45] के मुकाबले हमें *मिलिंदपन्हो* में पाँच दर्जन शिल्पों की चर्चा मिलती है। इनमें से आठ शिल्प धातुकर्म संबंधी हैं,[46] जिनसे अच्छी प्रगति का पता चलता है। ऐसा जान पड़ता है कि वस्त्र-निर्माण, रेशम बुनाई[47] एवं अस्त्र शस्त्र और विलास सामग्रियों[48] के निर्माण में भी अच्छी प्रगति हुई थी। इन सब बातों से पता चलता है कि इस काल के शिल्पियों ने तकनीकी और आर्थिक विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया था।

ये शिल्पी अपने ग्राहकों से उस रूप में नहीं जुड़े थे, जिस प्रकार दास और कर्मकर अपने मालिकों से संबद्ध थे। इस तरह पतंजलि से हमें जानकारी मिलती है कि बुनकर (जुलाहे) स्वतंत्र रूप से अपना काम करते थे।[49] दास और कर्मकर तो भोजन और वस्त्र पाने के उद्देश्य से काम करते थे, किंतु शिल्पी अपना काम करके मजदूरी पाने की आशा रखते थे।[50]

मनु ने कई ऐसे विधान बनाए हैं जिनसे शूद्रों की स्थिति पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। उन्होंने वर्ण के अनुसार ब्याज की भिन्न भिन्न दरें निर्धारित की हैं यह पुराना नियम था।[51] वर्णों के अनुसार ब्याज की दरें क्रमश दो तीन, चार या पाँच प्रतिशत होनी चाहिए।[52] नासिक के उत्कीर्ण लेख से पता चलता है कि जब रुपए बुनकर संघ के पास जमा किए जाते थे, तब उनके द्वारा चुकाए जानेवाले ब्याज की दरें प्रति मास एक से लेकर 3/4 प्रतिशत तक होती थीं।[53] ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिलता कि शूद्र के रूप में उन्हें ब्याज की उत्तम दरें चुकानी पड़ती थी। सनातन परंपरा के एक आधुनिक समर्थक ने ब्याज के इस वर्गीकरण को इस आधार पर उचित बताने का प्रयास किया है कि यह उधार लेनेवालों की सामाजिक सेवाओं के अनुपात को ध्यान में रखकर निर्धारित किया गया है,[54] जिसका अर्थ है कि शूद्रों द्वारा की जानेवाली सेवाएँ नगण्य सी थीं। किंतु वास्तविकता यह है कि अपने उत्पादन कार्य द्वारा वे वैश्यों के साथ पूरे सामाजिक ढाँचे को कायम रखे हुए थे। हो सकता है कि मनु का ब्याज संबंधी विधान अमल में नहीं लाया गया हो किंतु ब्याज वसूलने में प्राय ब्राह्मणों के प्रति कुछ नरमी बरती जाती थी और शूद्रों को अपना ऋण चुकाकर ही मुक्त होना पड़ता था।

मनु का विचार है कि शूद्र को संपत्ति जमा नहीं करने देनी चाहिए, क्योंकि इससे वह ब्राह्मणों को सताने लगेगा।[55] कहा गया है कि इस तरह की निषेधाज्ञा खुद शूद्रों को संबोधित अतिरंजित मंतव्य (अर्थवाद) है,[56] किंतु ऐसे विचार के लिए मूल ग्रंथ में कोई आधार नहीं है। इस निषेधाज्ञा की तुलना अंग्रेजी प्रार्थनाग्रंथ के उस प्रबोधन वाक्य से भी की जाती है जिसमें गरीब को कहा गया है कि उसके पास जो कुछ भी हो, उसी से वह

संतुष्ट रहे।'[57] चूँकि प्रसंगाधीन परिच्छेद आपतकाल संबंधी अध्याय में आया है, अतः यह बौद्ध भिक्षुओं या विदेशी शासकों के संबंध में कहा गया होगा, जिन्हें शूद्र ही माना जाता था। जो भी हो, दाय विधि से स्पष्ट है कि शूद्रों की संपत्ति होती थी।[58] यह निष्कर्ष मनु द्वारा दुहराए गए उस पुराने नियम से भी निकाला जा सकता है, जिसके अनुसार वैश्यों और शूद्रों को धन से अनुदान द्वारा अपनी विपत्ति का निराकरण करना चाहिए।[59]

मनु के अनुसार रुपए जिस व्यक्ति के पास जमा किए जाएँ, उसकी एक योग्यता यह होनी चाहिए कि वह आर्य हो।[60] शूद्र स्पष्ट ही उस योग्यता से वंचित है। किंतु ई. सन की दूसरी शताब्दी में सातवाहन के राज्य में रुपए कुमकारों, तेल मिल के मालिकों[61] और बुनकरों[62] के पास भी जमा किए जाते थे। यह प्रथा बौद्ध उपासकों में प्रचलित थी, जो भिक्षुओं को परिधान देने और अन्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए रुपए जमा करते थे। ब्राह्मण धर्मावलंबी भी इन प्रथाओं का अनुसरण करते थे, क्योंकि ऐसा अभिलेख मिला है जिससे पता चलता है कि हुविष्क के राज्यकाल (लगभग 106-138 ई.) में एक प्रमुख ने मथुरा के आटा व्यापारी संघ के पास एक नियत धनराशि जमा की थी, जिसके ब्याज से प्रतिदिन 100 ब्राह्मणों को खिलाया जाता था।[63] इन प्रथाओं से भी सिद्ध होता है कि शिल्पकार संघ बनाकर स्वतंत्र रूप से काम करते थे। स्पष्ट है कि वे जमा की हुई इस धनराशि से अपने लिए कच्चा माल और उपकरण (औजार) खरीद सकते थे और उत्पादित सामग्री को बेचने से हुई आय से उक्त राशि का ब्याज चुका सकते थे।

मनु ने विहित किया है कि ब्राह्मण अपने शूद्र दास के सामान को निर्भयतापूर्वक जब्त कर सकता है, क्योंकि उसे संपत्ति रखने का अधिकार नहीं है।[64] जायसवाल का विचार है कि इसके द्वारा संभवतया बौद्ध संघ की संपत्ति जब्त करने की क्रिया को कानूनी मान्यता दी गई है, क्योंकि संघ के पास अपार संपत्ति इकट्ठी हो गई थी।[65] किंतु यह नियम संभवतया उन शूद्रों पर ही लागू होता है जो दास के रूप में काम करते थे। मनु का मत है कि क्षत्रिय भूखा क्यों न रह जाए, वह किसी पुण्यात्मा ब्राह्मण की संपत्ति हरण नहीं कर सकता, लेकिन वह किसी दस्यु या अपने पवित्र कर्तव्य से च्युत होनेवाले लोगों की संपत्ति हड़प सकता है।[66] इससे पता चलता है कि जो क्षत्रिय और वैश्य अपने अनिवार्य धार्मिक कृत्यों की अवहेलना करते थे, उनकी सम्पत्ति हरण कर ली जा सकती थी। ऐसी स्थिति में शूद्रों को सुरक्षित नहीं समझा जा सकता है, क्योंकि मनु ने नियम बनाया है कि चूँकि शूद्र को यज्ञ से कोई सरोकार नहीं है, इसलिए यज्ञ करनेवाले द्विज यज्ञ के लिए अपेक्षित दो या तीन सामग्री उससे ले सकते हैं।[67] इन सभी नियमों से मालूम होता है कि मनु ने शूद्रों को आर्थिक दृष्टि से हीन बनाकर रखने का प्रयास किया है।

मौर्योत्तर काल में कामगारों को दी जानेवाली मजूरी और निम्न वर्ग के लोगों के

जीवन निर्वाह की सामान्य स्थिति का कुछ आभास मिलता है। एक बात में मनु ने कौटिल्य के सिद्धांत का अनुसरण किया है और बताया है कि मजूरी पर रखा गया चरवाहा मालिक की सहमति से दस गायों में से सबसे अच्छी एक गाय को दुह ले सकता था।[68] इस मामले में मनु भाड़े के मजदूर के प्रति कौटिल्य की अपेक्षा अधिक उदार मालूम पड़ते है,[69] क्योंकि उन्होंने मजदूर को सबसे अच्छी गाय का दूध ले जाने की अनुमति दी है। मनु ने चरवाहे के जिम्मे रखी गई गायों के प्रति उसकी जिम्मेदारी पर भी जोर दिया है, और भिन्न भिन्न परिस्थितियों में उसके विभिन्न कर्तव्यों का उल्लेख भी किया है।[70] किंतु उन्होंने यह नहीं कहा है कि यदि कोई मवेशी खो जाए तो उसके चरवाहे को कोड़े से पीटा जाए, जैसा कि *आपस्तंब* में बताया गया है, अथवा उसे मृत्यु की सजा दी जाए, जैसा कि कौटिल्य ने कहा है। मनु ने एक नया प्रावधान बनाया है जिसके अनुसार गाँवों के चारों ओर लगभग चार सौ हाथ चौड़ा क्षेत्र और नगरों के चारों ओर इसका तिगुना क्षेत्र चरागाह के लिए रखा जाए। यदि इस क्षेत्र के अंतर्गत किसी के बाड़ा रहित प्लाटों में कोई मवेशी भटककर चला जाए और उसकी फसल को नुकसान पहुँचाए तो उसके लिए चरवाहे को जिम्मेवार नहीं ठहराया जा सकता।[71] इस तरह इस स्मृतिकार ने चरवाहों के हितों को कुछ हद तक सुरक्षा प्रदान की है।

यह बताते हुए कि शूद्रों का काम ब्राह्मणों की सेवा करना है उन्होंने विहित किया है कि शूद्रों का निर्वाह व्यय तय करने में उनकी योग्यता, काम और आश्रितों की संख्या का ख्याल किया जाना चाहिए।[72] उन्होंने गौतम के उस अनुदेश को दुहराया है कि इन सेवकों को जूठन और पुराने कपड़े तथा बिस्तर दिए जाने चाहिए। किंतु उन्होंने यह भी बताया है कि इन्हें अनाज के कण भी दिए जाएँ।[73] ये नियम स्पष्टतया उन शूद्रों के पारिश्रमिक का निर्देश देते हैं जो घरेलू नौकर का काम करते थे। मनु ने कहा है कि राजा की सेवा में नियोजित दासियों और दासों की मजूरी समय और स्थान को ध्यान में रखकर तय की जानी चाहिए।[74] उन उत्कृष्ट और अपकृष्ट कार्यकर्ताओं को एक पण से लेकर छ पण तक दैनिक मजूरी मिलनी चाहिए।[75] इसके अतिरिक्त उनके लिए भोजन और वस्त्र आदि का भी प्रबंध किया जाना चाहिए जो उनके ओहदे के अनुसार भिन्न भिन्न किस्म के हो सकते है।[76] यह स्पष्ट नहीं है कि उत्कृष्ट और अपकृष्ट शब्द उच्च और नीच वर्णों के द्योतक हैं, जैसा कि एक अन्य प्रसंग में अर्थ लगाया गया है।[77] किंतु पतंजलि से हमें विदित होता है कि एक ओर कर्मकरों और भृतकों की मजूरी और दूसरी ओर पुरोहितों तथा अन्य लोगों की मजूरी में बहुत बड़ा अंतर था। इस प्रकार जहाँ पुरोहितों को मजूरी के रूप में गायें दी जाती थीं, वहाँ कर्मकरों और भृतकों को प्रतिदिन $\frac{1}{4}$ निष्क,[78] अर्थात महीने में $7\frac{1}{2}$ निष्क मिलते थे। कहा गया है कि निष्क और कार्षापण का मूल्य बराबर होता था।[79]

किंतु यदि इस कथन को स्वीकार किया जाए तो किसी कामगार की दैनिक मजूरी $\frac{1}{4}$ पण होगी, जबकि मनु के लगभग समकालीन प्रमाण बताते है कि श्रमिक की न्यूनतम मजूरी एक पण और अधिकतम मजूरी छ पण होती थी। *अर्थशास्त्र* में कामगार की दैनिक मजूरी $\frac{3}{5}$ पण से लेकर $\frac{2}{5}$ पण तक बताई गई है, जो एक और चार के अनुपात में है,[80] किंतु इन स्रोतों के आधार पर पण की आपेक्षिक क्रयशक्ति का आकलन संभव नहीं है।

श्रमिकों की कार्यस्थिति को विनियमित करने के बारे में मनु ने जो उपबंध किए हैं वे कौटिल्य के उपबंध जितने व्यापक नहीं है। किंतु कौटिल्य की ही तरह उन्होंने लापरवाह मजदूर के प्रति कड़ा रुख अपनाया है। भाड़े का मजदूर जोकि स्वस्थ रहते हुए भी अहंकारवश, समझौते के अनुसार अपना कार्य संपादन नहीं करेगा, उस पर आठ कृष्णल का जुर्माना लगाया जाएगा और उसे कोई मजूरी नहीं दी जाएगी।[81] किंतु जो मजदूर अस्वस्थता के कारण अपना काम नहीं कर सकेगा और स्वस्थ होने पर उसे पूरा कर लेगा वह अपनी अनुपस्थिति की लंबी अवधि के लिए मजूरी पा सकेगा।[82] दूसरी ओर, यदि स्वस्थ होने पर वह अपना काम पूरा नहीं करेगा तो उसे उस अवधि के लिए भी मजूरी नहीं चुकाई जाएगी जिसमें उसने काम किया हो।[83] इससे पता चलता है कि यदि अस्वस्थता के कारण मजदूरों को काम छोड़ना पड़ता था तो उन्हें कोई दंड नहीं दिया जाता था। लेकिन शर्त यह थी कि वे वादा करें कि चंगा होने पर काम पूरा कर देंगे अथवा दूसरों से पूरा करवा देंगे। नियोजकों से मजदूर के हितों की रक्षा के लिए मनु ने और कोई अन्य नियम नहीं बनाए हैं, जैसे *अर्थशास्त्र* में मिलते हैं। उनके द्वारा प्रयुक्त एक उपमा से पता चलता है कि सेवक को अपनी मजूरी पाने के लिए धैर्यपूर्वक प्रतीक्षा करनी पड़ती थी।[84]

मालूम होता है कि नगरों में मजूरों के लिए अलग मुहल्ले होते थे। एक बौद्ध ग्रंथ में भृतकवीथी (संभवतया राजगृह में) की चर्चा आई है, जहाँ ब्राह्मण और गृहस्थ (संभवतया वैश्य) भाड़े के मजदूर ठीक करने जाते थे।[85] एक अन्य स्रोत में दरिद्रवीथी और नगर के सुसंपन्न व्यक्तियों के विलासपूर्ण भवनों के बीच तुलना की गई है।[86] संभवतया यह दरिद्रवीथी और भृतकवीथी एक जैसी थीं, जिनमें मजूरी पर निर्वाह करनेवाले गरीब रहते थे। हमें तीन ऐसे भृतकों की जानकारी मिलती है जो धनी व्यक्तियों के घर के आसपास की गंदगी साफ करते थे और उसी घर के निकट फूस की झोंपड़ी में रहते थे।[87] पतंजलि ने बार बार बताया है कि वृषल अर्थात शूद्र का घर केवल एक दीवाल का होता था (कुड्य)।[88] इससे मालूम होता है कि उसके घर में मिट्टी या ईंट की प्रायः एक ही दीवाल होती थी और शेष तीन भागों में फूस के टाट लगे रहते थे। यह भी संभव है कि यहाँ 'कुड्य'[89] शब्द झोंपड़ी का द्योतक हो।

भृतक अपने जीर्ण शरीर, अस्त व्यस्त बाल और मैले कुचैले कपड़े से पहचाना जाता

था,[90] क्योंकि शुभ्र वस्त्र धारण करनेवाले को दिन भर प्रतीक्षा करने के बाद भी भृतकवीथी में रोजी नहीं मिल सकती थी।[91] मनु ने घरेलू नौकरों के रूप में नियोजित शूद्रों के भोजन और पोशाक का कुछ वर्णन किया है। इस संबध में उन्होंने केवल गौतम के पुराने उपबंधों को दुहराया है और उनका विश्लेषण किया है। इसके अनुसार मालिक को चाहिए कि अपने शूद्र नौकर को उसकी योग्यता, परिश्रम और परिवार के आकार की दृष्टि से समुचित निर्वाह व्यय दे।[92] उसे जूठन, खुद्दी जीर्ण-शीर्ण वस्त्र और पुराने बिस्तर दिए जाने चाहिए।[93] *मिलिंदपञ्हो* में यह वर्णन आया है कि क्षत्रिय, ब्राह्मण और गहपतियों की कोमलांगी पत्नियाँ स्वादिष्ट रोटियाँ और मांस खाती हैं, लेकिन इस प्रसंग में शूद्रों की पत्नियों का कोई जिक्र नहीं हुआ है।[94]

मौर्योत्तर काल में शूद्रों और वैश्यों के बीच आर्थिक भेदभाव मिटते जा रहे थे, पर शूद्र मुख्यतया अलग अलग भूस्वामियों के खेतों में कृषि मजदूर का काम कर रहे थे। पूर्व काल की अपेक्षा शिल्पी अधिक स्वच्छंद होकर अपना काम करते थे। इन शिल्पियों की न केवल संख्या बढ़ी थी और उनमें विविधता आई थी, बल्कि उनके उज्ज्वल भविष्य के लक्षण भी दिखाई पड़ने लगे थे। मनु के विधान, जिनके द्वारा शूद्रों पर नई आर्थिक अशक्तताएँ आरोपित की गई थीं प्रायः प्रभावहीन हो गए थे। किंतु शूद्र समुदाय के रहन-सहन की स्थिति में किसी प्रकार के परिवर्तन का आभास नहीं मिलता।

मनु ने मौर्योत्तरकालीन राज्य व्यवस्था में शूद्रों की स्थिति के बारे में विशद सूचना दी है। उन्होंने विहित किया है कि स्नातक को शूद्र शासक के देश में नहीं रहना चाहिए।[95] इससे स्पष्ट संकेत मिलता है कि उस काल में शूद्र शासक होते थे। किंतु ये शासक चतुर्थ वर्ण के नहीं मालूम होते हैं, क्योंकि उस काल के राजनीतिक इतिहास में इनकी कोई चर्चा नहीं है। ये प्रायः ग्रीक, शक, पर्थियन और कुषाण शासकों का निर्देश देते हैं जो बौद्ध धर्म और वैष्णव धर्म के अनुयायी थे और जिन्हें मनु ने ऐसा पतित क्षत्रिय बताया है जो ब्राह्मणों से परामर्श न लेने और बताए गए वैदिक कृत्यों के संपादन में चूक के कारण शूद्रत्व की स्थिति में पँहुच गए थे।[96] पुराण में कलियुग के जो वर्णन आए हैं, उनमें बताया गया है कि शूद्र राजा अश्वमेध यज्ञ[97] करते थे और ब्राह्मण पुरोहितों से यजन कराते थे।[98] कलि शासकों का हवाला देते हुए *विष्णुपुराण* में कहा गया है कि विभिन्न देशों के लोग इन शासकों में मिल जाते थे और उनका अनुसरण करने लगते थे।[99] संभव है यह बात विदेशी मूल के शासकों के बारे में कही गई हो। वे अपधर्मी संप्रदायों के अनुयायी थे,[100] जिसके चलते उनके प्रति मनु की वैरभावना और भी तीव्र रही होगी। ब्राह्मणों और इन शासकों में संपर्क नहीं बढ़ने पाए, इसके लिए मनु ने इन शासकों के राज्यों में स्नातकों का बसना निषिद्ध माना है। उन्होंने यह भी विहित किया है कि ब्राह्मणों को क्षत्रिय जाति के अलावा किसी भी

राज्य का उपहार नहीं ग्रहण करना चाहिए।[101] स्पष्ट है कि ये सारे नियम इस उद्देश्य से बनाए गए थे कि ब्राह्मण विदेशी शासकों को मान्यता न दें। किंतु धीरे-धीरे यह उत्कट वैरभावना घटने लगी और उनके प्रति सहिष्णुता बढ़ने लगी। अतएव विदेशी शासकों को हीन कोटि के ही सही लेकिन क्षत्रियों की मान्यता दी गई।

इस काल के कुछ ऐसे बौद्ध भी मिलते हैं जो नीच जाति के शासकों को अच्छा नहीं मानते। मिलिंदपन्हो बताता है कि जिस व्यक्ति का जन्म नीच जाति में हुआ हो और जिसकी वंशपरंपरा हीन हो, वह राजा बनने योग्य नहीं है।[102]

मनु ने विहित किया है कि राजा को ऐसे सात या आठ मंत्री नियुक्त करने चाहिए, जिनके पूर्वज राजा के निष्ठावान अधिकारी रहे हों, जो अस्त्र शस्त्र के संचालन में निपुण हों, जो संभ्रांत परिवार के हों और अनुभवी हों।[103] स्पष्ट है कि शूद्र शायद ही इतनी योग्यतावाला होगा।

मनु ने चेतावनी दी है कि जिस राज्य में शूद्र विधि (कानून) का व्यवस्थापन करे और राजा देखता रहे, उस राज्य की स्थिति वैसे ही गिरती जाती है, जैसे दलदल में फँसी गाय नीचे की ओर धँसती जाती है।[104] ऐसे नियम प्राय उन बर्बर शासकों के राज्यों का निर्देश करते हैं जिन्होंने न्याय प्रशासन या अन्य प्रशासनिक कृत्यों के संपादन के लिए कुछ शूद्रों को नियुक्त किया होगा। किंतु मनु जोर देकर कहते हैं कि ऐसा ब्राह्मण भी जो मुख्यतया अपनी जाति के नाम पर (अर्थात अपने को केवल ब्राह्मण बताकर) ही जीवनयापन करता है, विधि का निर्वचन कर सकता है, पर शूद्र किसी भी दशा में न्यायाधीश (धर्मप्रवक्ता) नियुक्त नहीं किया जा सकता।[105] टीकाकारों का मत है कि आवश्यक होने पर क्षत्रियों की नियुक्ति न्यायाधीश के रूप में की जा सकती है,[106] लेकिन टीका में वैश्यों का उल्लेख नहीं हुआ है। यह मनु के विचार के अनुकूल जान पड़ता है, जिसके अनुसार क्षत्रिय ब्राह्मण के बिना और ब्राह्मण क्षत्रिय के बिना उन्नति नहीं कर सकते। किंतु मिल जुलकर रहने पर वे इस लोक और परलोक में भी सुखी रह सकते हैं।[107] प्राय ब्राह्मणप्रधान राज्यों में सभी प्रशासकीय और न्याय संबंधी पदों पर प्रथम दो वर्णों का एकाधिकार था।

मनु ने उस पुराने सिद्धांत को दुहराया है जिसके अनुसार चारों वर्णों के सदस्य और अछूत अपने अपने समुदायों के मुकदमों में गवाह बन सकते हैं।[108] किंतु उन्होंने बताया है कि क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, जो गृहस्थ और पुत्रवान हैं और देश के रहनेवाले हैं, वादी द्वारा बुलाए जाने पर गवाही दे सकते हैं।[109] कुल्लुक की राय में यह बात दीवानी अर्थात ऋण आदि से संबंधित मुकदमों में लागू होती है।[110] मनु का यह नियम पहले के नियमों की अपेक्षा अवश्य ही सुधरा हुआ है, जिसके अनुसार उच्च वर्णों के सदस्यों के मामले में शूद्रों को गवाह के रूप में उपस्थित होने की अनुमति नहीं दी गई है। जहाँ तक मानहानि,

हमला, जारकर्म और चोरी के मामले का प्रश्न है, किसी भी व्यक्ति को गवाही देने के लिए बुलाया जा सकता है, भले ही उसमें दीवानी मुकदमे के लिए अपेक्षित योग्यता हो या नहीं।[111] यदि योग्य गवाह उपलब्ध न हो तो मनु ने चाकरों और सेवकों को भी गवाह बनने की अनुमति दी है।[112] मनु ने गाँवों के बीच होनेवाले सीमा विवादों के मामलों के लिए वर्ण विभेद नहीं किया है, गवाहों की जाँच ग्रामीण समूह के समक्ष होती थी।[113] जिन लोगों को मनु ने गवाहों के रूप में (खासकर दीवानी मामलों में) उपस्थित होने की अनुमति नहीं दी है, वे हैं शिल्पकार, कलाकार और नर्तक।[114] कुल्लूक ने ऐसे निषेध को इस आधार पर उचित बताया है कि ये लोग बराबर अपने कार्य में व्यस्त रहते हैं और घूस देकर इन्हें अपने पक्ष में किया जा सकता है।[115] मनु के अनुसार जन्मजात गुलामों को भी गवाही देने की अनुमति नहीं है।[116]

मनु ने अभिसाक्ष्य देने के पहले विभिन्न वर्णों के लोगों को चेतावनी देने के पुराने नियम को दुहराया है।[117] यदि कोई शूद्र गलत साक्ष्य दे तो वह भारी पाप का भागी होगा,[118] और उसे भयानक दैवी यातनाएँ भोगनी होंगी।[119] किंतु उन्होंने बताया है कि न्यायाधीश को चाहिए कि ब्राह्मण को सत्यनिष्ठा की, क्षत्रिय को रथ की या जिस पशु की सवारी वह करता हो उसकी और वैश्य को अपनी गाय अन्न और स्वर्ण की शपथ दिलाए और शूद्र को इस आशय की कि सभी रिष्टिकर पापों का अपराध उसके माथे चढ़ेगा।[120] किंतु यह बड़ा अर्थपूर्ण है कि मनु ने शूद्र गवाह के लिए कोई विशेष राजदंड विहित नहीं किया है। उन्होंने यह सामान्य सिद्धांत निरूपित किया है कि झूठी गवाही देने पर राजा तीन नीच वर्णों के लोगों को जुर्माना और निर्वासन का दंड दे सकता है, लेकिन ब्राह्मण को केवल निर्वासित ही करेगा।[121] इसी प्रकार, ब्राह्मण शारीरिक दंड के भी भागी नहीं हैं। यह दंड केवल तीन नीच वर्णों के लोगों को ही दिया जा सकता है।[122] इसलिए इन दृष्टियों से शूद्र को क्षत्रिय और वैश्य के साथ समान स्तर पर रखा गया है।

यह विहित किया गया है कि राजा को वादियों के मुकदमों को उनके वर्णक्रम से ग्रहण करना चाहिए।[123] विधि का व्यवस्थापन करने में उसे हर जाति के रीति रिवाजों का ध्यान रखना चाहिए।[124] मनु भद्र लोगों के आचरण को विधि का स्रोत मानते हैं[125] और जैसा कि ई सन की 17वीं शताब्दी के एक टीकाकार ने बताया है भद्र शूद्रों की प्रथा भी इसका स्रोत है।[126]

पुराने विधिनिर्माताओं की तरह मनु न्याय के प्रशासन में वर्णविभेद की भावनाओं से प्रेरित हैं जिसका शूद्रों की स्थिति पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। यदि कोई क्षत्रिय किसी ब्राह्मण की मानहानि करे तो उसे सौ पण और इसी अपराध के लिए वैश्य को एक सौ पचास या दो सौ पण का जुर्माना किया जाएगा किंतु शूद्र को शारीरिक दंड दिया

जाएगा।[127] यदि कोई ब्राह्मण किसी क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र की मानहानि करे तो उसे क्रमश 50 25 या 12 पण का जुर्माना किया जाएगा।[128] यह ध्यान देने की बात है कि यदि कोई ब्राह्मण किसी शूद्र को अपशब्द कहे तो उसके लिए 12 पण का जुर्माना विहित किया गया है, क्योंकि *गौतम धर्मसूत्र* में ऐसी स्थिति के लिए किसी भी जुर्माने का उपबंध नहीं किया गया है।[129]

साधारणतया मनु ने उच्च वर्णों के लोगों के प्रति अपराध करनेवाले शूद्रों के लिए बहुत कठोर दंड विहित किए हैं। यदि कोई शूद्र किसी द्विज को गाली देकर अपमानित करे तो उसकी जीभ काट ली जाएगी।[130] द्विज (द्विजाति) शब्द केवल ब्राह्मण और क्षत्रिय के लिए प्रयुक्त हुआ है, क्योंकि किसी शूद्र द्वारा किसी वैश्य को दुर्वचन कहे जाने पर यह दंड देना स्पष्टतया निषिद्ध है।[131] मनु ने यह भी विहित किया है कि यदि कोई शूद्र द्विज के नाम और जातियों की चर्चा तिरस्कारपूर्वक करे तो दस अंगुल लंबी गर्म लाल लोहे की कीँटी उसके मुँह में ठूँस दी जाएगी।[132] यदि वह उद्दंडता के साथ ब्राह्मणों को उनका कर्तव्य सिखाए तो राजा उसके मुँह और कान में गर्म तेल डलवा देगा।[133] जायसवाल की राय है कि ये नियम धर्मप्रचार करनेवाले विद्वान शूद्रों, अर्थात बौद्ध या जैन शूद्रों और उस तरह के अन्य शूद्रों के लिए बनाए गए हैं जो उच्च वर्णों के साथ समानता का दावा करते हैं।[134] स्पष्ट है कि ये नियम मनु के उन राजनीतिक विरोधियों के प्रति उद्दिष्ट हैं जो सुस्थापित व्यवस्था का निरादर करते हैं।[135] यह कहना कठिन है कि इस कानून का प्रवर्तन कहाँ तक हुआ। संभवतया ये कट्टरपंथी के प्रलाप थे और उन पर शायद ही अमल किया गया होगा।[136]

प्रहार और इसी प्रकार के अन्य अपराधों के मामले में शूद्रों के लिए विहित दंड बहुत कठोर थे। ऐसा उपबंध किया गया है कि अंत्यज (नीच जाति) जिस अंग से उच्च जाति (श्रेष्ठ) को कष्ट पहुँचाए वह अंग काट लिया जाएगा।[137] यहाँ कुल्लूक ने अंत्यज का अर्थ शूद्र किया है,[138] जो पूर्वकाल के ऐसे ही नियम से मिलता है।[139] 'श्रेष्ठ' शब्द से ब्राह्मणों का बोध होता है न कि तीन उच्च वर्ण के लोगों का जैसा कि कहीं कहीं समझा गया है।[140] एक श्लोक में मनु ने बताया है कि जो कोई अपना हाथ या छड़ी उठाएगा उसका हाथ काट लिया जाएगा, जो क्रोध में आकर पैर से मारेगा उसका पैर काट लिया जाएगा।[141] संभवतया यह भी ब्राह्मणों के प्रति शूद्रों द्वारा किए जानेवाले अपराध का संकेत करता है। आगे यह भी विहित किया गया है कि यदि 'अपकृष्टज' (नीच कुल में जन्मा कोई व्यक्ति) उसी स्थान पर बैठने का प्रयास करे जिस पर उच्च जाति का कोई व्यक्ति (उत्कृष्ट) बैठा हो तो उसका चूतड़ दाग कर उसे निर्वासित कर दिया जाएगा अथवा राजा उसके चूतड़ में घाव करवा देगा।[142] 'अपकृष्टज' शब्द शूद्र के लिए और 'उत्कृष्ट'

ब्राह्मण के लिए प्रयुक्त हुए हैं।[143] इसी प्रकार यदि अहकारवश कोई शूद्र किसी ब्राह्मण पर थूके तो राजा उसके दोनों होंठ कटवा देगा, यदि वह उस पर पेशाब कर दे तो उसका लिंग और यदि उसके सामने गदी हवा छोड़े तो उसकी गुदा कटवा देगा।[144] यदि शूद्र ब्राह्मण का बाल पकड़कर खींचे तो राजा बेहिचक उसके हाथ कटवा देगा। उसे ऐसी ही सजा ब्राह्मण के पैर, दाढ़ी, गर्दन और अडकोश पकड़कर घसीटने के लिए दी जाएगी।[145] मनु ने ब्राह्मणों को जान बूझकर कष्ट पहुँचानेवाले नीच शूद्र के लिए एक सामान्य दड का विधान किया है, जिसके अनुसार राजा आतक फैलाने के लिए कई प्रकार के शारीरिक दड दे सकता है।[146] ब्राह्मणों को कष्ट पहुँचाने का अर्थ उसे शारीरिक दु ख देना या सपत्ति चुरा लेना किया गया है।[147]

ऊपर बताए गए अधिकाश नियम ब्राह्मणों के प्रति अपराध करनेवाले शूद्रों के लिए बनाए गए हैं। विधिग्रथ में इन नियमों के मात्र लिखे रहने से भी यह पता चलता है कि उच्चतर और निम्नतर वर्णों के बीच सबध बहुत तनावपूर्ण था। यह सुनिश्चित करने का शायद ही कोई प्रमाण मिलता है कि ये नियम अमल में लाए जाते थे। किंतु *महावस्तु* से जानकारी मिलती है कि भाड़े के मजदूरों से काम कराने के लिए उन्हें कठिन से कठिन शारीरिक यातनाएँ दी जाती थीं। इस ग्रथ से ज्ञात होता है कि कुछ लोग इन मजदूरों को बेड़ियों और जजीरों में जकड़वा देते थे और आदेश देकर कितनों के हाथ पाँव छेदवा देते थे तथा उनकी नाक, मास नसों, बाँहों और पीठ को पाँच या दस बार चिरवा देते थे।[148] सद्धर्मपुडरीक में कहा गया है कि एक सभ्रात परिवार का नवयुवक काठ की बेड़ियों में जकड दिया गया था।[149] अतएव यह बहुत आश्चर्य की बात नहीं कि शूद्र अपराधियों को शारीरिक दड दिए जाते थे। किंतु यह सदिग्ध बना हुआ है कि मनु के दडविधान उन पर अक्षरश लागू किए जाते थे।

एक ही कोटि की जातियों के लोगों के आपस में लड़ जाने पर कठोर दड विहित नहीं हैं। कहा गया है कि जो अपनी समकक्ष जाति का चमड़ा उधेड़े या उसका खून बहाए, उस पर सौ पण जुर्माना किया जाएगा जो मासपेशी काटे उसे छ निष्क और जो हड्डी तोड दे उसे निर्वासित किए जाने की सजा दी जाएगी।[150] राघवानद की राय है कि यह नियम शूद्र द्वारा शूद्र पर प्रहार करने का संकेत है।[151]

मनु ने हत्या के पाप का प्रायश्चित चाद्रायण व्रत द्वारा विहित किया है जिसकी अवधि मारे गए व्यक्ति के वर्ण के अनुसार घटती बढती है। ब्राह्मण की हत्या करने पर तीन वर्ष का व्रत विहित किया गया है और शूद्र की हत्या के लिए $2\frac{1}{4}$ महीने का।[152] शूद्र की हत्या करने पर मनु के अनुसार दस गाय और एक साँड़ का वैरदेय चुकाना पड़ता है,[153] जैसा कि पुराने विधिग्रथों में भी पाया जाता है। मनु ने यह भी बताया है कि इस जुर्माने का

भुगतान ब्राह्मण को किया जाएगा।[154] इसी प्रकार पूर्वकाल के विधिनिर्माताओं की भाँति उन्होंने शूद्र का वध करने के लिए वही व्रत विहित किया है जो छोटे छोटे पशु एव पक्षियों को मारने के लिए विहित है।[155] ये उपबध निस्सदेह बताते हैं कि मनु शूद्र के जीवन को बहुत तुच्छ समझते थे। किंतु विस्मय की बात यह है कि हत्या के सबध में मनु के एक नियम में वर्णविभेद की कोई चर्चा नहीं दिखाई पडती। यदि सत्य बोलने से किसी क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र के वध की सभावना हो तो मिथ्या वचन बोला जा सकता है और उस पाप के लिए सरस्वती को चरु चढ़ाकर प्रायश्चित किया जा सकता है।[156] मनु ने यह भी स्पष्ट किया है कि नारी, शूद्र, वैश्य और क्षत्रिय का वध करना मामूली अपराध है, जिसके लिए अपराधी को जातिच्युत कर दिया जाता है।[157] किंतु इस नियम का एकमात्र उद्देश्य ब्राह्मण के जीवन की महत्ता पर जोर देना है।

मनु का विचार है कि वर्ण जितना ही ऊँचा हो चोरी का अपराध उतना ही भारी होगा। शूद्र का यह अपराध लघुतम अपराध माना गया है,[158] क्योंकि यह समझा जाता है कि चोरी का अभ्यास उसके लिए सामान्य बात है।

दायविधि में मनु ने ब्राह्मण के शूद्र पुत्र को सपत्ति का दसवाँ भाग देने के पुराने नियम का समर्थन किया है, अगर उसे उच्च जातियों की पत्नियों से पुत्र नहीं भी हो।[159] यहाँ उस पुराने विचार को भी दुहराया गया है कि ब्राह्मण, क्षत्रिय या वैश्य का शूद्रपुत्र कोई भी हिस्सा पाने का हकदार नहीं है। उसका पिता उसे जो दे दे वही उसका हिस्सा बन जाता है।[160] शूद्र को नातेदार तो माना जा सकता है किंतु उत्तराधिकारी नहीं।[161] जहाँ तक शूद्रों में हिस्से देने का प्रश्न है, उन्हें सौ पुत्र क्यों न हों सब के हिस्से बराबर होंगे।[162] इस प्रकार केवल उच्च जाति के लोगों के शूद्र पुत्रों को हिस्सा मिलना निश्चित नहीं था। सामान्यतया शूद्र वर्ण के सदस्यों को सपत्ति का अधिकार प्राप्त था। एक अन्य विधान से भी यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है, जिसके अनुसार राजा को चाहिए कि जिस किसी वर्ण के सदस्यों की सपत्ति चोरों ने चुरा ली हो उन्हें वह सपत्ति अवश्य वापस दिला दे।[163]

मनु के जारकर्म सबधी नियमों में शूद्र महिला के प्रति उतना विभेद नहीं किया गया है जितना शूद्र पुरुष के प्रति। यदि कोई ब्राह्मण अपने से तीन छोटे वर्णों की किसी अरक्षित महिला का गमन करे तो उसे पाँच सौ पण जुर्माना किया जाएगा किंतु किसी अत्यज महिला के प्रति इसी तरह का अपराध किए जाने पर जुर्माना बढाकर एक हजार पण कर दिया जाएगा।[164] यदि कोई क्षत्रिय या वैश्य किसी रक्षित शूद्र महिला के साथ सभोग करे तो उसके लिए भी जुर्माने की राशि उतनी ही होगी।[165] यदि कोई ब्राह्मण किसी वृषली के साथ रात बिताए तो वह भिक्षाटन पर निर्वाह करके और प्रतिदिन धर्मग्रंथों का पाठ करके तीन वर्ष में उस पाप को दूर कर सकेगा।[166] यद्यपि अधिकाश नियम ब्राह्मणों के नैतिक पतन

को रोककर उसकी पवित्रता को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए हैं, फिर भी उनसे स्पष्ट है कि मनु शूद्र महिला के सतीत्व की भी रक्षा करना चाहते हैं। यह उनके सिद्धांत के अनुकूल है कि चारों वर्णों की महिलाओं की रक्षा की जानी चाहिए।[167]

किंतु मनु का यह नियम कि लोगों को दूसरे की स्त्री से बातचीत नहीं करनी चाहिए, शूद्रों के कुछ वर्गों यथा, अभिनेताओं और गायकों पर लागू नहीं होता क्योंकि वे अपनी पत्नियों से प्रच्छन्न कर्म (वेश्या, कुटनी आदि का काम) कराकर निर्वाह करते हैं।[168] इतना ही नहीं, जो कोई इन स्त्रियों और किसी मालिक की अधीनस्थ दासी से बातचीत करे उसे मामूली जुर्माना चुकाना पड़ेगा।[169] इस कोटि में बौद्ध और जैन भिक्षुणियों को भी रखा गया है,[170] क्योंकि उन्हें प्रायः नीच जातियों से नियुक्त किया जाता था और भिक्खुओं की तरह उन्हें भी शूद्र मानकर हेय दृष्टि से देखा जाता था।[171] मनु ने जारकर्मी शूद्र पुरुष के लिए अत्यंत कठोर दंड विहित किया है। जो शूद्र द्विज जाति की किसी अरक्षित महिला का समागम करे, वह अपराध करनेवाले अंग और अपनी सारी संपत्ति से च्युत कर दिया जाएगा और यदि ऐसा अपराध किसी रक्षित महिला के साथ किया जाएगा तो उसे अपना सर्वस्व और अपनी जान भी गँवा देनी पड़ेगी।[172] यहाँ द्विज (द्विजाति) शब्द प्रायः ब्राह्मण का संकेत देता है, क्योंकि नीचे के दो नियमों में ब्राह्मण महिला के साथ क्षत्रिय और वैश्य द्वारा किए गए अपराध के दंड का विधान किया गया है।[173] किंतु यदि ये दोनों किसी रक्षित ब्राह्मणी, जो किसी श्रेष्ठ ब्राह्मण की पत्नी हो के प्रति अपराध करें तो इन्हें भी शूद्र की तरह दंडित किया जाएगा अथवा सूखी घास की आग जलाकर उसमें जला दिया जाएगा।[174] स्मरणीय है कि ऐसे मामले में कौटिल्य ने केवल शूद्र अपराधी के लिए जलाकर मार डालने का दंड विहित किया है।[175] वसिष्ठ ने क्षत्रिय और वैश्य अपराधियों के लिए भी इसी तरह के दंड का प्रावधान किया है।[176] मनु के एक परिच्छेद का यह अर्थ लगाया जाता है कि इस तरह के मामले में शूद्र को मृत्युदण्ड दिया जाएगा।[177] चूँकि जारकर्मी शूद्र के लिए मृत्युदंड का समर्थन सामान्यतया अन्य स्रोतों से भी होता है अतः मनु का यह प्रावधान निष्प्रभावी नहीं रहा होगा।

दासता के संबंध में मनु के नियम शूद्र की नागरिक हैसियत पर पूर्ण प्रकाश डालते हैं। कौटिल्य का मत है कि आर्य माँ या बाप का शूद्र पुत्र दास नहीं बनाया जा सकता है। किंतु यद्यपि मनु ने शूद्र पुत्रों को परिवार की संपत्ति में हिस्सा पाने का अधिकार दिया है, फिर भी उन्होंने इस प्रथा का कोई हवाला नहीं दिया है। सर्वप्रथम उन्होंने ही यह सिद्धांत निरूपित किया कि दासता शूद्र के जीवन का शाश्वत रूप है। किंतु यह केवल ब्राह्मणों और शूद्रों के संबंध पर लागू होता है। मनु कहते हैं कि शूद्र खरीदा हुआ हो या नहीं, उसे दास बनाना ही होगा, क्योंकि परमात्मा ने उसका सृजन ब्राह्मण की सेवा के लिए किया है।[178] बाद के

श्लोक में उन्होंने बताया है कि शूद्र भोगाधिकार से मुक्त नहीं किया जा सकता, क्योंकि भोगाधिकार उसमें अन्तर्जात है ।[179] शूद्र की तुलना में द्विज जातियों के सदस्य को दास नहीं बनाया जा सकता है । यदि कोई ब्राह्मण किसी द्विज जाति के लोगों को दास के रूप में कार्य करने के लिए बाध्य करे तो राजा उसे छ सौ पण जुर्माना करेगा ।[180] इस सबध में कौटिल्य ने जुर्माने की वर्गीकृत योजना बनाई है । सबसे अधिक जुर्माना48 पण है, जो ब्राह्मण को दास बनाने के लिए किया जा सकता है ।[181] मनु ने इन विभेदों का कोई निर्देश नहीं दिया है, पर तीन उच्च वर्णों के लोगों को दास बनाने के अपराध के लिए कहीं अधिक जुर्माने का उपबध किया है ।

मनु के विधिग्रथ में भी सभी शूद्रों को दास नही माना गया है ।[182] शूद्र और दास के बीच कानूनी भेदभाव को मनु ने स्पष्ट रूप से मान्यता दी है और दासी (शूद्र के दास की दासी) से उत्पन्न शूद्र के बेटे की चर्चा की है ।[183] इस प्रकार यद्यपि दास की बहाली सामान्यतया शूद्र वर्ण से की जाती थी फिर भी कभी कभी शूद्र भी दास रखते थे । किंतु शूद्र और उसके दास के बीच अतर उतना व्यापक नहीं था जितना द्विज और उसके दास के बीच था । मनु का मत है कि यदि पिता की अनुमति मिले तो दासी से उत्पन्न शूद्र का पुत्र पैतृक सपत्ति में हिस्सा पा सकता है ।[184] किंतु द्विज के ऐसे ही पुत्र के लिए उपबध नहीं किया गया है । फलस्वरूप, मनु के उपर्युक्त नियम से जान पड़ता है कि दास को सपत्ति का अधिकार था । कुल्लूक ने मनु के एक परिच्छेद की जो टीका की है उसके अनुसार जब मालिक विदेश गया हो तब उसके कारोबार सबधी लेन देन में दास उसके परिवार का प्रतिनिधित्व कर सकता है, जिसे उसका मालिक रद्द नहीं कर सकता है ।[185] किंतु एक अन्य स्थल पर मनु ने इसे अस्वीकार किया है और कहा है कि वास्तविक स्वामी से भिन्न किसी व्यक्ति द्वारा की गई बिक्री अमान्य घोषित कर दी जाती है ।[186] पहले बताया गया है कि सक्षम गवाहों के नहीं प्रस्तुत होने पर दास और नौकर भी गवाही दे सकते हैं । इन बातों से पता चलता है कि दासों को भी कानून की दृष्टि से कुछ हैसियत प्राप्त थी । कुछ दृष्टि से घरेलू दासों को परिवार का सदस्य माना जाता था । मनु ने परिवार के प्रधान को आदेश दिया है कि वह अपने माँ बाप, बहन पुत्रवधू, भाई पत्नी, पुत्र, पुत्री और दास से वाद विवाद नहीं करे ।[187] उन्होंने इसका कारण बताया है कि पत्नी और पुत्र गृहपति के शरीर के अग हैं,[188] पुत्री दया की पात्र है और दासों का वर्ग उसकी अपनी छाया है । इसलिए मनु का कहना है कि यदि ये लोग गृहपति का अनादर भी करें तो भी उसे शातिपूर्वक उनके साथ रहना चाहिए ।[189] क्या इसका यह अर्थ लिया जाए कि पुरानी पारिवारिक एकात्मकता अस्थायी रूप से शिथिल पड गई थी ? यह अजीब बात लगती है कि यह विधिनिर्माता मालिक को कहे कि दासों द्वारा किया गया अनादर सहन कर ले ।

किंतु दासों और भाड़े के मजदूरों को नागरिकों की भाँति अधिकार प्राप्त नहीं थे । यह

निष्कर्ष मालवा और क्षुद्रक गणराज्यों में उस समय की स्थितियों से निकाला जा सकता है। पाणिनि के एक परिच्छेद की टीका करते हुए पतंजलि ने बताया है कि क्षुद्रकों और मालवों के बेटे तो क्रमश क्षौद्रक्य और मालव्य कहलाते हैं, पर उनके दासों और मजदूरों के बेटों पर यह बात लागू नहीं होती।[190]

शूद्रों की राजनीतिक सह विधिक स्थिति के बारे में मनु अधिकतर पुराने विधिनिर्माताओं की राह पर चलते हैं। उनके नए नियमों में से कुछ नियम विदेशी शासकों और बाह्य धर्म के अनुयायियों के विरुद्ध हैं, जिन्हें अपमान की भावना से शूद्र कहा गया है और कुछ नियम खास शूद्र के लिए ही हैं। जो नियम शूद्रों के लिए ही हैं, वे भी मुख्यतया ब्राह्मणों के प्रति अपराध करनेवाले शूद्रों से ही संबंधित हैं, किंतु इस संबध में भी शूद्रों के प्रति मनु की घोर भेदभाव की नीति का कोई उल्लेखनीय प्रभाव लक्षित नहीं होता। उन्होंने शूद्र की हत्या के लिए न केवल वेरदेय का पुराना नियम रख लिया है, बल्कि शूद्र को गाली देनेवाले ब्राह्मण के लिए 12 पण का जुर्माना भी विहित किया है। यह ऐसा प्रावधान है जिसे हम पूर्व के विधिग्रंथों में नहीं पा सकते। यह महत्वपूर्ण है कि इस काल के अंतिम भाग में सातवाहन शासक गौतमी पुत्र शातकर्णि (ई सन 106 130) ने दावा किया है कि उन्होंने ब्राह्मणों और शूद्रों (अवरों) को समझा बुझाकर वर्ण व्यवस्था की गड़बड़ी को दूर किया और पुन चातुर्वर्ण्य व्यवस्था स्थापित की।[191] वर्णों का यह नया व्यवस्थापन ब्राह्मण शासकों ने क्षत्रियों के विरोध में किया था,[192] क्योंकि ये क्षत्रिय प्राय बाहर के शासक वंश के थे।

शूद्रों की सामाजिक स्थिति के बारे में मनु के नियम बहुत हद तक पुराने विधिनिर्माताओं के विचारों की पुनरुक्ति लगते हैं। किंतु उन्होंने शूद्रों के प्रति कुछ नए भेदभाव भी बनाए हैं। उन्होंने सृष्टि-रचना की पुरानी कथा दुहराई है, जिसमें शूद्र का स्थान सबसे नीचे है।[193] मनु ने चारों वर्णों के प्रति किए जानेवाले अभिवादन (प्राय जैसा ब्राह्मण करते थे) की रीति की निर्धारक विधियों को भी दुहराया है।[194] किंतु उन्होंने यह भी बताया है कि जो ब्राह्मण सही ढंग से अभिवादन का उत्तर नहीं दे उसे विद्वतजन कभी अभिवादन नहीं करें, क्योंकि वह शूद्र के समान है।[195] पतंजलि बताते हैं कि अभिवादन का उत्तर देने में शूद्रों के संबोधन का ढंग गैरशूद्रों से भिन्न था। शूद्रों को संबोधित करने का स्वर तेज नहीं होना चाहिए। 'भो' शब्द का प्रयोग राजन्य या वैश्य के संबोधन में किया जाता था, शूद्र के संबोधन में नहीं।[196] अत व्याकरण के नियमों में भी वर्ण विभेदों के आभास मिलते हैं। मनु का नियम है कि यदि कोई शूद्र सौ वर्ष का हो जाए तो उसका आदर किया जा सकता है।[197] किंतु यह नियम शूद्रों की बहुत सीमित संख्या पर ही लागू हुआ होगा।

मनु ने बच्चों के नामकरण संस्कार में भी वर्ण का विभेद किया है, जिससे स्वभावतया शूद्रों की हीनता झलकती है। उनका मत है कि ब्राह्मण का नाम मंगलसूचक, क्षत्रिय का नाम

बलसूचक, वैश्य का नाम धनसूचक और शूद्र का नाम निंदासूचक होना चाहिए ।[198] इसी के अनुपूरक के तौर पर उन्होंने बताया है कि चारों वर्णों की उपाधि क्रमश सुखवाचक (शर्मा) सुरक्षावाचक (वर्मा) समृद्धिवाचक (भूति) और सेवावाचक (दास) होनी चाहिए ।[199] इसके प्रमाण नहीं मिलते कि यह परिपाटी व्यापक रूप से प्रचलित थी, किंतु नामों के संबंध में मनु के नियमों से जान पड़ता है कि नीच वर्ण के लोग ब्राह्मणकालीन समाज में सामान्यतया घृणा के पात्र थे । इस प्रकार शूद्र के लिए प्रयुक्त 'वृषल' शब्द अपमानजनक माना जाता था । पाणिनि के समास संबंधी नियम का उदाहरण देते हुए पतंजलि ने बताया है कि 'दासी के सदृश (दास्या सदृश)' और 'वृषली के सदृश (वृषल्या सदृश)' पद गाली हैं[200] जिनका अर्थ यह हुआ कि शूद्र और दास समाज में गर्हित माने जाते थे। वृषल को चोर की कोटि में रखा गया था और दोनों के प्रति ब्राह्मणप्रधान समाज वैरभाव रखता था ।[201] यह भी जानकारी मिलती है कि वृषल, दस्यु और चोर घृणा के पात्र समझे जाते थे ।[202]

शूद्र की संगत ब्राह्मण को दूषित करनेवाली समझी जाती थी । मनु ने बताया है कि जो ब्राह्मण भद्रजनों की संगत में रहता है और सभी नीच लोगों का परित्याग करता है, वह प्रतिष्ठित बन जाता है, किंतु इसके विपरीत आचरण करने पर वह भ्रष्ट होकर शूद्र की स्थिति में पहुँच जाता है ।[203] उन्होंने इस प्रावधान को पुन उद्धृत किया है कि स्नातक को शूद्रों के साथ नहीं घूमना-फिरना चाहिए ।[204] मनु ने प्राचीन नियम को पुन उद्धृत किया है कि यदि वैश्य और शूद्र, किसी ब्राह्मण के घर अतिथि बनकर आएँ तो उन्हें कृपापूर्वक नौकरों के साथ भोजन करने की अनुमति दी जानी चाहिए ।[205] मनु का नियम है कि स्नातक को शूद्र का अन्न नहीं खाना चाहिए ।[206] स्नातक को जिनका अन्न ग्रहण नहीं करना चाहिए, उनकी लंबी सूची में लोहार निषाद अभिनेता, स्वर्णकार टोकरीनिर्माता, शिकारी कुत्ते पालनेवाला शौण्डिकी (शराब चुलाने और बेचनेवाले), धोबी और रंगरेज शामिल किए गए हैं ।[207] यह भी कहा गया है कि राजा का अन्न खाने से स्नातक का तेज क्षीण होता है, शूद्र का अन्न खाने से विद्या (ब्रह्मवर्चस) का, स्वर्णकार का अन्न खाने से आयु का और चर्मावकर्तिन (चर्मकार) का अन्न खाने से यश का ह्रास होता है ।[208] यह बड़े अचरज की बात है कि शूद्र समुदाय के विभिन्न वर्गों के अन्न के साथ ही राजा का अन्न भी स्नातक के लिए अकल्याणकारी बताया गया है । मनु ने यह भी बताया है कि शिल्पियों का अन्न खाने से स्नातक संतानविहीन होता है धोबी का अन्न खाने से उसका बल घटता है और गण तथा गणिका (वेश्या) का अन्न उसे परलोक से च्युत करता है ।[209] यदि वह अनजाने इन लोगों में से किसी का अन्न खाए तो उसे तीन दिन अवश्य उपवास करना चाहिए , किंतु यदि उसने जान बूझकर इनका अन्न ग्रहण किया हो तो उसे एक कठिन

प्रायश्चित, जिसे 'कृच्छ' कहते हैं, करना चाहिए।[210] मालूम होता है कि इन सभी प्रसंगों में प्राय स्नातक का अर्थ है, वेद पढ़नेवाला ब्राह्मण वर्ण का छात्र। यदि इन प्रतिबंधों को लागू किया जाए तो परिणाम होगा नीच जातियों और शिक्षित ब्राह्मणों के बीच सभी प्रकार के सामाजिक संपर्क को निषिद्ध करना। मनु ने विहित किया है कि पंडित ब्राह्मण को शूद्र का, जो श्राद्ध नहीं करते, सिद्धान्न कभी नहीं खाना चाहिए। किंतु यदि उसके निर्वाह के अन्य सभी साधन लोप हो जाएँ तो वह शूद्र से उतना कच्चा अन्न ले सकता है जिससे एक रात गुजारी जा सके।[211] असामान्य स्थिति में ये नियम मान्य नहीं हैं। मनु ने श्रेष्ठ मुनियों के कई दृष्टांत प्रस्तुत किए हैं, जिन्होंने आपतकाल में निषिद्ध अन्न ग्रहण किया।[212] भूखे विश्वामित्र, जो अच्छे और बुरे में विभेद कर सकते थे, चंडाल से प्राप्त कुत्ते की रान खाने को तैयार थे।[213] सामान्य स्थिति में साधारणतया शूद्र का अन्न स्वीकार्य था। मनु का नियम है कि कोई व्यक्ति उस शूद्र का अन्न खा सकता है, जो उसका बटाईदार हो, उसके परिवार का मित्र हो उसका चरवाहा हो, उसका दास और उसका हजाम हो।[214] पतंजलि में हमें सूचना मिलती है कि बढ़इयों, धोबियों और लोहारों ने जिस थाली में भोजन किया हो, उसे अच्छी तरह साफ करके उसका इस्तेमाल किया जा सकता है।[215] इससे पता चलता है कि उच्च वर्णों और शूद्र समुदाय के इन वर्णों के बीच भोजन करने कराने की प्रथा थी। शूद्र का जूठा खाना महापाप समझा जाता था। कहा गया है कि जिसने औरतों और शूद्रों का जूठा खा लिया हो उसे सात दिन और सात रात तक जौ का घोल पीकर अशुचि का निवारण करना चाहिए।[216] प्राय यह नियम ब्राह्मण के लिए है। इसी प्रकार जो ब्राह्मण शूद्र का जूठा हुआ पानी पी ले, उसे कुश डालकर तीन दिनों तक उबाला गया पानी पीकर अपने पाप का प्रायश्चित करना चाहिए।[217] मनु के नियम शूद्रों के आहार पर कुछ प्रकाश डालते हैं। द्विज को चाहिए कि यदि वह सुखाया हुआ मांस जमीन में उगा हुआ कुकुरमुत्ता और कोई ऐसा मांस खा ले जिसके बारे में वह नहीं जानता हो कि मांस किस जीव का है अथवा मांस किस कसाईखाने से लाया गया है, तो उसे चान्द्रायण व्रत रखना चाहिए।[218] इसी प्रकार यदि कोई द्विज मांसभक्षी प्राणी सूअर, ऊँट, मुर्गा, कौआ, मनुष्य और गदहे का मांस खा ले तो उसे अति कठिन व्रत, जो 'तप्तकृच्छ्' कहलाता है रखना चाहिए।[219] यदि इन प्रसंगों में द्विज को प्रथम तीन वर्णों का सदस्य माना जाए तो इसका अर्थ होगा कि शूद्र सभी प्रकार का मांस खाने के लिए स्वतंत्र थे। मनु के एक परिच्छेद की टीका में कुल्लूक ने बताया है कि लहसुन और अन्य निषिद्ध कंद खाकर शूद्र ऐसा अपराध नहीं करता कि उसे जातिच्युत कर दिया जाए।[220] इससे मालूम होता है कि लहसुन, प्याज और अनेक प्रकार के मांस नीच वर्ग के लोगों के वैध आहार माने जाते थे।

अनुमान है कि वैश्यों और शूद्रों के विवाह की रीति उच्च वर्णों से भिन्न थी। मनु ने

विधिनिर्माताओं के मत उद्धृत किए हैं, जिनके अनुसार प्रथम चार प्रकार के विवाह, अर्थात ब्राह्म, दैव, आर्ष और प्राजापत्य ब्राह्मण के लिए विहित हैं, राक्षस क्षत्रिय के लिए और आसुर वैश्य तथा शूद्र के लिए ।[221] उन्होंने यह भी बताया है कि ब्राह्मण 'आसुर' और 'गांधर्व' विवाह को भी अपना सकते हैं, क्षत्रिय भी आसुर, गांधर्व और पैशाच विवाह अपना सकते हैं और यही पद्धतियाँ वैश्य तथा शूद्र के लिए भी हो सकती हैं ।[222] इस तरह क्षत्रिय के लिए राक्षस पद्धति से विवाह करने का नियम बनाकर उन्हें केवल वैश्य और शूद्र से अलग किया गया है । किंतु यहाँ प्राय मनु का मुख्य उद्देश्य है ब्राह्मणों को अन्य तीन वर्णों से अलग करना । जहाँ तक दो नीच वर्णों का संबध है, वास्तविक स्थिति मनु द्वारा उद्धृत विवरण, जो आदिपर्व में भी आया है,[223] से स्पष्ट होती है, जिसमें कन्या का आसुर विवाह (खरीदकर विवाह करना) सामान्यतया वैश्यों और शूद्रों में प्रचलित था । मनु का विचार है कि 'आसुर और पैशाच' पद्धति से विवाह कभी नहीं करना चाहिए ।[224] कुल्लूक ने अपनी टीका में बताया है कि यह नियम ब्राह्मणों और क्षत्रियों पर लागू होता है [225] जिससे पता चलता है कि विवाह की ये दोनों पद्धतियाँ खासकर दो नीच वर्णों के लिए अभिप्रेत थीं ।

मनु के स्त्री धन संबधी नियम विवाह की पद्धतियों के अनुसार भिन्न-भिन्न हैं । कहा गया है कि यदि आसुर राक्षस और पैशाच पद्धति से विवाहिता स्त्री संतानहीन मर जाए तो स्त्री-धन उसके माँ बाप को , अर्थात उसके माता पिता के परिवार को मिलेगा न कि उसके पति के परिवार को, जैसा कि प्रथम चार और गांधर्व रीति के विवाह में होता है ।[226] इससे पता चलता है कि वैश्य और शूद्र द्वारा अपनाई गई वैवाहिक पद्धतियों में मातृकुल का महत्व था ।

मनु निश्चयपूर्वक कहते हैं कि जो विवाह वैदिक मंत्रों द्वारा संपन्न कराए जाते हैं, उनमें नियोग नहीं हो सकता ।[227] चूँकि ये मंत्र शूद्रों के विवाह में नहीं पढ़े जाते,[228] इसलिए यह स्पष्ट है कि नियोग मुख्यतया शूद्रों तक ही सीमित था । यह निष्कर्ष मनु द्वारा आगे बताए गए अन्य विवरण से भी निकाला जा सकता है जिसमें उन्होंने जोर देते हुए कहा है कि विधवा विवाह और नियोग को शास्त्रों के जानकार द्विज पशुजन्य प्रथा मानते हैं ।[229] जाली का विचार है कि नियोग और विधवा विवाह के संबध में मनु के विचार परस्पर विरोधी हैं,[230] क्योंकि कुछ परिच्छेदों में वह इनका समर्थन करते है और कुछ में उनकी निंदा करते हैं । किंतु यदि हम इस बात को ध्यान में रखें कि मनु ने नियोग और विधवा विवाह का समर्थन शूद्रों के लिए किया है और तीन उच्च वर्णों के संबध में उन्होंने इनकी निंदा की है, तो इन परिच्छेदों का समाधान आसानी से मिल जाएगा । शूद्रों में उपर्युक्त प्रथाओं के चलन से यह पता चलता है कि महिलाएँ अपने समुदाय में दूसरों पर बहुत निर्भर नहीं थीं ।

एक वर्ण के साथ दूसरे वर्ण के विवाह के संबंध में मनु ने पुरानी उक्ति उद्धृत की है जिसमें उच्च वर्ण के लोगों को नीच वर्ण की महिला से विवाह की अनुमति दी गई है।[231] लेकिन उन्होंने यह भी बताया है कि यदि द्विज अपने वर्ण और अन्य छोटे वर्णों की महिला से विवाह करे तो इन पत्नियों की वरीयता, हैसियत और निवास का निर्णय वर्णों के क्रम से किया जाएगा।[232]

मनु इस विचार को नापसंद करते हैं कि ब्राह्मण या क्षत्रिय की प्रथम पत्नी कोई शूद्र महिला हो। उन्होंने बताया है कि प्राचीन कथा में इसका कोई पूर्वोदाहरण नहीं मिलता है।[233] प्राय: उच्च वर्णों के लोगों की शूद्र पत्नी का दर्जा बहुत नीचे रहता था। पतंजलि हमें सूचित करते हैं कि दासी और वृषली उच्च वर्ग के लोगों के भोग विलास के लिए होती थी।[234] मनु का कथन है कि जो द्विज शूद्र कन्या से विवाह करते हैं वे तुरत अपने परिवार और बच्चों को पंक्तिच्युत करके शूद्र बना देते हैं।[235] कुल्लूक का मत है कि यह नियम तीनों उच्च वर्णों पर लागू होता है।[236] अपने कथन के समर्थन में मनु ने कई प्रमाण प्रस्तुत किए हैं। अत्रि का विचार है कि यदि कोई ब्राह्मण किसी शूद्र कन्या से विवाह करे तो उसे जाति से बाहर कर दिया जाए। शौनक कहते हैं कि पुत्र उत्पन्न होने पर क्षत्रिय का भी यही हाल होना चाहिए और भृगु का कथन है कि यदि वैश्य को केवल शूद्र स्त्री से पुत्र उत्पन्न हो तो उसे जाति से बहिष्कृत कर दिया जाए।[237] किंतु मनु ब्राह्मण द्वारा शूद्र महिला के समागम का घोर विरोध करते हैं। उनकी राय है कि ऐसा व्यक्ति मृत्यु के उपरांत नरक में जाएगा। यदि उसे शूद्र पत्नी से संतान उत्पन्न होगी तो वह ब्राह्मण नहीं रह जाएगा[238] और शूद्र से भिन्न कोई संतान नहीं रहने पर उसका परिवार शीघ्र नष्ट हो जाएगा[239] क्योंकि किसी ब्राह्मण के लिए उसका शूद्र बेटा जीवित रहने पर भी मुर्दे के समान है। यही कारण है कि वह पारशव कहलाता है।[240] जो व्यक्ति वृषली का अधरपान करता है उसकी साँस से दूषित बनता है और उससे पुत्र उत्पन्न करता है उसके लिए कोई प्रायश्चित नहीं हो सकता।[241] इस संदर्भ से स्पष्ट है कि यह निषेध केवल ब्राह्मण के लिए था।[242]

मनु ने पुरानी वर्णसंकर जातियों, यथा निषाद[243] पारशव उग्र अयोगव क्षत्तृ, चंडाल, पुक्कुस,[244] कुक्कुटक, श्वपाक और वेण [245] का उल्लेख किया है, जिनके बारे में कहा जाता है कि उनकी उत्पत्ति वर्णों के अंतर्मिश्रण से हुई है। उन्होंने इस तरह उत्पन्न नई जातियों की एक लंबी सूची दी है। ब्राह्मण— उग्र की बेटी से आवृत अम्बष्ट की बेटी से आभीर और आयोगव जाति की स्त्री से धिग्वण को उत्पन्न करता है।[246] इतना ही नहीं आयोगव महिला से दस्यु द्वारा सैरंध्र वैदेहक द्वारा मैत्रेयक और निषाद द्वारा मार्गव या दाश उत्पन्न होता है जो कैवर्त भी कहलाता है।[247] चंडाल वैदेहक महिला से पांडुसोपाक

को और निषाद आहिंडक को जन्म देता है।[248] वैदेहक जाति की स्त्री से निषाद कारावर उत्पन्न करता है और वैदेहक कारावर स्त्री से अध्र को तथा निषाद स्त्री से मेद को जन्म देता है।[249] निषाद स्त्री चडाल से जो पुत्र उत्पन्न करती है वह अत्यावसायिन् कहलाता है जिसे वे लोग भी घृणा की दृष्टि से देखते हैं, क्योंकि वह चातुर्वर्ण्य पद्धति से बाहर (बाह्य) है।[250] मनु यह भी बताते हैं कि सूत वैदेहक चडाल, मागध, क्षत्तृ और आयोगव इन्हीं जातियों की स्त्री से ऐसी सतान उत्पन्न करते हैं जो और भी अधिक हेय तथा अपने पिता से भी अधिक अधम समझी जाती है, और उसे वर्णव्यवस्था से बाहर रखा जाता है।[251] उनका यह भी कहना है कि बाह्य और हीन (निम्न वर्ग के लोग) उच्च जातियों की महिलाओं से पद्रह प्रकार की नीच जातियाँ उत्पन्न करते हैं।[252] मनु ने इन जातियों का नाम नहीं गिनाया है, लेकिन जान पड़ता है कि वे ऊपर दी गई सूची के ही अतर्गत हैं।

उपर्युक्त जातियों में उनके व्यवसायों के आधार पर अतर किया जाता था।[253] चडाल, श्वपाक और अत्यावसायिन् अपराधियों को फाँसी देने का काम करते थे और उन्हें अपराधियों के वस्त्र बिछावन और आभूषण दे दिए जाते थे।[254] निषाद मछली पकड़कर अपना निर्वाह करते थे और मेद, अध्र मद्गु और चुचु का काम जगली जानवरों का शिकार करना था।[255] क्षत्तृ, उग्र और पुक्कुर विवर में रहनेवाले जतुओं को पकडने और मारनेवाले बताए गए हैं।[256] स्पष्ट है कि ये सभी लोग पिछड़ी जातियों के थे जो ब्राह्मणप्रधान समाज में मिला लिए जाने पर भी अपना व्यवसाय करते रहे। मनु बताते हैं कि कुछ सकर जातियों ने महत्वपूर्ण शिल्पों को अपनाया। आयोगव ने लकड़ी का काम शुरू किया[257] और धिग्वण तथा कारावर ने चमड़े का[258] एव पाडुसोपाक ने बेंत के कार्य का पेशा अपनाया।[259] मार्गव या दाश नाविक के पेशे द्वारा जीविका अर्जित करते थे और आर्यावर्त के निवासी उन्हें कैवर्त कहते थे।[260] वेण ढोल पीटनेवाले थे,[261] और सैरध्र को शृगार तथा अपने मालिक की सुश्रूषा में निपुण समझा जाता था। सैरध्र यद्यपि गुलाम नही थे फिर भी वे गुलाम की भाँति ही रहते थे अथवा जानवरों को फँसाकर गुजर बसर करते थे।[262] मैत्रेयक के बारे में कहा गया है कि वह सुरीली आवाजवाला था और सुबह होने पर घटी बजाता था तथा महापुरुषों के प्रशस्तिगान में लगा रहता था।[263]

उपर्युक्त ढग की कुछ नीच जातियों का उल्लेख एक बौद्ध ग्रथ में भी हुआ है। कहा गया है कि बुद्ध या बोधिसत्त के अनुयायियों का चडालों, कौकुटिकों (मुर्गीपालकों) सकरियों (सूअर वधिकों) शौंडिकों (मदिरा विक्रेताओं),[264] मासिकसों (कसाइयों) मौष्टिकों (मुक्केबाजों) नट नर्तकों (अभिनेताओं और नर्तकों) झल्लों और मल्लों (कुश्तीबाजों) से कोई ताल्लुक नहीं रहेगा।[265] बौद्ध धर्मावलबी इन लोगों से घृणा करते थे क्योंकि वे

निर्दयी और अनैतिक कार्य करनेवालों के साथ रहते थे।

अधिकाश सकर जातियाँ, जिनका उल्लेख मनु ने किया है, अछूत थीं। निषादों, आयोगवों, मेदों, अध्रों, चुचुओं, मद्गुओं, क्षत्राओं, पुक्कसों, धिग्वर्णो और वेणों के कृत्यों का उल्लेख करके मनु ने कहा है कि उन्हें गाँवों के बाहर बड़े बड़े वृक्षों, चैत्यों (कब्रगाहों) श्मशानों अथवा पहाड़ों और उपवनों में बसना चाहिए।[266] इससे पता चलता है कि ये जातियाँ ब्राह्मणों की बस्ती से बाहर रहती थीं। चडाल और श्वपाक तो अवश्य ही गाँव से बाहर रहते थे। जिस पात्र में उन्हें भोजन कराया जाता था उसे सदा के लिए फेंक दिया जाता था। उनकी सपत्ति मात्र कुत्ते और गदहे थे, वे टूटी फूटी थालियों में खाना खाते थे, लोहे के गहने पहनते थे और मृत व्यक्तियों के कपड़े धारण करते थे तथा एक जगह से दूसरी जगह घूमते रहते थे।[267] उन्हें रात को शहरों और गाँवों में आने की अनुमति नहीं थी। यहाँ वे दिन में ही काम कर सकते थे।[268] मनु ने बताया है कि चडालों और श्वपाकों को पहचान के लिए राजशासन द्वारा निर्धारित चिह्न धारण करना चाहिए।[269] राघवानद की इस व्याख्या के समर्थन में तत्कालीन कोई प्रमाण नही मिलता कि चडालों के ललाट या किसी अन्य अग पर कोई चिह्न दाग दिया जाए। प्राय चडालों और श्वपाकों को कहा गया था कि वे कुछ खास ढग की पोशाक पहनें ताकि अन्य लोगों से उनमें स्पष्ट अतर रहे।[270] वे विवाह में ऋण, उधार आदि का व्यवहार अपनी जाति के लोगों को छोड दूसरों के साथ नहीं कर सकते थे। मनु का आदेश है कि उच्च वर्णों के लोग इन्हें अपने हाथ से अन्न भी नही दें।[271]

किंतु मनु विशेषतया यह चाहते है कि ब्राह्मणों और अछूतों के बीच कोई सपर्क ही नही रहे। उन्होंने विहित किया है कि स्नातक को (जो सामान्यतया ब्राह्मण होता है) चडालों, पुक्कसों अत्यों और अत्यावसायिनों के साथ नही रहना चाहिए।[272] श्राद्धकर्म करते समय ब्राह्मण पर जिनकी दृष्टि नहीं पडनी चाहिए वे हैं चडाल ग्रामसूअर मुर्गा कुत्ता आदि।[273] मनु ने यहाँ तक कहा है कि यदि कोई ब्राह्मण किसी चडाल या अत्य महिला का समागम करे या उसका अन्न ग्रहण करे तो वह ब्राह्मणत्व खो देगा। किंतु यदि यह जान-बूझकर ऐसा करे तो वह भी चडाल या अत्य की स्थिति प्राप्त करेगा।[274] इससे यह अर्थ निकलता है कि ब्राह्मणेतर जातियों और चडालों के बीच ऐसे सबध को निंदनीय नही माना जाता था।

मनु अस्पृश्यों और सकर जातियों को शूद्र मानते थे या नहीं यह स्पष्ट नहीं होता। उन्होंने खुलेआम कहा है कि वर्ण चार हैं।[275] इससे यह निष्कर्ष निकल सकता है कि सकर जातियों को शूद्र वर्ण में शामिल कर लिया गया था। उनकी उत्पत्ति सबधी कथाओं से पता चलता है कि लोगों में ऐसी धारणा थी कि उनकी धमनियों में शूद्र का रक्त है।

मनुस्मृति में एक स्थल पर कुल्लूक ने अत्यज को शूद्र के रूप में चित्रित किया है ।[276] किंतु मनु ने 'अत्यज' शब्द का प्रयोग चडाल के अर्थ में किया है ।[277] सूत, वैदेहक, चडाल, मागध, क्षतृ और आयोगव जैसी मिश्रित जातियाँ 'बाह्य' समझी जाती हैं, जिन्हें टीकाकारों ने चातुर्वर्ण्य से बाहर का माना है ।[278] मनु ने परस्त्रीगमन के अपराध का दड विहित करते हुए शूद्र और *अत्यज* में[279] तथा *साक्ष्य-विधि* में *अत्यावसायिन्* और शूद्र में विभेद किया है। किंतु पतजलि ने निरवसित शूद्र को चडाल और मृतप बताया है तथा उच्च वर्णों के लिए उसके भोजन पात्र का उपयोग वर्जित माना है ।[280] इससे पता चलता है कि ये अछूत शूद्र समझे जाते थे । मनु ने इन शूद्रों के लिए 'अपपात्र' (अर्थात वे लोग जिनके पात्र का व्यवहार नहीं किया जा सकता) शब्द का प्रयोग किया है ।[281] इस तरह मालूम होता है कि सकर जातियों और अछूतों को हीन शूद्रों की कोटि में रखा जाता था और उनके अलग निवास पिछड़ी सस्कृति और प्राचीन धार्मिक सप्रदाय के आधार पर साधारण शूद्रों से उनमें विभेद किया जाता था ।

मनु ने शूद्रों के अन्न, उनकी सगत और उनकी महिलाओं के बहिष्कार के बारे में जो नियम बनाए हैं, वे मुख्यतया ब्राह्मणों पर लागू हैं ।[282] पतजलि के *महाभाष्य* में हमें ब्राह्मण और वृषल के बीच इसी प्रकार का सामाजिक विभेद देखने में आता है । ब्राह्मणों के दाँत उजले हैं तो वृषल के काले [283] ब्राह्मण को ऊँचा स्थान मिलता है तो वृषल को नीचा।[284] कोई व्यक्ति वृषल और दासी के साथ अवैध और कुत्सित कर्म कर सकता है किंतु उसे ब्राह्मणी के साथ भद्रतापूर्ण बर्ताव करना होगा ।[285]

भडारकर का कहना है कि वृषलों का समुदाय ऐसा था जिसमें आर्यसमुदाय के ढाँचे पर चारों वर्णों के लोग सम्मिलित थे ।[286] किंतु साधारणतया वृषल शूद्र के समान थे । इसलिए जहाँ धर्मसूत्रों में स्नातक से कहा गया है कि शूद्रों के साथ यात्रा नहीं करे, वहाँ मनु उसे बताते हैं कि वृषलों के साथ यात्रा नहीं करे ।[287] उन्होंने ब्राह्मण और वृषली के बीच सपर्क की भर्त्सना उस प्रसग में की है जहाँ उन्होंने ब्राह्मण और शूद्र के बीच सभी सपर्कों पर रोक लगाई है ।[288] यद्यपि *महाभाष्य* में कहीं भी वृषल शब्द शूद्र का स्पष्ट सकेत नहीं देता,[289] फिर भी वृषली और दासी की समान हैसियत [290] और वृषल की सर्वविदित दरिद्रता से पता चलता है कि वृषल की स्थिति शूद्र से अच्छी नहीं थी ।[291] शूद्र' शब्द की तरह 'वृषल शब्द का भी प्रयोग व्यापक अर्थ में बर्बर और अपधर्मी दोनों को समाविष्ट करते हुए किया जाता था । किंतु आमतौर पर वृषल को चतुर्थ वर्ण का सदस्य बताया गया है और यही कारण है कि *महाभाष्य* में ब्राह्मण और वृषल के बीच जो विषमता दिखाई गई है, वही विषमता ब्राह्मण और शूद्र में भी मानी जानी चाहिए ।

मनु ने पुरानी निषेधाज्ञा की पुनरावृत्ति की है जिसके अनुसार वेद का अध्ययन द्विज

तक ही सीमित था।[292] इसकी तुलना में शूद्रों को 'एकजाति' अर्थात एक बार जन्म लेनेवाला कहा गया है।[293] आर्य का पहला जन्म अपनी माँ से होता है किंतु दूसरा जन्म मूँज के मेखलासूत्रबंधन से होता है।[294] इसलिए कोई द्विज, जो वेद न पढ़कर दूसरे व्यवसायों में लग जाता है वह शूद्र समझा जाता है और उसकी संतान की भी वही गति होती है।[295] जब वेद की पढ़ाई हो रही हो, तब वहाँ शूद्र को कभी नहीं रहने देना चाहिए।[296]

इस नियम के होते हुए भी, सुनने में आता है कि कुछ अध्यापक शूद्र को पढ़ाते थे। मनु ने विधान किया है कि शूद्र को पढ़ानेवाले या शूद्र से पढ़नेवाले ब्राह्मण को श्राद्ध में आमंत्रित नहीं किया जाना चाहिए।[297] यह स्पष्ट नहीं है कि शूद्र शिक्षक या छात्र अपधर्मी समझे जाते थे। अध्यापक से जिन दस प्रकार के लोगों को शिक्षा मिल सकती थी, उनमें शुश्रूषु का नाम आया है जिसका अर्थ कुल्लूक ने नौकर (परिचारक) किया है[298] और इससे संभवतया शूद्र का निर्देश होता है।

किंतु साधारणतया ऐसा जान पड़ता है कि शूद्रों को शिक्षा से वंचित रखा गया था। वसिष्ठ की भाँति मनु ने भी आदेश दिया है कि कोई भी व्यक्ति शूद्र को परामर्श नहीं दे और न उसे कानून की व्याख्या करके समझाए।[299] इस उपबंध को उन्होंने यह नियम बनाकर सबल कर दिया है कि जो कोई इसके प्रतिकूल कार्य करेगा वह उस व्यक्ति के साथ ही असंवृत नरक में जाएगा, जिसे उसने शिक्षा दी है।[300]

धर्म के क्षेत्र में शूद्र वैदिक यज्ञ के अधिकार से वंचित ही रहे।[301] कहा जाता है कि शूद्र जातिच्युत नहीं हो सकता वह संस्कार पाने योग्य नहीं है और उसे आर्यों के धर्म का अनुसरण करने का कोई अधिकार नहीं है।[302] द्विज को चाहिए कि धार्मिक अनुष्ठानों में *अपनी शूद्र पत्नी को शरीक न करे।*[303] यदि वह मूढ़तावश ऐसा करेगा तो उसे चंडाल की भाँति घृणित समझा जाएगा।[304] संभवतया यह नियम ब्राह्मणों से संबंधित है। यह भी विहित किया गया है कि ब्राह्मण यज्ञ के लिए अपेक्षित किसी भी वस्तु की याचना शूद्र से न करे। यदि वह ऐसा करेगा *तो अगले जन्म में चंडाल होगा।*[305]

किंतु ब्राह्मणों का एक वर्ग ऐसा भी था जो शूद्रों के धार्मिक अनुष्ठान में सहायक का काम करता था। मनु के कथनानुसार जो ब्राह्मण शूद्र से धन लेकर अग्निहोत्र करें उन्हें ब्रह्मवादिन् (वेदपाठी) शूद्रों के ऋत्विज् कहकर निंदित करते हैं और अज्ञानी मानते हैं।[306] *मनुस्मृति* के एक परिच्छेद की टीका करते हुए कुल्लूक ने बताया है कि शूद्र छोटे-मोटे घरेलू यज्ञ (पाकयज्ञ) कर सकते हैं।[307] हमें भास से ज्ञात होता है कि देवताओं की पूजा शूद्र बिना मंत्रों के ही करते थे।[308] मनु कहते हैं कि यदि गुणी शूद्र भद्रजनों जैसे आचरण करें तो वे प्रशंसा के पात्र हैं, किंतु उन्हें वेदों का पाठ किए बिना ही ऐसा करना चाहिए।[309]

उन्होंने यह नियम भी बनाया है कि शूद्र तीन उच्च वर्णों की तरह अपने पूर्वजों का तर्पण कर सकते हैं। इस प्रसग में उन्होंने कहा है कि सुकालिनू शूद्रों के पितर हैं और वसिष्ठ उनके पूर्वज हैं।[310] इन तथ्यों से पता चलता है कि मनु ने शूद्रों को कुछ धार्मिक अधिकार दिए हैं जो उन्हें मौर्य या मौर्यपूर्व काल में प्राप्त नहीं थे।

मनु ने चारों वर्णों के लिए एक ही आचार सहिता विहित की है। उन्हें अहिंसा और सत्य का पालन करना चाहिए, चोरी नहीं करनी चाहिए, पवित्र रहना चाहिए, इच्छाओं का दमन करना चाहिए, ईर्ष्या द्वेष से बचना चाहिए और केवल अपनी पत्नियों से सतान उत्पन्न करना चाहिए।[311] किंतु धार्मिक दृष्टि से वे स्त्रियों और शूद्रों को समाज का अत्यत अपवित्र अग मानते हैं। चाद्रायण व्रत करनेवालों को इनका बहिष्कार करना चाहिए।[312] उन्होंने इन लोगों के शुद्धिकरण के लिए कम कठिन धार्मिक सस्कार विहित किए हैं।[313] शूद्र को महीने में एक बार बाल मुँडवाकर अपने आपको शुद्ध रखना चाहिए और घर में जन्म और मृत्यु होने की दशा में वैश्यों की भाँति शुद्धिकरण सस्कार का पालन करना चाहिए।[314] किंतु उन्होंने प्राचीन विधिनिर्माताओं के इस विचार का समर्थन किया है कि वैश्य की अशौच अवधि 15 दिन की और शूद्र की एक महीने की होगी।[315] उन्होंने यह भी बताया है कि अशौच की अवधि के अत में ब्राह्मण पानी का स्पर्श करके क्षत्रिय अपनी सवारी के पशु और अस्त्रों को छूकर वैश्य अपना अकुश या अपने बैलों की नाथ (नाक में लगी रस्सी) छूकर तथा शूद्र अपनी लाठी छूकर पवित्र हो सकता है।[316] मनु ने यह नियम भी बनाया है कि ब्राह्मण के शव को शूद्र नहीं ढोएगा, क्योंकि शवरूप में भी शूद्र के स्पर्श से दूषित हो जाने पर उसे स्वर्ग प्राप्ति नहीं हो सकती।[317] इस प्रकार वे ब्राह्मण और शूद्र में मरने के बाद भी विभेद करना नहीं छोड़ते।

यदि पुराणों में आए कलियुग के वर्णन को मौर्योत्तर काल में प्रचलित स्थितियों का कुछ सकेत देनेवाला माना जाए,[318] तो यह स्पष्ट होगा कि शूद्र खुलेआम वर्तमान सामाजिक व्यवस्था की अवहेलना करते थे। शूद्रों की ज्यादती का वर्णन *कूर्मपुराण* में किया गया है राजा के मूढ शूद्र अधिकारी ब्राह्मणों को अपना स्थान छोड़ने के लिए बाध्य करते हैं और उन्हें पीटते हैं। राजा बदलती हुई परिस्थितियों के कारण कलियुग में ब्राह्मण का अनादर करते हैं और ब्राह्मणों के बीच शूद्र उच्च पदों पर आसीन होते हैं। ब्राह्मण जिन्होंने वेद का अल्प अध्ययन किया है और जो कम भाग्यशाली और शक्तिशाली हैं फूलों अलकरणों और अन्य मागलिक वस्तुओं से शूद्रों का सम्मान करते हैं। इस प्रकार सम्मानित किए जाने पर भी शूद्र ब्राह्मणों की ओर देखता तक नहीं है। ब्राह्मण शूद्रों के घरों में प्रवेश करने का साहस नहीं करता और उनका अभिवादन करने का अवसर पाने के लिए उनके दरवाजे पर खड़ा रहता है। ब्राह्मण जो अपने जीवनयापन के लिए शूद्र पर निर्भर रहते हैं, उनकी सवारी के

चारों ओर इस उद्देश्य से खड़े रहते हैं कि उनका गुण बखान कर सकें और उन्हें वेद पढ़ा सकें।[319] कुछ इस तरह का ही वर्णन *मत्स्यपुराण* में भी है और यह भविष्यवाणी की गई है कि श्रुति और स्मृति का धर्म बहुत शिथिल हो जाएगा और वर्णाश्रम धर्म नष्ट हो जाएगा। इसमें यह क्षोभ भी प्रकट किया गया है कि लोग वर्णसंकर होंगे, शूद्र ब्राह्मणों के साथ बैठेंगे, खाएँगे और उनके साथ यज्ञादि करेंगे तथा मंत्रोच्चार भी करेंगे।[320] *वायुपुराण* और *ब्रह्मांडपुराण* में कहा गया है कि कलियुग में शूद्र ब्राह्मणों जैसा और ब्राह्मण शूद्रों जैसा कर्म करते हैं। इन पुराणों से पता चलता है कि शूद्र का सब आदर करते हैं और राजा का आश्रय छूट जाने के कारण ब्राह्मणों को अपनी जीविका के लिए शूद्रों का भरोसा करना पड़ता है।[321]

संभवतया उपर्युक्त विवरण मौर्योत्तरकालीन परिस्थितियों का निर्देश करते हैं। ऐसा नहीं मालूम होता कि वे अशोक के राज्यकाल पर लागू हैं, क्योंकि अशोक को बौद्ध धर्मावलंबी होने पर भी ब्राह्मणों के प्रति अनुदार नहीं बताया जा सकता, जैसा कि पुराणों में कहा गया है। यद्यपि *कूर्मपुराण* में कलियुग के वर्णन का समावेश ई. सन 700-800 में *किया हुआ बताया जाता है,*[322] *फिर भी इससे पहले के मौर्योत्तर काल का संकेत मिलता* है। इस वर्णन के कुछ परिच्छेद बिल्कुल वही हैं जो उससे पहले के *वायु* और *ब्रह्मांडपुराण* में पाए जाते हैं।[323] ई. सन की पाँचवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध के एक उत्कीर्ण लेख में पल्लव शासक सिंहवर्मन् के बारे में कहा गया है कि वह कलियुग के पापों से धर्म को बचाने के लिए सतत उद्यत रहता है।[324] इसके आधार पर कहा जा सकता है कि कलियुग की कल्पना बहुत पुरानी नहीं है।[325] *जैसा पहले बताया जा चुका है म्लेच्छों का उल्लेख और कलियुग* के विवरण में निर्दिष्ट विभिन्न लोगों के अंतर्मिश्रण मौर्योत्तर काल की परिस्थितियों के बहुत अनुकूल हैं। पुराणों में कही गई बात कि विदेशी शासक ब्राह्मणों को जान से मार डालेंगे और दूसरों की पत्नी तथा संपत्ति का अपहरण कर लेंगे, सामान्यतया इस काल में लागू होती है[326] और यह *युगपुराण* में वर्णित ऐसे ही आरोपों के अनुरूप है।[327]

कलियुग के वर्णन को जो ब्राह्मणों द्वारा शिकायत और भविष्यवाणी के रूप में किया गया है, केवल कपोलकल्पना कहकर टाला नहीं जा सकता।[328] उससे ब्राह्मणों की उस दयनीय स्थिति का आभास मिलता है, जो ग्रीकों, शकों और कुषाणों के कार्यकलापों का परिणाम थी। संभव है उनके आक्रमणों के कारण शूद्रों की स्थिति में परिवर्तन हुआ हो और वे उठ खड़े हुए हों। उनमें पहले ही से असंतोष उबल रहा था। स्वभावतया वे ब्राह्मणों के दुश्मन हो गए, क्योंकि उन्होंने उनके प्रति विभेदमूलक नियम बनाए थे। यह सामाजिक उथल-पुथल कब तक और देश के किस भाग में होती रही, इसका निर्धारण करना आँकड़ों के अभाव में कठिन है। किंतु जान पड़ता है कि अपधर्मी शूद्र राजाओं के प्रति ब्राह्मणों के

बैरभाव का कारण यह था कि ये राजा शूद्रों से भाईचारे का व्यवहार रखते थे। दास और भाड़े के मजदूर के रूप में शूद्रों की पराधीनता शक और कुषाण शासकों की विदेश नीति से कम हुई होगी, क्योंकि वे वर्णों में विभाजित समाज का आदर्श निभाने के लिए बाध्य नहीं थे।

मौर्योत्तर काल में समाज की स्थिति संभवतया वैसी ही थी जैसी मिस्र में पुराने साम्राज्य के पतन के बाद थी। इस काल में कुछ दिनों तक आम जनता पुरोहितों और अभिजातों से लड़ती रही और सुस्थापित व्यवस्था पर चोट करती रही। मनु के नियम मौर्य साम्राज्य का पतन होने पर सामने आनेवाले विघटनकारी तत्त्वों से निपटने के लिए बनाए गए थे न कि अशोक के कार्यों को प्रभावशून्य बनाने के लिए। शूद्रों को गुलाम बनाकर रखने पर जो उन्होंने जोर दिया है उसकी आवश्यकता इसलिए हुई कि वे काम करने से इंकार करते थे। उन्होंने राजा को आदेश दिया है कि वह वैश्य और शूद्र को अपना-अपना कर्म करने के लिए बाध्य करे,[329] जिससे प्रकट होता है कि सामान्य जन को दो उच्च वर्णों के साथ अपना हित जुड़ा हुआ नहीं दिखाई देता था। मनु का कथन है कि राजा को वर्ण-धर्म कायम रखना चाहिए, क्योंकि जो राज्य वर्णों के अंतर्मिश्रण से दूषित होता है, वह अपने निवासियों सहित विनष्ट हो जाता है [330] अर्थात सुस्थापित व्यवस्था नष्ट हो जाती है। ये आदेश सामान्यतया ई सन की तीसरी शताब्दी में रोम साम्राज्य द्वारा जारी किए गए आदेशों के समान थे, जिनमें विभिन्न व्यवसाय के लोगों को अपने-अपने व्यवसायों से लगे रहने को कहा गया है। किंतु मनु ने कुछ धार्मिक अनुशास्ति और दंड का भी विधान किया है। शूद्र यदि अपना कर्तव्य नहीं करेगा तो उसका जन्म चैलाशक (कीट-पतंग खाकर रहनेवाले पिशाच) के रूप में होगा,[331] और यदि वह निष्ठापूर्वक अपना कर्तव्य निभाएगा तो अगले जन्म में उच्च वर्ण में पैदा होगा।[332]

मनु ने शूद्रों के शत्रुवत व्यवहार से बचने के बहुत से उपाय बताए हैं। कौटिल्य के विपरीत उन्होंने विहित किया है कि राजा को ऐसे देश में बसना चाहिए जहाँ के निवासी मुख्यतया आर्य हों[333] क्योंकि जिस राज्य में शूद्रों का बहुमत होगा (शूद्र भूयिष्ठ), वह तुरत नष्ट हो जाएगा।[334] मनु ने राज्य के संरक्षण का भार उन लोगों तक ही सीमित रखा है जो आर्यों की तरह रहते हैं।[335] उन्होंने यह भी बताया है कि जो आर्येतर व्यक्ति (अर्थात शूद्र) आर्यों के चिह्न धारण करते हों, उन्हें काँटा समझकर तुरत हटा देना चाहिए।[336] संकर जातियों (अधिकतर शूद्रों) को खास तौर से आर्यों से भिन्न माना जाता था और वे निर्दयी तथा उग्र स्वभाव के होते थे।[337] मनु के ये सभी कथन शूद्रों के प्रति उनके पूर्ण अविश्वास और तज्जन्य शूद्रों के शत्रुवत व्यवहार (जो विदेशी आक्रमण के समय विशेषतया देखने में आता था या जिसकी उस वक्त खासतौर पर आशंका रहती थी) से बचने की

चिंता के अनुरूप ही हैं। मनु ने जब यह कहा है कि यदि क्रांति के फलस्वरूप तीन उच्च वर्णों को अपना कर्तव्य करने में बाधा उपस्थित हो तो उन्हें शस्त्र ग्रहण करना चाहिए, तब उनके मन में संभवतया ऐसी स्थिति की कल्पना रही होगी।[338] कलियुग के अंत में विद्यमान परिस्थितियों के वर्णन के प्रसंग में *वायुपुराण* के अंतर्गत प्रमिति (माधव के अवतार) के कामों की चर्चा की गई है, जिसने ब्राह्मणों की सशस्त्र सेना बनाई और अनेक प्रकार के लोगों, यथा म्लेच्छ तथा वृषल, का विनाश करने के लिए प्रस्थान किया।[339] यह एक ओर ब्राह्मणों और दूसरी ओर शूद्रों तथा विदेशी शासकों के बीच हुए भीषण संघर्ष का हल्का संकेत है। यह स्वाभाविक ही है, क्योंकि वृषल सुस्थापित व्यवस्था को तोड़नेवाले माने जाते थे, रक्षा करनेवाले नहीं।[340] मनु ने ब्राह्मणों के प्रति अपराध करनेवाले शूद्रों के लिए दंड का जो वृहत विधान किया है उसका मुख्य कारण यह कहा गया है कि सुशिक्षित शूद्रों के विरुद्ध उनके मन में बैर की भावना थी।[341] किंतु उन्होंने जो नियम बनाए हैं उन्हें समग्र रूप से देखने पर पता चलता है कि वे सामान्य शूद्रों के प्रति भी कम बैर भाव नहीं रखते थे।

प्राचीन काल में मुख्य विभेद शूद्र और तीन उच्च वर्णों में था। यद्यपि मनु ने भी इस विभेद को माना है फिर भी उनके ग्रंथ से प्रकट होता है कि कानूनी उपबंधों, भोजन और विवाह के मामले में वैश्यों को शूद्र के निकट लाने की प्रवृत्ति उनमें बहुत अधिक थी। इस तरह की स्थिति का कारण प्रायः यह था कि बहुत बड़ी तादाद में वैश्य शूद्र बनाए जा रहे थे। *विष्णुपुराण* में कहा गया है कि कलियुग में वैश्य कृषिकर्म और व्यापार छोड़ देंगे और दासत्व प्रथा एवं यांत्रिक शिल्पों को अपनाएँगे[342] और शूद्र जातियों का बाहुल्य होगा।[343] *मनु* के एक परिच्छेद से स्पष्ट होता है कि परंपरागत वैश्य वर्ण क्रमशः विलीन होता जा रहा था। उनके अनुसार ब्राह्मण में सत्व गुण और क्षत्रिय में रजस् गुण[344] तथा शूद्रों और म्लेच्छों में तमस् गुण होता है (मध्यमा तामसी गति) जो पूर्वजन्म के कर्म के अनुसार प्राप्त होता है।[345] इस क्रम में वैश्य की चर्चा तक नहीं हुई है। इससे संकेत मिलता है कि वैश्य शूद्र समुदाय में विलीन होते जा रहे थे।

हापकिंस ने बताया है कि मनु के कुछ नियमों से एक ओर दो उच्च वर्ण और दूसरी ओर दो नीच वर्णों के बीच दुश्मनी का आभास मिलता है।[346] इनके बीच होनेवाले संघर्ष से मालूम होता है कि उच्च वर्णों का नेतृत्व ब्राह्मण और निम्न वर्णों का नेतृत्व शूद्र कर रहे थे। पूर्वकाल में भी शूद्रों और अन्य वर्णों के बीच संघर्ष का आभास मिलता है। किंतु मौर्योत्तर काल में इस संघर्ष ने उग्र रूप धारण कर लिया। मनु के संबंध में एक रचना में बताया गया है कि भारतीय पद्धति पर निर्मित समाज में आर्थिक विषमता और वैमनस्य विरल ही संभव थे।[347] किंतु मनु के ग्रंथ में वर्णों के बीच जिस तरह का संबंध दिखाया

गया है, उससे इस तथ्य की पुष्टि नहीं होती है। मनु ने स्पष्ट शब्दों में कहा है कि शूद्र को धन इकट्ठा करने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए, क्योंकि वह ब्राह्मणों को दुख देता है।[348]

किंतु मनु के शूद्रविरोध के आधार पर यह कहना उचित नहीं होगा कि मौर्योत्तर काल में शूद्रों की स्थिति की अधिकतम अवनति हो चुकी थी। इस शूद्रविरोध को ऐसा अतिवादी उपाय मानना चाहिए जो नई शक्तियों के उद्भव से समाज के पुराने ढाँचे को टूटने से बचाने के लिए वाछनीय था। मनु के विधिग्रथ में भी शूद्रों की स्थिति में हुए उन बहुतेरे परिवर्तनों का उल्लेख किया गया है, जो ब्राह्मणों के विरुद्ध उनके सघर्ष, नए-नए लोगों के आगमन और कला एव शिल्प के विकास के परिणाम थे।

इस तथ्य के बावजूद कि मनु ने शूद्रों की दासता की बार बार चर्चा की है, वे अब उस पैमाने पर दास और मजदूर नहीं थे जिस पैमाने पर वे मौर्यपूर्व और मौर्य काल में थे। हमें किसी वैयक्तिक या राजकीय प्रक्षेत्र (फार्म) की सूचना नहीं मिलती है जिसमें दास या भाड़े के मजदूर काम करते हों। प्राय मौर्यों के राजकीय प्रक्षेत्रों में काम करनेवाले दास और भाड़े के मजदूर कर चुकानेवाले कृषक बनते जा रहे थे। मनु ही प्रथम लेखक हैं जिन्होंने स्पष्ट शब्दों में शूद्र को बटाईदार माना है[349] और यह ऐसा तथ्य है जिसका निष्कर्ष केवल कौटिल्य के *अर्थशास्त्र* से निकाला जा सकता है। *अर्थशास्त्र* में बटाईदार (अर्द्धसीतिक) को उत्पादन का केवल 1/5 या 1/4 हिस्सा दिया गया है, किंतु मनु ने उसके लिए उत्पादन का आधा भाग (अर्द्धिक) रखा है।[350] मालूम होता है कि न केवल बटाईदारों का हिस्सा बढ़ा दिया गया था, बल्कि उनकी सख्या भी बढ़ी थी। अर्थशास्त्र में वेतनभोगी अधिकारियों की व्यवस्था है, किंतु मनु ने इनके बदले अधिकारियों की एक वर्गीकृत सूची प्रस्तुत की है, जिन्हें पारिश्रमिक के रूप में जमीन दी जाती थी।[351] कृषिकर्म में लगे दासों की कोई चर्चा नहीं रहने के कारण हम यह अनुमान लगा सकते हैं कि ये भूखड बटाईदारों और भाड़े के मजदूरों द्वारा जोते जाते थे। प्राय किसी दूसरे काल में शूद्रों की सख्या इतनी अधिक नहीं बढ़ी। बहुतेरी आदिम जातियों और ब्राह्य तत्वों को मिलाने के उद्देश्य से मनु ने वर्णसकर की कल्पना से अपने पूर्ववर्ती ग्रथकारों की अपेक्षा अधिक काम लिया है। अधिकाश सकर जातियों को शूद्र जाति में मिला दिया गया जिसके लिए उनके आनुवशिक कर्तव्य आधार माने गए।[352] किंतु ऐसा नहीं मालूम होता कि जिस प्रकार पुराने शूद्र दासों और भाड़े के मजदूरों के रूप में बहाल किए जाते थे, उस प्रकार इन नए शूद्रों की बहाली होती थी। उन्होंने अपने पुराने व्यवसायों को अपनाया और सभवतया उन्हें खेती के नए तरीके सिखाए,[353] जिससे वे क्रमश करदाता किसान बने। हो सकता है मनु का दसवाँ अध्याय जिसमें वर्णसकर का विशद वर्णन है चौथी पाँचवीं शताब्दी का हो। इस प्रकार एक ओर

तो आदिम जातियाँ ब्राह्मणकालीन समाज से सभ्य जीवन का ज्ञान प्राप्त करके लाभान्वित हुईं और दूसरी ओर ब्राह्मणकालीन समाज को भी उत्पादनकर्ताओं की संख्या बढ़ाने के कारण अपनी आंतरिक कमजोरियाँ दूर करने का अवसर मिला।

शिल्पियों के नए संघ बनने और नए नए हस्तशिल्पों का उदय होने से उस काल के न केवल आर्थिक जीवन में, बल्कि शूद्रों की स्थिति में भी अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए।[354] सर्वशक्तिसंपन्न मौर्य साम्राज्य का पतन हो जाने पर इन संघों के जरिए शिल्पियों को अपेक्षाकृत अधिक स्वतंत्रता मिली, जिससे उनकी हैसियत भी कुछ बढ़ी। यह बात इन शिल्पियों द्वारा बौद्धों को दिए गए अनेकानेक दान के पुरालेखों से प्रमाणित होती है। कुछ राजाओं की आर्थिक नीति से भी शूद्रों की स्थिति सुधरने में परोक्ष रूप से सहायता पहुँची। शक राजा रुद्रदामन, जो वर्णाश्रित समाज का समर्थक था,[355] दावा करता है कि उसने अपनी प्रजा से बेगारी कराए बिना सुदर्शन झील की मरम्मत कराई।[356] यह उन शूद्र दासों और मजदूरों के लिए अवश्य ही वरदान सिद्ध हुआ होगा, जिनसे सामान्यतया कर्वी (बेगार) ली जाती थी।

नए हस्तशिल्पों और शिल्पी संघों के उदय के साहित्यिक प्रमाण को सिक्का साक्ष्य और विदेशी लेखकों की रचनाओं में वर्णित रोम तथा भारत के बीच के व्यापारसंबंध के साक्ष्य के साथ देखा जा सकता है। यह व्यापार ईस्वी सन की प्रथम दो शताब्दियों खासकर सातवाहन काल में अपने चरम उत्कर्ष पर था।[357] व्यापार के ऐसे विकास के फलस्वरूप व्यापारिक बंदरगाहों[358] और देश के भीतर के भी कुछ अन्य नगरों में जातिजन्य कटुता अवश्य घटी होगी जिससे निम्न वर्ण के लोगों की सामाजिक स्थिति में सुधार हुआ होगा।

इस काल में विदेशियों के आगमन से वर्णव्यवस्था का बंधन शिथिल पड़ा। ग्रीकों शकों और पर्थियनों की संख्या भले ही बड़ी नहीं रही हो पर कुषाणों के समय की अनेक प्राप्त वस्तुएँ, यथा सिक्के टेराकोटा (मृण्मूर्तियाँ) और मूर्तियाँ, जो संपूर्ण उत्तरी भारत में मिली हैं बताती हैं कि वे पर्याप्त संख्या में आए थे। स्वभावतया इससे तत्कालीन आबादी बिखरी होगी और नई नई बस्तियाँ बसी होंगी और इस तरह ई सन की पहली शताब्दी में लोगों में गतिशीलता आई होगी। चूँकि जातिप्रथा मुख्यतया स्थिर जीवन पर निर्भर होती है, इसलिए इन जातीय विप्लवों से उच्च वर्णों के विशेषाधिकारों की बुनियाद कमजोर हुई होगी और शूद्रों की स्थिति पर उसका अच्छा प्रभाव पड़ा होगा।

इसी प्रकार शूद्र की कानूनी और राजनीतिक स्थिति में भी हमें कुछ सुधार दिखाई पड़ते हैं। शूद्र को गाली देने के कारण ब्राह्मणों को दंडित करने का जो विधान मनु ने बनाया है वह बड़ा ही महत्वपूर्ण है,[359] क्योंकि धर्मसूत्रों के अनुसार ब्राह्मण इस कार्य के लिए दंड का भागी नहीं था। पुन गौतमी पुत्र शातकर्णि ने अवरों का समर्थन प्राप्त करने की

आवश्यकता महसूस की है,[360] जिससे पता चलता है कि ई सन की दूसरी शताब्दी में उन्हें कितना महत्व दिया जाता था।

अत में, मनु ने वसिष्ठ को शूद्र का जनक बताया है, जिससे उसकी अच्छी सामाजिक और धार्मिक स्थिति का बोध होता है।[361] शूद्रों की धार्मिक स्थिति सुधरी थी, इसका आभास इस तथ्य से भी होता है कि वे नामधेय सस्कार सपन्न कर सकते थे।[362] यह सुधार कुषाण शासकों के उदार धार्मिक दृष्टिकोण के कारण भी हुआ होगा। कट्टर ब्राह्मणवाद का समर्थक होने के बजाय वे मुख्यतया शैव और बौद्ध थे तथा निम्न वर्गों के प्रति उनका दृष्टिकोण अच्छा था। सातवाहन के राज्यों में भी ऐसी ही बातें हुई होंगी, जहाँ ई सन की पहली और दूसरी शताब्दियों में निस्संदेह बौद्ध धर्म का बडा महत्वपूर्ण प्रभाव था।

शूद्र की स्थिति में परिवर्तन के इन लक्षणों से हम यह अनुमान लगा सकते हैं कि जिस पुराने समाज ने उन पर अनेकानेक अशक्तताएँ लादकर उन्हें गुलाम बना रखा था, वह विलीन होने लगा था और उसकी जगह ऐसा नया समाज पनप रहा था जिसने उन्हें बेहतर स्थान दिया था। परिवर्तन की इस प्रक्रिया को गुप्तकाल में और अधिक बढावा मिला। 'युगात' शब्द के बार-बार प्रयोग से उन मूल्यों के विनाश का सकेत मिलता है जो प्राचीन समाज के आधार थे। इस प्रकार जन्म को वर्णाश्रम का आधार मानने की बात कुछ दिनों के लिए क्षीण हो गई। विदेशी आक्रमणकारियों के आचरण का वर्णन प्रस्तुत करते हुए *विष्णुपुराण* में भविष्यवाणी की गई है कि इन विदेशी शासकों के समय में लोगों को धन के ही आधार पर ओहदा मिलेगा, सपत्ति ही धर्म का साधन बनेगी और दान ही धर्म का मूल होगा।[363]

सदर्भ

1 बुलर 'सेक्रेड बुक्स ऑफ दि ईस्ट' XXV प्रस्तावना पृ CXIV-CXVIII तुलनीय जायसवाल मनु ऐंड याज्ञवल्क्य' पृ 25 32, काणे 'हिस्ट्री ऑफ धर्मशास्त्र' II पृ XI केतकर का यह तर्क कि यह रचना ई पृ 272 320 (हिस्ट्री ऑफ कास्ट पृ 66) की है युक्तिसगत नहीं लगता
2. मनु, II 17
3 वही II 19
4 ओल्डटेनबर्ग हापकिंस रिलेशन ऑफ फोर कास्ट्स [illegible] मनु में उद्धृत पृ 4-5
5 मजुमदार और पुसलकर दि एज ऑफ इंपीरियल यूनिटी पृ 261 भास को ई पृ पाँचवीं या चौथी शताब्दी का मानने का अतिवादी विचार सामान्यतया स्वीकार नहीं किया जाता है भास को स्थिति ई पृ दूसरी या तीसरी शताब्दी रखी जा सकती है

6 एच कर्न 'सेक्रेड बुक्स ऑफ ■ ईस्ट XXI प्रस्तावना पृ XXI चूँकि सद्धर्मपुण्डरीक का चीनी भाषा में अनुवाद सबसे पहले ई सन की तीसरी शताब्दी में हुआ अत मूल रचना ई सन की दूसरी या पहली शताब्दी की भी कही जा सकती है एन दत्त सद्धर्मपुण्डरीक प्रस्तावना पृ XVII

7 जैन लाइफ ऐज डिपिक्टेड इन दि जैन कैनन्स, पृ 38 इस पुस्तक में शकों यवनों पह्लवों पह्नवों आदि ■ उल्लेख हुआ है (I 58) जिससे मालूम पड़ता है कि यह ग्रंथ मौर्योत्तर काल की रचना है

8 हाजरा स्टडीज इन ■ पुराणिक रेकर्ड्स आन हिंदू राइट्स ऐंड कस्टम्स पृ 208 10

9 मनु, VII 13 30

10 वही I 91

11 वही VIII 410

12 वही X 123 तुलनीय IX.334

13 वही X 121 2 धर्मिनं वाप्युपराध्य वैश्य शूद्रो जिजीविषेत्

14 हापकिंस दि म्युचुअल रिलेशंस आफ ■ फोर कास्ट्स एकार्डिंग ■ मानव धर्मशास्त्र पृ 83

15 मनु, VIII 418

16 युग पुराण पृ 167

17 कुल्लूक ने मनु, VII 154 में आए 'पञ्चवर्गम्' शब्द ■ अर्थ पाँच प्रकार का गुप्तचर किया है जिसके अंतर्गत 'कर्षक क्षीणवृत्ति और वाणिजक क्षीणवृत्ति भी हैं हापकिंस पूर्व निर्दिष्ट पृ 69 हापकिंस ने इस शब्द का अर्थ मन्त्री साम्राज्य नगर संपत्ति और सेना किया है किंतु पंचवर्ग को राज्य के पाँच तत्व मानना जो सामान्यतया सात माने जाते हैं उचित नहीं जँचता

18 मनु, II.24

19 वही X 98

20 मिलिंद पृ 178 अवसेसान पुथुवेस्सुद्दानं कसिवणिज्जा गोरक्खा करणीया

21 मनु, VII 138

22 वही X 120

23 मनु की टीका X 120 न तु तेभ्य आपद्यपि करो ग्राह्य

24 मिलिंद पृ 147

25 मनुस्मृति की टीका VII 154 हापकिंस पूर्व निर्दिष्ट पृ 70-71 हापकिंस की राय है कि अष्टविधम् कर्म हमें राज्य के सात तत्वों की याद दिलाता है किंतु अष्टविध कर्म और सप्तांग में कोई साम्य नहीं है

26 महावस्तु, I पृ 301

27 महाभाष्य II पृ 33

28 मनुस्मृति VIII 243 भृत्यानामज्ञानात्स्वैत्रिकस्य तु

29 वही IX 150

30 वही X 99 और 100

31 लूडर्स लिस्ट स 53 54 68 76 95 331 345 381 495 857 986 1006 1032 1051 1061 1177 1203-4 1210 1230 1273 1298 तुलनीय (इंडियन कल्चर कलकत्ता XII) पृ ■ 85

32. वही स 32, 53-4 345 857 1005 1092 1129
33 धर्मकोश I भाग III पृ 1927 व्याख्यासग्रह स्तेयप्रकरण पृ 1727 8
34 महाभाष्य I पृ 19
35 लूडर्स लिस्ट स 346
36 महावस्तु, II पृ 463 78
37 वही III पृ 442 एव आगे
38 वही II पृ 463 78 और III पृ 442 एव आगे के आधार पर सगणित इनमें से बहुत से कारीगर छोटे मोटे व्यापारी थे
39 (इंडियन कल्चर कलकत्ता XIV) पृ 31 32.
40 'पतजलि ऑन पाणिनीज ग्रामर ' II 1 1
41 महावस्तु, III पृ 442 3
42 वही
43 मिलिंद पृ 331
44 पन्नवणा I 61
45 दीघ निकाय I, 50
46 मिलिंद पृ 331 सुवन्न, सज्झ सीस तिपु, लोह वट्ट अय मणिकार
47 पन्नवणा I 61
48 मिलिंद पृ 331
49 'पतजलि आन पाणिनीज ग्रामर I 4 54
50 'पतजलि आन पाणिनीज ग्रामर III 1 26 तथा यदे तदास कर्मकरं नामेतेपि स्वभृत्यर्थमेव प्रवर्तन्ते भक्त चेलम् च लप्स्यामहे
51 वसिष्ठ धर्मसूत्र II 49 में आया इसी प्रकार का एक नियम बाद में अतर्विष्ट किया गया मालूम पड़ता है क्योंकि यह अन्य तीन धर्मसूत्रों में नहीं मिलता है
52. मनुस्मृति VIII 142 विष्णु के समानातर अनुच्छेद (VI 2) की जो टीका कृष्णपंडित तथा अन्य टीकाकारों ने की है उसके अनुसार तथा मनुस्मृति और अन्य स्मृतियों के अनुसार यह नियम वैसे ही ऋणो पर लागू होता है जिनके लिए कोई प्रतिभूति नहीं दी जाती थी बुहलर पूर्व निर्दिष्ट XIV पृ 15
53 लूडर्स लिस्ट, स 1133
54 के वी रगस्वामी अय्यगर आस्पेक्ट्स ऑफ दि पॉलिटिकल ऐंड सोशल सिस्टम ऑफ मनु पृ 148
55 मनुस्मृति X 129
56 के वी रगस्वामी अय्यगर धर्मशास्त्र पृ 120
57 केतकर 'हिस्ट्री ऑफ कास्ट' पृ 98
58 मनुस्मृति IX 157
59 वही XI 34
60 वही, VIII 179
61 लूडर्स लिस्ट स 1137
62. वही, स 1133
63 (एपिग्राफिया इंडिका कलकत्ता और दिल्ली XXI) इसक्रिप्शन न 10 प्रमुख शब्द है 'कम्मिकस देय' वही पक्ति 12.

64 मनुस्मृति VIII 417
65 जायसवाल 'मनु ऐंड याज्ञवल्क्य पृ 171
66 मनुस्मृति XI 18
67 वही XI 13
68 वही VIII 231
69 कौटिल्य ने चरवाहे के लिए दूध का केवल 10वाँ हिस्सा रखा है किंतु यह नहीं बताया है कि उसे सबसे अच्छी गाय दुहनी चाहिए.
70 मनु, VIII 229-44
71 वही VIII 237 8
72. वही X 124
73 वही X 125
74 वही VII 125
75 वही VII 126
76 वही
77 पीछे देखें पृ 191 2
78 पतजलि ऑन पाणिनीज ग्रामर I 3 72.
79 वी एस अग्रवाल इंडिया ऐज नोन टु पाणिनी पृ० 236 7
80 ऊपर देखें पृ 155
81 मनुस्मृति VIII 215
82. वही VIII 216
83 वही VIII 217
84 वही VI 145
85 कौवेल और नील 'दिव्यावदान पृ 304
86 सद्धर्मपुंडरीक अध्याय IV पृ० 76
87 वही IV पृ 78 कटपलिकुविकायाम् सेक्रेड बुक्स आफ दि ईस्ट' में दिया गया इस वाक्य खंड का अनुवाद सही मालूम पड़ता है यह एडगर्टन की बुद्धिस्ट हाइब्रिड संस्कृत डिक्शनरी में नहीं आया है
88 पतजलि आन पाणिनीज ग्रामर I 2. 47 और VI 3 61 कुड्यीभूत् वृषलकुलमिति
89 'कुडी शब्द 'कुटी शब्द का गलत पाठ है (मोनियर विलियम्स संस्कृत इगलिश डिक्शनरी) और कुड्यी कुडी का एक रूप हो सकता है
90 दिव्यावदान पृ 304 स्फटित पुरुषा रूक्षकेशा मलिनवस्त्रनिवसना एडगर्टन को संदेह है कि पुरुषा शब्द अशुद्ध है अत उन्होंने पुरुषा की जगह परुषा शब्द का सुझाव दिया है (देखें स्फटित बुद्धिस्ट हाइब्रिड संस्कृत डिक्शनरी) किंतु वर्तमान पाठ से अधिक अच्छा अर्थ निकलता है
91 दिव्यावदान पृ 304
92 मनुस्मृति X 124
93 वही X 125 तुलनीय V 140
94 मिलिंद पृ० 68
95 मनुस्मृति IV 61 न शूद्र राज्ये निवसेत्
96 वही X 43 44 वृषलत्व गता लोके

97 मत्स्य पुराण 144 43a ब्रह्मांड पुराण II 31 67b वायु पुराण 58 67a में गलत पाठ 'नाश्वमेधेन' है जो ब्रह्मांड पुराण के 'चाश्वमेधेन' के स्थान में आया है हाजरा पूर्व निर्दिष्ट, पृ 206 पादटिप्पणी 59
98 कूर्म पुराण अध्याय 30 पृ 304
99 विष्णु पुराण IV 24 19
100 ब्रह्मांड पुराण II 31 41 राजान शूद्रभूयिष्ठा पाखण्डानां प्रवर्तका
101 मनुस्मृति V 84
102 मिलिंद पृ 358
103 मनुस्मृति VII 54
104 वही VII 21
105 वही VIII 20
106 कुल्लूक रापवानंद ऐंड नंदन ऑन मनु VIII 20
107 मनुस्मृति IX 322
108 वही VIII [illegible]
109 वही VIII 62
110 कुल्लूक ऑन मनु, VIII 62
111 मनुस्मृति VIII 62 और 69 कुल्लूक की टीका सहित
112 वही VIII 70
113 वही VIII 254
114 वही VIII 65
115 कुल्लूक ऑन मनु, VIII 65
116 मनुस्मृति VIII 66 कुल्लूक की टीका सहित अध्यधीन की व्याख्या गर्भदास (वही) के रूप में की गई है
117 वही VIII 88
118 वही
119 समग्र मनुस्मृति (VIII 89 101) में न्यायाधीश द्वारा दिए गए तमाम उपदेश शूद्र गवाह को संबोधित हैं
1?0 मनुस्मृति VIII 113
121 वही VIII 123
122 वही, VIII 12?5
123 वही VIII 24
124 वही, VIII 41
125 वही II 6
126 के पी जायसवाल अध्याय हिंदू राजतंत्र पृ 155 6
127 मनुस्मृति VIII 267
128 वही VIII 268
129 गौतम धर्मसूत्र XII 13
130 मनुस्मृति VIII 270
131 वही VIII 272
132 वही, VIII 271 [illegible] शब्द की व्याख्या कुल्लूक ने [illegible] और [illegible] की है किंतु [illegible] का शब्द केवल [illegible] के लिए प्रयुक्त हुआ है

133 मनुस्मृति VIII 272
134 आपस्तवान मनु ऐंड याज्ञवल्क्य पृ 150
135 के वी रंगस्वामी अय्यंगर 'आस्पेक्ट्स ऑफ दि पोलिटिकल ऐंड सोशल सिस्टम ऑफ मनु पृ 132
136 बैशम वंडर दैट वाज इंडिया पृ 80
137 मनुस्मृति VIII 279
138 कुल्लूक ऑन मनु, VIII 279
139 गौतम धर्मसूत्र XII 1 यह नियम अर्थशास्त्र में भी आया है
140 बुहलर पूर्व निर्दिष्ट XXV 303
141 मनुस्मृति VIII 280
142 वही VIII 281
143 कुल्लूक आन मनु, VIII 28 मेधा और गोविंदराज कुल्लूक से सहमत हैं (बुहलर पूर्व निर्दिष्ट XXV 303)
144 मनुस्मृति VIII 282
145 वही VIII 283
146 वही IX 248
147 कुल्लूक आन मनु IX 248
148 महावस्तु, I 18 सेनार्ट ने हस्तिनिगडादिभि शब्द माना है किंतु बेली इसे हत्थियो पढते हैं जो पाठ दिव्यावदान पृ 365 और 435 में बेड़ी के अर्थ में आया है (सेक्रेड बुक्स ऑफ दि ईस्ट XVI 15 पाद टिप्पणी 2) मैथिली में हत्थीगैरही शब्द काठ की बेडी के अर्थ में प्रयुक्त होता है
149 सद्धर्मपुण्डरीक पृ 289
150 मनुस्मृति VIII 284
151 बुहलर पूर्व निर्दिष्ट पृ 304
152 मनुस्मृति XI 127 तुलनीय 129 131
153 वही XI 129 31
154 वही XI 131
155 मनु, XI 132 141 यह नियम मनु और अन्य विधिनिर्माताओं द्वारा विहित धर्म और धर्मनिरपेक्ष दंडों के बीच विषमता का संकेत देता है क्योंकि किसी शूद्र की हत्या करने पर धर्मनिरपेक्ष विधि में दस गाय और एक साँड़ के वैरदेय का दंड विहित किया गया है
156 मनुस्मृति VIII 104 5
157 वही XI 67
158 वही VIII 337 38
159 वही IX 151 154
160 वही IX 155
161 वही IX 160
162 वही IX 157
163 वही VIII 40
164 वही VIII 345
165 वही VIII 343

166 वही XI 179
167 मनुस्मृति VIII 359
168 वही VIII 361 2
169 वही VIII 363
170 वही
171 जायसवाल पूर्व निर्दिष्ट पृ 167 8
172 मनुस्मृति VIII.374
173 वही VIII 375 6
174 वही VIII 377
175 अर्थशास्त्र IV 13
176 वसिष्ठ धर्मसूत्र XXI 2 3
177 मनुस्मृति VIII 359 कुल्लूक की टीका सहित प्रयुक्त शब्द 'अब्राह्मण' है जिसका अर्थ कुल्लूक ने शूद्र किया है
178 वही VIII 413 शूद्रं तु कारयेद्दास्यं क्रीतमक्रीतमेव वा दास्यायैव हि सृष्टोऽसौ ब्राह्मणस्य स्वयम्भुवा
179 वही VIII 414 न स्वामिना निसृष्टोऽपि शूद्रो दास्याद्विमुच्यते, निसर्गजं हि तत्तस्य कस्तस्मात् तदपोहति मेधातिथि ने इसे अतिरंजना अर्थात अर्थवाद माना है किंतु इस बात से संभवतया मनु की अपेक्षा टीकाकार के समय की स्थितियों का अधिक परिचय मिलता है
180 वही VIII 412
181 अर्थशास्त्र III 13
182. जी एफ इलयिन ने इस प्रश्न पर विस्तारपूर्वक विचार किया है शूद्राज उंड स्क्लैवन इन डेन एलटिण्डिश्चेन गेसेत्सबुकेर्न (सोजेविस्सेनशेफ्ट गेजेलशेफ्टस्विसेनशेफ्टलिशे एब्टाइलुंग 1952 स 2) पृ 105 108 देखें सेनार्ट पूर्व निर्दिष्ट पृ 104
183 मनुस्मृति, IX 179 दास्यां वा दासदास्यां वा यः शूद्रस्य सुतो भवेत
184 वही
185 वही VIII 167 यहां अध्यधीन शब्द का अर्थ कुल्लूक ने दास किया है
186 वही VIII 199
187 वही IV 180
188 वही IV 184
189 वही IV 185
190 नैततेषां दासे वा भवति कर्मकरे वा पतंजलि ऑन पाणिनीज ग्रामर IV 1 168 तुलनीय काशिका ऑन पाणिनि V 3 114 इद तर्हि क्षौद्रकाणामपत्य , मालवानामपत्यमिति अत्रापि क्षौद्रस्य मन्तव्य इति
191 जिवर कुटुंब विवधनस विनिवतित चातुवण सकरस वासिष्ठीपुत्र पुलुमावि का नासिक गुफा उत्कीर्ण लेख, उ ले 11.5 6 डी सी सरकार सिलेक्ट इंसक्रिप्शंस I 197
192 वही
193 मनुस्मृति I 31
194 वही II 127
195 वही II 126
196 पतंजलि ऑन पाणिनीज ग्रामर VIII 2 82 [illegible] भो राजन्यविशां वा

197 मनुस्मृति II 137 तुलनीय गौतम जो घोषित करते हैं कि अस्सी वर्ष की अवस्था हो ज
पर शूद्र आदर का पात्र हो जाता है
198 मनुस्मृति II 31
199 मनुस्मृति II 32 शर्मवद्ब्राह्मणस्य स्याद्राज्ञो रक्षासमन्वितम्, वैश्यस्यपुष्टिसयुक्तं शूद्र
प्रेष्यसयुक्तम् कुल्लूक ने टीका की है कि ये उपाधियाँ क्रमश शर्मन्, वर्मन्, भूति और दा
होनी चाहिए
200 पतजलि आन पाणिनीज ग्रामर VI 2 11
201 वही II 2 11 और III 2 127
202 वही V 3 66 तुलनीय वही III 1 107 8
203 मनुस्मृति IV 245
204 वही IV 140 किंतु उन्होंने शूद्र के स्थान में वृषल शब्द का प्रयोग किया है
205 वही III 112
206 वही IV 211
207 वही IV 215 16
208 वही IV 218
209 मनुस्मृति IV 219 कारुकान्न प्रजा हन्ति बल निर्णेजकस्य च गणान्न गणिकान्न च लोकेभ्य
परिकृन्तति
210 वही IV 222
211 वही IV 223
212 वही X 106 8
213 वही X 108
214 मूल ग्रंथ में सबधवाचक सर्वनाम नहीं आया है किंतु कुल्लूक ने इस अनुच्छेद का अर्थ लगाया है
कि यह केवल किसी के अपने सेवकों पर लागू होता है यह मनु की भावना के अधिक निकट
मालूम पड़ता है बनिस्बत इसके कि इसका अर्थ किया जाए सभी बटाईदार आदि मनुस्मृति
IV 253 सेक्रेड बुक्स ऑफ दि ईस्ट XXV 168 में आर्धिक' शब्द का अनुवाद लेबरर
इन टिलेज (जोतदार श्रमिक) गलत हुआ है पतंजलि के महाभाष्य में चरवाहे को आभीर
बताया गया है
215 पतजलि आन पाणिनीज ग्रामर II 4 10
216 मनुस्मृति XI 153
217 वही XI 149 कुल्लूक की टिप्पणी सहित
218 वही XI 156
219 वही X 157
220 वही X 126
राघवानद ने इसके साथ 'कसाईखाना रखना भी शामिल किया है
221 वही III 24
222 वही III 23
223 आदिपर्व अध्याय 67 11
224 मनुस्मृति III 25
225 मनुस्मृति III 25 पर टीका कुल्लूक यह भी कहते हैं कि राक्षस पद्धति से विवाह वैश्यों और
शूद्रों के लिए भी विहित किया गया है

226 मनुस्मृति IX 196 7, कुल्लूक की टीका सहित
227 वही IX 65
228 वसिष्ठ धर्मसूत्र I 25
229 मनुस्मृति IX 66 अय द्विजैर्हि विद्वद्भिः पशुधर्मो विगर्हित
230 जाली 'हिंदू ला ऐंड कस्टम' पृ 155
231 मनुस्मृति III 13
232 वही IX 85
233 वही III 14
234 पतंजलि आन पाणिनीज ग्रामर, II 3 69 और I. 2. 43
235 मनुस्मृति III 15
236 मनुस्मृति की टीका III 15
237 मनुस्मृति III 16 कुल्लूक की टीका सहित
238 मनुस्मृति III 17
239 वही III 64
240 वही IX 178
241 वही III 19
242 वही III 17 19
243 पतंजलि ऑन पाणिनीज ग्रामर, IV 2 104 'जूनागढ़ राक इंसक्रिप्शंस ऑफ रुद्रदामन्' I 1 11 सरकार, 'सिलेक्ट इंसक्रिप्शंस' I 172. इस काल में भी हम निषादों के देश के बारे में सुनते हैं
244 मनुस्मृति (XII 55) में बताया गया है कि ब्राह्मण की हत्या करनेवाला चंडाल या पुक्कुस के गर्भ में उद्भूत होगा
245 मनुस्मृति X 8 9 12, 16 18 19 इस समय तक कुछ पुरानी जातियाँ आनुवंशिक बन चुकी थीं क्योंकि हमें निषादों और चंडालों के बेटों की सूचना मिलती है (पतंजलि ऑन पाणिनीज ग्रामर IV 1 97)
246 मनुस्मृति X 15
247 वही X 33 34
248 वही X 37
249 वही X 36
250 वही X 39
251 वही X.26 29
252 मनुस्मृति X 31 प्रतिकूलं वर्तमाना बाह्या बाह्यतरान्पुनः हीना हीनान्प्रसूयन्ते वर्णान् पञ्चदशैव च अपनी टीका में कुल्लूक ने यह बताने का प्रयास किया है कि ऐसी कुल जातियाँ तीस थीं हो सकता है कि यह बाद की बात हो
253 वही, X 40
254 वही X 56.39 तुलनीय महावस्तु, II 73
255 मनुस्मृति X 48
256 वही, X 49
257 वही, X 48
258 मनुस्मृति X 36 49 प्रसंगवश इससे पता चलता है कि तीन कोटियों के लोगों पदा

घर्मकार पिप्पण और दावदर के लिए चनड़े का काम महत्वपूर्ण शिल्प बन गया था

259 वही X 37

260 वही X 34

261 वही X 49

262 वही X 32

263 वही X 33

264 कर्न सेक्रेड बुक्स ऑफ दि ईस्ट XXI 438 इस शब्द का अनुवाद जो बकरी का मास बेचने वाले कसाई के रूप में किया गया है वह उपयुक्त नहीं मालूम पड़ता है

265 सद्धर्मपुडरीक पृ 180 1 311 2 इस सूची में आजीविक निर्ग्रंथ और लोकायतिक भी सम्मिलित हैं रेले बेस पूर्व निर्दिष्ट II 463-4 गोवधिक और उसके शिष्य सहायक का उल्लेख 'महावस्तु II 125 में किया गया है

266 मनुस्मृति X 49 50

267 वही बालचरित II 5 अविमारक VI 5 6 पुसलकर भास—ए स्टडी पृ 358 और 391

268 मनुस्मृति X 54 55

269 वही X 55 चिन्हिति राजशासने

270 बुल्हर सेक्रेड बुक्स ऑफ दि ईस्ट XXV 415 पादटिप्पणी 55 बोस पूर्व निर्दिष्ट II पृ 437 मेधातिथि इन चिन्हों को कुल्हाड़ी बसुला आदि के रूप में देखते हैं जिनका प्रयोग अपराधियों का वध करने में किया जाता था और जिन्हें कधे पर ढोया जाता था गोविंदराज उन्हें छड़ी आदि बताते हैं और सर्वज्ञनारायण उन्हें लोहे का गहना मोर के पख आदि बताते हैं

271 मनुस्मृति X 53 54 कुल्लूक का कथन है कि वह नौकरों के माध्यम से करना चाहिए

272 वही IV 79

273 वही III 239

274 वही II 276

275 वही X 4

276 वही VIII 279

277 वही IV 6 बाद के ग्रथों के अनुसार अत्यज शब्द से रजक कर्मकार नट बुरुड कैवर्त भिल्ल और मेद का बोध होता है के वी रगस्वामी अय्यगर ने सम्आस्पेक्ट्स ऑफ दि हिंदू व्यू ऑफ लाइफ अकार्डिंग टु धर्मशास्त्र पृ 115 6 में पराशर और अत्रि को उद्धृत किया है

278 मनुस्मृति X 29 31 मेधातिथि गोविंदराज और कुल्लूक की टीका

279 मनुस्मृति VIII 385

280 पतजलि ऑन पाणिनीज ग्रामर II 4 10 येर्भुक्ते पात्र सस्कारेणापि न शुध्यति ते निरवसिता

281 मनुस्मृति X.51

282 महावस्तु, I 188 ब्राह्मण और शूद्र शब्दों का प्रयोग महावस्तु की पूरी आबादी का बोध कराने के लिए किया गया है

283 पतजलि आन पाणिनीज ग्रामर II 2 8, 11

284 वही II 2. 11

285 वही I 3 55

286 भंडारकर सम आसपेक्ट्स ऑफ एनशिएंट इंडियन कल्चर पृ 51 और 54
287 मनुस्मृति IV 140
288 वही III 19
289 एस के बोस (इंडियन कल्चर कलकत्ता II) पृ 596 7
290 पतंजलि ऑन पाणिनीज ग्रामर II 3 69 और I 2 48
291 वही I 2 47 और VI 3 61
292 मनुस्मृति II 165
293 वही X 4
294 वही II 169 70
295 वही II 163 देखें II 172 X 110 बताया गया है कि लड़कियों और शूद्रों का 'उपनयन' औपचारिक समारोह के बिना ही किया जाता था रंगस्वामी अय्यंगर पालिटिकल ऐंड सोशल आस्पेक्ट्स ऑफ दि सिस्टम ऑफ मनुस्मृति पृ 145 किंतु इसके लिए कोई प्रमाण नहीं मिलता
296 मनुस्मृति IV 99 और 108
297 वही III 156
298 वही II 109
299 वही IV 80
300 वही IV 81
301 पतंजलि ऑन पाणिनीज ग्रामर IV 1 93
302 मनुस्मृति X 126
303 वही IX 86
304 वही IX 87
305 वही XI 24
306 वही XI 42-43
307 वही X 126
308 प्रनिस III 5
309 मनुस्मृति X 127
310 वही III 196 198 मनुस्मृति VIII 140 में वसिष्ठ को विधिनिर्माता कहा गया है और मनुस्मृति I 35 में उन्हें दस प्रजापतियों में से एक कहा गया है
311 वही X 63
312 वही, XI 224
313 पतंजलि ऑन पाणिनीज ग्रामर, II 1 1 वही V 139 पतंजलि दास और भार्या को एक ही कोटि में रखते हैं
314 मनुस्मृति V 140
315 वही V 83
316 वही V 99
317 वही V 104
318 हाजरा पुराणिक रिकार्ड पृ 208 10
319 कूर्म पुराण अध्याय 30 पृ 304 5
320 मत्स्य पुराण अध्याय 272, 46 7 एवं आगे

321 वायु पुराण अध्याय 58 38-49 ब्रह्माड पुराण भाग II अध्याय 31 39-49
322 हाजरा पूर्व निर्दिष्ट पृ० 178
323 वही पृ 174 5 इन पुराणों में कलियुग से सबंधित वर्णनवाले अश को हाजरा ने ई सन 200 275 का माना है
324 (एपिग्राफिया इंडिका कलकत्ता और दिल्ली VIII) उत्कीर्ण लेख स 15 I 10 कलियुग दोषावसन्न धर्म उद्धरण नित्य सन्नद्धस्य
325 पार्जिटर का विचार है कि कलियुग भारतयुद्ध के समय से प्रारभ होता है किंतु एक युग के अत में (युगान्ते) कलियुग के पापों का वर्णन प्राय उस दुर्व्यवस्थापूर्ण काल का संकेत करता है जो मौर्य साम्राज्य के पतन और गुप्त साम्राज्य के उत्थान के बीच आता है
326 जायसवाल हिस्ट्री ऑफ इंडिया (ई सन 150 350) पृ 151 2
327 वही पृ 46 युग पुराण 95 एवं आगे युग पुराण में जो चित्र खींचा गया है वह ग्रीक विजय के परिणाम के लिए अभिप्रेत है इसके बारे में टार्न को सदेह है टार्न ' दि ग्रीक्स इन बैक्ट्रिया ऐंड इंडिया पृ 456
328 हिब्रू पैगबरों ने असीरिया के पतन का वर्णन करने में इसी तरह की साहित्यिक शैली अपनाई थी
329 मनुस्मृति VIII 418
330 वही X 61
331 वही XII 72
332 वही IX 337
333 वही VII 69 कहा गया है कि देश को अनाविलम् होना चाहिए टीकाकारों (नारद स्मृति और नद) ने इस शब्द का अर्थ लगाया है जातियों के मिश्रण जैसे दूषणों से मुक्त (सैक्रेड बुक्स आफ दि ईस्ट XXV 227)
334 टीकाकारों की ये व्याख्याएँ कि इनसे शूद्र न्यायाधीशों या प्रशासी अधिकारियों की प्रमुखता का संकेत मिलता है निराधार मालूम पड़ती हैं
335 मनुस्मृति IX 253
336 वही IX 260
337 वही X 57 8
338 मनुस्मृति VIII 348 शस्त्र द्विजातिभिर्ग्राह्य धर्मो यत्रोपरुध्यते द्विजातीना च वर्णाना विप्लवे कालकारिते वसिष्ठ धर्मसूत्र में भी इस विधान की चर्चा है किंतु इतने स्पष्ट शब्दों में नहीं (III 24 25)
339 पाटिल कल्चरल हिस्ट्री फ्रम दि वायु पुराण , पृ 74 75 में उद्धृत लेखक का विचार है कि यह वर्णन गुप्तकाल के पहले की ईस्वी सन् की आरंभिक शताब्दियों का है (पृ 128)
340 मनुस्मृति VIII 16 वृषो हि भगवान धर्मस्तस्य य कुरुते ह्यलम् वृषल त विदुर्देवास्तस्माद्धर्म न लोपयेत् शांतिपर्व में भी यह विधान दुहराया गया है किंतु प्राचीन ब्राह्मण ग्रथों में इसका उल्लेख नहीं है
341 जायसवाल मनु ऐंड याज्ञवल्क्य पृ 91 92
342 विष्णुपुराण VI 1 36
343 वही VI 1 51 शूद्रप्रायास्तथा वर्णा भविष्यन्ति कलौयुगे
344 मनुस्मृति XII 46 8
345 वही XII 43
346 हापकिंस म्युचुअल रिलेशस ऑफ दि फोर कास्ट्स इन मनु पृ 78 तुलनीय पृ 82
347 के वी रगस्वामी अय्यगर पूर्व निर्दिष्ट पृ 151 2 उन्होंने स्वीकार किया है कि कभी कभी "नीतिशास्त्रों ने लखपतियों की खिल्ली उड़ाई है (पृ 159)

348 मनुस्मृति X 129
349 वही IV 253
350 अर्थशास्त्र II 23 मनुस्मृति IV 253 अर्थशास्त्र में बटाईदारों को राज्य से जमीन मिलने की व्यवस्था है किंतु मनु में इन्हें व्यक्ति विशेष से जमीन मिलती है
351 मनु, VII 119 यहाँ हमें सामतवाद का महत्वपूर्ण आभास मिलता है
352 के वी रगस्वामी अय्यगर पूर्व निर्दिष्ट पृ 108
353 कोसबी 'जर्नल ऑफ दि अमेरिकन ओरिएटल सोसायटी (बाल्टीमोर LXXV) पृ 41
354 *स्वतत्र हस्तशिल्पों का प्रचलन सामान्यतया मध्यकालीन यूरोप के सामतवादी समाज की महत्वपूर्ण विशेषता मानी जाती है*
355 रुद्रदामन का जूनागढ का शिलालेख (राक इस्क्रिप्शन) I 1 9
356 वही I 16
357 वर्मिंगटन 'दि कामर्स बिट्वीन ■ रोमन एम्पायर ऐंड इडिया पुस्तक में इस समस्या पर विचार किया गया है हाल के पुरातात्विक प्रमाण के लिए देखें व्हीलर रोम बियाड दि इपीरियल फ्रटियर्स, अध्याय 12 13
358 व्हीलर पूर्व निर्दिष्ट पृ 151 टालेमी ने समुद्र के किनारे के सोलह नगरों को वाणिज्य केंद्र बताया है
359 मनुस्मृति VIII 268
360 वासिष्ठीपुत्र पुलुमावि का नासिक गुफा उत्कीर्ण लेख 11 5 6 (डी सी सरकार सिलेक्ट इसक्रिप्सस I 197)
361 मनुस्मृति III 196 198
362 वही II 30-1
363 विष्णु पुराण IV 24 21 24 ततश्चार्थ एवाभिजनहेतुर धनमेवाशेषधर्महेतु दानमेव धर्महेतु आढ्यतैव साधुत्वहेतु तुलनीय युग पुराण 95 112.

रूपातरण की प्रक्रिया
(लगभग दो सो पाँच सौ ई सन)

इस काल में शूद्रों की स्थिति के अध्ययन के लिए मुख्य स्रोत है विष्णु, याज्ञवल्क्य नारद, बृहस्पति और कात्यायन की स्मृतियाँ।[1] इनमें याज्ञवल्क्य स्मृति सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण प्रतीत होती है, क्योंकि बाद में चलकर उत्तर भारत में यही प्रमाण के रूप में अपनाई गई। गुप्तकाल में हुए सामाजिक विकासक्रम जिस वास्तविकता के साथ इसके प्रावधानों में प्रतिफलित हुए है वह शायद अन्य किसी भी स्मृति में नहीं। इस स्मृति में शूद्रों के विरुद्ध मनुस्मृति में दिए गए अतिवादी प्रावधानों को या तो खंडित कर दिया गया है या उनकी अवहेलना कर दी गई है और इसमें ब्राह्मणों के लिए भी दागने (अकन) और देश से निकालने (निष्कासन) का दड विहित किया गया है।[2]

चारो स्मृतिकार किस क्षेत्र के थे इस विषय में हम मात्र अनुमान कर सकते है। याज्ञवल्क्य संभवतया मिथिला के थे।[3] नारद नेपाल के प्रतीत होते है।[4] अन्य स्मृतिकार भी उत्तर भारत के रहनेवाले हो सकते है क्योंकि उनकी स्मृतियों में जैसी स्थितियाँ चित्रित है वैसी मुख्यतया उत्तर भारत मे ही पाई जाती हैं।

इन स्मृतियों में धर्मसूत्रों के वचन का विस्तार किया गया है और बहुधा *मनु* के श्लोक उतारे गए है।[5] नई जानकारी केवल पाठातरों से निकाली जा सकती है जिनका प्रत्यक्ष संबध हमारे आलोच्य विषय से हमेशा नहीं है। पर प्रायश्चित काड और संस्कारकाड कहीं कहीं विस्तार से दिए गए है उनसे शूद्रों की धार्मिक अवस्था का पता चलता है।

स्मृतियों में वर्णित तथ्य कभी कभी *महाभारत* और पुराणों के स्मृति प्रकरणों से अनुसमर्थित और अनुपूरित होते है। हापकिंस का मत है कि *महाभारत* का उपदेशात्मक *अश अधिकतर दो सौ ई पू और दो सौ ई के बीच जोड़ा गया होगा है।*[6] यह बात शातिपर्व के कई श्लोकों के विषय में सत्य प्रतीत होती है क्योंकि वे ठीक वैसे ही *मनु* में भी मिलते है। हापकिंस की अपनी मान्यता है कि बढता बढता अनुशासनपर्व शातिपर्व से अलग होकर दो सो चार सौ ई के बीच पृथक पर्व के रूप में मान्य हुआ।[7] पुराणों

में आए स्मृति-अंश का कोई निर्देश ईसा से पूर्व नहीं मिलता है।[8] *विष्णु,*[9] *मार्कण्डेय*[10] *भविष्य*[11] और *भागवत*[12] पुराणों के वर्ण धर्म संबंधी अध्याय मोटे तौर पर गुप्तकाल के माने जा सकते हैं।

इस काल के स्मृतिग्रंथों की एक खास विशिष्टता है वैष्णव मत की ओर झुकाव। यह विशेष रूप से *विष्णु स्मृति,* बृहस्पति स्मृति[13] *विष्णु पुराण*[14] और *मत्स्य पुराण*[15] में लक्षित है। संभवतया कृष्ण की उपासना और वैष्णव मत के प्रभाव के कारण ही विचार में वह उदारता आई है जो महागाथा काव्य *महाभारत* में व्यापक रूप से प्रतिफलित होती है।[16] जैसा कि आगे बताया जाएगा वैष्णव भावना के उदय से शूद्रों के प्रति ब्राह्मणों के दृष्टिकोण में उदारता आई और उन्हें धर्म के क्षेत्र में सीमित ही सही पर सुनिश्चित अधिकार मिले।

कालिदास और शूद्रक की कृतियों से जो जानकारी मिलती है वह भी स्मृतियों की भावना के अनुरूप है। कालिदास ने वर्णाश्रम के आदर्श का प्रतिपादन किया है,[17] और यह बात शूद्रक के विषय में भी कही जा सकती है।[18]

शूद्रों की स्थिति के बारे में बौद्धग्रंथ *लंकावतार* सूत्र और *वज्रसूची* में भी कुछ जानकारी मिलती है। पहला ग्रंथ 443 ईस्वी के पूर्व संकलित किया गया है,[19] किंतु द्वितीय ग्रंथ की तिथि निश्चित नहीं है। यह मौर्योत्तर काल के कवि अश्वघोष की रचना नहीं प्रतीत होती क्योंकि चीनी यात्री इत्सिङ् ने इनकी कृतियों की जो सूची दी है उसमें इसका उल्लेख नहीं है।[20] 973 981 ई के बीच किया गया इसका चीनी अनुवाद बौद्ध नैयायिक धर्मकीर्ति द्वारा किया गया बताया जाता है जो सर्वथा संभव है कि पाँचवीं शताब्दी ईस्वी में हुए थे।[21] *वज्रसूची* में मनुस्मृति के श्लोक उद्धृत हैं जिससे इसका परवर्ती होना सिद्ध होता है। मुख्य मुख्य बौद्ध और जैन टीका ग्रंथों[22] में भी जो संभवतया आलोच्य काल के हैं, हमारे अध्येय विषय की प्रासंगिक चर्चाएँ आई हैं।

कामंदक के *नीतिसार* भरत के *नाट्यशास्त्र*[23] वात्स्यायन के *कामसूत्र*[24] अमरसिंह के *अमरकोश* और वराहमिहिर की *बृहत् संहिता*[25] जैसे तकनीकी ग्रंथों से भी इस काल में शूद्रों की स्थिति के विषय में काफी जानकारी मिलती है।

हयशीर्ष पंचरात्र और *विष्णुधर्मोत्तर पुराण* के प्रतिमाविज्ञान विषयक भागों में भी कुछ जानकारी प्राप्त होती है। पहला ग्रंथ तो गुप्तकाल में रचा गया प्रतीत होता है[26] लेकिन दूसरा ग्रंथ गुप्तोत्तर काल में संकलित जान पड़ता है और गौण साक्ष्य के रूप में उपयोगी सिद्ध हो सकता है।

उत्कीर्ण लेखों में वर्ण के रूप में शूद्रों का उल्लेख नहीं है किंतु कृषक किसानों और कारीगरों का बार बार उल्लेख हुआ है और कारीगरों के संघ की भी चर्चा है। इनमें हमें

शूद्रों की आर्थिक स्थिति में हुए परिवर्तनों का स्वरूप पता लगाने में सहायता मिलती है।

इसी काल में हमें यह सुपरिचित सूत्र वाक्य सुनने को मिलता है कि शूद्र का कर्तव्य है अन्य तीनों वर्णों की सेवा करना।[27] मनु की भाँति ही यह दावा किया गया है कि शूद्र को विशेषतया ब्राह्मण की सेवा करनी चाहिए।[28] शांतिपर्व में एक राजा का दावा है कि उसके राज्य में शूद्र किसी विद्वेष के बिना सम्यक रूप से अन्य तीनों वर्णों की सेवा और परिचर्या करते हैं।[29]

अनुशासनपर्व में कहा गया है कि शूद्र मजदूर (कर्मकर) हैं,[30] और यदि शूद्र न हों तो मजदूर न होंगे।[31] इसमें संदेह नहीं कि शूद्रों का बहुत बड़ा भाग मजदूरी कमाता था क्योंकि मजदूरी के ग्यारहों पर्याय *अमरकोश* में शूद्र वर्ग में आए हैं।[32] इसी तरह मजदूरों और सेवकों की विविध कोटियों के नाम भी इसी वर्ग में गिनाए गए हैं। इसमें भृत्यकों (वैतनिकों) के चार नाम हैं, वाहकों के दो नाम कुलियों के दो नाम और भृत्यों के ग्यारह नाम हैं।[33]

नारद और बृहस्पति ने भृतकों को तीन कोटियों में रखा है एक सेना में काम करनेवाले दूसरे कृषिकर्म करनेवाले और तीसरे एक जगह से दूसरी जगह भार ढोकर ले जानेवाले।[34] इनमें प्रथम को उत्तम, द्वितीय को मध्यम और तृतीय को अधम कर्मकर माना गया है।[35]

यद्यपि कुली और वाहक अधम कोटि के मजदूर माने गए हैं फिर भी श्रमिकों में उनका महत्व कम नहीं प्रतीत होता क्योंकि उनके कर्म के बारे में बहुत से नियम इस काल के विधिग्रंथों में दिए गए हैं। वाहकों का नियोजन मुख्यतया सौदागर (वणिक) करते थे और ये वाहक सौंपे गए माल के लिए जवाबदेह होते थे बशर्ते कि माल की हानि का कारण राजा और दैव (भाग्य) न हो।[36] विभिन्न अवस्थाओं में काम अधूरा छोड़ने के कारण उनके लिए विभिन्न दंडों का विधान है। नारद ने कहा है कि जो वाहक माल को लक्ष्यस्थान पर पहुँचाने का करार करके ढोने से इंकार कर दे, वह अपनी मजदूरी का छठा भाग हर्जाना देगा[37] यदि सामान ले जाने का समय आ जाए और वह तब इधर उधर करे तो उसे मजदूरी का दूना हर्जाना देना पड़ेगा।[38] याज्ञवल्क्य ने भी इस नियम का समर्थन किया है।[39] किंतु परवर्ती स्मृतिकारों के अन्य प्रावधानों के अनुसार यदि वाहक कार्य आरंभ करके बीच में ही छोड़ दे तो वह अपनी मजदूरी का सातवाँ हिस्सा चुकाएगा और यदि आधा रास्ता जाकर छोड़े तो पूरी मजदूरी चुकाएगा।[40] नियोजक की ओर से करार भंग होने पर वाहक को मजदूरी चुकाने का नियोजक का दायित्व उतना कड़ा नहीं प्रतीत होता है। नारद ने कहा है कि यदि सौदागर भाड़ा तय करके गाड़ी या ढोर से काम न ले तो वाहक को भाड़े का चौथा हिस्सा दिलाया जाएगा और यदि उसे रास्ते में छोड़ दे तो पूरा भाड़ा दिलाया जाएगा।[41]

यह नियम भारवाही गाड़ी और पशु के मालिकों के लिए, और पूर्ण सभवतया उन वाहकों के लिए है जो स्वय मालिक और चालक भी हैं, न कि उन मनुष्यों के लिए जो पशु की भाँति स्वय अपने ऊपर माल ढोते हैं। फिर भी इसका प्रतिस्थानी नेपाली पाठ, जो शुद्ध पाठ माना जाता है,[42] बताता है कि यदि नियोजक की गलती से वाहक कार्य रोके तो वाहक को उतनी मजदूरी दिलाई जाए जितना काम उसने सपन्न किया हो।[43]

कृषि मजदूरों और चरवाहों को मिलनेवाली मजदूरी के बारे में हमें कुछ जानकारी प्राप्त है। याज्ञवल्क्य, नारद और कात्यायन ने उन्हीं दरों को दुहराया है जिनका विधान कौटिल्य के *अर्थशास्त्र* में किया गया है। इसके अनुसार कर्षक (कृषि मजदूर) को फसल का दसवाँ भाग, गोपालक (चरवाहे)को घी का दसवाँ भाग और पैकार के भारवाहक को बिक्री मूल्य का दसवाँ भाग वेतन मिलना चाहिए।[44] यह व्यवस्था परपरागत प्रतीत होती है, और गुप्तकाल में मजदूरी में जो परिवर्तन हुए, उनका विचार इसमें नहीं किया गया है। ये परिवर्तन शातिपर्व और नारद एव बृहस्पति की स्मृतियों में पाए जानेवाले पाठातरीय वचनों से लक्षित होते हैं। गोपालक (चरवाहे) की मजदूरी के विषय में शातिपर्व में कहा गया है कि यदि वह दूसरों के लिए छह गायों का पालन करता है तो उसे मजदूरी में एक गाय का दूध मिलना चाहिए।[45] यह भी कहा गया है कि एक सो गायों के पालन के लिए गोपालक को एक जोड़ा पशु मिलना चाहिए।[46] नारद ने इससे कम मजदूरी बताई है। एक सौ गाय चराने के लिए प्रति वर्ष एक बछिया दी जाएगी, दो सौ गाय चराने के लिए एक धेनु (दुधार गाय) और दोनों दशाओं में चरवाहे का हर आठवें दिन सभी गायों का दूध दिया जाएगा।[47] नारद के इस वचन से उन्ही का वह पूर्वोक्त वचन बहुत कुछ बाधित हो जाता है, जिसमें चरवाहे के लिए घी का दसवाँ हिस्सा परपरागत दर बताया गया है। समसामयिक जैन स्रोतों से ज्ञात होता है कि व्यवहार में इन नियमों का मोटे तौर पर ही पालन होता था। उदाहरणार्थ, एक चरवाहे की चर्चा आई है जिसे हर आठवें दिन गाय या भैंस का सारा दूध मिलता था।[48] एक दूसरे उदाहरण में पारिश्रमिक की दर इससे अधिक है, एक गोपालक को पारिश्रमिक के रूप में दूध का चौथा हिस्सा दिया गया था।[49] इससे प्रकट होता है कि चरवाहे की मजदूरी में निश्चित रूप से वृद्धि हुई। इतना ही नहीं इस बात से कि मजदूरी में पशु दिया जाता था, पता चलता है कि अपेक्षाकृत चरवाहे की अपनी स्वतत्र हैसियत भी थी, जिसका अपना घर होता था और चारे के लिए कुछ जमीन भी रहती थी।

कर्षकों के पारिश्रमिक की दरें शातिपर्व और *बृहस्पति स्मृति* में उनसे अधिक विहित की गई हैं जो इस काल के आसपास के अन्य ग्रथों में विहित हैं। यथा, शातिपर्व के अनुसार यदि कर्षकों को बीज आदि दिए जाएँ तो उन्हें उपज का सातवाँ भाग मिल सकता है।[50] बृहस्पति तो और भी उदार है। उनके अनुसार खेती के काम में लगाए गए मजदूरों

(सीरवाहकों) को, यदि उन्हें अन्न और वस्त्र दिया गया हो, तो उपज का चौथाई भाग मिलेगा।[51] यदि अन्न और वस्त्र दिए बिना उनसे काम कराया जाए तो उन्हें उपज का तीसरा भाग दिया जाना चाहिए।[52] स्पष्टतया ये नियम खेती के मजदूरों के लिए हैं न कि ऐसे बटाईदारों के लिए जो खेती के लिए बीज बैल और औजार अपनी ओर से लगाते हैं। यह युक्तिसंगत नहीं है कि यहाँ की सीर भूमि वही है जो कौटिल्य की सीता भूमि।[53] सीता राजा की भूमि होती थी लेकिन सीर भूमि व्यक्ति विशेष के कब्जे में रहती थी जिसमें वह खेती के लिए मजदूरों को लगाता था।[54]

बृहस्पति द्वारा विहित पारिश्रमिक की दरों से विदित होता है कि गुप्तकाल के अंतिम भाग में कृषकों की मजदूरी दूनी हो गई। इतना ही नहीं यह तथ्य कि वे अन्न और वस्त्र के बिना काम करते थे सूचित करता है कि एक नवीन कोटि के कर्षकों का उदय हुआ था जो अपना भरण पोषण आप करने के साधनों से संपन्न होते थे और इसलिए अपने नियोजकों पर कम आश्रित रहते थे। इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि इस काल में पशुपालकों और कृषि मजदूरों के पारिश्रमिक में निश्चित रूप से वृद्धि हुई और इसके फलस्वरूप शूद्रों के एक विशाल वर्ग की आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ।

भृत्यों (घरेलू चाकरों) की स्थिति के बारे में भी कुछ जानकारी मिलती है। *कामसूत्र* में कहा गया है कि भृत्यों को खाने पीने के अलावा मासिक या वार्षिक वेतन मिलना चाहिए।[55] शांतिपर्व में जोर देकर कहा गया है कि शूद्र सेवकों का भरण पोषण करना ऊपर के तीनों वर्णों का कर्तव्य है।[56] किंतु इसमें वही पुराना नियम दुहराया गया है कि द्विज अपने सेवक को पुराना छाता पगड़ी बिस्तर व आसन जूते और पखे तथा फटे हुए कपड़े दे।[57]

शांतिपर्व इस सिद्धांत की पुष्टि करता है कि शूद्र की सृष्टि प्रजापति ने अन्य तीनों वर्णों के दास के रूप में की।[58] इसलिए उसे दासधर्म के पालन का उपदेश दिया गया है।[59] परंतु इसका यह अर्थ नहीं कि शूद्र दास थे। दासप्रथा प्रचलित थी[60] इसलिए हो सकता है कि कुछ शूद्र दास रहे हों। किंतु वे उत्पादन कार्यों में लगाए जानेवाले दास नहीं थे। यद्यपि नारद ने पंद्रह प्रकार के दासों का उल्लेख किया है[61] तथापि वे और बृहस्पति दोनों यह स्पष्ट कर देते हैं कि वे केवल अपवित्र कर्मों में लगाए जाते थे।[62] ये अपवित्र कर्म हैं प्रवेशद्वार शौचालय और सड़क की सफाई उच्छिष्ट भोजन मल मदिरा आदि हटाना मालिक का हाथ पाँव मलना और गुह्यांगों की मालिश करना।[63] इसके विपरीत जो लोग उत्पादन संबंधी कार्यों में अर्थात कृषि या भारवहन के काम में लगाए जाते थे वे पवित्र कर्म करनेवाले समझे जाते थे।[64] इसलिए इस बात का शायद ही साक्ष्य मिलता है कि राजा द्वारा या प्रजाजन द्वारा कोई दास उत्पादन कर्म में लगाया गया हो जबकि मौर्यपूर्व और

मौर्यकाल में ऐसे उदाहरण पाए जाते हैं।

इस काल में ऐसी कई अन्य बातें भी दिखाई पड़ती हैं, जिनसे प्रकट होता है कि दासप्रथा सामान्यतया कमजोर पड़ती गई है और दास के रूप में काम करने की बाध्यता से शूद्रों को अधिकाधिक छुटकारा मिलता गया है। जैसा कि पहले बताया जा चुका है, कौटिल्य का दासमुक्ति सबधी नियम केवल उन दासों पर लागू था जो आर्य सतान हों या स्वय आर्य हों। किंतु याज्ञवल्क्य ने बडा ही महत्वपूर्ण सिद्धात स्थापित किया कि कोई भी आदमी अपनी मर्जी के बिना गुलाम नहीं बनाया जा सकता, ऐसे व्यक्तियों को मुक्त कर देना होगा।[65] जगन्नाथ तर्क पचानन की टीका के अनुसार इसका यह अर्थ है कि जो कोई शूद्र, क्षत्रिय या वैश्य अपनी सम्मति के बिना दासकर्म में नियोजित किया गया हो उसे मुक्त कराना राजा का कर्तव्य है।[66] इस प्रकार उपर्युक्त व्यवस्था ने मनु की उस मान्यता को एकदम उलट दिया, जिसके अनुसार शूद्र को बलपूर्वक दास बनाया जा सकता था।[67]

पहले के ग्रथों के अनुसार किसी भी उच्च वर्ण (द्विज) को या शूद्र से उत्पन्न द्विज के पुत्रों को दास नहीं बनाया जा सकता था किंतु गुप्तकाल की स्मृतियों में द्विजों के लिए ऐसा कोई विशेषाधिकार लक्षित नहीं होता है। याज्ञवल्क्य नारद और कात्यायन कहते हैं कि दास अनुलोम क्रम से बनाया जाए, न कि प्रतिलोम क्रम से, अर्थात दास मालिक के वर्ण से नीचे के वर्ण का होना चाहिए।[68] किंतु कात्यायन का दावा है कि दासता निचले तीन वर्णों के लिए है, न कि ब्राह्मणों के लिए।[69] फिर भी इन नियमों से यह अर्थ निकलता है कि दासता शूद्रों तक ही सीमित न रही।

नारद और बृहस्पति ने ऐसे अधम व्यक्ति की घोर निंदा की है जो स्वतत्र होते हुए भी अपने को बेच डालता है।[70] अनुशासनपर्व में कहा गया है कि कितनी ही सतानें क्यों न हों, किसी को मनुष्य का विक्रय नहीं करना चाहिए।[71] यद्यपि कौटिल्य ने दासों की खासकर आर्यजाति के दासों की मुक्ति के नियम दिए हैं तथापि दासमुक्ति के अनुष्ठान का विधान सर्वप्रथम नारद ने किया है।[72] इन सब बातों से दासप्रथा अवश्य कमजोर हुई होगी।

नारद ने कहा है कि स्थानीय विवादों में एक वर्गविशेष के लोग जो 'वर्गिन् कहलाते हैं, अपने अपने वर्गों के मामलों में गवाह के रूप में बुलाए जा सकते हैं।[73] कात्यायन के अनुसार जिनके लिए वर्गिन् शब्द का प्रयोग होता है उनमें दासों के नायक भी हैं।[74] इस प्रकार दासों में सगठन होने से दासप्रथा में और भी कमजोरी आई होगी।

दासियों के अस्तित्व का भी पर्याप्त प्रमाण मिलता है। ये दासियाँ धनी लोगों के घरों में चेरियों का काम करती थी। *अमरकोश* में समूहवाचक शब्दों के उदाहरणों में दासीसभम् (दासियों का दल) शब्द भी आया है।[75] इस काल के जैनग्रथों का अध्ययन करने से इस

बात का स्पष्ट रूप से संकेत मिलता है कि आदिम जातियों से बहुत सी दासियाँ और चेरियाँ बहाल की जाती थीं।[76]

अन्य विषयों में गुप्तकाल में दासों की सामान्य स्थिति अपरिवर्तित रही। उन्हें पीटा जा सकता था और बेड़ियों में बाँधा जा सकता था।[77] वे अविश्वसनीय समझे जाते थे।[78] विधि में उनके लिए कोई स्थान नहीं था।[79] वे संपत्ति की एक इकाई समझे जाते थे और तदनुसार साझे *(सामूहिक स्वामित्व)* में रखे जा सकते थे[80] तथा साझेदारों के बीच बाँटे जा सकते थे।[81] नारद और कात्यायन दोनों ने मनु के उस वचन को दुहराया है जिसके अनुसार दास को संपत्ति में कोई अधिकार नहीं है,[82] किंतु कात्यायन ने यह भी कहा है कि लोगों के बीच अपने को बेचकर दास जो मूल्य पाता है, उस पर मालिक का हक नहीं है।[83]

इन सारी बातों के होते हुए भी इतना तो स्पष्ट है कि गुप्तकाल में दासप्रथा सामान्यतया शिथिल हो गई थी। ऐसा लगता है कि वर्ण व्यवस्था ही कमजोर पड़ गई थी और इस कारण दासप्रथा में भी कमजोरी आई। वर्ण प्रथा का नियम था कि शूद्र को दास बनाना चाहिए। पर गुप्तकालीन पुराणों में जो कलि का वर्णन मिलता है उससे पता चलता है कि वैश्य और शूद्र अपने वर्ण धर्म का पालन नहीं करते थे। अर्थात किसान के रूप में अन्न पैदा कर वैश्य कर नहीं देते थे और शूद्र द्विजों की सेवा करने को तैयार नहीं थे। घोर वर्णसंकट की स्थिति पैदा हो गई थी। इसके लिए सोचा गया कि राज्य के अधिकारियों तथा पुरोहितों को गाँव दान में दिए जाएँ ताकि वे अपनी जीविका चलाएँ और प्रदत्त क्षेत्र में शांति बनाए रखें। मजदूरी बढ़ाकर और कुछ जमीन देकर शूद्रों को संतुष्ट करने की चेष्टा की गई।

दासप्रथा के कमजोर होने का प्रमुख कारण था बँटवारों और दानों के फलस्वरूप भूमि का टुकड़ों में बँटते जाना। धर्मसूत्रों, कौटिल्य के *अर्थशास्त्र* और *मनुस्मृति* में तथा *याज्ञवल्क्य स्मृति* में भी दायभाग (संपत्ति के बँटवारे) की जो विधियाँ हैं उनमें भूमि के बँटवारे की चर्चा नहीं है। इसकी चर्चा सर्वप्रथम नारद[84] और बृहस्पति[85] की स्मृतियों में पाई जाती है। इससे यह ध्वनित होता है कि गुप्तकाल के बीच या अंत में बड़ी बड़ी जोत रखनेवाले बड़े बड़े संयुक्त परिवार छोटे छोटे टुकड़ों में विभक्त होने लगे। जब भूमि के बँटवारे का सिद्धांत मान्य हो गया तब एक बार लोगों की आबादियों के बस जाने के बाद उत्तर भारत की उर्वर नदी घाटियों में घनी होती जा रही आबादी कृषियोग्य भूमि के विखंडीकरण की प्रक्रिया में तेजी लाए बिना कैसे रह सकती थी? भूमि पर आबादी का भार किस प्रकार बढ़ रहा था इसका संकेत पाँचवीं शताब्दी ई. के एक पुराभिलेख से मिलता है। इसमें कहा गया है कि उत्तर बंगाल (बांगला देश) में डेढ़ कुल्यवाप भूमि एक जगह मिलना संभव नहीं है अतः इतनी भूमि छोटे छोटे टुकड़ों में चार भिन्न भिन्न जगह में

खरीदनी पड़ी।[86] यह खरीद दान देने के लिए की गई थी, इसके उदाहरण हमें इस काल में बहुत अधिक मिलते है। ब्राह्मणों और देवालयों को किए गए भूमिदानों से भूमि खडन की प्रक्रिया में और भी मदद मिली। मौर्यपूर्व काल में जो पाँच पाँच सौ करीष के बडे-बडे प्लाट या मोर्य काल में जो बड़े बड़े राजकीय कृषिक्षेत्र थे, वे अब नहीं दिखाई पडत हैं। पुराभिलेखों में जो एक कुल्यवाप या चार दो और एक द्रोणवाप के खेतों की चर्चा है उन्हें बडे प्लाट नहीं कह सकते हैं।[87] पार्जिटर के अनुसार एक कुल्यवाप एक एकड से कुछ बड़ा होता था।[88] किंतु यदि असम के कछार जिले में प्रचलित भूमिमाप कुल्यवाय को कुल्यवाप का पर्याय समझें,[89] तो कुल्यवाप का मान 13 एकड़ के लगभग हो जाएगा। एक कुल्य आठ द्रोण के बराबर हाता है इसलिए ऐसा प्रतीत होता है कि उत्तरबगाल में खेतों का विस्तार सात एकड से लेकर तीन एकड तक था। इसी काल में यदि गुजरात के अतर्गत वलभी के मैत्रक राजाओं के भूमि दानों (अग्रहारों) का सर्वेक्षण किया जाए तो उससे प्रकट होता है कि खेतों का विस्तार दो तीन एकड से अधिक नहीं था।[90] स्वभावतया जोत का रकबा कम रहने के कारण भूस्वामियों का परिवार अपने खेतों को स्वय सँभाल मकता था स्थायी रूप से भारी सख्या में शूद्र दास और मजदूर रखने की जरूरत नही थी। अत अधिकाश दासों को छाँट दिया गया होगा और एक एक कृषिक्षेत्र में दो-तीन दास से अधिक न लगते होंगे।

बताया गया है कि गुप्तकाल में ब्राह्मणों का अग्रहार (भूमिदान) दिए जाने से निजी उद्यम द्वारा ग्रामव्यवस्था को बढावा मिला होगा,[91] यह बात मध्य और दक्षिण भारत के अविकसित क्षेत्रों में सभव रही होगी, किंतु उत्तर बगाल में जहाँ एक जगह भूमि प्राप्त करना कठिन था अथवा गुजरात में नहीं। या तो केवल परती और अविकसित फाजिल भूमि शूद्र जनों के हाथ बदोबस्त की गई होगी क्योंकि पुराने किसान अपनी आबाद जमीन को छोडना न चाहते होंगे अथवा आदिवासी कर्षकों को ही ब्राह्मणीय समाज व्यवस्था में अतर्भुक्त कर लिया गया होगा। कृषि उत्पादन में लगाए जानेवाले दासों और श्रमिकों की धीरे-धीरे छँटनी हो जाने से उन्हें स्वतत्रता तो मिली ही साथ ही बटाईदारों या स्वतत्र किसानों के रूप में अपना कायापलट करने के लिए पृष्ठभूमि तैयार करने में मदद भी मिली।

वैश्य कर्षक थे यह परपरागत विचार इस काल के साहित्य में भी दुहराया गया है।[92] *अमरकोश* में कर्षक के पर्याय वैश्य वर्ग में गिनाए गए हैं।[93] किंतु यह मानने का भी आधार है कि शूद्र भी कर्षक हो जाते थे। मनु की भाँति विष्णु और याज्ञवल्क्य से भी प्रकट होता है कि आधी उपज पर शूद्रों को खेत दिया जाता था।[94] इससे यह सिद्ध होता है कि पट्टा देने की परिपाटी जोर पकड़ती जा रही थी। धीरे धीरे उन्होंने भूमि पर स्थाई कब्जा पा लिया। इस काल (250 350 ई सन) में पल्लवों के, जिनका शासन दक्षिण आध्र प्रदेश और

उत्तर तमिलनाडु पर था, एक दानपत्र से ज्ञात होता है कि जब भूमि ब्राह्मणों को दे दी गई तब भी उस पर चार बटाईदार (आर्थिक) बने रहे।[95] इस दानपत्र में दो कोलिकों के हस्तातरण का भी उल्लेख है,[96] जो कोल जाति के कृषक या कृषि मजदूर रहे होंगे।[97] इसी काल के एक दूसरे पल्लव दानपत्र में कहा गया है कि अतुक[98] नामक व्यक्ति द्वारा आबाद किया हुआ चार निवर्तनों का एक प्लाट हस्तातरित किया गया। यह अतुक भी बटाईदार रहा होगा। इससे यह ध्वनित होता है कि अविकसित इलाकों में भूमि का हस्तातरण हो जाने पर भी बटाईदार उस भूमि से बेदखल नहीं किए जा सकते थे वे सभवतया शूद्र की कोटि में थे। नारद ने कीनाश (किसान) की गणना उन लोगों में की है जो साक्षी बनाने के पात्र नहीं है।[99] सातवीं शताब्दी के एक टीकाकार असहाय[100] ने इस 'कीनाश' शब्द का अर्थ शूद्र किया है।[101] यह व्याख्या ठीक प्रतीत होती है, क्योंकि कीनाश के बाद शूद्रा स्त्री से उत्पन्न पुत्र के बारे में भी नारद ने कहा है कि वह साक्षी होने का पात्र नहीं है।[102] इससे लक्षित होता है कि शूद्र सभवतया किसान समझे जाते थे। *बृहस्पति स्मृति* से भी इसकी पुष्टि होती है। खेतों के सीमा विवाद में आगे रहनेवाले शूद्र के लिए उसमें कठोर शारीरिक दड का विधान है।[103] यह स्पष्ट है कि वे ऐसे विवादों में खेत के मालिक के रूप में ही अगुआ हो सकते थे। *मार्कण्डेय पुराण* में ग्राम उस बस्ती को कहा गया है जहाँ बहुत से शूद्र जन हों और कृषक लोग समृद्ध हों।[104] इन कृषकों में कुछ शूद्र भी रहे होंगे। कात्यायन का विधान है कि यदि कोई ऋण न चुका सके तो उससे काम कराकर ऋण वसूला जाए और यदि वह काम करने योग्य भी न हो तो उसे जेल भेज दिया जाए। किंतु यह विधान निचले तीन वर्णों के किसानों पर लागू है ब्राह्मण पर नहीं।[105] *बृहत्संहिता* में कहा गया है कि दक्षिण में आग लगने से उग्रों और वैश्यों को कष्ट होगा और पश्चिम में आग लगने से शूद्रों और कृषकों को।[106] इससे ध्वनित होता है कि शूद्र और कृषक एक दूसरे के बड़े करीब माने जाते थे। इस प्रकार उपर्युक्त निर्देशों से यह प्रकट होता है कि शूद्र धीरे धीरे किसान होते जा रहे थे।

मध्य भारत के एतत्कालीन दानपत्रों में कर चुकानेवाले कुटुबिन् और कारु लोगों का बार बार उल्लेख है।[107] इसमें कोई संदेह नहीं कि कारु कामगार होने के नाते शूद्र थे किंतु उतनी ही दृढता के साथ कुटुबिन् के विषय में नहीं कहा जा सकता है। कुटुबिन् का अर्थ कृषक[108] या घरेलू चाकर[109] किया गया है। ऐसा भी बताया गया है कि सभवतया कुटुबिन् पेशेवर कारीगरों के ऐसे वर्ग के लोग कहलाते थे जो जीविका के गौण साधन के रूप में खेती करते थे।[110] किंतु प्रतीत होता है कि कारु के विपरीत कुटुबिन् लोग कृषिकर्मी गृहस्थ होते थे। प्राचीन पालि ग्रथों में ये धनवान गृहस्थ[111] प्रतीत होते है और सभवतया ये वैश्य रहे होंगे। कौटिल्य के अर्थशास्त्र में गणपति शास्त्री ने बटाई खेती करनेवाले

कुटुबिन् लोगों को शूद्र माना है।[112] ऐसा लगता है कि कुनबी जो महाराष्ट्र में पाए जाते है और कुर्मी जो बिहार में पाए जाते हैं, कुटुबिन् से ही सबध रखते है। आजकल ये दोनों शूद्र माने जाते हैं पर यह परिवर्तन सभवतया गुप्तकाल में प्रारम्भ हुआ। अतएव यह असभव नहीं कि गुप्तकाल के करदाता कृषक परिवारों में शूद्र भी शामिल थे।

पुनश्च, यदि 'उपरिकर' शब्द का अर्थ अस्थाई किसानों से लिया जानेवाला कर विशेष माना जाए [113] तो ऐसा प्रतीत होता है कि पूर्ववर्ती काल में जो दास और कर्मकर राज्य के या वैयक्तिक स्वामियों के कृषि क्षेत्रों में काम करते थे, उन्हें इस काल में अस्थाई रूप से खेत मिलने लगा था।

सभवतया कृषकों की सख्या बढने भूमि पर आबादी का भार अधिक होने और ऊँची दर पर कर चुकाने में नए किसानों के असमर्थ होने के कारण ही भूमि-राजस्व उपज के चतुर्थांश से घटाकर षष्ठाश कर दिया गया।[114] बृहस्पति का वचन है कि राजा खेती के स्वरूप और उसकी उपज को देखते हुए षष्ठाश अष्टमाश या दशाश उपज ले सकता है।[115]

सातवी शताब्दी ई के पूर्वार्द्ध में हुआन चाङ ने शूद्रों को खेतिहरों के वर्ग के रूप में वर्णित किया है।[116] *नृसिंह पुराण* से इस वर्णन की पुष्टि होती है। वहाँ कृषि को शूद्र का कर्म बताया गया है।[117] किंतु प्रतीत होता है कि यह महत्वपूर्ण परिवर्तन गुप्तकाल में हुआ होगा। कृषक वर्गों में बहुत बडा भाग शूद्र का है,[118] यह धारणा गुप्तकाल के विषय में जितनी सही होगी उतनी शायद पूर्ववर्ती काल के विषय में नही।

अपरिपक्व सुझाव के तौर पर ऐसा विचार पेश किया जा सकता है कि इस महापरिवर्तन के आगमन में लोहे के प्रयोग का व्यापक प्रचलन भी सहायक हुआ होगा। *अमरकोश* में लोहे के सात नाम और लोहे के विकार (जग) (आयरन रस्ट) के दो नाम आए है [119] और इस काल के एक बौद्ध ग्रथ में धातुओं का सविस्तार वर्गीकरण किया गया है।[120] *अमरकोश* मे फाल के भी पाँच नाम दिए गए है [121] जिससे यह अर्थ निकाला जा सकता है कि ये परम महत्वपूर्ण कृषि उपकरण सदा तैयार मिलते थे और खेती गहन रूप से की जाती थी। इस औजार की प्रचुर मात्रा में उपलब्धि के बिना पहले जमाने के दास कर्मकर और आदिवासी जन तथा उच्च वर्णों के अधिकाधिक परिवार—ये सब लोग खेती के काम में नहीं लग पाते। दुर्भाग्यवश, उत्तर भारत की ग्रामीण बस्ती के विविध स्तरों के उत्खनन की ओर अभी तक ध्यान नही दिया गया है जिससे यह पता चलता है कि पूर्वकाल में लोहे के कृषि उपकरणों का प्रयोग किस हद तक होता था। यों स्मृतिकारों ने बताया है कि मजदूरों को औजार दिए जाते थे जो काम के बाद वापस कर देने पडते थे।[122] किंतु कृषि मजदूर स्वय अपने औजार रखे बिना काश्तकार नहीं बन सकते थे। ये

औजार उन्हें इस काल में विकासोन्मुख लौह उद्योग की बदौलत ही मिलते होंगे।

इस काल में शूद्र कारीगरों के महत्व में वृद्धि हुई। पूर्ववर्ती काल के स्मृतिकारों ने शूद्रों को शिल्पकर्म की अनुमति उसी दशा में दी है जब वे द्विज की सेवा करके अपनी जीविका न चला सकें। इस काल में आकर यह शर्त हटा ली गई [123] और शिल्पकर्म शूद्रों के सामान्य कर्त्तव्यों में आ गया।[124] वृहस्पति ने शिल्प का अर्थ किया है सोने हीन धातु, काष्ठ, धागे, पत्थर और चमड़े का काम।[125] *अमरकोश* में शिल्पियों की सूची शूद्र वर्ग में है, इसमें सामान्य शिल्पियों उनके संघ (श्रेणी) के प्रधानों, मालियों धोबियों, राजमिस्त्रियों, जुलाहों दर्जियों चित्रकारों, शस्त्रकारों चर्मकारों, लुहारों, शंख शिल्पियों और ठठेरों में प्रत्येक के दो नाम हैं।[126] इस सूची में स्वर्णकार के चार नाम और बढ़ई के पाँच नाम हैं।[127] अमर ने ढोल बजानेवाले पानीवाले, वंशी और वीणा बजानेवाले [128] अभिनेता, नर्तक और कलाबाज इन सभी का समावेश भी शूद्र वर्ग नामक प्रकरण में किया है।[129] इस सूची से सिद्ध होता है कि शूद्र सभी प्रकार के शिल्पों और कलाओं का व्यवसाय करते थे।[130]

यह पुराना नियम कि शिल्पी लोग मास में एक दिन राजा का काम करेंगे, वृहस्पति ने भी दुहराया है।[131] यह नियम चालू था क्योंकि पश्चिम भारत में मिले छठी शताब्दी ई के एक उत्कीर्ण लेख में कहा गया है कि ग्रामश्रेष्ठ (वारिक) सुनारों, रथकारों, नापितों और कुम्हारों से बेगारी (विष्टि) लें।[132] वसिष्ठ का विधान है कि शिल्प द्वारा अर्जित धन पर करारोपण नहीं किया जाना चाहिए।[133] मौर्योत्तर काल में केवल बुनकरों पर कर लगाया गया था।[134] मगर इस काल में शिल्पियों पर कर लगाने की परिपाटी चल पड़ी। शांतिपर्व में यह विधान है कि शिल्पियों और व्यापारियों के उत्पादन की स्थिति और शिल्प के प्रकार को देखते हुए उन पर कर लगाया जाना चाहिए। करनिर्धारण उत्पादित वस्तुओं की संख्या के आधार पर किया जाए और उसकी वसूली जिन्स के रूप में की जाए।[135] इसमें कोई संदेह नहीं कि शिल्पी राजा को कर चुकाते थे क्योंकि यह बात इस काल के उत्कीर्ण लेखों में बार बार आई है। दक्षिण भारत में प्राप्त 446 ई के एक पल्लव अभिलेख से ज्ञात होता है कि लुहार चमार, बुनकर और नाई तक राजा को कर देते थे।[136] इन सारी बातों से यह प्रमाणित होता है कि इस काल में शूद्र शिल्पियों की आर्थिक स्थिति सुधरी थी और समाज में उनका महत्व बढ़ा था। *कामसूत्र* के एक सदर्भ की टीका से प्रकट होता है कि शूद्र भी शिल्पी अभिनेता आदि के व्यवसाय से धन अर्जित करके नागरिक अर्थात सम्मानित एव प्रतिष्ठित नागरिक बन सकते थे।[137]

करारोपण संबंधी विधानों से प्रकट होता है कि कारीगर लोग जिस प्रकार मौर्यकाल में राज्य द्वारा नियोजित और नियंत्रित रहते थे उस प्रकार इस काल में नहीं रह गए थे। शायद राजधानी में रहनेवाले कारीगर [138] राजाश्रित रहते होंगे। किंतु गाँवों के कारीगरों

का जो बार बार उल्लेख मिलता है, उससे प्रकट होता है कि जनपदों में उनकी संख्या कहीं अधिक थी, जहाँ वे कुछ न कुछ स्वतंत्रता के साथ रह सकते थे और काम कर सकते थे।

संघों के सुदृढ होने से कारीगरों का महत्व बढता गया। ये संघ (श्रेणियाँ) राजधानियों और नगरों के संगठन का अंग माने जाते थे।[139] ये स्पष्टतया कारीगरों और व्यापारियों के संघ थे।[140] जहाँ प्राचीन विधिग्रंथों और कौटिल्य के *अर्थशास्त्र* में कहा गया है कि राजा को संघों के रीति रिवाजों (श्रेणियम) का आदर करना चाहिए,[141] वहीं गुप्तकाल के विधिग्रंथों में राजा को उपदेश दिया गया है कि वह संघों में प्रचलित रीति रिवाजों (रूढ़ियों) का पालन कराए।[142] वृहस्पति ने कहा है कि संघों के प्रधान अन्य लोगों के प्रति विहित नियमों के अनुसार जो कुछ भी करें, राजा को उसका समर्थन करना होगा, क्योंकि वे कार्य व्यवस्थापक के रूप में नियुक्त घोषित हैं।[143] उन्होंने चेताया भी है कि यदि देशाचार, जात्याचार और कुलाचार का पालन न किया जाएगा तो प्रजा असंतुष्ट होगी और उससे संपत्ति घटेगी।[144] इससे प्रतीत होता है कि संघ जैसा चाहें वैसा करने के लिए स्वतंत्र थे और राजा को उनका निर्णय मानना पड़ता था।[145] दूसरे शब्दों में संघ उत्पादन की बहुत कुछ स्वतंत्र इकाइयों के रूप में काम करनेवाले और राजकीय नियंत्रण से परे प्रतीत होते हैं। वे पूर्ववत निक्षेप के रूप में धन प्राप्त करते थे, उस पर ब्याज चुकाते थे और स्पष्टतया उस धन को अपने व्यापार में लगाते थे जैसा कि इंदौर में स्थापित तैलिक संघ के पाँचवी शताब्दी ई के एक उत्कीर्ण लेख से ज्ञात होता है।[146] ऐसे कार्यकलापों के सहारे वे स्वभावतया समृद्धिशाली हो जाते थे, जैसा कि पाँचवीं शताब्दी ई में मंदसौर के रेशमी वस्त्र बुनकरों द्वारा किए गए एक सूर्यमंदिर के निर्माण और मरम्मत से सिद्ध होता है।[147] यह समझना गलत होगा कि ब्राह्मण पुरोहितों की शक्ति के बढ़ने पर संघों का पतन होने लगा।[148] ब्राह्मण स्मृतिकारों ने संघों को मान्यता दी है। इतना ही नहीं, बल्कि गुप्तकाल के पुराभिलेखों में दो संघों को या तो ब्राह्मणों का संपोषण प्राप्त था या ब्राह्मण भी उससे संबद्ध थे।[149]

नियोजकों और कर्मकरों के पारस्परिक संबंध के विषय में जो नियम मिलते हैं उनसे प्रकट होता है कि शूद्रवर्ग से बहाल किये जानेवाले कई कोटि के कर्मकरों की स्थिति में सुधार हुआ। बताया जा चुका है कि अंगीकृत कार्य पूरा न करने पर कौटिल्य ने 12 पण जुर्माना विहित किया है, जो उनके द्वारा विहित मजदूरी का पाँच गुना से बीस गुना तक है।[150] किंतु गुप्तकाल के अधिकांश स्मृतिकारों ने यह नियम बनाया है कि यदि कर्मकर मजदूरी लेकर काम न करे तो उससे मजदूरी का दूना जुर्माना लिया जाए।[151] लेकिन वृहस्पति ने ऐसी स्थिति में कर्मकर की क्षमता के अनुसार अतिरिक्त जुर्माने का विधान किया है।[152] विष्णु का वचन है कि कोई कर्मकर अपना काम पूरा न करे तो वह अपनी पूरी

मजदूरी नियोजक को चुकाने के साथ साथ सौ पण जुर्माना राजा को चुकाए।[153] परंतु इस विधान को उन्होंने एक और नियम बनाकर प्रतिसतुलित कर दिया है, जिसमें काम पूरा न कराने पर नियोजक के लिए भी वैसा ही दड विहित किया गया है।[154] इस सबध में बृहस्पति ने कुछ ऐसे नियम दिए हैं जो इस काल के अन्य विधिग्रथों में नहीं मिलते। एक नियम में बृहस्पति ने किसी विवेचना के बिना ही मनु का यह वचन उतार लिया है जिसमें कहा गया है कि यदि कोई कर्मकर शारीरिक रूप से स्वस्थ होते हुए भी केवल दर्पवश अगीकृत कर्म पूरा न करे तो वह अपनी मजदूरी से वचित होगा और साथ ही आठ कृष्णल के दड का भी भागी होगा।[155] किंतु आगे उन्होंने यह भी कहा है कि यदि कर्मकर अपना काम पूरा न करे तो वह अपनी मजदूरी से वचित होगा और उस पर न्यायालय में मुकदमा चलाया जाएगा।[156] बृहस्पति ने कर्मकर के हित की रक्षा के लिये नियम बनाया है कि यदि नियोजक किसी कर्मकर को काम पूरा कर देने पर भी मजदूरी न दे तो उसे राजा उचित दड देगा।[157] नारद ने यह भी कहा है कि ऐसी स्थिति में नियोजक से ब्याजसहित मजदूरी दिलाई जाएगी।[158] यह स्पष्टतया उस नियम के प्रवर्तन के लिए कहा गया है, जिसके अनुसार नियोजित सेवक को प्रतिज्ञात मजदूरी नियमित रूप से देते रहना नियोजक का कर्तव्य है।[159] इनके एक अन्य नियम का उल्लेख पहले किया जा चुका है जिसमें इन्होंने कहा है कि यदि भारवाहक नियोजक के दोष से काम अधूरा रह जाए तो उसे उतने ही काम का पारिश्रमिक मिलेगा, जितना उसने पूरा किया हो।[160] यह नियम सभवतया अन्य प्रकार के कर्मकरों पर भी लागू किया गया होगा।

चरवाहों के बारे में जो विधान हैं, उनमें इस बात पर जोर दिया गया है कि चरवाहों को सौंपे गए पशुओं की रक्षा करना उनका कर्तव्य है,[161] किंतु पशुओं के नष्ट होने पर मृत्युदड का विधान, जोकि कौटिल्य ने किया है नहीं पाया जाता है। फिर भी बृहस्पति ने कहा है कि चरवाहों के जिम्मे लगाया गया पशु यदि फसल को नुकसान पहुँचाए तो चरवाहों को पीटना चाहिए।[162]

इस प्रकार कुल मिलाकर, काम न करने का दड जितना कठोर मौर्यकाल में था उतना इस काल में न रहा और कुछ ऐसे नियम बने जिनसे नियोजक की ओर से मजदूरी न चुकाए जाने या बुरा बर्ताव किए जाने की स्थिति में कर्मकरों के हितों की रक्षा हो। फिर इस काल के स्मृतिग्रथों में कर्मकरों के लिए प्रेरणादायक पारितोषिक का भी विधान किया गया है। कौटिल्य ने केवल बुनकरों के लिए पारितोषिक की सिफारिश की है[163] किंतु याज्ञवल्क्य ने कहा है कि कर्मकर आशा से अधिक काम करे तो उसके लिए अतिरिक्त पारिश्रमिक दिया जाए।[164] अत गुप्तकाल में नियोजकों और कर्मकरों के पारस्परिक सबध के विषय में जो व्यवस्था दिखाई पडती है उससे यह धारणा बनती है कि पूर्व काल की

तुलना में इस काल में नियोज्य-नियोजक संबंध अधिक सदय और उदार था, और परिणामस्वरूप यह अनुमान किया जा सकता है कि मजदूरी पर खटनेवाले शूद्र वर्ग के लोगों की आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ।

गुप्तकाल में वाणिज्य को भी शूद्रों का कर्तव्य माना जाने लगा। याज्ञवल्क्य कहते हैं कि यदि शूद्र द्विजाति की सेवा से अपनी आजीविका चलाने में असमर्थ हो तो वह वाणिज्य कर सकता है।[165] बृहस्पति कहते हैं कि हर प्रकार की वस्तुओं की बिक्री करना शूद्रों का सामान्य कर्तव्य है।[166] पुराणों में भी कहा गया है कि शूद्र क्रय विक्रय[167] और व्यापारिक लाभ से जीवननिर्वाह कर सकता है।[168] सम्मिलित व्यापार का साझेदार यदि शूद्र हो तो राजा को अपने लाभ का षष्ठांश देगा, वैश्य हो तो नवमांश, क्षत्रिय हो तो दशांश और ब्राह्मण हो तो बीसवाँ अंश।[169] इससे प्रकट होता है कि शूद्रों के लिए व्यापार की शर्तें उतनी अनुकूल नहीं थीं, जितनी उच्च वर्णों के लिए। इतना ही नहीं, भले शूद्र कुछ वस्तुओं के क्रय विक्रय से परहेज रखते थे, जैसे मद्यविक्रय,[170] किंतु इतना तो निश्चित है कि शूद्र व्यापार कर सकते थे और इस विषय में ब्राह्मण स्मृतिकारों ने न केवल शूद्रों और वैश्यों के बीच अपितु शूद्रों और दो उच्चतम वर्णों के बीच भी भेदभाव खत्म कर दिया है। सामान्यतया शूद्र लोग पैकार (वैदेहक) का काम करते थे। इस काल के स्मृतिकारों ने *अर्थशास्त्र* के इस नियम को दुहराया है कि पैकार को विक्रयागम का दसवाँ भाग मिलना चाहिए[171] किंतु शांतिपर्व में इसे बढ़ाकर सातवाँ भाग कर दिया गया है।[172] शायद यह परिवर्तन गुप्तकाल की स्थिति का सूचक है।

व्यापार और वाणिज्य की तीसरी शताब्दी में भारी उन्नति हुई,[173] और इनकी तरक्की में शिल्पी और व्यापारी के रूप में शूद्रों की भूमिका महत्वपूर्ण थी। संभवतया गुप्तकाल में किसान के रूप में भी शूद्रों ने प्रगति की और देश के कृषिमूलक अर्थतंत्र को सुदृढ़ बनाए रहे।

किंतु उच्च वर्णों के लोगों की तुलना में शूद्रों का जीवनस्तर पूर्ववत निम्न बना रहा। वराहमिहिर ने गृहनिर्माण के बारे में जो नियम दिये हैं उनके अनुसार ब्राह्मण के घर में पाँच कमरे क्षत्रिय के घर में चार वैश्य के घर में तीन और शूद्र के घर में दो होने चाहिए। हर स्थिति में मुख्य कमरे की लंबाई चौड़ाई चारों वर्णों की हैसियत के अनुसार भिन्न भिन्न होनी चाहिए।[174] ऐसे नियमों का पालन तो शायद कट्टर ब्राह्मण लोग ही करते होंगे, फिर भी इनसे प्रकट होता है कि निम्न वर्णों के लोगों के बारे में ऐसा नहीं सोचा जा सकता कि वे अच्छे भवनों में रहते हों।

इस काल में भी हमें शूद्र राजाओं की चर्चा मिलती है जैसे सौराष्ट्र अवंति, अर्बुद और मालवा के। इनके साथ साथ परंपरागत शूद्र आभीर[175] और म्लेच्छ राजाओं का भी

उल्लेख मिलता है, जो सभी सिंधु और काश्मीर प्रदेशों में शासन करनेवाले बताए गये हैं। पार्जिटर ने इनका समय चौथी शताब्दी ई. सन् बताया है।[176] परंतु इन्हें जो शूद्र कहा गया है इसका कारण यह नहीं है कि वे शूद्र वंश के थे, बल्कि इसलिए कहा गया है कि इन जनजातीय या विदेशी शासकों ने ब्राह्मणों को विशेष संरक्षण नहीं प्रदान किया था और वे ब्राह्मणधर्म के अनुयायी नहीं थे।[177] किंतु एक नाटक में एक चरवाहे के राजा हो जाने की कथा आई है।[178] याज्ञवल्क्य ने प्राचीन धर्मादेश दुहराया है कि स्नातक को ऐसे राजा से दान नहीं लेना चाहिए, जो क्षत्रिय न हो। उनके ध्यान में उस समय ऐसे ही राजा लोग (या तो जनजातीय या शूद्र) रहे होंगे।[179] किंतु कालक्रमेण इन शासकों को ब्राह्मणों ने मान्यता देकर सम्मान्य क्षत्रिय बना दिया।

मंत्रियों की नियुक्ति के विषय में याज्ञवल्क्य और कामंदक ने उसी पुराने मत को दुहराया है कि वे कुलीन और वेदज्ञ हों[180] जिससे शूद्रों के मंत्री बनने की संभावना ही नहीं रह जाती। किंतु शांतिपर्व में नई व्यवस्था स्थापित की गई है, जिसके अनुसार आठ व्यक्तियों की मंत्रिपरिषद में चार ब्राह्मण, तीन राजभक्त, शिष्ट और विनीत शूद्र और एक सूत रखे जाएँ।[181] हमें ज्ञात नहीं कि इस व्यवस्था का कहाँ तक पालन हुआ, किंतु यह शूद्रों के प्रति ब्राह्मण समाज के रुख में महत्वपूर्ण परिवर्तन का सूचक तो है ही।

न्यायाधीशों और सभ्यों (कौंसिलरों) की नियुक्ति में ऐसी उदारता के चिह्न नहीं मिलते। याज्ञवल्क्य ने कहा है कि राजा विद्वान ब्राह्मणों की सहायता से न्याय करे, जहाँ राजा स्वयं न्याय करने में असमर्थ हो वहाँ वह इन ब्राह्मणों से न्याय कराए।[182] कात्यायन ने यह भी कहा है कि ब्राह्मण न मिले तो क्षत्रिय या वैश्य न्यायाधिकारी बनाया जाए, लेकिन शूद्र का सर्वथा परिहार किया जाए।[183] ठीक यही विचार बृहस्पति ने सभ्यों की नियुक्ति के बारे में व्यक्त किया है।[184] उन्होंने मनु की उस चेतावनी को भी दुहराया है कि जो राजा शूद्र (वृषल) की सहायता से राजकाज करेगा, उसके राज्य के बल और कोष का क्षय होगा।[185]

किंतु विषय (जिला) स्तर पर प्रशासन के कार्य में शिल्पियों के मुखिया का कुछ हाथ रहता था, और वह शूद्र होता था। दामोदरपुर में मिले 433 और 438 ई. के दो ताम्रपत्रों से ज्ञात होता है कि प्रथमकुलिक धृतिमित्र कोटिवर्ष (उत्तर बंगाल स्थित) की जनपद सभा का सदस्य था, जो कुमारामात्य के अधीन था।[186] कुलिक शब्द का अर्थ कोई नगर न्यायाधीश प्रवर (सीनियर टाउन जज) लगाते हैं[187] तो कोई वणिक्।[188] किंतु ऐसा अर्थ पूर्वकालीन ग्रंथों से समर्थित नहीं है। संभव है कि यह कुलिक शब्द *अमरकोश* का कुलक हो, जिसका अर्थ है शिल्पियों का प्रधान और यह उक्त ग्रंथ में शूद्र वर्ग में आया है।[189] लगता है, यह शब्द शिल्पी के अर्थ में *नारद स्मृति* में भी आया है, जहाँ कुलिक की गणना

असत साक्षियों में की गई है।[190] अत प्रथमकुलिक का अर्थ होगा कुलिकों में प्रथम,[191] अर्थात शिल्पिसघ का अध्यक्ष, और इसी नाते वह उत्तर बगाल स्थित कोटिवर्ष जिले की सभा में रखा गया होगा। शायद वैशाली जिला मुख्यालय में भी यही परिपाटी रही होगी, जहाँ दो प्रथमकुलिकों की अलग अलग मुद्राएँ पाई गई हैं।[192] शिल्पिसघों के प्रधान को जनपदीय प्रशासन में जो स्थान दिया गया है, वह इस काल में उनके बढते हुए महत्व के अनुरूप ही है। इसका आभास हमें इस काल के एक जैन ग्रथ में भी मिलता है, जिसमें बढई अर्थात वास्तुकार को चतुर्दश रत्नों में गिनाया गया है।[193] इन सब बातों से प्रकट होता है कि शूद्र शिल्पियों की नागरिक प्रतिष्ठा में कुछ सुधार हुआ।

सामान्यतया शूद्र छोटे छोटे प्रशासनिक कार्य करते रहे। कामदक ने कौटिल्य के इस विचार को दुहराया है कि घरेलू सेवकों से राज्य के ऊँचे अधिकारियों की गतिविधि के सबध में जानकारी प्राप्त करने का काम लिया जाए।[194] नारद ने कहा है कि चडालों जल्लादों (वधिकों) और इस तरह के अन्य लोगों से गाँव के भीतर चोरों का पता लगाने का काम लिया जाए और गाँव के बाहर रहनेवाले गाँव के बाहर चोरों का पता लगाएँ।[195]

न्यायप्रशासन में पुराने भेदभाव पूर्ववत बने रहे। बृहस्पति ने नियम बनाया है कि साक्षी कुलीन हों और नियमपूर्वक वेदों और स्मृतियों में विहित धार्मिक कर्म करनेवाले हों।[196] इनसे शूद्र स्वत बहिष्कृत हो जाते हैं। शूद्र शूद्रों के लिए ही साक्षी हो सकते हैं, इस नियम को इस काल के स्मृतिकारों ने भी दुहराया है।[197] कात्यायन कहते है कि किसी मुकदमे में अभियुक्त के खिलाफ गवाही वही दे सकता है जो जाति में उसके समकक्ष हो। निम्न जाति का वादी उच्च जाति के साक्षियों से अपना वाद प्रमाणित नहीं करा सकता है।[198] नारद ने जो असत् साक्षियों की सूची दी है उसमें जादूगर, नट, मद्यविक्रयी, तेली, महावत, चर्मकार चडाल शूद्र किसान (कीनाश) शूद्रापुत्र और जाति बहिष्कृत (पतित) लोग समाविष्ट हैं।[199] नारद ने साक्ष्य देने में पुरानी वर्णभेदमूलक व्यवस्था में कुछ सुधार लाते हुए कहा है कि सभी वर्णों के वाद में सभी वर्णों के साक्षी लिए जा सकते हैं।[200] व्यभिचार चोरी अवमानन, और हमले के मामलों में कोई भी साक्षी हो सकता है।[201] घरों और खेतों के सीमाविवाद में बृहस्पति के अनुसार, कृषक शिल्पी मजदूर चरवाहा शिकारी उञ्छक (सिल्ला बीननेवाला) कद खोदनेवाले और कैवर्त (मछुवा) नैसर्गिक साक्षी हो सकते हैं।[202] यह महत्वपूर्ण परिवर्तन है क्योकि याज्ञवल्क्य ने यह प्रतिष्ठा केवल खेतों के सीमाविवाद में, मात्र चरवाहों किसानों और वनचारियों को दी है।[203] मनु ने तो इस विषय में इससे भी अधिक अनुदारता बरती है क्योकि उन्होंने केवल ग्रामसीमा के विवाद में ही शिकारियों, बहेलियों, चरवाहों मछुओं कद खोदनेवालों सपेरों सिल्ला बीननेवालों और वनचारियों को साक्षी बनाने की अनुज्ञा दी है और वह भी वहाँ जहाँ दो चार पडोसी गाँवों में साक्षी न

मिले।[204] बृहस्पति ने जो साक्षी गिनाए हैं वे अधिकांशतया शूद्र वर्ण के हैं, अत उनकी इस व्यवस्था से शूद्रों की प्रतिष्ठा में महत्वपूर्ण वृद्धि हुई है जो किसान और कारीगर के रूप में इनकी नई हैसियत के अनुरूप है। यह महत्वपूर्ण अधिकार है, क्योंकि सीमाविवाद स्वभावतया अन्य प्रकार के किसी भी विवाद से अधिक मात्रा में उठते रहे होंगे।

फिर भी इस काल के स्मृतिकारों ने पूर्ववत, गवाही लेते समय दी जानेवाली चेतावनी को, भिन्न भिन्न वर्णों के लिए भिन्न भिन्न बनाए रखा है। इसमें शूद्रों को दी जानेवाली चेतावनी सबसे कड़ी है।[205]

दिव्यों में (दैवी साधनों से दोष पता लगाने में) वर्णमूलक भेद व्यवहार, जो मनु में नहीं पाया जाता है,[206] इस काल के स्मृतिकारों ने स्थापित किया है।[207] याज्ञवल्क्य ने कहा है कि अग्नि जल और विष का दिव्य केवल शूद्र से कराया जाए और ब्राह्मण से तुला दिव्य कराया जाए।[208] इस संबंध में उन्होंने क्षत्रिय और वैश्य का उल्लेख नहीं किया है, किंतु अन्य स्मृतिकारों ने कहा है कि ब्राह्मण की परीक्षा तुला से की जाए, क्षत्रिय की अग्नि से वैश्य की जल से और शूद्र की विष से।[209] किंतु यहाँ भी बृहस्पति ने यह विकल्प रख दिया है कि सभी वर्णों से सभी दिव्य कराए जा सकते हैं, सिर्फ विषवाला दिव्य ब्राह्मण से न कराया जाए।[210] नारद का भी वैकल्पिक नियम है कि विष दिव्य क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र से कराया जा सकता है।[211] विष्णु ने कहा है कि यह दिव्य ब्राह्मण से नहीं कराया जा सकता है[212] जैसा कि नारद और कात्यायन का भी मत है।[213] विष्णु ने नकारे गए निक्षेप या चोरी या लूट के माल के मूल्य के अनुसार शूद्रों के लिए विभिन्न प्रकार के शपथ और अभिमंत्रित जल पिलाकर दिव्य कराने का विधान किया है।[214] यदि मूल्य आधे सुवर्ण से अधिक हो तो न्यायाधीश शूद्र से तुला अग्नि जल और विष चारों में से कोई भी दिव्य करा सकता है।[215] किंतु विष्णु ने इन चारों दिव्यों के प्रयोग के बारे में विस्तृत नियम बताते हुए भी[216] अन्य स्मृतिकारों की भाँति वर्णभेद से दिव्यभेद का विधान नहीं किया है। शायद ब्राह्मणों के विषय में कुछ विशेष अनुग्रह दिखाया गया है, जिनसे विषदिव्य नहीं कराया जा सकता है इसके सिवा दिव्य के विषय में वर्णमूलक व्यवहार भेद नहीं होता था। जल का दिव्य तीसरी शताब्दी ई में संभवतया सातवाहनों के राज्य में चलता था।[217] परंतु यह किसी खास वर्ण में ही चलता था इसका कोई प्रमाण नहीं है। फिर भी ऐसा प्रतीत होता है कि जो कबीले और विदेशी जन ब्राह्मण समाज में लीन होने की प्रक्रिया में थे उनके बीच भिन्न भिन्न प्रकार के दिव्य प्रचलित रहे होंगे। इसलिए कात्यायन ने कहा है कि अस्पृश्यों, अधमों, दासों और म्लेच्छों के जो अपने दिव्य है उनसे वे ही दिव्य कराए जाएँ।[218]

मनु का विधान है कि न्यायालय में अर्जी वर्ण के क्रम से सुनी जाए[219] किंतु इस काल के स्मृतिकारों ने शायद इस नियम का उल्लेख नहीं किया है। फिर भी

व्यवहार-विधियों में वर्णमूलक भेदभाव चलता रहा । जिन वादों में प्रतिभूति देने की आवश्यकता है, वहाँ कात्यायन ने द्विजों और शूद्रों के बीच भेद का विधान किया है । प्रतिभूति न देने पर द्विज को केवल प्रहरियों की देखभाल में रख देना चाहिए, शूद्र ओर अन्य लोगों को बेड़ी लगाकर कैदखाने में रखना चाहिए ।[220] परतु उन्होंने बधन तोडकर भागनेवाले सभी लोगों के लिए, चाहे वे किसी भी वर्ण के हों, समान रूप से आठ पण जुर्माने का विधान किया है ।[221] उन्होंने यह भी कहा है कि बधन में रहते समय किसी भी वर्ण के दैनिक नित्यकर्मों के अनुष्ठान पर कोई रोक टोक नहीं होनी चाहिए ।[222]

दाय विधि (लॉ ऑफ इनहेरिटेंस) में यह नियम पूर्ववत बना रहा कि उच्च वर्ण के शूद्रापुत्र को दाय में सबसे कम अश मिलेगा ।[223] विष्णु ने विविध परिस्थितियों में ब्राह्मण के शूद्रापुत्र का अश निर्धारित करते हुए[224] उदारतापूर्वक यह नियम बनाया है कि द्विज पिता और शूद्र माता से उत्पन्न पुत्र अपने पिता के आधे धन का उत्तराधिकारी होगा ।[225] किंतु बृहस्पति ने उसी पुरान नियम का दुहराया है कि शूद्रा के गर्भ से उत्पन्न पुत्र पिता के अन्य पुत्र न होने पर भी केवल भरणपोषण पाने का अधिकारी होगा ।[226] कहा गया है कि द्विज पिता और शूद्र माता से उत्पन्न पुत्र भूमि सपत्ति में अश पाने का हकदार नही है ।[227] किंतु एक जगह अनुशासनपर्व में जोर देकर कहा गया है कि शूद्रापुत्र को सपत्ति अवश्य मिलनी चाहिए ।[228] इस विधान की इस काल के अन्य स्मृतिग्रथों से भी पुष्टि होती है ।

ऐसा नियम है कि शूद्र की सपत्ति उसके पुत्रों के बीच समान अशों में बाँटी जाएगी ।[229] याज्ञवल्क्य ने कहा है कि शूद्र पिता और दासी माता से उत्पन्न पुत्र को सपत्ति में तभी हिस्सा मिलेगा जब पिता चाहे ।[230] अनुशासनपर्व में इतना ओर जोडा गया है कि यह अश सपत्ति का दसवाँ भाग ही होगा ।[231]

चारों विभिन्न वर्णों के लिए ब्याज की भिन्न भिन्न दरें निर्धारित करनेवाला प्राचीन नियम इस काल के दो स्मृतिग्रथों में भी दुहराया गया है ।[232] परतु याज्ञवल्क्य ने इसको सुधारते हुए बताया है कि करार से जो भी तय हो वही ब्याज चुकाया जा सकता है ।[233]

निखात निधि सबधी नियम वर्णभेद पर आश्रित है । स्मृतिकारों के अनुसार यदि ब्राह्मण निखात निधि (गडा खजाना) पाए तो वह उसे पूर्णतया ले सकता है ।[234] विष्णु ने इसमें यह भी जोडा है कि यदि क्षत्रिय निधि पाए तो उसका एक एक चोथाई राजा और ब्राह्मण को देगा ओर आधा स्वय रख लेगा यदि वैश्य पाए तो एक चोथाई राजा को देगा, आधा ब्राह्मण को देगा और एक चौथाई स्वय रखेगा और शूद्र पाए तो उसे बारह भागों में बाँटकर पाँच पाँच भाग राजा और ब्राह्मण को देगा और दो भाग स्वय रखेगा । यद्यपि निखात निधि में शूद्र का अश सबसे कम है फिर भी यह कौटिल्य के अनुसार मजदूर (भृतक) को मिलने वाले अश का दूना है ।[236] यह कहना कठिन है कि निखात निधि सबधी

यह नियम कहाँ तक प्रचलन में था। एक जैन ग्रंथ में ऐसा उल्लेख है कि जब निखात निधि एक वणिक को मिली तब राजा ने उसे जब्त कर लिया किंतु जब इसी तरह ब्राह्मण को ऐसी निधि मिली, तब राजा ने उसे पुरस्कृत किया।[237]

सामान्यतया ब्राह्मण के विरुद्ध किए गए अपराध कर्म के लिए शूद्रों को क्रूर शारीरिक दंड देने के विधान को, नारद ने, और कुछ मामलों में बृहस्पति ने भी, दुहराया है।[238] बृहस्पति ने कहा है कि शूद्र को आर्थिक दंड नहीं दिया जाए, बल्कि ताडन, बंधन और निंदन का दंड दिया जाए।[239] बृहस्पति विशेष रूप से प्रतिलोमों (अर्थात उच्च वर्ण की माता और निम्न वर्ण के पिता की संतानों) और अंत्यों (अछूतों) के प्रति कठोर हैं, जिन्हें वे समाज का मल समझते है। यदि वे ब्राह्मण का अपराध करें तो उन्हें पीटना चाहिए और अर्थदंड कभी नहीं देना चाहिए।[240] यही विधान नारद ने श्वपचों मेदों, चंडालों, हस्तिपों (महावतों) दासों आदि के लिए किया है।[241] नारद ने इतना और कहा है कि इन मामलों में अपराध से पीडित व्यक्ति स्वयं अपराधी को दंड दें, क्योंकि अपराधी को दिए जानेवाले दंड से राजा को कोई मतलब नहीं है।[242] यह राजकीय शक्ति के ह्रास का महत्वपूर्ण संकेत है। यदि कोई ब्राह्मण शूद्र को दुर्वचन कहे तो उसे साढ़े बारह पण का दंड दिया जाए यह नियम इस काल की स्मृतियों में भी दुहराया गया है।[243] किंतु बृहस्पति ने यह भी कहा है कि यह नियम गुणवान शूद्रों के विषय में ही लागू होता है, गुणहीन शूद्रों को दुर्वचन कहने के लिए ब्राह्मण दंडनीय नहीं है।[244] संभवतया यह अस्पृश्य शूद्रों के विषय में कहा गया है जिनके लिए ऐसे विषयों में विधि में कोई परित्राण नहीं है। किंतु इस विषय में शूद्रों के अन्य वर्गों को उच्च वर्ण के लोगों द्वारा किए गए अपराध के विरुद्ध कानूनी सुरक्षाप्राप्त थी।[245]

यद्यपि यह कहा गया है कि शूद्रों को शारीरिक दंड दिया जाए, तथापि बृहस्पति ने वैश्य, क्षत्रिय और ब्राह्मण को दुर्वचन कहने के लिए विहित दंडों की जो तालिका दी है उसमें इसका कोई संकेत नहीं मिलता है।[246] फाहियान ने लिखा है कि मध्य देश में राजा मृत्युदंड या अन्य शारीरिक दंड दिए बिना ही शासन करता था।[247] यह अत्युक्ति हो सकती है, फिर भी इससे यह ध्वनित होता है कि शारीरिक दंड का प्रचलन पूर्व की तुलना में कम हो गया था जिससे शूद्रों का कल्याण हुआ। याज्ञवल्क्य वर्णमूलक विधान का सिद्धांत तो मानते हैं,[248] फिर भी उन्होंने शूद्र अपराधियों के लिए मनु के क्रूर दंडविधान को दुहराया नहीं है। उनके हमला संबंधी एक नियम में वर्णभेद का आभास नहीं है। उन्होंने कहा है कि यदि दोनों पक्ष अस्त्रप्रहार की धमकी दें तो सबको समान दंड मिलेगा[249] किंतु यदि कोई अब्राह्मण ब्राह्मण को पीडित करे तो उसका अंग काट लिया जाएगा।[250] यह स्पष्ट नहीं होता है कि यह नियम ब्राह्मण पर हमला करनेवाले शूद्रों पर भी लागू था या नहीं।

विष्णु ने अपनी जाति की परस्त्री का सग करने पर उत्तम कोटि के दड का और निम्नतर जाति की परस्त्री का सग करने पर मध्यम कोटि के दड का विधान किया है।[251] परतु यह अदभुत बात है कि उन्होंने अत्यज स्त्री से सभोग करने पर सीधे मृत्युदड का विधान कर दिया है [252] (बशर्ते कि वहाँ 'वध्य' शब्द पिटाई के अर्थ में युक्त न माना जाए)। परतु यह उनके अपने ही एक दूसरे विधान के विरुद्ध है, जिसके अनुसार यदि कोई ब्राह्मण चडाल स्त्री से एक रात सभोग करे तो तीन वर्षों तक भिक्षाटन पर जीने और निरतर गायत्री जपने से शुद्ध होगा।[253] किंतु यह द्रष्टव्य है कि द्विजाति स्त्री का सग करने पर शूद्र के लिए मनु ने जो कठोर दड विहित किया है, वह इस काल की किसी भी विधि सहिता में नहीं पाया जाता।

इस काल के विधिग्रथों में विभिन्न वर्णों के वध के लिए प्रतिकार का भिन्न भिन्न मानदड विहित नहीं किया गया है। फिर भी विष्णु ने हत्या के पाप के लिए प्रायश्चित के भिन्न भिन्न मानदड विहित किए हैं। जैसे, ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र की हत्या के पाप की शुद्धि के लिए क्रमश 12 9 और 3 वर्ष महाव्रत नामक तप करना है।[254] इसका कोई प्रमाण तो नहीं मिलता है कि ऐसे प्रायश्चित वस्तुत कराए जाते थे, किंतु इससे प्रकट होता है कि चारों वर्णों के जीवन का आपेक्षिक महत्व क्या था। परतु विष्णु और याज्ञवल्क्य क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र के वध को चतुर्थ कोटि का अपराध (उपपातक) मानते हैं,[255] और विष्णु के अनुसार अपराधी को चाद्रायण या पराक नामक व्रत या गोमेध यज्ञ करना चाहिए।[256] इस तरह के उपबध से शूद्र, वैश्य और क्षत्रिय एक कोटि में आते हैं और ब्राह्मण को उन सबों से विशिष्ट स्थान मिलता है। शातिपर्व के एक हस्तलेख में पाए जानेवाले एक सदर्भ से भी यह चित्तवृत्ति लक्षित होती है। इसमें कहा गया है कि यदि कोई क्षत्रिय, वैश्य या शूद्र ब्रह्महत्या करे तो या तो उसकी आँखें निकाल ली जाएँ या उसे मार दिया जाए, किंतु यदि कोई ब्राह्मण ऐसा अपराध करे तो देश से निष्कासित कर दिया जाए।[257] उसी हस्तलेख के एक दूसरे सदर्भ में कहा गया है कि जो ब्राह्मण पापकर्म करनेवाला हो और हत्यारा हो या मित्रों के बीच चोर हो तथा जो क्षत्रिय या वैश्य या शूद्र ब्राह्मण की हत्या का अपराधी हो, उसकी आँखें निकाल ली जाएँ।[258] इस प्रकार यहाँ दड में वर्ण भेद नहीं किया गया है।

प्रतीत होता है कि दडविधान में वर्णभेद गुप्तकाल में कमजोर हो चला था। पश्चिम भारत के छठी शताब्दी के एक उत्कीर्ण लेख में मानहानि हमला और हिंसा के लिए वर्णानुसार दडों का उल्लेख नहीं है।[259] फाहियान ने बताया है कि मध्य देश में हर अपराधी को उसके अपराध के गुरुत्व के अनुसार दड दिया जाता था,[260] जिससे ध्वनित होता है कि अपराधी को उसके वर्ण के अनुसार दड नहीं दिया जाता था। हो सकता है कि दडविधान में ब्राह्मणों के प्रति कुछ अनुग्रह किया जाता हो, किंतु जिस प्रकार पूर्वकाल में

कठोर दंड केवल शूद्रों के लिए थे, वैसा इस काल में हम नहीं पाते हैं।

नारद ने इस पुराने मत को अपनाया है कि चोरी करने पर ब्राह्मण का अपराध सबसे अधिक और शूद्र का अपराध सबसे कम माना जाएगा।[261] यह शायद इस सिद्धांत पर आधारित है कि ब्राह्मण को धर्म के चारों चरणों (पूरी मात्रा) का पालन करना है, क्षत्रिय को तीन चरणों का, वैश्य को दो चरणों का और शूद्र को एक चरण का। चारों वर्णों के प्रायश्चित के लिए पाप का गुरुत्व या लघुत्व इसी सिद्धांत पर निर्धारित किया जाना चाहिए।[262] *कात्यायन ने जो यह कहा है कि शूद्र के लिए जो दंड है, क्षत्रिय या ब्राह्मण को* उसका दूना दंड मिलना चाहिए,[263] उसका भी तात्पर्य चोरी से ही रहा होगा। यहाँ वैश्यों का उल्लेख न होना इस बात का सूचक है कि वे शूद्रों में समाविष्ट होते जा रहे थे। किंतु इन सबों से यह लक्षित होता है कि शूद्र स्वभावतया चोर समझे जाते थे, और इस अनुमान का समर्थन *अमरकोश* से भी होता है जहाँ चोरों और दस्युओं के पर्याय शूद्र वर्ग में गिनाए गए हैं।[264]

दस्युओं का उल्लेख शांतिपर्व में राजा के शत्रु और प्रजा की सुख शांति पर खतरा पहुँचानेवाले के रूप में बारबार किया गया है।[265] संभवतया इसका संकेत राज्य के बाहरी शत्रुओं की ओर है, न कि शूद्रों की ओर, क्योंकि कहा गया है कि यदि दस्युओं के उत्पात से वर्णों के मिश्रण की आशंका हो तो ब्राह्मण वैश्य और शूद्र सभी शस्त्र ग्रहण कर सकते हैं।[266] *यह तर्क दिया गया है कि शूद्र हो या और कोई वर्ण जो सेतुहीन धारा में सेतु का* काम करे, पार होने के साधनों के अभाव में तरणि का काम करे वह अवश्य ही सर्वत्र पूजनीय है।[267] जो व्यक्ति दस्युओं से असहायों की रक्षा करे वह स्वजनवत सबके लिए आदरणीय है।[268] *धनुर्वेद संहिता*[269] में कहा गया है कि तीन ऊँचे वर्णों के लोग सामान्यतया शस्त्र ग्रहण कर सकते हैं, किंतु शूद्र केवल आपतकाल में ही ऐसा कर सकता है।[270] लेकिन उसमें आगे यह भी कहा गया है कि ब्राह्मण धनुष का प्रयोग करें, क्षत्रिय तलवार का वैश्य बरछे का और शूद्र गदा का।[271] इस प्रकार उपर्युक्त संदर्भों से सिद्ध होता है कि शूद्रों को शस्त्र ग्रहण करने का अधिकार दे दिया गया था। इससे शूद्रों की नागरिक प्रतिष्ठा में महत्वपूर्ण परिवर्तन की सूचना मिलती है क्योंकि पूर्व काल के स्मृतिकारों ने उन्हें शस्त्र ग्रहण की अनुमति नहीं दी थी। यह नवीन परिवर्तन शूद्रों के कृषक वर्ग के रूप में परिणत होने के साथ साथ हुआ और यह सिद्ध करता है कि वर्णव्यवस्था के अनुयायियों के हृदय में अब पहले की यह आशंका नहीं रही कि शूद्र उनके काबू से कहीं बाहर हो जाएँगे। मालूम होता है कि शूद्र सेना में भरती किए जाते थे। इस काल के एक नाटक में दो सैनिक पदाधिकारी क्रमश नाई और चमार जाति के हैं।[272]

परंतु शूद्रों के प्रति किए गए इन अनुग्रहों के बावजूद इन वर्णों के बीच भीतरी संघर्ष

का अंत न हुआ। शांतिपर्व में कम से कम नौ ऐसे श्लोक हैं जिनमें ब्राह्मणों और क्षत्रियों के बीच मेलमिलाप की आवश्यकता पर जोर दिया गया है[273] जिससे शायद यह सूचित होता है कि वैश्य और शूद्र वर्ग संयुक्त रूप से विरोध के लिए सन्नद्ध थे। कहा गया है कि एक बार शूद्रों और वैश्यों ने जान बूझकर ब्राह्मणों की स्त्रियों का संग करना शुरू किया।[274] कई ऐसे प्रसंग आए हैं, जिनसे ध्वनित होता है कि शूद्र विशेष रूप से वर्तमान समाजव्यवस्था के विरोधी थे। अनुशासनपर्व में कहा गया है कि शूद्र राजा के नाशक होते हैं, इसलिए चतुर राजा को इस खतरे के प्रति लापरवाह नहीं रहना चाहिए।[275] अश्वमेधिक पर्व के एक लंबे परिच्छेद में जो अंशतः *वशिष्ठ धर्मशास्त्र* से उद्धृत है, शूद्रों को शत्रु, हिंसक, अहंकारी क्रोधी मिथ्याभाषी परम लोभी, कृतघ्न, नास्तिक, आलसी और अपवित्र कहा गया है।[276] इसी प्रकार, मनु की भाँति शांतिपर्व में कहा गया है कि वृषल (अर्थात शूद्र) वह है जो धर्म (स्थापित समाज व्यवस्था) का विरोध करे।[277] शूद्रों के विरोधी रुख का आभास *नारद स्मृति* के एक श्लोक में भी मिलता है। इसमें कहा गया है कि यदि राजा दंड का प्रयोग न करे तो ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य सभी अपना अपना कर्तव्य त्याग देंगे किंतु इसमें शूद्र तो सबसे आगे बढ़ जाएँगे।[278] *याज्ञवल्क्य* ने *कौटिल्य* के इस वचन को दुहराया है कि यदि शूद्र दूसरों की आँखें निकाले,[279] ब्राह्मण होने का पाखंड करे और राजविरोधी कार्य करे तो उस पर 800 पण जुर्माना किया जाए।[280] नट, जुआरी, जुआघर चलाने वाले आदि शूद्र राज्य में अव्यवस्था उत्पन्न करनेवाले माने जाते थे क्योंकि वे भद्र नागरिकों (भद्रिका प्रजा) का अपकार करते थे।[281] शांतिपर्व में कहा गया है कि दासों और म्लेच्छों के साथ निपटने की जिम्मेदारी एक ही प्रकार के अधिकारी को दी जाए और चंडालों व म्लेच्छों के प्रति बलप्रयोग किया जाए।[282] इन बातों से ध्वनित होता है कि शूद्रों और शासक वर्गों के बीच पुराना संघर्ष किसी न किसी रूप में बना रहा, पर इसकी पुरानी तीव्रता जाती रही संभवतया इन कारणों से—शूद्र मंत्रियों का रखा जाना, जिला प्रशासन के कार्यों में शिल्पिसंघों के प्रधानों को सहयोजित करना न्याय में वर्णमूलक भेदभाव में न्यूनता आना और अंत में संकट की घड़ी में शूद्रों को हथियार उठाने का अधिकार मिलना।

चारों वर्णों की उत्पत्ति की पुरानी कहानी[283] तो पूर्ववत दुहराई जाती रही किंतु *वायु* और *ब्रह्मांड पुराणों* में मनु के इस कथन का समर्थन किया गया है कि शूद्रों के मूल पुरुष वसिष्ठ थे[284] जिसका अर्थ हुआ कि उनकी सुधरी सामाजिक प्रतिष्ठा की मान्यता कायम रही।

सफेद लाल, पीला और काला—इन चार रंगों का संबंध जो क्रमशः ब्राह्मणादि चार वर्णों से जोड़ा गया है वह वर्णों की सापेक्षिक सामाजिक प्रतिष्ठा का सूचक है।[285] नटों अर्थात अभिनेताओं का वर्णन करते हुए *नाट्यशास्त्र* में कहा गया है कि ब्राह्मण और क्षत्रिय

के लिए लाल परिधान होना चाहिए,[286] और वैश्य व शूद्र के लिए काला या श्याम ।[287] इस ग्रंथ में यह भी कहा गया है कि प्रेक्षागृह में ब्राह्मणों का स्थान सूचित करने के लिए एक श्वेत स्तंभ खडा किया जाए, क्षत्रियों का स्थान सूचित करने के लिए लाल स्तंभ वैश्यों का स्थान सूचित करने के लिए पीला स्तंभ और शूद्रों का स्थान सूचित करने के लिए श्याम स्तंभ ।[288] ब्राह्मण स्तंभ के तल भाग में सोने के आभूषण डाले जाएँ, क्षत्रिय स्तंभ के तल भाग में ताम्र के, वैश्यों के स्तंभ के तल भाग में चाँदी के, और शूद्र स्तंभ के तल भाग में लोहे के ।[289] यह कल्पना प्लेटो की उस कल्पना से मिलती है जिसमें कहा गया है कि दार्शनिकों का निर्माण स्वर्ण से हुआ, सैनिकों का चाँदी से तथा कृषकों और शिल्पियों का पीतल और लोहे से ।[290]

शूद्रों का भी उपनाम दास होना चाहिए,[291] इस नियम का अनुसरण शायद नहीं किया गया है । उदाहरणार्थ रविकीर्ति नामक ब्राह्मण के एक पूर्वज का नाम वराहदास था,[292] और चंद्रगुप्त द्वितीय के सामंत सनकानीकों के एक शासक का नाम महाराज विष्णुदास था ।[293] *नाट्यशास्त्र* में कहा गया है कि नाटक में ब्राह्मणों और क्षत्रियों के नाम अपने गोत्र और कर्म के सूचक, वणिकों के नाम उनकी उदारता के सूचक और सेवकों के नाम विभिन्न पुष्पों के सूचक होने चाहिए ।[294] मालूम नहीं शूद्रों का नाम फूल पर क्यों रखा जाता था ।

कुशल पूछने में विभिन्न वर्णों के विषय में विभिन्न शब्द के प्रयोग का जो नियम था उस पर इस काल में जोर दिया गया नहीं जान पडता । किंतु *नाट्यशास्त्र* में कहा गया है कि दासी दासों, शिल्पियों और यात्रिकों के साथ बातचीत करने में उन्हें आज्ञावाचक शब्दों से संबोधित किया जाना चाहिए ।[295] इससे यह सूचित होता है कि निम्न जाति के लोग अनादरपूर्वक संबोधित किए जाते थे। *मृच्छकटिक* नाटक में अधम वर्ग के लोगों के संबोधन में 'दासी के बेटे', 'रखैल के बेटे', 'जार के बेटे आदि गालियों का प्रयोग किया गया है ।[296]

नाट्यशास्त्र में भी मंचस्थ नीच पात्रों का चित्रण करते हुए उनके लिए भिन्न प्रकार के पद संचार और अंग संचार का विधान किया गया है । इस विधान के अनुसार ऐसे पात्रों के शरीर का कोई भाग या माथा या हाथ अथवा पाँव झुका रहना चाहिए और उनकी नजर विभिन्न वस्तुओं पर फिरती रहनी चाहिए ।[297] ऐसी भंगिमाओं से उनमें आत्मबल का अभाव झलकता है और यह सिद्ध होता है कि उन्हें अपने प्रभुओं के समक्ष सिर ऊपर उठाने की गुस्ताखी नहीं करने दी जाती थी ।

याज्ञवल्क्य ने कहा है कि वयोवृद्ध शूद्रों का आदर करना चाहिए ।[298] पूर्व के स्मृतिकारों की भाँति इन्होंने इस बात पर जोर नहीं दिया है कि यदि वैश्य और शूद्र अतिथि

होकर आएँ तो उनसे काम कराया जाए और उन्हें भृत्यों के साथ खिलाया जाए। फिर भी इन्होंने यह विधान किया है कि अतिथियों का सत्कार और उनका भोजन उनके वर्ण के अनुरूप होना चाहिए।[299] परंतु इन्होंने जो कहा है कि शाम के समय आए अतिथि को जाने नहीं दिया जाए और जो भी कुछ सभव हो, उससे उसका सत्कार करना चाहिए[300] वह किसी वर्ण विशेष तक ही सीमित नहीं है। वेश्वदेव अनुष्ठान के बाद चडालों को खिलाने का जो नियम *धर्मसूत्र* में था वह इस युग में भी दुहराया गया है,[301] और इसमें चडाल के साथ दास श्वपाक और भिखारी का भी उल्लेख है।[302]

इस काल के ग्रथों में बार बार कहा गया है कि ब्राह्मण को शूद्र का अन्न नहीं खाना चाहिए क्योंकि इससे ब्रह्मवर्चस् (आध्यात्मिक बल) घटता है।[303] शातिपर्व में बढई, चर्मकार, धोबी और रजक का अन्न ब्राह्मण के लिए निषिद्ध बताया गया है।[304] याज्ञवल्क्य के अनुसार शूद्रों और पतितों का अन्न स्नातकों के लिए अग्राह्य है।[305] उन्होंने आगे स्पष्ट किया है कि स्नातक को रगजीवी, बाँस का काम करनेवाले, स्वर्णकार, शस्त्रविक्रेता शिल्पी, दर्जी, रगरेज, कुत्तों से जीविका चलानेवाले, कसाई, धोबी या तेली का अन्न नही ग्रहण करना चाहिए।[306] कई शूद्रों के अन्न को क्षत्रिय के लिए भी अग्राह्य करने की परपरा चली। कहा गया है कि जो शूद्र कुमार्गगामी और सर्वभक्षी हों उनकाअन्न क्षत्रिय के लिए भी वर्जनीय है।[307] अनुशासनपर्व घोषित करता है कि जो शूद्र का अन्न खाता है, वह धरती का मल खाता है, शरीर का विकार पीता है और समस्त ससार के कलुष का भागी होता है।[308] शायद ऐसा इसलिए कहा गया है कि ब्राह्मण डरकर ऐसा करने से विरत रहे। जो ब्राह्मण शूद्र का अन्न ग्रहण करे या वैश्य और क्षत्रियों की पगत में खाए उसके लिए प्रायश्चित्त का विधान किया गया है।[309]

शूद्रान्न के वर्जन सबधी नियम बहुत सीमित मात्रा में लागू होते हैं। वे या तो ब्राह्मणों पर लागू है या स्नातकों पर, जो अधिकतर ब्राह्मण होते होंगे। ब्राह्मण को भी शूद्र के घर से दूध और दही लेने की अनुज्ञा है।[310] यदि ब्राह्मण द्विजों से अन्न प्राप्त कर अपनी जीविका चलाने में असमर्थ हो तो वह शूद्र का अन्न भी ग्रहण कर सकता है।[311] याज्ञवल्क्य ने मनु के इस नियम को दुहराया है कि शूद्रों के बीच स्नातक अपने चरवाहे का परिवार के मित्र का दास का नाई का बटाईदार का, और भरण पोषण के लिए शरणापन्न व्यक्ति का अन्न ग्रहण कर सकता है।[312] बृहस्पति ने भी दासों और शूद्रों का अन्न ग्राह्य बताया है।[313] शूद्र का उच्छिष्ट खाना या छूना द्विज के लिए घोर कुकर्म समझा जाता था और इसके लिए समुचित प्रायश्चित्त का विधान किया गया है।[314]

कोई प्रमाण नही मिलता कि चडालों और अन्य अछूतों को छोडकर कुछ शूद्र जातियों का पानी पीना निषिद्ध था। *मृच्छकटिक* में कहा गया है कि ब्राह्मण और शूद्र एक ही कुएँ

से पानी भरते थे।[315]

याज्ञवल्क्य ने कुछ वस्तुओं को द्विजों के लिए अखाद्य बताया है। द्विज को मद्य पीने की अनुज्ञा नही है। इस नियम का उल्लघन करनेवाली ब्राह्मणी के लिए प्रायश्चित का विधान है[316] किंतु विज्ञानेश्वर के अनुसार यदि शूद्र की स्त्री मद्यपान करे तो उसके लिए कोई प्रायश्चित नहीं है।[317] लगता है नशाखोरी की बुराई शूद्रों में खास तौर से थी क्योंकि मद्यों उनके निर्माण की प्रक्रियाओं और नशा के वाचक शब्द अमर ने शूद्रवर्ग में ही गिनाए है,[318] और जुआ सबधी शब्द भी इसी वर्ग में परिगणित हैं।[319] *पचतत्र* में एक मदमत्त जुलाहे का चित्रण है[320] जो अपनी स्त्री को पीटता है। याज्ञवल्क्य ने ऐसी गाय के दूध को अखाद्य बताया है जो गरमाई हुई या दस दिन के भीतर ब्याई हुई हो या जिसका बछडा या बछिया मर गई हो उन्होंने ऊँट एक खुरवाले पशु, महिला जगली पशु, या भेड के दूध का भी निषेध किया है।[321] देवताओं के लिए अभिप्रेत वलि (उपहार), हव्य (यज्ञ के लिए बना खाद्य) अनुत्सृष्ट (देवताओं को न समर्पित) मास कवक (कफूँद) मासभक्षी पशु, तथा कई पक्षी जैसे तोता हस वक चकवा इत्यादि द्विजों के लिए अखाद्य घोषित किए गए है[322] और कुछ विषयों में इस नियम के उल्लघन के पाप को दूर करने के लिए प्रायश्चितों का भी विधान है।[323] याज्ञवल्क्य ने यह भी कहा है कि पचनखों (पाँच पजोंवाले जानवरों) में साही घडियाल गोह, कछुआ और खरहा द्विजों के लिए अभक्ष्य है उन्होंने चार प्रकार की मछलियाँ भी बताई है जो द्विजों के लिए भक्ष्य है।[324] उन्होंने मूली, प्याज, लहसुन घरेलू सूअर, कुकुरमुत्ता और गदना (धम्पोकन) खाना भी वर्जित किया है और इसका उल्लघन करनेवालों के लिए चाद्रायण व्रत का प्रायश्चित बताया है।[325] फाहियान ने कहा है कि प्याज और लहसुन केवल चडाल खाते थे।[326] याज्ञवल्क्य कहते हैं कि जो व्यक्ति शूद्र को अखाद्य वस्तु खिलाए वह प्रथम कोटि के दड के आधे दड का पात्र होगा, और यह अपराध यदि उच्च वर्ण के लोगों के प्रति किया जाए तो दड और अधिक होगा।[327] इससे ध्वनित होता है कि कुछ वस्तुएँ शूद्रों के लिए भी अभक्ष्य थी किंतु इनका नामोल्लेख याज्ञवल्क्य ने नही किया है। दूसरी ओर यह तो स्वत सिद्ध है कि द्विजों के लिए जो वस्तुएँ अखाद्य बताई गई है उन्हें शूद्र खा सकते थे। *बृहस्पति स्मृति* में कहा गया है कि मध्य देश में कर्मकर (मजदूर) और शिल्पी लोग गोमास खाते थे[328] जिससे यह प्रकट होता है कि गोवध के विरुद्ध प्रबल ब्राह्मण भावना भी जनसाधारण में प्रचलित गोमास भक्षण की पुरानी प्रथा को रोकने में सदा समर्थ न हुई। इसका अनुमान एक उपदेशात्मक कथा से भी लगाया जा सकता है, जो सभवतया आलोच्य काल में *वायुपुराण* में प्रक्षिप्त की गई है। कथा है कि एक बार मनु वैवस्वत के पुत्र पृषध्र ने अपने गुरु की गाय का मास खा लिया और इस पर च्यवन ने शाप दिया कि तुम शूद्र हो जाओ।[329] इस आख्यान से प्रकट होता है कि

भोजन परिपाटी द्विजों की भोजन परिपाटी से कुछ भिन्न थी।

पारिवारिक जीवन के नियम शूद्रों के लिए भी वैसे ही हैं, जैसे अन्य वर्ण के लोगों के लिए।[330] किंतु शूद्रों में विवाह की अपनी खास परिपाटी पूर्ववत बनी रही।[331] अनुशासनपर्व में कहा गया है कि द्विजों का विवाह मंत्रपूर्वक पाणिग्रहण से संपन्न होता है, किंतु शूद्रों का विवाह संभोग से।[332] एक जैन ग्रंथ में चर्चा आई है कि तोसली में एक स्वयंवर भवन में एक दासकन्या ने दासकुमारों की एक जमात से अपने पति का वरण किया।[333] कई संदर्भों से ध्वनित होता है कि शूद्रों के बीच उच्च वर्णों की अपेक्षा स्त्रियों को अधिक स्वतंत्रता प्राप्त थी। याज्ञवल्क्य के एक श्लोक की व्याख्या करते हुए विश्वरूप ने यह मत व्यक्त किया है कि स्मृति ग्रंथों में जो नियोग का विधान है वह केवल शूद्रों के लिए है,[334] और अपने इस मत के समर्थन में उसने वृद्ध मनु के दो श्लोक और *वायुपुराण* की एक गाथा उद्धृत की है।[335] पति के दूर देश चले जाने पर विवाह विच्छेद करके दूसरा पति कर लेना शूद्र स्त्री के लिए अन्य वर्णों की स्त्री की अपेक्षा अधिक आसान था। ऐसी दशा में अनुशासनपर्व ने शूद्र स्त्री के लिए प्रतीक्षा की अवधि केवल एक वर्ष विहित की है।[336] परंतु वैश्य, क्षत्रिय और ब्राह्मण की स्त्रियों के लिए प्रतीक्षा की अवधि विहित करते हुए नारद ने कहा है कि विदेश गए शूद्र की स्त्री के लिए प्रतीक्षा की कोई अवधि निर्धारित नहीं है।[337] यह उक्ति जो दुहराया गया है कि गोपालक तेली सूडी आदि की स्त्रियाँ अपने पति द्वारा किए गए ऋण की अदायगी के लिए उत्तरदायी होती हैं[338] उससे प्रकट होता है कि ये शूद्र स्त्रियाँ अपने जीवननिर्वाह के लिए हमेशा अपने मर्दों पर आश्रित नहीं रहती थीं।

विष्णु ने कहा है कि यदि युवती हो जाने के बाद भी कन्या विवाहित न हो तो वह पतित स्त्री समझी जानी चाहिए।[339] टीकाकार नदराज ने कहा है कि यह नियम केवल निम्न वर्णों की युवतियों के लिए है[340] किंतु मूल ग्रंथ में ऐसी कोई बात नहीं है जिससे कि ऐसा माना जाए।

उच्च वर्णों के लोग निम्न वर्णों से कन्या ले सकते हैं यह मत इस काल के ग्रंथों में भी व्यक्त किया गया है।[341] किंतु यह भावना भी बनी रही कि अधम वर्ण अर्थात् शूद्र जाति की स्त्रियाँ केवल आनंद के लिए ब्याही जाती हैं।[342] *कामशास्त्र* ने कुभदासियों (पनहारिनों या वेश्याओं) तथा धोबी और जुलाहे की स्त्रियों को वेश्याओं से भिन्न नहीं माना है।[343] इस ग्रंथ के अनुसार शूद्र स्त्री के साथ संभोग करना मना तो नहीं है लेकिन उसे बहुत अच्छा भी नहीं माना जाता।[344] वात्स्यायन ने अपने ही वर्ण में विवाह को प्रशंसनीय बताया है।[345] इस काल के ग्रंथों में विशेष रूप से ब्राह्मणों के लिए शूद्रा से विवाह करना या उसके साथ

सभोग करना या उससे पुत्र उत्पन्न करना परम निंदनीय बताया गया है ।[346] परतु इस नियम के उल्लघन के कई उदाहरण मिलते हैं । *मृच्छकटिक* नाटक में चारुदत्त नामक ब्राह्मण ने वसन्तसेना नामक वेश्या से विवाह किया है, हालाँकि यह विवाह राजा की विशेष अनुज्ञा से हुआ है ।[347] इसी नाटक में शर्विलक नामक ब्राह्मण का विवाह मदनिका नाम की दासी से कराया गया है ।[348] इस काल के साहित्य में ऐसे भी उदाहरण मिलते हैं जहाँ क्षत्रियों ने शूद्रा से विवाह किया है ।[349]

विभिन्न उच्च वर्णों के बीच आपस में विवाह की परिपाटी पूर्णतया समाप्त नहीं हो गई थी, यह बात वर्णसकरों की उत्पत्ति के पुराने सिद्धात के आवर्तन से ध्वनित होती है ।[350] अनुशासनपर्व में पद्रह पुरानी सकर जातियाँ गिनाई गई हैं [351] और चार नई जातियों का उल्लेख किया गया है —मद्य, स्वादुकार क्षौद्र और सौगध जो मागधी माता और क्रमश चार वर्णों के दुष्ट पिता से उत्पन्न बताए गए हैं ।[352] इनमें एक मद्रनाभ जाति का भी उल्लेख है और कहा गया है कि ये लोग निषाद से उत्पन्न है और गधों की गाड़ी पर चढने हैं।[353] व्रात्य का उल्लेख अपने कर्मों से च्युत द्विजों के रूप में नहीं किया गया है बल्कि यह कहा गया है कि क्षत्रिय स्त्री और शूद्र पुरुष से उत्पन्न सतान व्रात्य है, [354] और उसे चडालों की कोटि में रखा गया है ।[355] यह भी कहा गया है कि वैद्य का जन्म वैश्य माता और शूद्र पिता से हुआ है । पूर्व काल में चिकित्सकों की इज्जत कितनी कम थी यह इसका एक ज्वलत उदाहरण है । *अमरकोश* में एक नवीन जाति माहिष का उल्लेख है, जो वैश्य स्त्री (अर्या) से उत्पन्न क्षत्रिय की सतान बताया गया है ।[356] सभवतया वे महिषकों के समान थे जिन्हें द्रविड़, कलिंग, पुलिन्द उशीनर, कोलिसर्प, शक यवन और काम्बोज के साथ पतित शूद्र बताया गया है ।[357] यद्यपि वर्णों के मिश्रण से जातियों की उत्पत्ति की कहानी मनगढ्त है, तथापि इस काल में आकर इस अनुश्रुति ने सामाजिक विकास की दिशा को प्रभावित किया है, क्योंकि वर्तमान काल में भी असवर्ण विवाह के उदाहरण पूर्वी नेपाल में पाए जाते हैं । इस काल के स्मृतिग्रथों में शूद्रों और अछूतों के बीच पूर्ववत अतर रखा गया है यथा याज्ञवल्क्य कहा है कि चडाल स्त्री के साथ सभोग करने से शूद्र चडाल हो जाता है ।[358] शूद्रों और श्वपाकों का पृथक रूप में उल्लेख कई ग्रथों में मिलता है ।[359] किंतु *अमरकोश* में वर्णसकरों और अस्पृश्यों को शूद्र जाति का ही अग माना गया है । इस ग्रथ के शूद्रवर्ग में दस सकर जातियाँ गिनाई गई हैं, जैसे करण, अम्बष्ठ उदग्र (सभवतया उग्र) मागध, महिष क्षत्तृ, सूत, वैदेहक रथकार और चडाल । [360] लेकिन वैदेहक (व्यापारी) का उल्लेख वैश्यवर्ग में भी किया गया है ।[361]

अमर ने चडालों के दस नाम दिए हैं— उनमें प्लव दिवाकीर्ति जनगम आदि कई जातियों का उल्लेख पूर्व काल के ग्रथों में विरल है, [362] जिससे प्रकट होता है कि चडाल

जाति की जनसख्या बढी। इसका अनुमान इस बात से भी लगाया जा सकता है कि चडालों का उल्लेख पूर्व काल के ग्रीक लेखकों ने नहीं किया, जबकि इस ओर फाहियान का ध्यान विशेष रूप से आकृष्ट हुआ।[363]

डोम्ब, जिस जाति के लोग परवर्ती काल में उत्तर भारत में बहुत बडी तादाद में अछूत माने गए, सभवतया गुप्तकाल में जाति के रूप में आविर्भूत हुए जैन स्रोत उन्हें उपेक्षित वर्ग का मानते हैं।[364] शायद ये एक आदिवासी कबीले (जन) के लोग थे, जो ब्राह्मणीय समाज के निचले वर्गों में मिला लिए गए। किरात, शबर और पुलिद, ये वन्य जातियाँ म्लेच्छों के साथ साथ *अमरकोश* में शूद्र वर्ग में समाविष्ट की गई हैं[365] जिससे प्रकट होता है कि आदिवासी जनसमुदाय बडी सख्या में शूद्र समुदाय में लीन होते जा रहे थे।

प्रतीत होता है कि इस काल में न केवल अस्पृश्यों की सख्या में वृद्धि हुई, बल्कि अस्पृश्यता की प्रथा भी कुछ दृढ हुई। बृहस्पति ने चडालों के स्पर्श से होनेवाली अपवित्रता (पाप) को दूर करने के लिए प्रायश्चित का विधान किया है।[366] फाहियान ने बताया है कि जब कोई चडाल किसी नगर या बाजार के भीतर प्रवेश करता था तो वह एक लकडी को पीटता चलता था, ताकि लोग पहले ही समझ जाएँ कि चडाल आ रहा है और उसके स्पर्श से बचने की कोशिश करें।[367] *मार्कण्डेय पुराण* में ऐसे व्यक्तियों के लिए भी प्रायश्चित कर्म का विधान है, जिनकी नजर किसी अत्यज या अत्यावसायिन पर जाए।[368] किंतु इस अस्पृश्यता नियम का पालन मुख्यतया चडाल के विषय में किया जाता था। ऐसा कोई प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं मिलता है कि डोम्ब अस्पृश्य माने जाते थे। इसी प्रकार इसका भी कोई प्रमाण नहीं मिलता है कि चर्मकार, जो परवर्ती काल में अछूत समझे जाने लगे, इस काल में भी वैसा माने जाते थे।

इन सकर जातियों और अछूतों की आजीविका के बारे में कोई विशेष जानकारी नहीं मिलती। मनु का यह नियम कि इन जातियों की पहचान इनके पेशों से की जाए, अनुशासनपर्व में भी दुहराया गया है।[369] चडालों का पेशा सडकों गलियों की सफाई करना श्मशान का काम करना, अपराधियों को फाँसी पर लटकाना और रात में चोरों का अनुसधान करना पूर्ववत जारी रहा।[370] शिकार निम्नस्तरीय शूद्रों का एक प्रमुख पेशा था। बड़े कौतूहल की बात है कि *अमरकोश* में शूद्रवर्ग में न केवल बाजों और शिकारियों के पर्याय ही दिए गए हैं,[371] बल्कि साधारण कुत्ते शिकार के लिए प्रशिक्षित कुत्ते घरेलू सूअर और दाहिनी ओर घायल हिरण के भी पर्याय आए हैं।[372] इसी वर्ग में चिडियों को फँसाने के फदे जाल रस्सी और पिंजरे का भी उल्लेख किया गया है।[373] फाहियान ने बताया है कि चडाल लोग मछुवे और शिकारी होते थे तथा मास बेचते थे।[374] किंतु कालिदास ने चडालों का उल्लेख बहेलियों और मछुओं से भिन्न रूप में किया है, हालाँकि ये

सब एक ही वर्ग के हैं।[375] इस प्रकार ऐसा प्रतीत होता है कि इस काल में चडाल मूलतया शिकारी नहीं होते थे, किंतु शिकार उनका एक गौण व्यवसाय रहा होगा। एक जैन ग्रंथ में बताया गया है कि मेद जन दिन रात तीर धनुष से शिकार करते रहते थे।[376] यह भी पता चलता है कि श्वपाक कुत्तों का मांस पकाते थे और धनुष की ताँत बेचते थे।[377]

इन वर्णसंकरों और खासकर चडालों के रीति रिवाजों और धार्मिक विश्वासों के विषय में कुछ जानकारी मिलती है। ये सकर जातियाँ गाँव के बाहर बसती थीं और इनमें लोहे के गहनों का प्रचलन था।[378] एक चडाल का वर्णन कुत्तों और गधों द्वारा उड़ाई गई धूलि से धूसरित रूप में किया गया है।[379] फाहियान ने बताया है कि चडाल ही मद्य पीते थे और लहसुन प्याज खाते थे,[380] जिससे सूचित होता है कि वे खासतौर से इन वस्तुओं के व्यसनी होते थे। बहेलिया और शिकारी होने के कारण स्वभावतया वे मांसभक्षी होते थे।[381] एक बौद्ध ग्रंथ में कहा गया है कि जो मांस खाता है, वह पुन पुन चडालों पुक्कुसों, और डोम्बो के कुल में जन्म लेता है।[382] आगे पुन कहा गया है कि जब कोई कुत्ता मांस खाने के इच्छुक पुरुषों को दूर से भी देखता है तो वह ऐसा सोचकर आतंकित हो उठता है कि ये मुझे भी मार डालेंगे।[383]

प्रतीत होता है कि लोगों के मनोरंजन के लिए गीत गाना सभवतया डोम्बों का महत्वपूर्ण पेशा था।[384] वे गीत गा गाकर और डगरा, सूप आदि बेचकर अपनी जीविका चलाते थे।[385] *अमरकोश* में शूद्रवर्ग में एक प्रकार की ग्राम्य वीणा, चडालिका का उल्लेख है,[386] जिससे सूचित होता है कि सार्वजनिक मनोरंजन में चडालों का भी हाथ रहता था।

डोम्बों और मातगों के अपने देवता होते थे जो यक्ष (जक्ख) कहलाते थे।[387] मातगों के जक्खों का पूजास्थल सद्य मृत मनुष्यों की हड्डियों पर बनाया जाता था।[388] यह परिपाटी शायद इसलिए चली कि चडाल प्राय श्मशानों से अनुबद्ध रहते थे।

अछूतों और खासकर चडालों का वर्णन बड़े निंद्य रूप में किया गया है। कहा गया है कि अपवित्रता (अशुचि), असत्य, चोरी, नास्तिकता, निरर्थक कलह, काम, क्रोध और लोभ अत्यावसायिनों के लक्षण हैं।[389] चडता (अर्थात उग्रता) चडालों के चरित्र की विशेषता है। *मृच्छकटिक* में चडाल कहते हैं कि हम चडाल कुल में उत्पन्न होकर भी चडाल नहीं है क्योंकि चडाल और पापिष्ठ वे है जो निरपराध का गला काटते हैं।[390] एक बौद्ध ग्रंथ में कहा गया है कि यदि कोई ब्राह्मण सत्य सन्यास, दम (इंद्रिय निग्रह) और भूत दया से रहित हो तो वह चडाल के तुल्य है।[391] ऐसे ही आशय से यह भी कहा गया है कि गायों और ब्राह्मणों की सेवा करने से, अक्रूरता दया सत्यवादिता और क्षमा का आचरण करने से और अपनी जान लगाकर दूसरों की जान बचाने से अत्यज भी सिद्धि पा सकते हैं।[392] [393]

सर्वप्रथम शांतिपर्व में घोषणा की गई है कि चारों वर्णों को वेद सुनाना चाहिए और शूद्र से भी ज्ञान प्राप्त करना चाहिए।[394] यह विधान मनु के विधानों के नितात विरुद्ध

है जिन्होंने ऐसे मामलों में कठोर दंड बताया है। शांतिपर्व का यह उपदेश शूद्रों के वेद पढने के अधिकार के विरुद्ध बद्धमूल धारणा के कारण अनसुना कर दिया गया होगा,[395] परंतु इतिहास पुराण पढने के द्वार शूद्रों के लिए वस्तुत खोल दिए गए। *भागवतपुराण* में कहा गया है कि स्त्रियों और शूद्रों के लिए *महाभारत* ही वेद है।[396] यहाँ यह स्पष्ट नहीं कहा गया है कि शूद्र *महाभारत* पढ भी सकते थे या केवल सुन सकते थे। लेकिन पुराणों के विषय में *भविष्यपुराण* बताता है कि शूद्र इन्हें पढ नहीं सकते हैं, केवल सुन सकते हैं।[397] सदुपदेश और मोक्ष के लिए सभी वर्गों के लोगों को पुराण और *रामायण महाभारत* की कथा सुनाने की धार्मिक परिपाटी शायद गुप्तकाल से ही चली है।

विद्या की दूसरी शाखा है *नाट्यशास्त्र* जिसका द्वार शूद्रों के लिए खुला हुआ था। यह पंचम वेद कहा गया है, जो चारों वेदों के सार से रचा गया है और जिसका उपयोग सभी जातियों के लोग कर सकते हैं।[398] इतना ही नहीं योग[399] और सांख्य[400] दर्शन भी जो संभवतया गुप्तकाल में ही अपने चरम रूप में विकसित हुए थे, शूद्रों के लिए वर्जित नहीं थे।[401] यह तथ्य कि सांख्यदर्शन के अनुसार चार प्रमाणों में एक प्रमाण वेद भी है, उस दर्शन की दृष्टि से असंगत नहीं मालूम पडता है क्योंकि वह सभी जातियों के लिए सुलभ है। इसी तरह वैदिक उद्धरणों से भरे इतिहास *(रामायण-महाभारत)* भी शूद्र समान रूप से सुन सकते हैं।[402]

गुप्तकाल में भी कई शिक्षित शूद्रों के उदाहरण दिखाई पड़ते हैं। याज्ञवल्क्य के एक श्लोक से प्रकट होता है कि भृतकों के लिए भी अध्यापक होते थे।[403] *मृच्छकटिक* में न्यायाधीश शकार को फटकारता है—'अरे नीच, तुम वेद की बात कर रहे हो और तब भी तुम्हारी जीभ नीचे न गिरी।[404] विद्वान शूद्रों का अस्तित्व *वज्रसूची* से भी प्रमाणित होता है जिसमें वेद व्याकरण मीमांसा, सांख्य, वैशेषिक लग्न आदि शास्त्रों के ज्ञाता शूद्रों की चर्चा है।[405] यह संदर्भ बौद्ध धर्मावलंबियों के बारे में नहीं बल्कि शूद्रों के बारे में है क्योंकि ब्राह्मणीय मुहावरे में बौद्धों को निंदास्वरूप शूद्र कहा जाता था, बौद्धों के मुहावरे में नहीं। जायसवाल ने कहा है कि बौद्ध ग्रंथों में विद्वान और संस्कृत बोलनेवाले जिन शूद्रों की चर्चा है वे शूद्रा के गर्भ से उत्पन्न ब्राह्मणों के पुत्र थे।[406] यह संभव तो है, किंतु हो सकता है कि शूद्रों के कुछ उन्नत वर्गों ने शिक्षा प्राप्त की हो और अपने बंधु वर्गों के उत्थान के लिए श्रम किया हो।

फिर भी इसमें कोई संदेह नहीं कि उच्च वर्णों की तुलना में शूद्रों का सांस्कृतिक स्तर नीचे था। उदाहरणार्थ नाटकों में स्त्रियों और निम्न जाति के पात्र गँवारों की भाषा प्राकृत बोलते थे जबकि उच्च वर्णों के पात्र शिक्षितों की परिष्कृत भाषा संस्कृत बोलते थे।[407] लेकिन *नाट्यशास्त्र* में कहा गया है कि रानियाँ, वेश्याएँ और कलाकार महिलाएँ परिस्थिति के अनुसार संस्कृत बोल सकती हैं।[408] कभी कभी प्राकृत की विभिन्न बोलियों के प्रयोग में

भी जातीय स्तर का विचार किया जाता था, नाटकों में ऊँची हैसियत के पात्र सौरसेनी बोलते थे और नीच पात्र मागधी प्राकृत।[409] *नाट्यशास्त्र* में चंडालों, पुल्कसों आदि विभिन्न जातियों और पेशों के पात्रों के लिए विभिन्न स्थानीय बोलियाँ (विभाषाएँ) विहित की गई हैं।[410] इन सबों से पता चलता है कि निम्न वर्णों को लिखने-पढ़ने की शिक्षा नहीं दी जाती थी, जिससे वे परिमार्जित भाषा संस्कृत बोल सकें।

कहा जाता है कि धनुर्वेद के छात्र के रूप में शूद्र का वैदिक मंत्रपूर्वक उपनयन संस्कार होता था,[411] किंतु *धनुर्वेद संहिता* में इस संस्कार की चर्चा नहीं है। कारीगर के रूप में शूद्रों को व्यावसायिक और शिल्पिक प्रशिक्षण अपने ही परिवार में या किन्हीं बाहरी विशेषज्ञों से मिलता रहा होगा, किंतु इस प्रशिक्षण में लिखने-पढ़ने का कोई स्थान नहीं था। फिर भी इतना स्पष्ट है कि गुप्तकाल के ग्रंथों में शूद्रों के विषय में न केवल उदार दृष्टिकोण ही आया है, बल्कि कुछ शिक्षित शूद्रों के अस्तित्व का प्रमाण भी मिलता है।

शूद्रों को धर्म-कर्म का अधिकार नहीं है, यह पुरानी मान्यता इस काल में भी दुहराई गई है।[412] इसमें यह तर्क दिया गया है कि ऊपर के तीन वर्णों की सेवा ही शूद्रों के लिए यज्ञ कर्म है।[413] इसी दृष्टि से नारद ने कहा है कि अभिषेक जल नास्तिकों, व्रात्यों और दासों को न दिया जाए।[414] परंतु विष्णु ने कहा है कि कुछ परिस्थितियों में शूद्र का अभिषेक द्वारा दिव्य करना पड़ता है।[415] शूद्रों की धार्मिक हैसियत में परिवर्तन के अन्य आभास भी मिलते हैं। *मार्कण्डेय पुराण* ने दान देना और यज्ञ करना शूद्र का कर्तव्य बताया है।[416] इसमें संदेह नहीं कि शूद्रों को पंच महायज्ञ करने की छूट दी गई है।[417] मनु ने तो स्पष्टतया ऐसा नहीं कहा है, किंतु याज्ञवल्क्य ने साफ कर दिया है कि शूद्र (ओंकार के बदले) 'नमः' का प्रयोग करते हुए पंच महायज्ञ कर सकते हैं।[418] हापकिंस का यह कथन सही है कि यह वचन शूद्र के लिए नहीं है,[419] क्योंकि इस बात की अन्य स्रोतों से भी पुष्टि होती है।[420] मनु ने यज्ञ दीक्षा को द्विज का एक जन्म माना है,[421] किंतु याज्ञवल्क्य के समानांतर श्लोक में द्विजों के इस विशेषाधिकार का उल्लेख नहीं है।[422] यह याज्ञवल्क्य की उदार मनोवृत्ति के अनुरूप ही है, जो शूद्रों को यज्ञ करने की अनुमति देते हैं। शांतिपर्व में मुक्त कंठ से कहा गया है कि त्रयी (वेदों) के अनुसार स्वाहाकार और नमस्कार मंत्र शूद्र के लिए विहित हैं और वह औपचारिक रूप से दीक्षित होकर प्रथम दो मंत्रों से पाकयज्ञ कर सकता है।[423] इस सुधार के समर्थन में शूद्र पैजवन ने एक पाकयज्ञ किया और एक दिन में पूरा होनेवाले ऐंद्राग्नि नामक यज्ञ के नियमानुसार उसने सौ हजार पूर्णपात्र (चावल से भरे कलश) दक्षिणास्वरूप दिए।[424] यह हमें आधुनिक युग के सामाजिक सुधारों की उस परिपाटी की याद दिलाता है, जिसमें विधवा विवाह, तलाक आदि के समर्थन में इसी तरह के प्राचीन उदाहरण ढूँढ़ निकाले गए। शूद्रों के लिए गृह्य यज्ञ की छूट देते हुए शांतिपर्व ने

यह महत्वपूर्ण बात कही है कि सभी वर्णों को यज्ञ करने का अधिकार है, बशर्ते उनमें श्रद्धा हो।[425]

शूद्रों को यज्ञ करने का अधिकार दिए जाने के एक महत्वपूर्ण उपाय के रूप में उन्हें व्रतानुष्ठान का भी अधिकार दिया गया। याज्ञवल्क्य ने चान्द्रायण व्रत शूद्रों के लिए विहित किया है, जो स्पष्टतया इनके द्वारा प्रयुक्त अवकृष्ट शब्द के अर्थ के अंतर्गत है।[426] यह वचन प्रक्षिप्त माना जाता है,[427] किंतु यह याज्ञवल्क्य की उदार मनोवृत्ति के अनुरूप ही है और इसी तरह का वचन *बृहस्पति स्मृति* में भी आया है जिसमें ब्राह्मण के यज्ञोपवीत को तोड़ने के अपराधी शूद्र के लिए प्राजापत्य व्रत का प्रायश्चित बताया गया है।[428]

बृहस्पति स्मृति में शूद्रों के लिए कर्णवेधन[429] और चूड़ाकरण[430] संस्कार विहित हैं। इनमें प्रथम का उल्लेख गृह्यसूत्रों में नहीं है, किंतु द्वितीय का विधान इनमें किया गया है।[431] मनु ने इसे केवल द्विजों के लिए विहित किया था,[432] जिसका विस्तार अब शूद्रों तक हो चला था।

कई ग्रंथों में सन्यास आश्रम शूद्रों के लिए वर्जित है। कालिदास ने *रामायण* में किए गए शूद्र तपस्वी शबूक के निंदन को दुहराया है।[433] राम ने जो शबूक को प्राणदंड दिया इसकी उन्होंने प्रशंसा की है और बताया है कि इस मृत्युदंड के परिणामस्वरूप उसने जो पुण्यात्माओं का पद प्राप्त किया उसे वह अपनी उग्र तपस्या से नहीं पा सकता था, क्योंकि तपस्या तो वह अपने वर्णधर्म के विरुद्ध कर रहा था।[434] किंतु आश्रमों के साथ वर्णों के संबंध के विषय में शांतिपर्व की मनोवृत्ति कुछ भिन्न है। इसके अनुसार ब्राह्मण के लिए चारों आश्रम अनिवार्य हैं किंतु अन्य वर्णों के लिए नहीं[435] अन्य तीन वर्णों के लिए सन्यास आश्रम वर्जित है।[436] इसका अर्थ हुआ कि शूद्र यदि चाहे तो प्रथम तीन आश्रमों में प्रवेश कर सकता है और चतुर्थ का द्वार न केवल शूद्र के लिए अपितु वैश्य और क्षत्रिय के लिए भी बंद है। किंतु कात्यायन ने कहा है कि यदि शूद्र सन्यासी सन्यासाश्रम का परित्याग करे तो वह राजा द्वारा दंडनीय है।[437] याज्ञवल्क्य ने देवों और पितरों के निमित्त शूद्र सन्यासी को खिलाना वर्जित किया है।[438] इसका तात्पर्य या तो जैन या बौद्ध भिक्षुओं से हो सकता है या शूद्र वर्ण के सन्यासियों से।

शूद्रों की धार्मिक प्रतिष्ठा में सुधार का बड़ा संकेत मूर्तिस्थापन संबंधी नियमों में मिलता है। मूर्ति बनाने के लिए उपयुक्त वस्तुओं की गिनती कराते हुए एक वैष्णव ग्रंथ में कहा गया है कि सभी जातियों के लोग मूर्ति बना सकते हैं।[439] इससे प्रकट होता है कि शूद्र भी मूर्तियाँ बनाकर उन्हें पूज सकते थे और इनकी मूर्तियाँ भी उसी वस्तु की होती थीं जिसकी अन्य वर्णों के लोगों की। लेकिन इस काल के एक अन्य ग्रंथ में मूर्ति बनाने के लिए उपयुक्त लकड़ी चुनने में वर्णमूलक विभेद विहित किया गया है और तदनुसार चार वर्णों के लिए

क्रमश चार प्रकार की लकडी बताई गई है ।[440] एक गुप्तोत्तरकालीन वैष्णव उपपुराण में इसी तरह का नियम आया है जिसमें कहा है कि मदिर और मूर्ति बनाने में श्वेत काष्ठ ब्राह्मणों के लिए शुभ है लाल क्षत्रियों के लिए, पीला वैश्यों के लिए और काला शूद्रों के लिए ।[441] मूर्ति बनाने में इसी ग्रथ में चारों वर्णों के लिए क्रमश इन्ही चार वर्णों के पत्थर विहित किए गए है ।[442] लकडी और पत्थर के चुनाव में वर्णविभेद के रहते हुए भी, प्रतिमाविज्ञान विषयक ग्रथों के अवलोकन से इसमें कोई सदेह नही रह जाता है कि शूद्र भी मूर्ति बना सकते थे और उसकी पूजा कर सकते थे।

कहा गया है कि शूद्र की अर्थी में ब्राह्मण शामिल नहीं हो सकता है , यदि वह ऐसा करेगा तो वह स्नान करके आग को छूकर और घी पीकर शुद्ध होगा ।[443] वह पुराने नियम जिसमें शूद्र के मरने पर उसके परिवार के लोगों के लिए अशौच की सबसे लबी अवधि बताई गई है इस काल के कई ग्रथों में भी पूर्ववत बना रहा ।[444] लेकिन इस विषय में याज्ञवल्क्य ने सामान्य शूद्रों के लिए एक मास तक और धार्मिक (न्यायवर्ती) शूद्रों के लिए 15 दिन तक अशौच बताया है । इस प्रकार धार्मिक शूद्र को वैश्य का दर्जा दिया है ।[445] व्रतों के अनुष्ठान में भी वैश्य और शूद्र समान कोटि में रखे गए है । कहा गया है कि वैश्य और शूद्र केवल एक रात के लिए व्रत करें ।[446] यदि मूर्खतावश वे द्विरात्र या त्रिरात्र व्रत करें तो उससे उनका अभ्युदय न होगा ।[447] फिर भी विशेष अवसरों पर वे दो रातों तक व्रत कर सकते है ।[448] लेकिन कभी कभी इस बात पर भी जोर दिया गया है कि उपवास व्रत केवल ब्राह्मण और क्षत्रिय कर सकते है ।[449]

बृहस्पति ने कहा है कि मरे बच्चे का जन्म (जन्म हानि) होने पर ब्राह्मण दस दिनों में शुद्ध होता है क्षत्रिय सात दिनों में, वैश्य पाँच दिनों में और शूद्र तीन दिनों में ।[450]

कर्मानुष्ठानों के अवसर के सदर्भ में महिलाओं और शूद्रों की अपवित्रता का विधान इस काल के ग्रथों में भी सुरक्षित है ।[451] कई दशाओं में शूद्रों और पतितों (अत्यजों) को जो कुत्ते के समान अपवित्र माने जाते थे देखने पर प्रायश्चित विहित किया गया है ।[452] यह भी विधान है कि यदि क्षत्रिय ब्रह्मचारी को वैश्य या शूद्र स्पर्श करे और वैश्य ब्रह्मचारी को शूद्र तो उसे प्रायश्चित करना होगा ।[453]

गृह्यसूत्रों के अनुसार श्राद्ध कर्म शूद्रों के लिए विहित नहीं है[454] किंतु इस काल के ग्रथों में यह कर्म शूद्रों के लिए भी स्पष्टतया विहित किया गया है ।[455] शूद्र साधारण श्राद्ध तो कर ही सकता है[456] असाधारण (वृद्धि) श्राद्ध भी कर सकता है, जिसमें पुत्रप्राप्ति आदि के विशेष अवसर पर पितरों की अर्चना की जाती है ।[457] यह भी बताया गया है कि मरने पर कर्मानुष्ठान करनेवाले ब्राह्मण को प्राजापत्य लोक मिलता है, रण से न भागनेवाले क्षत्रिय को ऐंद्रलोक मिलता है, अपने कर्तव्यों का पालन करनेवाले वैश्यों को मरुतलोक

मिनता है, और भृत्य कर्म में रत शूद्रों को गाथर्वलोक मिलता है।[458]

शूद्र अपने पितरों को, जो पुराणों में सुकालिन सज्ञा से अभिहित हैं[459] और काले रग के बताए गए हैं, [460] जलांजलि और अन्य उपहार चढा सकते थे। किंतु जहाँ ऋषियों की सतान के रूप में वर्णित द्विजो के प्रवर होते थे, वहाँ शूद्रों के प्रवर नहीं होते थे।[461]

इस काल की उल्लेखनीय धार्मिक घटना है शूद्रों के दान देने के अधिकार पर जोर।[462] दान शूद्रों के लिए सर्वोत्तम साधन माना गया है, इसके द्वारा वह सारी सिद्धियाँ प्राप्त कर सकता है।[463] जो शूद्र सत्य और ईमानदारी पर चलता है मत्र और ब्राह्मण का आदर करता है और दान देता है, वह स्वर्ग जाता है और अगले जन्म में ब्राह्मण होता है।[464] वेश्याओं के लिए विहित अनगदान नामक विशेष व्रत में यह विधान किया गया है कि वेश्या से जो सामान्यतया शूद्र जाति की मानी जाती थी गोदान लेते समय ब्राह्मण वैदिक मत्र पढे।[465] आगे हम यह भी पाते हैं कि लीलावती नामक शैव वेश्या और एक शूद्र सुनार ने दान दिए जिसके फलस्वरूप मृत्यु के बाद वेश्या को शिव लोक (शिव मदिर) मिला और सुनार मूर्ति नामक सम्राट हुआ।[466] ईस्वी सन् की पाँचवीं शताब्दी के एक बौद्ध टीका ग्रथ में ऐसे कम से कम एक दर्जन उदाहरण आए हैं जहाँ निम्न वर्णों के लोगों ने बुद्ध भिक्षुओं, या सघ को दान देने के फलस्वरूप स्वर्ग का आनद और बौद्ध विमानों का सुखभोग प्राप्त किया।[467] इस प्रकार दान का सिद्धात बौद्ध और ब्राह्मणीय दोनों धर्मों में समान था।

ऐसा कोई प्रमाण नहीं मिलता है जिससे यह सिद्ध हो कि याज्ञवल्क्य स्मृति से पहले दान धर्म को लोकप्रिय बनाने के लिए जोरदार प्रचार किया गया।[468] बृहस्पति स्मृति की रचना के बाद तो दान द्वारा मोक्षप्राप्ति का सिद्धात पराकाष्ठा पर पहुँच गया।[469] दान की यह महिमा जो शूद्रों के सबध में ही उदात्त स्वर में गाई गई है यह सिद्ध करती है कि शूद्र वर्ग दान देने की स्थिति में था और यह स्थिति उसकी आर्थिक अवस्था में हुए परिवर्तन के अनुरूप ही है।

यम व्रत श्राद्ध तथा अन्य कर्मों का अनुष्ठान जो शूद्रों के लिए विहित किया गया है उससे यह निष्कर्ष निकलता है कि इन कर्मों में वे ब्राह्मणों को नियोजित करते होंगे, जो इन अवसरों पर किया गया दान ग्रहण करते होंगे।[470] शूद्रों द्वारा किए जानेवाले इन कर्मों में पुरोहित का काम करनेवाले ब्राह्मणों (शूद्र याजकों) की जो बार बार निंदा की गई है [471] उससे इन पुरोहितों के विरुद्ध परपरागत पूर्वग्रह तो प्रकट होता ही है साथ ही यह भी ध्वनित होता है कि इन कर्मों में ब्राह्मणों को नियोजित करने की प्रथा अधिकाधिक प्रचलित होती जाती थी। मनु ने जिस तरह शूद्र पुरोहितों (ऋत्विजों) की निंदा की है, [472] वैसा याज्ञवल्क्य ने नहीं किया है। *वज्रसूची* में दृढतापूर्वक कहा गया है कि ब्राह्मण कैवर्तों

रजकों, और चडालों के परिवार में भी मिलेंगे, जिनके बीच चूड़ाकरण मुज दड और काष्ठ आदि सस्कार किए जाते हैं।[473] इससे ज्ञात होता है कि ब्राह्मण निम्नतम कोटि के शूद्रों के यहाँ भी याजक होते थे। *वज्रसूची* में यह भी कहा गया है कि क्षत्रिय वैश्य और शूद्र यज्ञ करते और कराते हुए, अध्ययन और अध्यापन करते हुए तथा दान लेते हुए देखे जाते है।[474] यदि यह परिवर्तन वस्तुतया हुआ हो तो इससे प्रकट होता है कि याजन (पौरोहित्य) कर्म पर ब्राह्मणों का जो एकाधिकार था उसके विरुद्ध कुछ वर्गों के लोगों में चेतना जग गई थी। इस तरह के कई आदोलन हाल में भी हुए हैं।

इधर बौद्ध धर्म के महारथी जन्ममूलक वर्णभेद का खडन करते रहे,[475] और उधर कई सुधारवादी विचारधाराओं विशेषकर वैष्णव सम्प्रदाय का उदय हुआ जिससे बहुत हद तक शूद्रों को धार्मिक समता प्राप्त हुई। वैष्णव धर्म गुप्तकाल में विकास की चोटी पर पहुँच गया था, जब न केवल उत्तर भारत में अपितु दक्षिण और पश्चिम भारत के कई भागों में इस सम्प्रदाय के अद्वितीय प्रभाव को प्रमाणित करनेवाले पुरालेखिक, मुद्रात्मक और मूर्ति सबधी अभिलेख भारी सख्या में मिलते हैं।[476] महाभारत और पुराणों में इस सम्प्रदाय के जो सिद्धात प्रतिपादित है, उनसे प्रकट होता है कि ब्राह्मण धर्म की प्राचीन कट्टरपथी परपरा की भाँति इस वैष्णव सम्प्रदाय ने शूद्रों और अस्पृश्यों के लिए अपना द्वार बद नहीं रखा, बल्कि उन्हें भी ईश्वर को जानने और मोक्ष प्राप्त करने का अधिकार दिया।[477] वैष्णव ग्रथों में [illegible] बात पर हमेशा जोर डाला जाता रहा कि कृष्ण, नारायण या वासुदेव की भक्ति के द्वारा स्त्रियाँ और शूद्र भी मुक्ति पा सकते हैं।[478] भगवान को यह घोषित करते हुए चित्रित किया गया है कि ब्राह्मण से लेकर श्वपाक तक सभी मेरी भक्ति से पवित्र हो जाते है।[479] श्रद्धालु और भक्त श्वपाक भी मुझे उस ब्राह्मण से अधिक प्रिय हैं जो अन्य गुणों से समन्वित रहने पर भी भगवान का भक्त नहीं है।[480] यदि अत्यज एक बार भी ईश्वर का नाम लेता है तो वह जन्म मरण के बधन से मुक्त हो जाता है।[481] यह कहा गया है कि 'श्रेष्ठ ब्राह्मण पुण्यवान शूद्र को विश्व के दीप्तिमान देव विष्णु जैसा ही मानते हैं और ससार में सर्वोत्तम भी मानते हैं।[482] जो व्यक्ति विष्णु भक्त शूद्र का अपमान करता है, वह करोड वर्ष तक नरक भोगता है।[483] इसलिए ज्ञानवान व्यक्ति को विष्णुभक्त चडाल का भी अपमान नही करना चाहिए।[484] विष्णुभक्ति के द्वारा राजन्य विजय पाते है ब्राह्मण विद्या पाते हैं, वैश्य धन पाते है और शूद्र आनद पाते है।[485]

इसी प्रकार का मतव्य चारों वर्णों के ऐसे लोगों के लिए अभिव्यक्त किया गया है जो महादेव की ऋचाओं का पाठ करते हैं।[486] जो वैश्य स्त्रियाँ और शूद्र ब्राह्मण के मुँह से दक्ष शिव युद्ध की कथा सुनते है, वे रुद्रलोक में स्थान पाते है।[487] द्विजों की भाँति शिवभक्त शूद्र भी गणपति की कोटि में पहुँच सकता है, बशर्ते वह मद्यपायी न हो।[488] इस

प्रकार यह प्रकट होता है कि शैव सप्रदाय का द्वार भी शूद्रों के लिए समान रूप से खुला था।

तंत्र में भी जो वैष्णव और शैव दोनों सप्रदायों से सबद्ध है, धर्म के विषय में वर्णभेद नहीं माना गया है। ई सन् की पाँचवीं शताब्दी के एक तंत्रग्रंथ *जयाख्य संहिता*[489] में कहा गया है कि चारों वर्णों के लोग ब्राह्मण से दीक्षा ले सकते हैं।[490] यदि ब्राह्मण न मिले तो क्षत्रिय वैश्य और शूद्र वर्ण के योग्य व्यक्ति अपने अपने वर्ण के लोगों के लिए और अपने से निम्न वर्ण के लोगों के लिए गुरु का काम कर सकते हैं।[491]

गुप्तकाल में शासक वर्ग के बहुत से लोग वैष्णव और कुछ लोग शैव थे। किंतु निचले वर्णों में इन सप्रदायों का कैसा प्रभाव था, यह जानने का साधन हमारे पास नहीं के बराबर है। कहा गया है कि वैशाली में शिल्पियों का वर्ग वैष्णव धर्म से बहुत प्रभावित था क्योंकि दो शिल्पियों (कुलिकों) के नाम 'हरि' पाए गए हैं।[492] यह स्थिति अन्य स्थानों पर भी रही होगी।

सुधारवादी सप्रदायों के प्रभाव के फलस्वरूप इस काल के धार्मिक ग्रंथों का आग्रह कर्मकांडों और सस्कारों से हटकर सदाचार पर आ गया, जो व्यक्ति की सामाजिक प्रतिष्ठा का नियामक है। कहा गया है कि न अग्निहोत्र सार्थक है, न वेद का ज्ञान,[493] क्योंकि श्रुति के अनुसार देवता केवल सदाचार से सतुष्ट होते हैं। जो ब्राह्मण शीलवान नहीं है, वह शूद्रवत माना जाए[494] और उसका आदर नहीं किया जाना चाहिए। इसके विपरीत यदि शूद्र भी धर्मात्मा हो तो वह आदरणीय है।[495] जो शूद्र शुद्ध हृदयवाला और मन वश में रखनेवाला है वह न केवल (यज्ञोपवीत सस्कार के बिना ही) द्विज हो जाता है, बल्कि वह द्विजों की भाँति पूजनीय भी हो सकता है,[496] क्योंकि न कोई जन्म से सस्कृत होता है न सस्कार से न विद्या से और न सतति से अपितु केवल शील से होता है।[497] *महाभारत* और पुराणों के उपदेशात्मक भागों में बार बार कहा गया है कि आचारवान शूद्र अगले जन्म में ब्राह्मणत्व प्राप्त करता है[498] और यह बात *वज्रसूची* में भी दुहराई गई है।[499]

उपर्युक्त मत के समर्थन में समुचित उपाख्यान उद्धृत किए गए हैं। वनपर्व में एक कहानी आई है कि कौशिक को एक धर्मज्ञ व्याध ने विभिन्न वर्णों के धर्म और आचार सिखाए।[500] मिथिला के धर्मव्याध ने दावा किया है कि वह गुरुजनों और बड़ों की सेवा करता रहा सदा सत्य बोला कभी किसी से ईर्ष्या नहीं की विभवानुसार दान करता रहा तथा देवों अतिथियों और आश्रितों के परितोषण के बाद बची वस्तुओं से जीवननिर्वाह करता रहा। उसने न किसी की निंदा की और न किसी से घृणा।[501] ऐसा मत व्यक्त किया गया है कि यह कहानी बौद्ध सप्रदाय की है[502] किंतु धर्मव्याध ने जो प्रतिपादन किया है उसका तत्व वैष्णव सिद्धांतों के अनुकूल ही है और उसे बौद्ध से प्रभावित मानना आवश्यक नहीं जँचता है। *वज्रसूची* में जो बौद्धों ने यह तर्क दिया है कि व्यास कौशिक विश्वामित्र

और वसिष्ठ सभी जन्मत अधम होते हुए भी इहलोक में अच्छा आचरण करने के कारण ब्राह्मण माने गए,[503] यह भी स्पष्टतया पुराणों में वर्णित पुरानी परिपाटी से निकला प्रतीत होता है।

परतु सुधारवादी सप्रश्नयों को अधिक महत्व देना ठीक न होगा। शासक वर्गों ने वैष्णव धर्म का उपयोग वर्णभेदमूलक समाज व्यवस्था के मूलाधार को बनाए रखने के लिए ही किया था। वैश्य, स्त्रियाँ और शूद्र जन्मत अधम माने जाते थे।[504] कहा गया है कि द्विजों की सेवा करना और विष्णु की भक्ति करना, इन दोनों के सिवा शूद्र के उद्धार का कोई अन्य उपाय नहीं है।[505] यह धारणा बहुत हद तक कर्मवाद के सिद्धांत का ही अग है और इस सामान्य विश्वास पर आधारित है कि जिस वर्ण में जो उत्पन्न हुआ है, उसके लिए उसी वर्ण के कर्तव्यों का पालन अनिवार्य है। जान पड़ता है कि ब्राह्मणवादी आदर्श ने निम्न वर्णों के लोगों के बीच भी इस मत में आस्था उत्पन्न कर दी थी।[506] *मृच्छकटिक* में एक गाड़ीवान वसतसेना को मार डालने के अपने मालिक के आदेश को इसलिए अस्वीकार करता है कि भाग्य ने और पापकर्मों ने मुझे जन्म से दास बना डाला है मै पुन उसी दुर्गति में पडना नहीं चाहता इसलिए मैं यह पापकर्म करने से इकार करता हूँ।[507] निम्नवर्गों के लोगों में जो ऐसा विश्वास था इससे अधिकाश लोगों के मन में यह जिज्ञासा कभी नहीं उठ सकी कि उनकी दुरवस्था के मानवकृत कारण क्या हैं।

लेकिन इसमें संदेह नही कि गुप्त काल में शूद्रों के धार्मिक अधिकारों में वृद्धि हुई और कई कर्मानुष्ठानों के विषय में उन्हें तीनों उच्च वर्णों की समकक्षता मिली। ऐसा मत व्यक्त किया गया है कि शूद्रों के आध्यात्मिक उत्थान के पीछे ब्राह्मणों का स्वार्थ काम कर रहा था क्योंकि वे चाहते थे कि अधिक से अधिक लोग ब्राह्मणीय कर्मों का अनुष्ठान करें।[508] किंतु पूर्वकाल में भी तो ब्राह्मणों का ऐसा स्वार्थ रहा होगा जबकि ऐसी प्रवृत्ति का आभास बहुत कम मिलता है। वास्तव में शूद्रों के धार्मिक अधिकारों में वृद्धि उनकी भौतिक स्थिति में भी परिवर्तन के कारण हुई। इसकी बदौलत वे पुरोहितों को समुचित दक्षिणा देकर सस्कार और यज्ञ कराने में समर्थ हुए, क्योंकि यज्ञ कराने की योग्यता व्ययवहन क्षमता के साथ निकटत सबद्ध मानी जाती थी जो स्वाभाविक ही है।[509] मोटे तौर पर कह सकते हैं कि गुप्तकाल में शूद्रों की धार्मिक प्रतिष्ठा में जो सुधार हुआ उसकी तुलना हम मिस्र के मिड्ल किंगडम के आरभ में हुए घटनाक्रमों से कर सकते हैं, जब केवल फेरो और सामतों में प्रचलित कई अतिम सस्कार सबधी कर्म साधारण जनों में भी प्रचलित हुए।[510] इसके साथ उनकी आर्थिक स्थिति में भी सुधार हुआ था[511] जो बात गुप्तकाल में शूद्रों की स्थिति के विषय में भी सही प्रतीत होती है।

गुप्तकाल मे शूद्रों की हैसियत में कई भारी परिवर्तन हुए। यही नही कि मजदूरों,

कारीगरों और भारवाहकों की मजदूरी की दरें बढ़ीं, बल्कि दास और मजदूर लोग धीरे-धीरे बटाईदार और किसान होते जा रहे थे। सातवीं सदी तक पहले-पहल शूद्र बड़े पैमाने पर किसान के रूप में दिखलाई पड़ते हैं। यह परिवर्तन शूद्रों की राजनीतिक सहविधिक स्थिति में व्यापक रूप से प्रतिफलित हुआ है। शांतिपर्व में शूद्र मंत्री नियुक्त करने का जो उपदेश दिया है,[512] उसको तो अधिक महत्व नहीं भी दिया जा सकता है, किंतु इसमें संदेह नहीं कि शिल्पी संघों के प्रधान जिला प्रशासन के कार्य से जुड़े थे, और संकट की घड़ियों में शूद्रों को शस्त्र उठाने का अधिकार मिल गया था। वर्णविषयक कानूनों में कुछ ढिलाई आई और शूद्रों के प्रति बरते जानेवाले कई निष्ठुर नियम रद्द किए गए। शूद्रों के धार्मिक अधिकार में काफी वृद्धि हुई। हाँ, अस्पृश्यों की सामाजिक स्थिति पहले से भी अधिक बुरी हुई। यद्यपि वे सिद्धांततया शूद्र माने जाते थे, किंतु सभी व्यावहारिक विषयों में वे पृथक समुदाय ही थे। फिर भी ऐसा सोचना गलत होगा कि गुप्तकाल में शूद्रों का कोई अन्य वर्ग भी सामाजिक दृष्टि से अधोगत था,[513] भोजन और विवाह के रिवाज के बारे में इसका कोई साक्ष्य नहीं मिलता है। जहाँ तक शिक्षा का प्रश्न है, शूद्रों को *रामायण महाभारत* और पुराण सुनने का और कभी कभी वेद सुनने का भी अधिकार निस्संदेह रूप से मिल गया था। सभी बातों पर विचार करते हुए कह सकते हैं कि गुप्तकाल में शूद्रों की स्थिति में जो आर्थिक, राजनीतिक सहविधिक सामाजिक और धार्मिक परिवर्तन हुए वे उक्त समुदाय की बदलती हुई सामाजिक स्थिति के सूचक हैं।

संदर्भ

1 काणे हिस्ट्री ऑफ धर्मशास्त्र II भाग 1 पृ XI काणे ने इन स्मृतियों की तिथियाँ इस प्रकार बताई हैं—विष्णु 100 300 ई याज्ञवल्क्य 100 300 ई नारद 100 400 ई बृहस्पति 300 500 ई कात्यायन 400 600 ई यद्यपि विष्णु और याज्ञवल्क्य स्मृतियाँ कुछ पूर्व की प्रतीत होती हैं यद्यपि मोटे तौर पर ये सभी स्मृतियाँ गुप्तकाल के संबंध में प्रामाणिक मानी जा सकती हैं

2 याज्ञवल्क्य II 270 विष्णु V 3 हापकिंस म्युचुअल रिलेशंस ऑफ दि फोर कास्ट्स इन मनु पृ 31 हापकिंस का मत है कि यह याज्ञवल्क्य के विषय में कदाचित् ही संभव हो सकता है किंतु कई विषयों में याज्ञवल्क्य का जैसा उदारप्रिय रुख देखते हैं तदनुसार यह संगत ही लगता है

3 हापकिंस कैंब्रिज हिस्ट्री ऑफ इंडिया I पृ 279

4 वही पृ 280

5 गायकवाड़ ओरिएंटल सिरीज सं LXXV इंट्रोडक्शन पृ 118 बृहस्पति स्मृति अपने मूल रूप में मनु संहिता की अनुगामी टीका जैसी रही होगी

6 हापकिंस 'दि ग्रेट एपिक ऑफ इंडिया" पृ 397 98
7 वही तुलनीय 'कैंब्रिज हिस्ट्री ऑफ इंडिया' I पृ 258
8 हाजरा पुराणिक रेकर्ड्स ऑन हिंदू राइट्स ऐंड कस्टम्स" पृ 5
9 वही पृ 175
10 वही पृ 174
11 वही पृ 188
12 वही पृ 177 संभवतया छठी शताब्दी ई का पूर्वार्ध
13 गायकवाड ओरिएंटल सिरीज अंक LXXXV इंट्रोडक्शन पृ 173
14 हाजरा पूर्व निर्दिष्ट पृ 19
15 वही पृ 51 ब्रह्मांड पुराण में कुछ अध्याय हैं जिनसे वैष्णव प्रभाव का संकेत मिलता है वही पृ 18
16 हापकिंस 'इथिक्स ऑफ इंडिया पृ 241 तुलनीय
17 दासगुप्त और डे हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर भूमिका पृ XXX
18 कहा जाता है कि शूद्रक महान ब्राह्मण मंत्री था तुलनीय चारपेंटियर (जर्नल ऑफ दि रायल एशियाटिक सोसायटी ऑफ ग्रेट ब्रिटेन ऐंड आयरलैंड लंदन 1923) पृ 596 7
19 सुजुकी लंकावतार सूत्र, इंट्रोडक्शन पृ XLIII
20 एस के डे हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर पृ 71
21 दासगुप्त और डे पूर्व निर्दिष्ट पृ 532 पाद टिप्पणी कीथ इनका समय सातवीं शताब्दी ई बताते हैं कीथ हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर, प्रीफेस पृ XXII
22 मोतीचंद्र भारतीय वेशभूषा अध्याय IX मोतीचंद्र ने इनका उपयोग गुप्तकालीन वेशभूषा का वर्णन करने के लिए किया है
23 मजुमदार और पुसलकर दि एज ऑफ इंपीरियल यूनिटी पृ 270 तीसरी शताब्दी ई इस ग्रंथ का संभाव्य रचनाकाल प्रतीत होता है तुलनीय द्वितीय शताब्दी ई एम घोष नाट्यशास्त्र, अनुवाद इंट्रोडक्शन पृ LXXXVI और दासगुप्त और डे पूर्व निर्दिष्ट पृ 522
24 दासगुप्त और डे पूर्व निर्दिष्ट पृ 645 पर उद्धृत स्मिथ इसका काल द्वितीय शताब्दी ई पू रखते हैं और हरप्रसाद शास्त्री प्रथम शताब्दी ई किंतु बनर्जी शास्त्री चकलादार जाली और विंटरनिज इसे तीसरी चौथी शताब्दी ई का मानते हैं चकलादार सोशल लाइफ इन एनशिएंट इंडिया पृ 33 37 चकलादार का मत है कि वात्स्यायन पश्चिम भारत में हुए थे (वही पृ 96)
25 वराहमिहिर का काल 505 587 ई माना जाता है और इनकी सभी कृतियाँ छठी शताब्दी के मध्य की मानी जाती हैं
26 बनर्जी डेवलपमेंट ऑफ हिंदू आइकनोग्राफी पृ 28 9
27 कामंदक नीतिसार II 21 'सदर्न एडिशन ऑफ महाभारत शांतिपर्व 60 26 92 2 अनुशासनपर्व 9 18 भागवत पुराण XI 17 19 भविष्य पुराण I 44 27 मार्कण्डेय पुराण 28 3 8 विष्णु पुराण III 8 32 और 33

28 सदर्न एडिशन ऑफ दि महाभारत आश्वमेधिक पर्व 97 29
29 वही शांतिपर्व अध्याय 78 17
30 वही अनुशासन पर्व 208 34
31 वही 208 33
32 अमरकोश II 10 38 39
33 अमरकोश II 10 15 18
34 नारद V 23 बृहस्पति XV 12 और 13
35 वही
36 विष्णु, V 155 6 याज्ञवल्क्य II 197 नारद VI 9
37 नारद VI 6 7
38 वही VI 3
39 याज्ञवल्क्य II 198
40 वही
41 नारद VI 7
42. जाली सेक्रेड बुक्स ऑफ दि ईस्ट XXXIII पृ 140 1
43 वही VI 6 की पाद टिप्पणी
44 अर्थशास्त्र III 13 याज्ञवल्क्य II 194 नारद VI 2 3 कात्यायन श्लोक 656
45 सदर्न एडिशन ऑफ दि महाभारत शांतिपर्व अध्याय 60 24
46 वही
47 नारद VI 10 इसके अनुसार आठ गायें चराने का पारिश्रमिक एक गाय का दूध होता है
48 पिंड निर्युक्ति पृ 368 369
49 बृहत्कल्प भाष्य 2358
50 शांतिपर्व, 60 25 शांतिपर्व के नियम वैश्य गोपालकों और कर्षकों के प्रसंग में हैं किंतु ये नियम शूद्रों पर भी लागू रहे होंगे
51 बृहस्पति XVI 1 2
52 वही
53 प्राणनाथ इकानामिक कंडीशन इन एनशिएंट इंडिया पृ 158
54 हुमनीय विल्सन ए ग्लासरी आफ जुडिशियल ऐंड रेवेन्यू टर्म्स पृ 485
55 कामसूत्र IV 1 33 और 42. टीका सहित
56 शांतिपर्व 60 31 "अवश्यभरणीयो हि वर्णानां शूद्र उच्यते
57 वही 60 32 33
58 वही 60 27
59 सदर्न एडिशन ऑफ दि महाभारत अनुशासन पर्व 208 34
60 कार्पस इंस्क्रिप्शनम इंडिकेरम III सं 6 पंक्ति 2 गुप्तकाल के एक उत्कीर्ण लेख में दासों के क्रय विक्रय की उपमा आई है बृहस्पति ने दासनपत्र अर्थात दास की बिक्री के दस्तावेज का

उल्लेख किया है (VI 7) मृच्छकटिक में दास वृत्ति राजा द्वारा अनुज्ञात एक प्रथा के रूप में वर्णित है (इंडियन हिस्टारिकल क्वार्टर्ली कलकत्ता V) पृ 307

61 नारद V 26 28 इन दासों में कुछ को दास कहना विवादार्णव सेतु के एक उद्धरण के अनुसार जो वृहस्पति का माना गया है ठीक नहीं है एच टी कोलब्रुक ए डाइजेस्ट आफ हिंदू ला II 12 एतत्कालीन जैन ग्रंथों में छ प्रकार के दासों का उल्लेख प्रतीत होता है जैन लाइफ ऐज डिपिक्टेड इन जैन कैनन्स, पृ 107
62 नारद V 5 वृहस्पति XV 15 16
63 नारद V 6 7
64 वही V 23 25
65 *याज्ञवल्क्य II 182 बलाद्दासीकृतश्चौरैरविक्रीतश्चापि मुच्यते*
66 कोलब्रुक पूर्व निर्दिष्ट II पृ 25
67 कात्यायन श्लोक 722 इस मान्यता को कात्यायन ने दुहराया है
68 याज्ञवल्क्य II 182 3 नारद V 39 कात्यायन श्लोक 716
69 श्लोक 715 तुलनीय विष्णु, V 154
70 नारद V 37 वृहस्पति XV.243 विक्रीणीते स्वतन्त्रो य स्वमात्मान नराधर्म स जवेधन्यतमस्त्या सोऽपिदास्यान्न मुच्यते
71 अनुशासन पर्व 45 23 काणे पूर्व निर्दिष्ट II भाग I पृ 182 में उद्धृत
72 नारद V 42-43 तुलनीय कात्यायन में दास मुक्ति सबधी नियम श्लोक 715 लेकिन नारद ने कहा है कि कुछ कोटियों के दास स्वामी के अनुग्रह के बिना मुक्त नहीं हो सकते थे (V 29)
73 धर्मकोश I भाग 1 पृ 299 में उद्धृत
74 कात्यायन श्लोक 350
75 अमरकोश III 5 27
76 जैन पूर्व निर्दिष्ट पृ 362 65 वृहत्कथाभाष्य गाथा में तीन नापित दासियों की चर्चा है (6094)
77 घोषाल दि क्लासिकल एज पृ 559 कात्यायन श्लोक 962 63 शूद्रक मृच्छकटिक' VIII 25
78 शूद्रक मृच्छकटिक (करमारकर सस्करण पृ 309)
79 कात्यायन श्लोक 92
80 विष्णु, XVIII 44
81 कात्यायन श्लोक 882 वृहस्पति (सेक्रेड बुक्स ऑफ दि ईस्ट) XXV 82 83
82 नारद V 41 कात्यायन श्लोक 724
83 श्लोक 724 यह विक्रय स्वामी की अनुमति के बिना सभव नहीं रहा होगा काणे ने विवाद चिंतामणि के पाठ को अच्छा माना है कात्यायन पृ 267 पाद टिप्पणी श्लोक 724 पर
84 नारद XIII 38
85 वृहस्पति XXVI 18 28 43 53 और 64

86 (एपिग्राफिया इंडिया कलकत्ता और दिल्ली XX) उत्कीर्ण लेख स 5 पंक्ति 5 11 एस के मैती 'दि इकानामिक लाइफ ऑफ नार्दर्न इंडिया इन दि गुप्ता पीरियड', पृ 50-51

87 (एपिग्राफिया इंडिया कलकत्ता और दिल्ली XX) उत्कीर्ण लेख स 5 पंक्ति 5 11

88 (इंडियन एंटीक्वेरी बम्बई, XXXIX) पृ 215 16

89 भारतवर्ष 1349 भाग I पृ 384 (हिस्ट्री ऑफ बंगाल, I 652 में उद्धृत)

90 कृष्णकुमारी जे विरजी 'एनशिएंट हिस्ट्री ऑफ सौराष्ट्र' पृ 246-47 267 और आगे

91 कोसम्बी (जर्नल ऑफ अमेरिकन ओरिएंटल सोसायटी बाल्टीमोर, 'lxxv) पृ 237

92 शांतिपर्व III 24 26 92.2

93 अमरकोश II 9 6

94 मनुस्मृति IV 253 और विष्णु, LVII 16 में आर्धिक शब्द का प्रयोग है किंतु याज्ञवल्क्य I 166 में अर्धसीरिक शब्द का

95 (एपिग्राफिया इंडिका कलकत्ता और दिल्ली, I) उत्कीर्ण लेख सं 1 पंक्ति 39 बुहलर ने आर्धिक शब्द का अनुवाद 'लेबरर' या मजदूर किया है जो गलत है वही पृ 9

96 (एपिग्राफिया इंडिका कलकत्ता और दिल्ली XXIX) उत्कीर्ण लेख स 1 पंक्ति 39 कुलिकों को बृहस्पति (संस्कार 404) ने एक 'जन' बताया है वे 11वीं शताब्दी के पाल उत्कीर्ण लेख में भी जनों की सूची में गिनाए गए हैं

97 कोल छोटा नागपुर के मुंडा समुदाय का एक महत्वपूर्ण आदिवासी वर्ग है

98 (एपिग्राफिया इंडिका कलकत्ता और दिल्ली, VIII) उत्कीर्ण लेख सं 12, पंक्ति 6

99 नारद, I 181

100 मजुमदार और पुसलकर दि एज ऑफ इंपीरियल यूनिटी पृ 299

101 नारद I 181 की टीका कीनाश शूद्र कर्षकों वा

102 नारद I 181

103 बृहस्पति XIX 6 यदि शूद्रो नेता स्यात्

104 मार्कण्डेय पुराण 49 47 तथा शूद्रांश्च स्वसमृद्धिकर्मवेतन तुलनीय अनुशासनपर्व अध्याय 68 में शूद्र धर्मों का वर्णन बंदोपाध्याय 'इकनामिक लाइफ ऐंड प्रोग्रेस इन एनशिएंट इंडिया' पृ 329 में उद्धृत

105 कात्यायन श्लोक 479 80 "कर्मकान् अर्थविदूषकान् समर्थयस्तु धारयेत् यहाँ प्रसंग से सिद्ध होता है कि 'कर्मकान्' 'अर्थविदूषकान्' का विशेषण है काणे ने कर्मकान् का अनुवाद उसे स्वतंत्र संवर्ग मानकर किया है (श्लोक 479-80 का अनुवाद) जो संदर्भ के आशय के अनुकूल नहीं लगता है क्योंकि संदर्भ में यह वचन और 'अर्थविदूषक' इन दोनों पदों के बीच में आया है तुलनीय, कात्यायन श्लोक 586

106 बृहस्पति संस्कार, 31 3-4

107 'कार्पस इंस्क्रिप्शनम इंडिकेरम III उत्कीर्ण लेख सं 60, पंक्ति 12, सं 27 पंक्ति 6 सं 26, पंक्ति 8

108 फ्लीट कार्पस इंस्क्रिप्शनम इंडिकेरम III पृ 123
109 कीलहार्न (एपिग्राफिया इंडिका III) पृ 314
110 प्राणनाथ पूर्व निर्दिष्ट पृ 157
111 पालि इंगलिश डिक्शनरी देखें कुटुंबिक शब्द
112 अर्थशास्त्र I 130
113 फ्लीट पूर्व निर्दिष्ट, III पृ 98 घोषाल हिंदू रेवेन्यू सिस्टम पृ 191 210 अन्य मतों के लिए देखें, बार्नेट (जर्नल ऑफ दि रायल एशियाटिक सोसायटी ऑफ ग्रेट ब्रिटेन ऐंड आयरलैंड लंडन 1931) पृ 165 सरकार सेलेक्ट इंसक्रिप्शंस I पृ 266 पाद टिप्पणी 5
114 रघुवंश XVII 65 नारद XVIII 48 बृहस्पति आपद्धर्म 7
115 बृहस्पति I 43-44 मूल ग्रंथ में कीनाश शब्द का प्रयोग है जिसका अर्थ नारद I 131 की असहाय कृत टीका के अनुसार शूद्र होता है
116 वाटर्स आन युआन चुआड्स ट्रैवल्स इन इंडिया I पृ 168 चतुर्थ वर्ण शूद्रों या खेतिहरों का है वे खेत को आबाद करने का काम करते हैं और बोने व काटने के समय बड़े उद्यमशील रहते हैं
117 नृसिंह पुराण 58 10 15 यह पुराण अलबरूनी को ज्ञात था (सॉची I 130) इसलिए इसके नवीनतम संकलन का काल दसवीं शताब्दी ई रखा जा सकता है
118 हापकिंस कैंब्रिज हिस्ट्री ऑफ इंडिया I पृ 268 हापकिंस शायद शूद्र के बदले स्लैव शब्द का प्रयोग करते है
119 अमरकोश II 9 98 और 99
120 विभङ्ग अट्ठकथा पृ 63 पालि इंगलिश डिक्शनरी में 'लौह' शब्द पर उद्धृत जैसा कि चंद्र के मेहरौली लौहस्तंभ से प्रकट होता है लोहा बनाने की कला इस काल में उन्नति की चोटी पर पहुँच गई थी
121 अमरकोश II 9 13
122 याज्ञवल्क्य II 193 नारद V 4
123 किंतु यह विचार भागवतपुराण XI 18 49 में भी आया है
124 कामंदक नीतिसार II 21 तुलनीय IV 54 56 मार्कण्डेय पुराण 28 3 8 विष्णु पुराण III 8 32 33 याज्ञवल्क्य I 120 विष्णु, III 5 शूद्रस्य सर्व शिल्पानि बृहस्पति संस्कार, श्लोक 530
125 बृहस्पति XIII 33
126 अमरकोश II 10 5 10
127 वही II 10 8 और II
128 वही II 10 13
129 वही II 10 12
130 इनमें से कुछ शिल्पियों की चर्चा कामसूत्र (I 4 28 V 2 12 VI 1 9) में भी आई है जो संभवतया 'नागरक' के विलासार्थ अपेक्षित होते थे जैसे मालाकार स्वर्णकार धोबी

अभिनेता नर्तक आदि

131 गौतम धर्मसूत्र X 31 33 वसिष्ठ धर्मसूत्र XIX 28 मनुस्मृति, VII 138 विष्णु, III 32

132 (जर्नल ऑफ दि रायल एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल कलकत्ता सीरीज III XV पृ 121 ला न 72 यह स्पष्ट नहीं है कि यह बेगारी राजा के लिए ली जाती था कि ग्राममहत्तरों के लिए

133 वसिष्ठ धर्मसूत्र XIX 37

134 पीछे देखें अध्याय VI

135 शांतिपर्व 88 1 12 में श्लोक 12 पर टिप्पणी राजधर्म के आलोचनात्मक संस्करण के श्लोक 12 पर टिप्पणी भाग II अनुलिपि 19 पृ 668 तुलनीय 87 16 77

136 (एपिग्राफिया इंडिका XXIV) उत्कीर्ण लेख सं 43 पंक्ति 18 19 इस अभिलेख में विवाह कर का भी उल्लेख है जो प्रथा हाल तक उत्तर भारत में प्रचलित थी

137 कामसूत्र I 4 1

138 बृहस्पति I 34 कौटिल्य के अर्थशास्त्र में भी यह बात है

139 अमरकोश II 8 18

140 शिल्पिसंघ का उल्लेख रघुवंश XVI 38 में आया है तथा पवतन पृ -4 5 में प्रधान राजमिस्त्री के अधीन कई राजमिस्त्रियों की चर्चा है

141 गौतम XI 21 22 मनुस्मृति VIII 41 और 46 मुखर्जी लोकल गवर्नमेंट इन एनशिएट इंडिया, पृ 125 131

142 नारद X 2 तुलनीय विष्णु, V 168 में संविद् शब्द का प्रयोग है तथा वृत्ति पालयेत्, याज्ञवल्क्य II 192 तुलनीय I 361

143 बृहस्पति XVII 18

144 वही I 126

145 मजुमदार कार्पोरेट लाइफ इन एनशिएंट इंडिया पृ 62

146 कार्पस इंस्क्रिप्शनम इंडिकेरम III स्कन्दगुप्त का इंदौर ताम्रपत्र (465 ई)

147 वही उत्कीर्ण लेख स 18 पृ 80 85

148 नरसु एसेंस ऑफ बुद्धिज्म पृ 141

149 स्कन्दगुप्त के इंदौर ताम्रपत्र के अनुसार इंदौर की तैलिक श्रेणि (तेली संघ) में एक ब्राह्मण ने धन निक्षेप किया था उसी प्रकार मंदसौर प्रस्तर अभिलेख के अनुसार रेशम के बुनकरों ने ब्राह्मणों के देवता सूर्य का मंदिर बनवाया था

150 अर्थशास्त्र III 14 ऊपर देखें पृ 155

151 याज्ञवल्क्य II 193 ना VI 5 बृहस्पति XVI 5 6

152 बृहस्पति XVI 5

153 विष्णु, V 153-4

154 वही V 157 8

155 मनुस्मृति VIII 215 बृहस्पति XVI 4 और 8 इसके एक पाठांतर में आठ कृष्णल की

जगह 200 पण आया है (सेक्रेड बुक्स ऑफ दि ईस्ट XLIII 345 बृहस्पति XVI 15 पर पाद टिप्पणी)

156 बृहस्पति XVI 3

157 वही XVI 11

158 नारद नेपाली पाठ सेक्रेड बुक्स ऑफ दि ईस्ट XXXIII 140 I VI 7 पर पाद टिप्पणी

159 वही VI 2

160 वही पृ 140 I VI 7 पर पाद टिप्पणी

161 नारद VI 11 17 बृहस्पति XVI 10 12 17

162 बृहस्पति XVI 17

163 अर्थशास्त्र II 23

164 याज्ञवल्क्य II 195

165 वही I 120

166 बृहस्पति संस्कार श्लोक 530 विक्रय सर्वपण्यानां शूद्रधर्म उदाहृत

167 मार्कण्डेय पुराण 28 3 8

168 विष्णु पुराण III 8 32 33

169 बृहस्पति XIII 16

170 भविष्यत् पुराण I. 44.32

171 *अर्थशास्त्र III 13 याज्ञवल्क्य II 194 नारद VI 2 3 कात्यायन श्लोक 656*

172 शांतिपर्व 60 25 यद्यपि शांतिपर्व में मजदूरी की व्यवस्था वैश्य पेशवरों के लिए है तथापि यह शूद्रों पर भी लागू रही होगी

173 यह बात साझेदारी (सम्भू समुत्थान) के विषय में दिए गए विस्तृत नियमों से सिद्ध होती है जो नियम सर्वप्रथम याज्ञवल्क्य में आए हैं यह प्रेक्षणीय है कि कौटिल्य और मनु (XII 206 210) का अनुसरण न करते हुए, याज्ञवल्क्य (II 265) ने साझासंबंधी नियम प्रथमत बनियों और विदेश व्यापारियों के लिए दिया है और आगे कहा है कि ये ही नियम पुरोहितों की और कृषकों एवं शिल्पियों की साझेदारी में लागू होते हैं इसी प्रकार इस काल में जो विदेश व्यापार बढ़ता जा रहा था उसके चलते नारद को यह नियम भी देना पड़ा कि विदेशों में किए गए ऋण के करारों के स्थान में प्रचलित नियम ही लागू होंगे नारद I 105 106 तुलनीय जायसवाल मनु ऐंड याज्ञवल्क्य पृ 198 और 211 गुणाढ्य की बृहत्कथा में जो लगभग 500 ई की कृति है (कीथ हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर, पृ 268) राजा महाराजाओं की उतनी कहानियाँ नहीं हैं जितनी बनियों व्यापारियों समुद्रयात्रियों और शिल्पकारों की (वही) पर संभव है कि ये कहानियाँ दूसरी तीसरी सदी की हैं जब वाणिज्य व्यापार पराकाष्ठा पर था

174 बृहत्संहिता 52 12 13

175 अमरकोश II 6 13 अमरकोश में शूद्री और शूद्रा का अर्थ भिन्न भिन्न किया गया है शूद्री का अर्थ है शूद्र की पत्नी किंतु शूद्रा का अर्थ है शूद्र जाति की महिला आभीर जाति की महिला को

महाशूनी कहा गया है

176 पार्जिटर डायनेस्टीज ऑफ दि कलि एज पृ 55

177 वही

178 आर्यक जिसे गोपालदारक कहा गया है (मृच्छकटिक VI 11) इसमें कुछ संदेह है क्योंकि हो सकता है कि गोपाल व्यक्ति विशेष का नाम हो

179 याज्ञवल्क्य I 141

180 मनुस्मृति VII 54 कामदक नीतिसार, IV 25 याज्ञवल्क्य, XIII 312 तुलनीय कामदक नीतिसार V 68 70 *कात्यायन श्लोक 11 में कहा गया है कि अमात्य ब्राह्मण होना चाहिए*

181 शांतिपर्व 85 7 10 परंतु शांतिपर्व के आलोचनात्मक संस्करण में वह भाग नहीं है जिसमें कहा गया है कि 37 के अमात्य मडल में चार ब्राह्मण आठ क्षत्रिय इक्कीस वैश्य तीन शूद्र और एक सूत रहने चाहिए (शांतिपर्व, कलकत्ता 85 7 11)

182 याज्ञवल्क्य II 1 3 तुलनीय बृहस्पति I 67

183 कात्यायन श्लोक 67

184 बृहस्पति I 79

185 वही I 72

186 (एपिग्राफिया इंडिका XV) पृ 130

187 जायसवाल हिंदू पालिटी भाग I पृ 53 भाग II पृ 105

188 टी ब्लाख आर्क्योलोजिकल सर्वे (ऑफ इडिया) रिपोर्ट्स , 1903-4 पृ 104

189 अमरकोश II 10 5 कुलक स्यात् कुलश्रेष्ठ दीक्षितार इस अर्थ को मानते हैं गुप्त पालिटी पृ 257

190 नारद I 187 लगता है शूद्र साक्षियों के विषय में पुराना दुराग्रह इस काल में भी बना रहा

191 ब्लाख पूर्व निर्दिष्ट पृ 11416 कुलिकों (शिल्पि सघों के प्रधानों) की अठारह मुद्राएँ बसाढ़ (वैशाली) में मिली हैं

192 वही पृ 117 ईसा की दसवीं ग्यारहवीं शताब्दियों में चबा राज्य में कुलिकों का उल्लेख शौल्किक गौल्मिक आदि के साथ छोटे अधिकारी के रूप में हुआ है फोगेल एंटिक्विटीज ऑफ चबा स्टेट' भाग I उत्कीर्ण लेख स 15 पंक्ति 8 9 उत्तर प्रदेश के गोरखपुर में मिले 1031 ई के एक उत्कीर्ण लेख में शौल्किक गौल्मिक आदि के साथ महापाथाकुलिक का भी उल्लेख है (एपिग्राफिया इंडिका VII उत्कीर्ण लेख स 9 पंक्ति 34) सम्भवतया कुलिक और *महापाथाकुलिक शिल्पिसघों से कर तहसीलनेवाले अधिकारी थे*

193 जबुद्दीवपन्नत्ति 3.55 (पृ 229)

194 कामदक XII 44-45

195 नारद XIV 26

196 बृहस्पति V 38

197 याज्ञवल्क्य II 69 कात्यायन श्लोक 341 नारद I 154 उन्होंने अनिंद्य शूद्र शब्द का प्रयोग किया है

198 कात्यायन श्लोक 348

199 नारद I 178 181 185

200 वही I 154

201 याज्ञवल्क्य II 72

202 वही XIX 26 27

203 वही II 150

204 मनु, VIII 258 260

205 विष्णु, VIII 20 23 नारद I 199

206 मनु, VIII 114 116

207 याज्ञवल्क्य II 98 बृहस्पति VIII 12 कात्यायन श्लोक 422

208 याज्ञवल्क्य II 98

209 नारद I 334 335 बृहस्पति VIII 12 कात्यायन श्लोक 422

210 श्लोक 422 कात्यायन ने अग्नि जल और विष वाले दिव्य उन लोगों के लिए भी वर्जित किए हैं जो इनका कारबार करते हैं (श्लोक 421)

211 नारद I 322

212 विष्णु, IX 27

213 नारद I 335 कात्यायन श्लोक 422

214 विष्णु, IX 3 10

215 वही IX 11

216 वही IX X XI और XII

217 जोहान्स स्ट्राबायो (500 ई) द्वारा उद्धृत बार्डसन मैकिंडल एनशिएंट इंडिया ऐज डिस्क्राइब्ड इन क्लासिकल लिटरेचर पृ 172-4

218 कात्यायन, श्लोक 433

219 मनु, VIII 24

220 कात्यायन श्लोक 118 द्विजाति प्रतिभूहीनो रक्ष्य स्याद् बाहयपरिपि शूद्रादीन प्रतिभूहीनान् बन्धयन्निगडेन तु

221 वही, श्लोक 119

222 वही

223 याज्ञवल्क्य II 125 बृहस्पति XXVI 41-42 अनुशासनपर्व (सदर्न एडिशन ऑफ दि महाभारत) 82 18 और 21 (नार्दर्न एडिशन ऑफ दि महाभारत) 47 18 और 21

224 विष्णु, XVIII 38 39

225 वही XVIII 32

226 बृहस्पति XXVI 125 तुलनीय अनुशासनपर्व (सदर्न एडिशन ऑफ दि महाभारत) 85 15 (नार्दर्न एडिशन ऑफ दि महाभारत) 47 15

227 बृहस्पति XXVI 122

228 अनुशासनपर्व (सदर्न एडिशन ऑफ दि महाभारत) 19 82 (नार्दर्न एडिशन ऑफ दि महाभारत) 47 19

229 वही (सदर्न एडिशन ऑफ दि महाभारत) 82 57 (नार्दर्न एडिशन ऑफ दि महाभारत) 47 56

230 याज्ञवल्क्य II 133

231 अनुशासनपर्व, *(सदर्न एडिशन ऑफ दि महाभारत) 84 18*

232 याज्ञवल्क्य II 37 विष्णु, VI 15

233 वही II 38

234 विष्णु, II 58 याज्ञवल्क्य II 34 35 नारद VII 6 7

235 विष्णु, III 59 61

236 अर्थशास्त्र IV 1 द्वादशाशो भृतक

237 निशीथ चूर्णि 20 पृ 281 जैन पूर्व निर्दिष्ट पृ 62 पर उद्धृत

238 नारद XV और XVI 22 23 25 26 28 इन्ट्रोडक्शन टु प्लेट II 37

239 बृहस्पति IX 20 ताडन बधन चैव तथैव च विडम्बनम् एव दण्डो हि शूद्रस्य नार्थ दण्डो बृहस्पति मातृका 1 का पाठ विडम्बनम्, जो रगस्वामी अय्यगर ने अपने वर्गीकरण में दिया है विडम्बनम् की अपेक्षा अच्छा अर्थ देता है

240 वही IX 18

241 नारद XV XVI 11 14

242 वही XV XVI 13

243 मनुस्मृति VIII 267 9 नारद XV और XVI 16 बृहस्पति XX 12

244 बृहस्पति XX 13

245 वही XX 10

246 वही XX 16

247 जे लेगि ए रेकार्ड ऑफ बुद्धिस्टिक किंगडम्स पृ 43

248 याज्ञवल्क्य II 206

249 वही II 216 परस्पर तु सर्वेषा शस्त्रे मध्यमसाहस

250 वही II 215 इस सदर्भ में पीडनम् का अर्थ विज्ञानेश्वर ने ताड़नादि किया है

251 विष्णु, V 40-41

252 वही V 41 अत्यागमने वध्य

253 वही LIV 9

254 वही L. 6 और 12 14

255 वही XXXVII 13 34 याज्ञवल्क्य II 236

256 विष्णु, XXXVII 35 गोमेध का विधान स्पष्टतया बहुत प्राचीन है *और ऐसा भी* माना जा सकता है कि यह गुप्तकाल में प्रचलित रहा होगा निस्सदेह विष्णु ने *बिना सोचे समझे* इस विधान को प्राचीन स्रोत से लेकर रख दिया है

257 हस्तलेख डी 7 एस (आलोचनात्मक सस्करण के वर्गीकरण के *अनुसार) श्लोक* 45 *मृच्छकटिक* (IX 39) में न्यायपीठ ने ब्राह्मण चारुदत्त को प्राणदंड *से छूट देने की प्रशंसा की है ऐसी* छूट के लिए कात्यायन, श्लोक 483 भी देखें

258 हस्तलेख डी 7 एस (आलोचनात्मक सस्करण के वर्गीकरण के अनुसार) श्लोक 55

259 (जर्नल ऑफ दि रायल एशियाटिक सोसायटी ऑफ बगाल कलकत्ता सीरीज III XVI) पृ 118

260 एस बील ट्रैवेल्स ऑफ फाहियान पृ 54 55 जाइल्स ने भी ऐसा ही अनुवाद किया है (ट्रैवेल्स ऑफ फाहियान पृ 21) किंतु लेगि ने इस प्रकार अनुवाद किया है 'अपराधियों को (हर केस की) परिस्थितियों के अनुसार दड मिलता था ए रेकार्ड ऑफ बुद्धिस्टिक किंगडम्स पृ 43 जिससे वर्णभेद ध्वनित होता है

261 मनुस्मृति VIII 337 और 8 नारद परिशिष्ट (स्तेय) परिशिष्ट 51 और 52

262 शांतिपर्व 36 28 29

263 कात्यायन श्लोक 485

264 अमरकोश II 10 25 26 तुलनीय अनुशासनपर्व (सदर्न एडिशन ऑफ दि महाभारत) 143 21 (नार्दर्न एडिशन आफ दि महाभारत) 94 21

265 शांतिपर्व 12 27 25 11 67 2 76 5 88 26 90 8 98 8 101 3

266 शांतिपर्व 79 17 18 अभ्युत्थिते दस्युबले क्षत्रार्थे वर्णसकरे ब्राह्मणो यदि वा वैश्य शूद्रो वा राजसत्तम । दस्युभ्योऽथ प्रजा रक्षेद् दण्ड धर्मेण धारयन् वही 79 34 36

267 शांतिपर्व 78 37

268 वही 78 38

269 यद्यपि इसके रचयिता वसिष्ठ कहे जाते हैं किंतु इसकी शैली वसिष्ठ धर्मसूत्र की शैली से नहीं मिलती है फिर भी इसमें तीरदाजी पर जो बहुत जोर दिया गया है उससे लक्षित होता है कि इसका सकलन गुप्तकाल के बाद नहीं हुआ होगा

270 धनुर्वेद सहिता श्लोक 3

271 वही श्लोक 8

272 मृच्छकटिक में वीरक और चदनक के दृष्टात VI 22 और 23

273 शांतिपर्व 73 9 74 4 5 8 10 28 32 75 13 22

274 वही 49 60 61

275 अनुशासनपर्व (सदर्न एडिशन ऑफ दि महाभारत) 214 58 शूद्र पृथिव्या बहवो राजा बहुविरोधका तस्मात प्रमाद सुश्रोणि न कुर्यात् पण्डितो नृप

276 वसिष्ठ धर्मसूत्र IV 24 आश्वमेधिक पर्व (सदर्न एडिशन ऑफ दि महाभारत) 118 17 20 अमरकोश (II 10 9) में शूद्रों को आलसी और दक्ष बताया गया है

277 शातिपर्व 91 12 13

278 नारद XVIII 14 16

279 वीरमित्रोदय के अनुसार

280 याज्ञवल्क्य II 304 मनुस्मृति (IX 224) में द्विजलिंगी (ब्राह्मण का स्वाँग रचनेवाले) शूद्र के लिए प्राणदड का विधान है किंतु इस प्रसग में राजा के विरोध की चर्चा नहीं है

281 शांतिपर्व 89 13 14 कौटिल्य ने ऐसे लोगों के लिए नई बस्ती में प्रवेश वर्जित किया है अर्थशास्त्र II 1

282 पाडुलिपि डी 7 एस (आलोचनात्मक संस्करण के वर्गीकरण के अनुसार) श्लोक 20

283 याज्ञवल्क्य III 126

284 वायु पुराण II 11 90 ब्रह्माड पुराण III 10 96

285 वायु पुराण परिशिष्ट स 818 पाटिल कल्चरल हिस्ट्री फ्रॉम दि वायु पुराण' पृ 304 में उद्धृत यह विभेद शांतिपर्व में भी आया है

286 एक अन्य हस्तलेख में 'गौर' वर्ण विहित किया गया है

287 नाट्यशास्त्र XXI 113 पचालों शूरसेनों मागधों अगों और कलिंगों के लिए काला भी विहित किया गया है (वही XXI 112)

288 वही II 49 52

289 वही II 55

290 प्लेटो दि रिपब्लिक (जावेट का अनुवाद) पृ 126 7

291 विष्णु पुराण XXVII 6-9

292 कार्पस इंस्क्रिप्शनम इंडिकेरम III स 35 (समयाक 533 34 ई) पंक्ति 9 12

293 वही स 3 (समयाक 401 2) पंक्ति 1 2 तुलनीय फ्लीट पूर्वोद्धृत पृ 11 पाद टिप्पणी 1

294 नाट्यशास्त्र XVII 95 99

295 वही XVII 73

296 मृच्छकटिक अक 1 पृ 5 अक 2 पृ 63 64 इनमें से कुछ गालियाँ, जैसे 'छिण्णालिआ पुत्त' बिहार में आज भी प्रचलित है

297 नाट्यशास्त्र XII 146 8 नीचादि चेटाविनाम्

298 याज्ञवल्क्य I 116 गौतम की भाँति इन्होंने इसके लिए 80 वर्ष की वय सीमा नहीं निर्धारित की है

299 वही I 107

300 वही

301 आपस्तब धर्मसूत्र II 4 9 5 बौधायन धर्मसूत्र II 3.5 11

302 याज्ञवल्क्य I 103 अनुशासनपर्व (सदर्न एडिशन ऑफ दि महाभारत) 154 22 250 15

303 आश्वमेधिक पर्व (सदर्न एडिशन ऑफ दि महाभारत) 110 17 20 61 44-45 बृहस्पति श्राद्धखंड श्लोक 43

304 शांतिपर्व 37 22 23 रगजीवन शब्द का अर्थ रगरेज या अभिनेता किया जा सकता है

305 याज्ञवल्क्य I 160

306 वही I 161.5 चाक्रिक शब्द का अर्थ तेली भारवाहक या गाड़ीवान हो सकता है

307 अनुशासनपर्व (नार्दर्न एडिशन ऑफ दि महाभारत) 135 2 3 (सदर्न एडिशन ऑफ दि महाभारत) 198 2 3

308 वही (नार्दर्न एडिशन आफ दि महाभारत) 135.5 (सदर्न एडिशन ऑफ दि महाभारत) 198.5

309 वही (नार्दर्न एडिशन ऑफ दि महाभारत) 136 20 22 (सदर्न एडिशन ऑफ दि महाभारत)

199 20 22

310 आश्वमेधिक पर्व (सदर्न एडिशन ऑफ दि महाभारत) 110 24

311 वही 110 32

312 याज्ञवल्क्य I 166

313 बृहस्पति XV 19

314 बृहस्पति प्रायश्चित श्लोक 34 86 88 आचार श्लोक 87

315 मृच्छकटिक I 32

316 याज्ञवल्क्य III 255 6

317 वही III 255 6 की टीका

318 अमरकोश II 10 39-43

319 वही II 10 44-46

320 पंचतंत्र पृ 15

321 याज्ञवल्क्य I 170

322 वही I 171 173

323 वही I 175 6

324 वही I 177 8

325 वही I 176

326 लैंगि पूर्व निर्दिष्ट पृ 43

327 याज्ञवल्क्य II 296

328 बृहस्पति पृ 21 श्लोक 128 मध्यदेशे कर्मकरा शिल्पिनश्च ग्वाशिन अंबेडकर का तर्क है कि गोमासभक्षण अस्पृश्यता के उद्भव का एक मूल कारण था अंबेडकर दि अनटचेबुल्स अध्याय 9 किंतु यह सिद्ध करने का कोई आधार नहीं है कि ये मजदूर और कारीगर अछूत माने जाते थे

329 पार्जिटर पूर्व निर्दिष्ट पृ 38 में वायु पुराण से उद्धृत

330 मार्कण्डेय पुराण 69 72 हाजरा पूर्व निर्दिष्ट पृ 232 में उद्धृत

331 अनुशासनपर्व (नार्दर्न एडिशन ऑफ दि महाभारत 44 9 सदर्न एडिशन ऑफ दि महाभारत 79 9) में यह पुराना नियम दुहराया गया है कि आसुर और पैशाच विवाह शायद द्विजों के लिए श्रेयस्कर नहीं हैं

332 अनुशासनपर्व (सदर्न एडिशन ऑफ दि महाभारत) 249 9 उत्तमाना तु वर्णाना मंत्रवत्पाणिग्रहः विवाहकरण चाहु शूद्राणा सम्प्रयोगत

333 बृहत्कल्पभाष्य 2.3446 जैन पूर्व निर्दिष्ट पृ 159 में उद्धृत

334 याज्ञवल्क्य I 69 एव तान्शूद्राणा नियोगाधिकार उक्त काणे पूर्व निर्दिष्ट II भाग I 604

335 काणे पूर्व निर्दिष्ट II भाग I पृ 604 5 में मूल उद्धृत

336 अनुशासनपर्व (सदर्न एडिशन ऑफ दि महाभारत) 149 15 16

337 नारद XII 100

338 याज्ञवल्क्य I 48 कात्यायन श्लोक 568

339 विष्णु, XXIV 41

340 जाली सेक्रेड बुक्स ऑफ दि ईस्ट VII 109 पाद टिप्पणी 41

341 नारद XII 4-6 अनुशासनपर्व (नार्दर्न एडिशन ऑफ दि महाभारत) 44 11 (सदर्न एडिशन ऑफ दि महाभारत) 79 11

342 अनुशासनपर्व (नार्दर्न एडिशन ऑफ दि महाभारत),44 12 और 13

343 कामशास्त्र VI 6 54 टीका सहित

344 वही I 5 3

345 वही III 1 1

346 याज्ञवल्क्य I 56 7 बृहस्पति आपद्धर्म श्लोक 47 संस्कार श्लोक 375 7 अनुशासनपर्व (सदर्न एडिशन ऑफ दि महाभारत) 44 13 47 8 9 आश्वमेधिक पर्व (सदर्न एडिशन ऑफ दि महाभारत) 117 10 यदि कोई व्यक्ति पुल्कसी के साथ संभोग करे तो पराक व्रत उसका प्रायश्चित है बृहस्पति प्रायश्चित श्लोक 70

347 मृच्छकटिक अंक 10

348 (एपिग्राफिया इंडिया XV) पृ 301 ईस्वी सन की आठवीं शताब्दी के एक पुरालेख से हमें पता चलता है कि शासक लोकनाथ के मातृपक्षीय पूर्वज को जो ब्राह्मण थे, शूद्र पत्नी से एक पुत्र (पारशव) था

349 मालविकाग्निमित्र अंक 1 पृ 10 जैन पूर्व निर्दिष्ट पृ 155 6

350 याज्ञवल्क्य I 91 94 नारद XII 108 111 और 113 अमरकोश II 10 1 4

351 अनुशासनपर्व (नार्दर्न एडिशन ऑफ दि महाभारत) 48 5 27 (सदर्न एडिशन ऑफ दि महाभारत) 83 5 27 (सदर्न एडिशन ऑफ दि महाभारत) 84 17

352 वही (नार्दर्न एडिशन ऑफ दि महाभारत)47 22, (सदर्न एडिशन ऑफ दि महाभारत) 83 22

353 वही (नार्दर्न एडिशन ऑफ दि महाभारत) 47 23 (सदर्न एडिशन ऑफ दि महाभारत) 83 23

354 वही (सदर्न एडिशन ऑफ दि महाभारत) 49 9

355 वही पृ 84 28

356 वही (नार्दर्न एडिशन ऑफ दि महाभारत) 49 9

357 वही (कल) 33 21 23

358 याज्ञवल्क्य II 294

359 कात्यायन श्लोक 351 आश्वमेधिक पर्व (सदर्न एडिशन ऑफ दि महाभारत) 116 19

360 अमरकोश II 10 1 4

361 वही II 9 78

362 वही II 10 20

363 लेगि पूर्व निर्दिष्ट पृ 43

364 व्यवहार भाष्य 3 92 निशीथ चूर्णि 11 पृ 747 जैन पूर्व निर्दिष्ट पृ 360 में उद्धृत

365 अमरकोश II 10 21

366 बृहस्पति प्रायश्चित श्लोक 49 50 यदि रजस्वला का श्वपाक से स्पर्श हो जाए, तो उसके लिए भी प्रायश्चित बताया गया है (वही प्रायश्चित श्लोक 87)

367 लेगि पूर्व निर्दिष्ट पृ 43

368 मार्कण्डेय पुराण II 34 36

369 अनुशासनपर्व (नार्दर्न एडिशन ऑफ दि महाभारत) 47 29 30 (सदर्न एडिशन ऑफ दि महाभारत) 83 29 39

370 महावंश X 93 व्यवहार भाष्य 7 449-462 पृ 79 भारत XIV 26

371 अमरकोश II 10 14

372 वही II 10 22 24

373 वही II 10 26 27

374 लेगि पूर्व निर्दिष्ट पृ 43 जाइल्स ने चडाल शब्द का अनुवाद 'फाउल मैन (लेपर) किया है जाइल्स पूर्व निर्दिष्ट पृ 21

375 उपाध्याय इंडिया इन कालिदास पृ 170

376 बृहत्कल्पभाष्य गाथा 2766

377 व्यवहार भाष्य 3 92 निशीथ चूर्ण 11 पृ 747 जैन पूर्व निर्दिष्ट पृ 360 में उद्धृत

378 अनुशासनपर्व (नार्दर्न एडिशन ऑफ दि महाभारत) 47.32, (सदर्न एडिशन ऑफ दि महाभारत) 83.32

379 वही (नार्दर्न एडिशन ऑफ दि महाभारत) 101 3 (सदर्न एडिशन ऑफ दि महाभारत) 158 4

380 लेगि पूर्व निर्दिष्ट पृ 43

381 तुलनीय मृच्छकटिक X

382 लंकावतार सूत्र पृ 258

383 वही पृ 246

384 जैन पूर्व निर्दिष्ट पृ 360 डोम्ब अधम गायकों की जाति है जो उत्तर भारत की प्राचीन जातियों में एक है

385 जैन पूर्व निर्दिष्ट पृ 144 5

386 अमरकोश II 10 31 32

387 जैन पूर्व निर्दिष्ट पृ 220 22 जट्ट जट्टी के गीत आज भी बिहार में निम्न जातियों के लोगों में प्रचलित हैं

388 आवश्यक चूर्णि II पृ 294 जैन पूर्व निर्दिष्ट पृ 222 में उद्धृत

389 भागवत पुराण XI 17 20 तुलनीय VII 11 30

390 मृच्छकटिक X 22

391 वज्रसूची (एस) श्लोक 16 पृ 5

392 अनुशासनपर्व (नार्दर्न एडिशन ऑफ दि महाभारत) 47 33 35 (सदर्न एडिशन ऑफ दि महाभारत) 83 33 5

393 महाभारत XII 328 49 श्राव्येच्च चतुरो वर्णान हापकिंस दि रैलिजन्स ऑफ इंडिया पृ 425 में उद्धृत

394 महाभारत XII 319 87 और आगे उद्धृत वही प्राप्य ज्ञानम् शूद्रादपि

395 मार्कण्डेय पुराण XXI 31 नाट्यशास्त्र I 14

396 भागवत पुराण I 4 25 I 4 29 स्त्रीशूद्रद्विजबन्धूना त्रयी न श्रुतिगोचरा कर्मश्रेयसि मूढाना श्रेय एव भवेदिह , इति भारतमाख्यान कृपया मुनिना कृतम्

397 भविष्यत् पुराण I 1 72 श्रोतव्यमेव शूद्रेण नाध्येतव्य कदाचन्

398 नाट्यशास्त्र I 12 और 13

399 कीथ दि साख्य सिस्टम पृ 57 पतजलि का योगसूत्र सभवतया तीसरी शताब्दी ई से पहले का नहीं है

400 वही पृ 57 चीनी स्रोत्र के अनुसार साख्यकारिका के रचयिता ईश्वरकृष्ण वसुबधु के पूर्व समकालीन थे और वसुबधु सभवतया 300 ई के लगभग हुए थे

401 वही पृ 100

402 वही पृ 100

403 याज्ञवल्क्य I 233 भृतकाध्यापक

404 मृच्छकटिक IX 21 वेदार्थान् प्राकृतस्त्व वदसि न च ते जिह्वा निपतिता

405 वज्रसूची (एम) पृ 4

406 जायसवाल मनु ऐंड याज्ञवल्क्य पृ 241

407 नाट्यशास्त्र XVII 37

408 वही XVII 39

409 कीथ हिस्ट्री ऑफ सस्कृत लिटरेचर पृ 31

410 नाट्यशास्त्र XVII 54 56

411 मुखर्जी एनशिएट इडियन एजुकेशन पृ 347

412 याज्ञवल्क्य III 262 अनुशासनपर्व (सदर्न एडिशन ऑफ दि महाभारत) 149 13 तुलनीय शान्तिपर्व 70 5

413 अनुशासनपर्व (सदर्न एडिशन ऑफ दि महाभारत) 147 1 शूद्र परिचर्या तुलनीय ब्रह्माड पुराण II 29.55

414 नारद I 332

415 विष्णु IX 10

416 मार्कण्डेय पुराण 28 7 8

417 ब्रह्माड पुराण III 12 19 यज्ञ पाँच हैं — अध्यापन पितृयज्ञ देवयज्ञ, बलि और नृयज्ञ मनुस्मृति III 69 70

418 याज्ञवल्क्य I 121

419 हॉपकिंस म्युचुअल रिलेशंस ऑफ फोर कास्ट्स [illegible] मनु पृ 36 — टिप्पणी।

420 ब्रह्माड पुराण III 12 19

421 मनुस्मृति II 169
422 याज्ञवल्क्य I 39
423 शांतिपर्व 60 36 स्वाहाकारनमस्कारौ मन्त्र शूद्रे विधीयते ताभ्यां शूद्र पाकयज्ञैर्यजेत् व्रतवान् स्वयम् सर्वाधिक महत्वपूर्ण हस्तलेखों में यह विभेद किया गया है कि कौन यज्ञ शूद्र कर सकता है और कौन द्विज इसमें स्वाहाकार नमस्कार और मंत्र का प्रयोग शूद्र के लिए वर्जित किया गया है किंतु दीक्षाव्रत के बिना ही पाकयज्ञ करने की अनुज्ञा दी गई है आलोचनात्मक टिप्पणी शांतिपर्व 60 राजधर्म भाग II खंड 19 पृ 660 661 पाकयज्ञ सभी दस्युओं के लिए भी विहित है (शांतिपर्व 65 II 22) जिससे सूचित होता है कि ये यज्ञ ब्राह्मणिक समाज की परिधि से बाहर भी फैलते जा रहे थे तुलनीय बृहस्पति संस्कार श्लोक 529
424 शांतिपर्व 60 37 38
425 शांतिपर्व 60 39-43 तुलनीय 51 52 यज्ञो मनीषया तात सर्ववर्णेषु भारत तस्मात सर्वेषु वर्णेषु श्रद्धायज्ञो विधीयते टीका सी एन (आलोचनात्मक संस्करण के वर्गीकरण के अनुसार) में सर्ववर्ण शब्द का अर्थ त्रैवर्णिक किया गया है पुलिंदा 19 पृ 660 61
426 याज्ञवल्क्य III 262
427 गैम्पर्ट डाई सुहनेजेरेमोनियन इन डर अल्टिनडिस्चेन रेख्टस्लिटरेटुर पृ 94
428 बृहस्पति प्रायश्चित श्लोक 60
429 बृहस्पति संस्कार श्लोक 101 किंतु कान छेदने के अंकुश की धातु विभिन्न वर्णों के बच्चों के लिए भिन्न भिन्न बताई गई है (वही)
430 वही संस्कार श्लोक 154(a)
431 आर बी पांडेय हिंदू संस्कार, पृ 161
432 मनुस्मृति II 35 चूडाकर्म द्विजातीनां सर्वेषामेव धर्मत
433 संभवत राम के हाथ से शंबूक के वध की कहानी जिसमें मनु की मनोवृत्ति का आभास मिलता है रामायण (उत्तरकांड अध्याय 74 76) में मौर्योत्तर काल में प्रक्षिप्त की गई है
434 रघुवंश XV 53 तुलनीय अनुशासनपर्व (सदर्न एडिशन ऑफ दि महाभारत) 270 11
435 शांतिपर्व 63 9 11 63 9 पुलिंदा 19 पृ 662 पर आलोचनात्मक टिप्पणी
436 वही 63 12 14
437 कात्यायन श्लोक 496 मार्कण्डेय पुराण में भी शूद्रसन्यासी का उल्लेख है (22.19) किंतु उनके समय के बारे में हमें कोई जानकारी नहीं है
438 याज्ञवल्क्य II 235
439 हरिभक्ति विलास के 18वें विलास में गोपालभट्ट द्वारा हयशीर्ष पंचरात्र से उद्धृत और वहाँ से बनर्जीकृत डेवलपमेंट आफ हिंदू आइकोनोग्राफी पृ 227 पाद टिप्पणी 1 में पत्युद्धृत
440 बृहत्संहिता (सुधाकर द्विवेदी संस्करण) 89 5 6
441 विष्णुधर्मोत्तर महापुराण III 89 12
442 वही III 90 2 शुक्ला शस्ता द्विजातीनां क्षत्रियाणां च लोहिता, विशां पीतांहिता कृष्णा शूद्राणां च हितप्रदा
443 याज्ञवल्क्य III 26

444 ब्रह्मांड पुराण III 14 86 87 विष्णु पुराण III 13 19 बृहस्पति अशौच श्लोक 39
445 याज्ञवल्क्य III 23
446 अनुशासनपर्व (नार्दर्न एडिशन ऑफ दि महाभारत) 101 11 12 (सदर्न एडिशन ऑफ दि महाभारत) 163 11 12
447 वही
448 वही (नार्दर्न एडिशन ऑफ दि महाभारत) 101 13 (सदर्न एडिशन ऑफ दि महाभारत) 163 12.
449 वही (नार्दर्न एडिशन ऑफ दि महाभारत) 106 2, (सदर्न एडिशन ऑफ दि महाभारत)163 2.
450 बृहस्पति अशौच श्लोक 34 35 कुछ वर्ग के लोग सग शुचि माने जाते थे जैसे शिल्पी कृषक वैद्य दास दासी नापित राजा और वेदज्ञ ब्राह्मण याज्ञवल्क्य III 28 29 बृहस्पति अशौच श्लोक 9
451 शांतिपर्व 36 35
452 बृहस्पति आचार श्लोक 37
453 बृहस्पति प्रायश्चित्त श्लोक 74 75
454 पांडेय- पूर्व निर्दिष्ट पृ 439
455 याज्ञवल्क्य I 121 वायु पुराण II 13 49
456 मत्स्यपुराण 17 63 64
457 वही 17 70
458 मार्कण्डेय पुराण 49 77 81 विष्णु पुराण I 6.34 35
459 ब्रह्मांड पुराण III 10 96 99 वायु पुराण II 11 90 मार्कण्डेय पुराण 96 23
460 मार्कण्डेय पुराण 96 36
461 ब्रह्मांड पुराण II 32 90 121 122
462 मार्कण्डेय पुराण 28 3 8
463 मत्स्यपुराण 17 71 दानेन सर्वकामाप्तिरस्य सजायते
464 अनुशासनपर्व (सदर्न एडिशन ऑफ दि महाभारत) 217 13 15 पाप की शुद्धि के लिए दान की महिमा के बारे में हाजरा पूर्व निर्दिष्ट पृ 250
465 मत्स्यपुराण 69 51 54 क इद कस्मादापि वैदिक मन्त्रमीरयेत् हाजरा ने जीवानंद के सस्करण के अध्याय 70 71 के समानांतर अध्याय 69 72 का काल लगभग 550 650 ई रखा है हाजरा पूर्व निर्दिष्ट पृ 176
466 मत्स्यपुराण 91 23 32.
467 बी सी ला हेवन ऐंड हेल पृ 36-45 में प्रस्तुत विमानवत्थु टीका के सार के आधार पर सगृहित
468 हाजरा पूर्व निर्दिष्ट, पृ 247
469 के वी रंगस्वामी अय्यगर बृहस्पति इंट्रोडक्शन, पृ 162.
470 बृहस्पति संस्कार, श्लोक 288
471 विष्णु, LXXXII 14 और 22, शांतिपर्व पांडुलिपि बी एस 5 ब्रह्मांड पुराण III 15 44

472 मनुस्मृति XI 42

473 वज्रसूची (बी बी) पृ 7

474 वही (ओ) पृ 4

475 वही (ई ई) और (जी आई) पृ 8 और 9

476 के जी गोस्वामी वैष्णविज्म (इंडियन हिस्टॉरिकल क्वार्टर्ली कलकत्ता XXXI) पृ 132

477 रायचौधरी दि अर्ली हिस्ट्री ऑफ दि वैष्णव सेक्ट पृ 117

478 भगवद्गीता IX 32 भागवत पुराण VII 7 54 55 XI 5 4

479 भागवत पुराण III 16 6

480 वही III 33 7

481 वही V 1 35 [illegible] आश्वमेधिक पर्व (सदर्न एडिशन ऑफ [illegible] महाभारत) 117 2.

482 शांतिपर्व (कल) 296 28 वैदेहक शूद्रमुदाहरन्ति द्विजा महाराज श्रुतोपपन्न अह हि पश्यामि नरेन्द्र देव विश्वस्य विष्णु जगत प्रधानम् यहाँ शूद्र के विशेषण के रूप में 'वैदेहक शब्द का प्रयोग विचित्र है

483 आश्वमेधिक पर्व (सदर्न एडिशन ऑफ दि महाभारत) 116 21

484 वही 116 22

485 वही 116 31

486 अनुशासनपर्व (नार्दर्न एडिशन ऑफ दि महाभारत) 18 81 (सदर्न एडिशन ऑफ दि महाभारत) 49 81

487 वायुपुराण I 30 18

488 वही II 39 352 4 वायुपुराण के परिशिष्ट में दी गई कहानी के अनुसार मख नाम के नापित ने वाराणसी में गणेश क्षेमक की मूर्ति स्थापित की पाटिल पूर्व निर्दिष्ट पृ 38

489 बी भट्टाचार्य जाख्यसंहिता फोरवर्ड पृ 34 शिलालेखीय प्रमाणों से यह पुस्तक 450 ई के आस पास की मानी गई है

490 जाख्यसंहिता 18 3 5

491 वही 6 9 सु (स ?) जातीयेन शूद्रेण तादृशेन महाधिया अनुग्रहाभिषेकौच कार्यौ शूद्रस्य सर्वदा

492 के जी गोस्वामी पूर्व निर्दिष्ट (इंडियन हिस्टारिकल क्वार्टर्ली कलकत्ता XXXI) पृ 125

493 फिर भी कई वचनों में विशेषतया ब्राह्मणों के लिए कर्मकांडों के अनुष्ठान की आवश्यकता पर जोर दिया गया है यदि ब्राह्मण सध्यावदन या अग्निहोत्र न करे और वाणिज्य वृत्ति या कृषि वृत्ति अपनाए तो वह शूद्र या वृषल की कोटि में आ जाएगा अनुशासनपर्व (नार्दर्न एडिशन ऑफ दि महाभारत) 104 19 20 (सदर्न एडिशन ऑफ [illegible] महाभारत) 161 20 (सदर्न एडिशन ऑफ दि महाभारत) 217 1[illegible] 12 आश्वमेधिक पर्व (सदर्न एडिशन ऑफ दि महाभारत) 116 11 12 तुलनीय शांतिपर्व XII 63 3 5 अग्निहोत्र उपनयन व्रत आदि धार्मिक कर्मों और संस्कारों का अनुष्ठान न करना अयाजकों के यहाँ यज्ञ कराना तथा शूद्रों की

सेवा करना ब्राह्मणों के लिए उपपातक बताए गए हैं याज्ञवल्क्य, III 234 242

494 आश्वमेधिक पर्व (सदर्न एडिशन ऑफ दि महाभारत) 116 5 6

495 अनुशासनपर्व, (नार्दर्न एडिशन ऑफ दि महाभारत) 48 48 (सदर्न एडिशन ऑफ दि महाभारत) 83 47

496 वनपर्व (कल) 215 13 यस्तु दमे सत्ये धर्मेच सतत स्थित त ब्राह्मणमह मन्ये वृत्तेन हि भवेद् द्विज

497 अनुशासनपर्व (कल) 143 46 50 तुलनीय वनपर्व (कल) 181 42-43 न योनिर्नापि सस्कारो न श्रुतु न च सन्तति

498 अनुशासनपर्व (कल) 143 51 शांतिपर्व (कल) 18 8 वनपर्व (कल) 180 25 26 तुलनीय 35 36 भविष्य पुराण I 44.31 तुलनीय भागवत पुराण VII 11 35

499 वज्रसूची (के के), श्लोक 43 पृ 10

500 वनपर्व (कल) 205 44 206 10 25

501 वही 206 20 22

502 हापकिंस रेलिजन्स ऑफ इंडिया पृ 425 में उद्धृत होल्त्समैन न्यूजेन बूखेर पृ 86

503 वज्रसूची (जी) श्लोक 9 और 10 पृ 2 तुलनीय (वाई) श्लोक 27 पृ 7

504 गीता IX 32 धर्मव्याध का भी ऐसा विश्वास है कि सेवा ही शूद्रों का धर्म है (कर्म शूद्रे)

505 द्विजशुश्रूषण धर्म भक्तितोमयि आश्वमेधिक पर्व (सदर्न एडिशन आफ दि महाभारत) 118 15 16

506 मनुस्मृति IX 335

507 मृच्छकटिक VIII 25 करमारकर का अनुवाद पृ 232 जेण म्हि गब्भदासे विणिम्मिदे भाअधेअदोसेहिं अहिअ च न किणिस्स पलिहलामि

508 घुर्ये 'कास्ट ऐंड क्लास पृ 95

509 अनुशासनपर्व (सदर्न एडिशन ऑफ दि महाभारत) 164 2 4 (नार्दर्न एडिशन ऑफ दि महाभारत) 107 2 3

510 मरे दि स्प्लेंडर दैट वाज इजिप्ट पृ 185

511 मोरेट और डेवी फ्राम ट्राइब टु इम्पायर पृ 222

512 शांतिपर्व 85 7 10

513 घुर्ये पूर्व निर्दिष्ट पृ 94 घुर्ये ऐसा ही सोचते हैं उनकी राय है कि 300 ई से 1000 ई तक शूद्र सामाजिक दृष्टि से और भी अधोगत हुए

साराश और निष्कर्ष

आरभिक काल से लेकर लगभग पाँच सौ ई   तक शूद्रों की स्थिति में हुए परिवर्तन के प्रमुख चरणों का विवरण मोटे तौर पर ही प्रस्तुत किया जा सकता है। ऐसा जान पड़ता है कि आर्यों और अनार्यों के पराजित और बेदखल कर दिए वर्ग शूद्र बना दिए गए और विजेता उसे अपनी सामूहिक सपत्ति मानने लगे। चूँकि अधिकाश शूद्र मूलत आर्य समुदाय के ही अग थे, इसलिए परवर्ती वैदिक समाज में भी उनके अनेक जनजातीय अधिकार खासकर धार्मिक अधिकार बने रहे। किंतु जब प्राक्मौर्य काल (लगभग छ सौ ई पू से तीन सौ ई पू तक) में वर्णाश्रित समाज पूर्णतया स्थापित हो गया तब उन्हें इन अधिकारों से वचित कर दिया गया और तमाम आर्थिक, राजनीतिक एव कानूनी और सामाजिक तथा धार्मिक अशक्तताएँ उन पर लाद दी गई। शूद्र को दास समझा जाने लगा हालाँकि कानूनन शूद्रों का केवल एक वर्ग ही दास रहा होगा। शूद्र शब्द को दास का पर्याय मानना गलत है, यद्यपि हापकिंस ने ऐसा ही माना है।[1] इसी प्रकार शूद्र को कृषि दास (सर्फ) कहना भी ठीक नही है जैसा कि वैदिक इडेक्स[2] में कहा गया है, क्योंकि कृषि दास वह है जो भूमि के साथ बँधा रहकर सेवा करता हो और उसके साथ हस्तातरित किया जा सकता हो। मोटे तौर पर हम कह सकते हैं कि बहुत दिनों तक शूद्र शब्द का प्रयोग उन बहुविध मजदूर वर्गों के लिए सामूहिक रूप में किया जाता रहा जो तीन उच्च वर्णों की तावेदारी करते थे। इस दृष्टि से *उसकी तुलना सामान्यतया स्पार्टा के गुलामों से की जा* सकती है। शूद्रों की चाकरी कई प्रकार की थी। वे घरेलू नौकरों और दासों कृषि दासों भाडे के मजदूरों और शिल्पियों के रूप में काम करते थे। हाल के एक लेखक ने निंदा भरे शब्दों में बताया है कि वे कोई रचनात्मक कार्य करने योग्य नहीं थे।[3] किंतु यह दृढता के साथ कहा जा सकता है कि शूद्रों के श्रम और कौशल तथा वैश्य किसानों द्वारा किया गया अतिरिक्त उत्पादन प्राचीन भारतीय समाज के विकास के भौतिक आधार थे।

मौर्यकाल में शूद्र से कृषि मजदूर का काम लेने की प्रवृत्ति पराकाष्ठा पर थी और उसके पहले या पश्चात किसी भी समय दासों भाडे के मजदूरों और कारीगरों पर राज्य का इतना

अधिक नियंत्रण नहीं रहा। कहा गया है कि कौटिल्य के *अर्थशास्त्र* में शूद्रों को आर्य माना गया है और वे गुलाम नहीं बनाए जा सकते थे। किंतु संबद्ध परिच्छेदों के सूक्ष्म विवेचन से इस मत की पुष्टि नहीं होती।[4] अशोक ने न्याय-प्रशासन में वर्ण-विभेदों को दूर करने का जो प्रयास किया उससे प्रायः ब्राह्मण नाराज हो गए और निम्न वर्णों को भी लाभ नहीं पहुँचा।

मौर्योत्तर काल (लगभग दो सौ ई पू से दो सौ ई सन) में शूद्रों की स्थिति में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। मनु का कट्टर शूद्रविरोधी रुख और ब्राह्मणविरोधी कार्यों के लिए पुराणों में की गई शूद्रों की भर्त्सनाएँ तीव्र वर्णसंघर्ष का संकेत देती हैं और यह संघर्ष शूद्रों के हक में संभवतया विदेशियों द्वारा किए गए हस्तक्षेप से तीव्रतर हो गया था। संभवतया इस संघर्ष के फलस्वरूप और प्रबल मौर्य साम्राज्य के पतन तथा नए- नए कला कौशल के विकास के कारण शूद्रों की स्थिति में परिवर्तन के आसार दिखाई पड़ने लगे और गुप्तकाल (लगभग दो सौ ई पू से पाँच सौ ई सन) में ये परिवर्तन अधिक स्पष्ट हो गए।

इस काल में शूद्रों ने कुछ धार्मिक और नागरिक अधिकार प्राप्त किए और कई दृष्टियों से वे वैश्यों के समकक्ष बन गए। वैश्यों और शूद्रों का संयुक्त उल्लेख तो प्राचीन ग्रंथों में भी मिलता है, किंतु मौर्योत्तर काल और गुप्तकाल के ग्रंथों में ऐसा उल्लेख अधिकाधिक संख्या में मिलने लगता है। अन्यान्य विकासों की रोशनी में, गुप्तकाल में ऐसे उल्लेखों का अपना एक अलग और नया महत्व है। स्पष्ट है कि वैश्यों की हैसियत घटाकर उन्हें पराधीनता की ओर ढकेल दिया गया और शूद्रों का दर्जा बढ़ाकर उन्हें स्वाधीनता की ओर अग्रसर किया गया। इनमें पहली प्रक्रिया का अनुमान विकसित क्षेत्रों में ब्राह्मणों को दिए गए अनेकानेक भूमिदानों से किया जा सकता है, जिनके चलते पुराने किसानों और राजा के बीच एक मध्यवर्ती सत्ता कायम होने से इन किसानों की स्थिति ह्रासोन्मुख हो गई।[5] बेगार (विष्टि) की प्रथा जो मौर्यकाल में दासों और कर्मकारों तक ही सीमित प्रतीत होती है, अब किसानों पर भी लागू कर दी गई और इससे वैश्यों तथा शूद्रों के बीच की असमानता और भी कम हो गई। शूद्रों का वैश्यों के दर्जे में पहुँचना किसान के रूप में उनके रूपांतरण और शिल्पियों तथा व्यापारियों के रूप में उनके बढ़ते हुए महत्व से भी स्पष्ट होता है। मालूम होता है कि अविकसित क्षेत्रों में ब्राह्मणों को दिए गए भूमिदानों से शूद्र किसानों की संख्या बढ़ी थी। ऐसे किसान आदिवासी जनजातियों से ब्राह्मणिक सामाजिक संगठन में आत्मसात किए जा रहे थे। प्राचीनकाल में शूद्रों का काम था उच्च वर्णों के लिए श्रम की आपूर्ति करना किंतु गुप्तकाल के बाद अब उनका काम था शिल्पी व्यापारी और विशेषकर किसानों के रूप में उत्पादन कर्म द्वारा सामानों की आपूर्ति। उनकी पुराने ढंग की

पराधीनता अब भी बनी हुई थी किंतु ऐसी स्थिति में पड़े शूद्रों की सख्या इस काल के नए ढग के शूद्रों की अपेक्षा कम थी।

गुप्तकाल से पहले की शूद्र समुदाय की पराधीन हैसियत और दयनीय स्थिति के बावजूद शूद्रों के विद्रोह का कोई प्रमाण शायद ही मिलता है। हाँ, मौर्योत्तर काल में इनके घोर ब्राह्मणविरोधी कार्यकलापों के प्रसग मिलते हैं। रोम के दासों द्वारा की गई क्रांतियों की तुलना में शूद्रों के सायोगिक और छिटपुट राज्यविरोधी कार्यकलाप महत्वपूर्ण नहीं हैं। उत्तर भारत की सामाजिक और ग्रामीण अर्थव्यवस्था (छ सौ ई पू से दो सौ ई तक) सबधी एक रचना में बताया गया है कि निम्नवर्गीय वैश्य मध्यमवर्ग (हीन मध्यवर्ग) के थे [6] और शूद्र एव द्विज वर्णों के बीच सतुलन बनाए हुए थे। [7] 'द्विज वर्गों' (द्विज क्लासेज) शब्द का प्रयोग ठीक नहीं है क्योंकि वैश्यों को भी द्विज माना जाता था। किंतु यह तथ्य भी कि वैश्य एक ओर प्रथम दो वर्णों और दूसरी ओर शूद्रों के बीच सतुलन का काम करते थे केवल ई सन के आरभ होने के पहले तक के काल के लिए ही सही हो सकता है क्योंकि मोटे तौर पर उसी समय से दोनों निम्न वर्ण एक दूसरे के निकट पहुँचने लगे थे और गुप्तकाल आते आते उनका अलग अलग अस्तित्व समाप्त सा हो चुका था।

किंतु प्राचीन भारतीय समाज में शूद्रों की आपेक्षिक शांतिप्रियता को स्पष्ट करने के लिए कुछ अन्य कारण भी बताए जा सकते हैं। भारत में सभवतया मुद्रामूलक अर्थव्यवस्था उस हद तक विकसित नही हुई थी जिस हद तक वह ग्रीस [8] और रोम में थी। अत शूद्रों की सैद्धांतिक दासता के बावजूद उनमें से बहुत कम को ही ऋण की अदायगी नही करने के कारण दास बनाया जाता था। ग्रीस में दासता का यह प्रमुख साधन था। [9] मौर्यपूर्व काल और मौर्यकाल को छोड़कर कृषि दासों से काम लेने के बहुत कम प्रमाण मिलते हैं। दास अधिकतर घरेलू कार्यों के लिए रखे जाते थे। इस व्यवस्था में मालिक के साथ उनका घनिष्ठ सबध रहता था तथा घरेलू सोपान पक्ति में दास को सर्वथा एक भिन्न वर्ग का नही माना जाता था बल्कि उसे सदस्यों के बीच ही सबसे नीचे रखा जाता था।

हो सकता है कि जोर जबर्दस्ती किए जाने की स्थिति में शूद्र मजदूरों ने स्वतत्र जनजातियों के पास शरण ली हो [10] अथवा वे एक राज्य को छोड़कर दूसरे में चले गए हों। इतना ही नहीं ब्राह्मणों और क्षत्रियों की तुलना में शूद्र कोई सुसगठित, रुद्धद्वार समुदाय नहीं था जो अपने मालिकों के विरुद्ध कोई सयुक्त कार्रवाई करने में सक्षम हो। ज्यों ज्यों समय बीतता गया शूद्र विभिन्न तरह की सामाजिक प्रतिष्ठा वाली अनेक उपजातियों में बिखर गए और अनेकानेक जनजातियों के अत प्रवेश से तो इन उपजातियों की सख्या और भी बढती गई। कहा गया है कि *अमरकोश* में मालाकार कुभकार राज कारीगर जुलाहा दर्जी, रगसाज आदि को उत्तरोत्तर अपकृष्टता के क्रम से रखा गया

है।[11] इसमें कोई संदेह नहीं कि शूद्रों के बीच घरेलू नौकरों, बटाईदारों, चरवाहों और नापितों को अधिकांश अन्य प्रकार के शूद्रों की अपेक्षा, समाज में ऊँचे दर्जेवाला माना जाता था, क्योंकि उनके मालिक भी उनका अन्न ग्रहण कर सकते थे।[12] निचली जातियों की इससे भी बड़ी कमजोरी थी, शूद्रों और अछूतों के रूप में उनका विभाजन जो पाणिनि के समय में प्रकट हुआ बाद में भी रहा और गुप्तकाल में तीव्र हुआ। शूद्रों ने न केवल अपने को उच्च वर्णों की बराबरी में लाकर, बल्कि अपने को अछूतों से श्रेष्ठ बताकर अपना ओहदा बढ़ाया, ताकि ब्राह्मणिक समाज की सोपान पंक्ति में वे अपने से नीचे की जाति के प्रति मिथ्या अभिमान कर सकें।

कदाचित असंतुष्ट शूद्र हथियार न उठा लें इसके लिए विधिनिर्माताओं ने हमेशा उन्हें निःशस्त्र रखने की नीति बनाई जिसमें संभवतया गुप्तकाल में परिवर्तन हुए।

वर्णव्यवस्था के बुनियादी ढाँचे को बनाए रखने और शूद्रों को अधम बनाकर रखने में जो एक बात बहुत सहायक हुई वह है आम जनता को कर्म के सिद्धांत में विश्वास करा देना और यह समझा देना कि ईश्वर द्वारा निर्धारित वर्ण या जाति के कर्तव्यों का पालन नहीं करने के कुपरिणाम भोगने पड़ेंगे। कहा जाता है कि चूँकि आम जनता व्यापक रूप में शिक्षित थी और वह गुण दोष का विचार करने में समर्थ थी अतः वह उच्च वर्णों की स्वाभाविक श्रेष्ठता में विश्वास नहीं कर सकी।[13] किंतु ऐसे दावे का कोई आधार नहीं है। इसके विपरीत मजदूर वर्गों का दिमाग ब्राह्मणिक आदर्श से इस तरह जकड़ा हुआ था कि शूद्रों को प्रत्यक्ष रूप से दबाने सताने अथवा शूद्रों द्वारा उग्र विद्रोह की गुंजाइश बहुत कम थी।

किंतु ब्राह्मणिक सिद्धांतों को मानने वाले हमेशा अपने सिद्धांतों के गुलाम नहीं थे। आदिवासी और विजातीय शासकों के लिए उपयुक्त क्षत्रिय वंशावली गढ़ लेने में उन्हें उनके वास्तविक जन्म की भावना बाधा नहीं पहुँचा सकी।[14] प्रायः कुछ साहसी शूद्र, जो समय समय पर अपनी धाक जमा सके होंगे ब्राह्मणिक प्रणाली में बखूबी क्षत्रिय के रूप में अपना लिए गए होंगे ताकि वे नवधर्मान्तरित व्यक्ति के समान पूरे उमंग और उत्साह से उच्च वर्णों की प्रमुखता की रक्षा कर सकें। ब्राह्मण कौटिल्य द्वारा शूद्र कुलजात चंद्रगुप्त को समर्थन देने का जो परंपरागत वृत्तांत मिलता है उससे स्पष्ट है कि ऐसी घटनाएँ असंभव नहीं थीं।

बौद्ध जैन शैव और वैष्णव इन सुधारवादी धार्मिक आंदोलनों में कर्मफलवाद पर जोकि ब्राह्मणिक समाज व्यवस्था का सैद्धांतिक आधार था कोई आपत्ति नहीं उठाई गई। इन आंदोलनों ने अन्य प्रकार की समानता के बदले धार्मिक समानता का आश्वासन देकर नीच जाति के लोगों को वर्तमान सामाजिक ढाँचे के अनुकूल बनाया। सामाजिक विषमताओं

के प्रति विरोध की भावना, जो आरंभिक अवस्था में इन आंदोलनों का प्रमुख लक्षण थी, कालक्रम से विलीन हो गई और वे अपने को वर्णाश्रम व्यवस्था का अभिन्न अंग मानने लगे। इस प्रकार इन सारे तथ्यों के संयुक्त प्रभाव से शूद्र अपेक्षाकृत शांत बने रहे और उनकी पराधीनता स्थाई बन गई।

संदर्भ

1 हापकिंस कैंब्रिज हिस्ट्री ऑफ इंडिया I पृ 268

2 वैदिक इंडेक्स II पृ 389

3 अल्तेकर हिंदू सोशल इंस्टिट्यूशंस पृ 327 8

4 कौटिल्य अर्थशास्त्र III 13

5 सरकार सेलेक्ट इंसक्रिप्शंस I पृ 188 उत्कीर्ण लेख सं 82 पंक्ति 11 भूमिदान का प्राचीनतम शिलालेखीय साक्ष्य ई पू प्रथम शताब्दी का कहा जा सकता है किंतु गुप्तकाल में ऐसे भूमिदान अधिक प्रचलित पाए जाते हैं

6 तकनीकी दृष्टि से यह शब्द मध्यवर्गीय दुकानदारों के लिए प्रयुक्त होता था किंतु इस काल में वैश्य मुख्यतया किसान थे

7 घोस पूर्व निर्दिष्ट II पृ 486 87

8 टामसन स्टडीज इन एनशिएंट ग्रीक सोसायटी II पृ 194 6

9 सोलन्स ग्रेट लाज टुवार्ड्स दि बिगनिंग ऑफ दि सिक्स्थ सेंचुरी बी सी तुलनीय

10 पीड़ित प्रजा द्वारा पांचाल राज्य छोड़ने का एक उदाहरण जातक में मिलता है

11 कोसंबी (जर्नल ऑफ ओरिएंटल रिसर्च मद्रास XXIV 61)

12 याज्ञवल्क्य I 166

13 के वी रंगस्वामी अय्यंगर आस्पेक्ट्स ऑफ दि सोशल ऐंड पॉलिटिकल सिस्टम ऑफ मनुस्मृति, पृ 134

14 सेन्सस ऑफ इंडिया 1891 13 (मद्रास) पृ 213 (साइटश्रिफ्ट डेर डोयचेन मॉर्गेनलैंडिशेन गेजेलशाफ्ट बर्लिन 1 510 में उद्धृत) यह प्रक्रिया हाल तक चलती रही है

परिशिष्ट एक

मनुस्मृति का काल अध्याय दस के विशेष सदर्भ में

बहुलर ने मनुस्मृति के लिए ई पू 200 से ई 200 तक के कालखड का जो सुझाव दिया है उसमें 400 वर्ष आ जाते हैं।[1] जायसवाल ने इस कालखड को काफी सीमित करके मनु को शुग वश के काल में होनेवाली ब्राह्मण 'प्रतिक्रांति' का समकालीन माना है।[2] लेकिन नारद के विधि-ग्रथ (पाँचवीं छठी सदी) का सावधानी से अध्ययन किया जाए तो पता चलेगा कि इस विधिकार ने ब्राह्मणों को अधिक महत्वपूर्ण नहीं तो समान महत्वपूर्ण विशेषाधिकार अवश्य दिए हैं। मनु द्वारा प्रयुक्त कुछ पारिभाषिक शब्दों की तुलना शिलालेखों में प्राप्य शब्दों से करने पर भी इस स्मृति के काफी बाद में लिखे जाने का सकेत मिलता है।

मनु ने जिन यवनों का उल्लेख किया है और जो भारतीय-यूनानी लोगों के समरूप हैं, उनका महत्व यद्यपि ईसवी सन् की आरंभिक सदियों में कम होने लगा था मगर यही बात शकों पह्लवों और आभीरों के बारे में सही नहीं है जो इस काल में पश्चिमोत्तर भारत में अपना वर्चस्व बनाए रहे। शिलालेख नि सदेह पहली सदी ई के बाद से पार्थियों का उल्लेख नहीं करते, मगर इनसे चौथी सदी के अत तक शकों का अस्तित्व प्रमाणित है और दूसरी से चौथी सदी तक आभीरों का भी। अजीब बात यह है कि मनु ने मैत्र[3] नामक एक सकर जाति का उल्लेख किया है। इनको वलभी के मैत्रक माना जा सकता है जिनका उल्लेख पाँचवीं सदी के शिलालेखों में मिलता है, यद्यपि सभव है कि पहले एक कबीले के रूप में उनका अस्तित्व रहा हो।

मनुस्मृति के दसवें अध्याय में[4] मेद और अध्र नामक दो सकर जातियों का एक साथ उल्लेख मिलता है और पाल शिलालेखों में भी उनका उल्लेख इसी प्रकार हुआ है।[5] अम्बष्ठों का उल्लेख पहले के विधि ग्रथों में सकर जाति के रूप में मिलता है मगर मनु ने उनका उल्लेख चिकित्सकों के रूप में किया है यह व्यवसाय उनके साथ आरभिक मध्यकाल में ही सबद्ध हुआ था।[6] *मनुस्मृति* के दसवें अध्याय के बारे में सबसे स्पष्ट बात यह है कि पहले के विधि ग्रथों में सकर जातियों की सख्या 20 थी तो वह इसमें एकाएक बढकर 60 से अधिक हो गई है। चूँकि ऐसा किसी अन्य स्मृति में नहीं है इसलिए मनुस्मृति का दसवाँ अध्याय संदेहास्पद हो जाता है। दूसरी ओर परवर्ती ग्रथों जैसे *स्कदपुराण* और *ब्रह्मवैवर्त पुराण* में सकर जातियों की सख्या बढी है। अगर हम *ब्रह्मवैवर्त पुराण* में दी गई सकर जातियों की सूची को जोड़ लें तो मनु की सख्या 100 से ऊपर पहुँच जाती है।[7]

इन सबसे संकेत मिलता है कि *मनुस्मृति* का दसवाँ अध्याय बहुत बाद की रचना है क्योंकि इनमें से कोई भी पुराण लगभग 700 ई से पहले नहीं रचा गया था।[8]

मनुस्मृति के चौथे अध्याय में भूमि दान की जो व्यवस्था है उससे यह संकेत मिलता है कि यह स्मृतियों और ईसा की आरंभिक सदियों के शिलालेखों के समकालीन होगा। मनु ने भूमि दान की अनुशंसा की है और इसके पुण्य बतलाए हैं[9] जिस पर केवल कुछ धर्मसूत्रों में ही थोड़ा बहुत कहा गया है। लेकिन यह शांति पर्व विष्णु,[10] याज्ञवल्क्य[11] और बृहस्पति[12] की शिक्षाओं के अनुकूल है। *अनुशासन पर्व*[13] में *भूमिदान प्रशंसा* शीर्षक से एक खंड ही मिलता है। इस पाठ में और *विष्णु धर्मोत्तर पुराण*[14] (आठवीं सदी) में भूमि दान को सर्वोत्तम दान कहा गया है। लेकिन मनु का विचार भिन्न है। उनका विचार है कि वेद या ज्ञान का दान (ब्रह्मदान) भूमि दान समेत शेष सभी दानों से श्रेष्ठ है।[15] मनु ब्राह्मण द्वारा भूमि दान स्वीकार किए जाने के पक्ष में इस आधार पर नहीं है कि इस प्रकार के प्रतिग्रह से प्राप्तकर्ता के पुण्य नष्ट हो जाते हैं।[16] स्पष्टत इससे ऐसी स्थिति का पता चलता है जिसमें ऐसे दान प्रचलित हो चुके थे और एक शुद्ध ब्राह्मण की मनु की धारणा के लिए खतरे पैदा हो गए थे। लेकिन चूँकि यह प्रथा बहुप्रचलित हो चुकी थी इसलिए मनु ब्राह्मण को इस शर्त पर भूमि दान स्वीकार करने की अनिच्छापूर्वक छूट देते है कि बिन जुती (अकृत) जमीन को जुती हुई (कृत) जमीन पर वरीयता दी जाए।[17] भूमि दान के छिटपुट आरंभ के अभिलेखीय संदर्भ तो संभवत पहली सदी ई पू में ही मिलते हैं मगर इसका स्पष्ट साक्ष्य दूसरी सदी में सातवाहनों द्वारा शासित महाराष्ट्र में मिलता है। लेकिन *मनुस्मृति* का व्यवहार तो आर्यावर्त में होता था और वहाँ ईसा की पहली दो या तीन सदियों में भूमि दान का शायद ही कोई साक्ष्य मिलता हो। ऐसा लगता है कि चौथी सदी के आस पास तक यह प्रथा इतनी सामान्य हो चली थी कि मनु का ध्यान इसकी ओर गया। अकृत भूमि स्वीकार करने संबंधी उनकी अनुशंसा हमें भूमिच्छिद्रन्याय[18] के सिद्धांत पर ब्राह्मण को खिल या अप्रहत भूमि दान दिए जाने की याद दिलाती है इस प्रथा का सबसे पहले उल्लेख पाँचवीं सदी के शिलालेखों में मिलता है। नकली भूमि दान के लिए मनु ने कूट शासन शब्द का प्रयोग किया है[19] यह शब्द का प्रयोग गुप्तकालीन विधि ग्रंथों में और हर्षवर्धन के एक भूमि दान पत्र में हुआ है।[20] इन सबसे हमें *मनुस्मृति* के काल की न्यूनतम सीमा निर्धारित करने में मदद मिल सकती है।

यद्यपि मनु ने हीनतर वर्गों के चाकरों को नकद या पण में भुगतान किए जाने की अनुशंसा की है लेकिन वित्तीय तथा प्रशासनिक अधिकारियों को भूमि के रूप में भुगतान करने की अनुशंसा करनेवाले वे पहले विधिकार हैं।[21] इस व्यवस्था को बृहस्पति ने भी दोहराया है।[22] इससे भी हमें ऐसी स्थिति का पता चलता है जिसमें धार्मिक और धर्मेतर,

दोनों प्रकार के अधिकारियों को भूमि के रूप में भुगतान किया जाता था। अधार्मिक दानों के प्रत्यक्ष अभिलेखीय प्रमाण उपलब्ध नहीं हैं क्योंकि इनको कपडे या भोजवृक्ष की छाल जसे अटिकाऊ पदार्थों पर लिखा गया था, लेकिन पाँचवीं सदी में पार्थिव महत्ववाले व्यक्तियों को भूमि दान दिए जाने के कुछ दृष्टात हमें प्राप्त हैं।[23] लेकिन कौटिल्य द्वारा प्रयुक्त शब्द दशग्रामी तथा मनु द्वारा प्रयुक्त दशग्रामपति[24] का उल्लेख सबसे पहले नवीं सदी के एक पाल शिलालेख में ही हुआ है।[25]

उत्तराधिकार सबधी अपने नियमों में मनु ने अनुशसा की है कि कीनाश या काश्तकार ब्राह्मण के ज्यष्ठ पुत्र को ही मिलना चाहिए।[26] इससे संकेत मिलता है कि कुछ काश्तकार या बटाईदार पारिवारिक भूमियों से सबद्ध थे। यद्यपि मनु ने भूसपत्ति के विभाजन की स्पष्ट अनुशसा नहीं की है, लेकिन काश्तकारों की कल्पना उनके द्वारा जोती-बोई जमीनों से अलग करके कर सकना कठिन है। ई 250 350 के आसपास के एक पल्लव प्राकृत तामपत्र में बटाईदारों को भी भूमि के साथ ही एक लाभार्थी को हस्तातरित किया गया है।[27] इसलिए मनु के यहाँ इससे सबधित व्यवस्था इससे पहले के काल की नहीं रही होगी।

पिछड़े क्षेत्रों में दो से पाँच गाँवों तक के लिए गुल्म नामक एक सैनिक इकाई की स्थापना का विचार मनु के यहाँ ही मिलता है।[28] इसके प्रमुख को चाथी सदी के मध्य में एक पल्लव प्राकृत शिलालेख में उल्लिखित गुल्मिक या गुमिक का स्वरूप माना जा सकता है।[29] लेकिन बिहार और बगाल में पाँचवीं सदी के शिलालेखों में गुल्मिक का स्पष्ट उल्लेख[30] है और परवर्ती चब पाल आर सेन दानपत्रों में इसका बार बार उल्लेख हुआ है।[31]

शासकों का दैवी चरित्र *मनुस्मृति* की एक सुस्पष्ट विशेषता है इसमें आठ देवताओं के लक्षण शासक पर आरोपित किए गए हैं।[32] कुषाण और सातवाहन शिलालेखों में शासक के दैवत्व का विचार मिलता है[33] लेकिन मनु के विचारों का एक अधिक विश्वसनीय प्रतिरूप गुप्तकालीन अभिलेखों में मिलता है। समुद्रगुप्त के इलाहाबाद वाले शिलालेख में जो सभवत चौथी सदी के मध्य का है, शासक की तुलना चार देवताओं से की गई है।[34] इससे संकेत मिलता है कि मनु के यहाँ आठ देवताओं का जो विचार पाया जाता है वह सभवत बाद का विकास है। इसी तरह मनु ने ब्राह्मण के लिए जिस दैवत्व शब्द का प्रयोग किया है[35] उसका परमदैवत रूप में सबसे पहला प्रयोग गुप्त शासकों के लिए बगाल के पाँचवीं सदी के शिलालेखों में हुआ है।[36] इससे *मनुस्मृति* के अध्याय 7 9 और 11 के जिनमें ये विचार व्यक्त हुए हैं काफी बाद की रचनाएँ होने का संकेत मिलता है। दूसरी ओर खानी कोष के अर्थ में मनु ने जिस अवनिधि शब्द का प्रयोग किया है[37]

यह कुषाणों और सातवाहनों के दूसरी सदी के शिलालेखों[38] में और बाद में अनेक भूमि दानपत्रों में भी अक्षयनीवि करके मिलता है।

मनु के यहाँ मुद्राओं का जो उल्लेख है उसके आधार पर इसकी तिथि का कुछ सकेत किया जा सकता है। विभिन्न अपराधों के लिए मनु ने पण रूप में अर्थदड का आदेश दिया है, और इसमें कोई संदेह नहीं कि कुषाण और गुप्त कालों में मुद्राओं का व्यापक प्रयोग होता था। कुषाणों की मानक स्वर्णमुद्रा का भार 144 ग्राम था यह मनु द्वारा एक स्वर्ण (मुद्रा) के लिए बतलाए गए भार 80 कृष्णल या रत्ती के बराबर लगता है।[39] लेकिन मनु ने जिस ब्याजदर की अनुशसा की है वह नासिक के दूसरी सदी के एक शिलालेख में उल्लिखित दर से ऊँची है।[40]

गौतमीपुत्र सातकर्णी तथा रुद्रदामन के दूसरी सदी के शिलालेखों में शासक के एक प्रमुख कार्य के रूप में वर्ण व्यवस्था की रक्षा पर बल दिया गया है। मनु ने भी इस पक्ष पर बल दिया है क्योंकि वे वर्णसकर से बचने के प्रति बहुत चिंतित हैं। इन सबसे *मनुस्मृति* के आरंभिक भागों को 200 ई के आस पास का माना जा सकता है। लेकिन *मनुस्मृति* के कुछ अन्य भागों की अभिलेखीय परीक्षा करने पर वे पाँचवीं सदी के या उससे भी बाद के ठहरते हैं। इस कारण हम सन् 220-400 ई के सशोधित कालखड का सुझाव रख सकते हैं। इसका मेल शाति पर्व के तिथि निर्धारण से भी बैठता है जिसमें मनु के कुछ श्लोक ठीक उसी रूप में मिलते हैं यह कहना कठिन है कि इन्हें किसने किससे लिया था। लेकिन पाँच दर्जन से अधिक सकर जातियों की विवेचना करनेवाला दसवाँ अध्याय सभव है कि परवर्ती गुप्त काल या उसके बाद के काल का हो।

सदर्भ

1 *सैक्रेड बुक्स आफ दि ईस्ट* 25 प्रस्तावना पृ CXIV CXVIII
2 *मनु एड याज्ञवल्क्य* पृ 25 32 तुलना करें काणे *हिस्ट्री आफ धर्मशास्त्र* 2 पृ XI से। केतकर (*हिस्ट्री आफ कास्ट* पृ 66) का तर्क है कि यह स्मृति 272 320 ई की है।
3 मैत्रकों का सबसे पहला शिलालेख ई 502 का है लेकिन वे पाँचवीं सदी में गुप्त शासकों के सामत रहे प्रतीत होते हैं।
4 X 49 50
5 *एपिग्राफिया इंडिका* 3 सख्या 36 पक्ति 5 6 22 23
6 डी सी सरकार *स्टडीज इन दि सोसायटी एड एडमिनिस्ट्रेशन आफ एशिएट एड मेडिवल इंडिया* I 107 8
7 ब्रह्म खड X 14 136
8 आर सी हाजरा *स्टडीज इन पुराणिक रिकार्ड्स आफ हिंदू राइट्स एड कस्टम्स* (द्वितीय सस्करण दिल्ली 1975) पृ 165 67

9. IV 230
10 *विष्णु स्मृति* अध्याय 91 92, *सैक्रेड बुक्स आफ दि ईस्ट* 25 पृ 165 की पादटिप्पणी में उद्धृत
11 I 210 11
12. I 8
13 क्रिटिकल एडिशन आफ दि *महाभारत* अध्याय 61
14 III 93 13
15 IV 233
16 IV 188 89
17 X 114
18 *कार्पस इंस्क्रिप्शनम इंडिकारम* 3 सख्या 31 पंक्ति 7 11 13
19 IX 232
20 *एपिग्राफिका इंडिका,* 7 सख्या 22 पंक्ति 10
21 VII 115 20
22 *व्यवहार मयूख* (अनु पी वी काणे तथा एस जी पटवर्धन द्वारा उद्धृत) पृ 25 27
23 *इंडियन एण्टिक्विटी* पृ 13 14
24 VII 115
25 *एपिग्राफिका इंडिका* 29 सख्या 13 पंक्ति 28 29 प्रयुक्त शब्द ग्रामिक है।
26 IX 150
27 *एपिग्राफिका इंडिका* 1 सख्या 1 पंक्ति 39
28 VII 114
29 *सेलेक्ट इंस्क्रिप्शंस* 1 ग्रथ 3 स 65 पंक्ति 5 प्रयोग शब्द गुमिक का हुआ है। सुक्थकर ने तीसरी सदी के पूर्वार्ध के एक सातवाहन शिलालेख में आए शब्द गामिक को गुमिक पढ़ा है उपरोक्त पृ 212 पादटिप्पणी 6
30 *कार्पस इंस्क्रिप्शनम इंडिकारम* 3 सख्या 12, पंक्ति 29
31 एन जी मजुमदार इंस्क्रिप्शंस आफ बगाल 3 (राजशाही 1929) 184
32 VIII 4 8
33 *सेलेक्ट इंस्क्रिप्शंस* 1 ग्रथ 2 सख्याएँ 40 41 44 आदि तुलना करें सख्या 86 से
34 पंक्ति 26
35 IX 317 XI 84
36 *सेलेक्ट इंस्क्रिप्शंस* 1 ग्रथ 3 सख्या 18 19
37 VII 83
38 *सेलेक्ट इंस्क्रिप्शंस* 1 ग्रथ 2 सख्या 49 1 11 सख्या 58 1 1
39 VIII 134
40 VIII 139-42 *सेलेक्ट इंस्क्रिप्शंस* 1 ग्रथ 2 सख्या 58 पंक्ति 1 3

परिशिष्ट दो

भृत्य एव कृषक जातियों की सख्या में वृद्धि

परवर्ती वैदिक ग्रंथों में चार वर्णों निषादों और अग्रों जैसे कुछ अनार्य कबीलों और कोई एक दर्जन हस्तशिल्पी समूहों की बात की गई है। इन सभी को यजुस् ग्रंथों में वर्णित पुरुषमेध में स्थान दिया गया है। इस बलिदान का उद्देश्य पशुपालन तथा हलों की खेती पर जीवनयापन कर रहे पुरुषसत्तात्मक आर्यों, तथा आखेट और कुदालों की खेती में लगे मातृसत्तात्मक अनार्यों के बीच किसी प्रकार का तालमेल स्थापित करना था। स्पष्ट है कि पुरुषमेध विभिन्न समूहों व्यवसायों तथा अनार्य जनगण को एक ही व्यवस्था में लाने का एक धार्मिक उपाय था। लेकिन इन कबीलों और व्यवसायों ने ब्राह्मणवादी अर्थों में जातियों के लक्षण नही अपनाए। ब्राह्मणवादी व्यवस्था में अनार्य जनगण को समाहित करने के लिए परवर्ती वैदिक काल में जो दूसरा उपाय अपनाया गया वह व्रात्य का सिद्धात था। बाद में कौटिल्य तथा मनु द्वारा की गई व्याख्याओं के अनुसार व्रात्य मूलत द्विज थे जो आगे चलकर व्रत का पालन न करने के कारण दूसरे दर्जे के नागरिक माने जाने लगे। मागध जो मूलत मगध में बसनेवाले एक जनगण थे इसी श्रेणी में आते थे और परवर्ती वैदिक ग्रंथों में उनके शासक को व्रात्य शासक कहा गया है। लेकिन अनेक अन्य जनगण भी व्रात्य की श्रेणी में आते थे। यह एक ऐसा बहुअर्थी शब्द था जिसका प्रयोग ब्राह्मण पूर्वी क्षेत्र के उन आदिवासी लोगों के लिए करते थे जो कुदालों की खेती पर निर्भर थे और गवेधुक[1] नामक कोई आदिम किस्म का मक्का पैदा करते थे जो उनका भोजन और उनके मवेशियों का चारा था। ये लोग मातृसत्तात्मक जनगण रहे लगते हैं। पशु देवता रुद्र व्रात्यों का देवता था जो न तो हल चलाना जानते थे और न व्यापार करना। व्रात्य सभवत काली और लाल भाण्ड वाले जनगण थे जो पूर्वी उत्तर प्रदेश बिहार और बगाल में लौह पूव काल में सूक्ष्माश्मों (माइक्रोलिथ्स) का और कुछ ताम्र उपकरणों का प्रयोग करते थे और मछली तथा चावल पर निर्भर थे। लेकिन उनकी भौतिक सामग्रियों से गगा की वादी के घने वनों से ढके प्रातों में बडी बस्तियों का सकेत नहीं मिलता। स्पष्ट है कि व्रात्य की श्रेणी में निषाद पुजिष्ठ और ऐसे अनेक अन्य कबीले शामिल थे जिनके नामों का उल्लेख नही हुआ है। किसी कुल के सदस्य अपने मुखिया के नेतृत्व में छ पीढियों तक एक साथ रहते होंगे और किसी समय उनकी सख्या 200 रही होगी।[2] परवर्ती वैदिक कृषक समाज में किसी वश को सामूहिक रूप से व्रात्यष्टोम नामक कर्मकाड के द्वारा ग्रहण किया जाता था और

धीरे धीरे वह हलों की खेती करने लगता तथा एक जाति बन जाता था। मनु के यहाँ प्राप्त कुछ नाम सम्भव है कि बहुत पहले के युगों के लगते हों, मगर यह सब कल्पना मात्र है।

लोहे के हलों पर आधारित एक पूर्णरूपेण कृषक अर्थव्यवस्था की स्थापना के बाद 'आर्य समाज विजय-अभियानों के द्वारा प्रसार करता रहा और मौर्य-पूर्व काल में कबीलों के परसस्कृनिग्रहण की समस्या महत्वपूर्ण हो उठी। इस काल में हम उत्तरी भारत में कम से कम 16 बड़े क्षेत्र आधारित राज्य देखते हैं जिनमें चारों मानक वर्णों के तथा अनेकों नए कबीलों के लोग रहते थे। पूर्वी उत्तर प्रदेश और बिहार में लोह-प्रौद्योगिकी के प्रसार, व्यापार और वाणिज्य के आरंभ, मुद्राओं के उपयोग तथा गंगा की वादी में नगरों के उदय से अनेक हस्तशिल्पों का जन्म हुआ जिसके कर्ताओं को ब्राह्मणवादी सामाजिक ढाँचे में स्थान दिया जाना आवश्यक था। इसलिए धर्मसूत्रों में अनुलोम और प्रतिलोम के सिद्धांत का विकास किया गया। इसका अर्थ था उच्चतर वर्णों के पुरुषों और निम्नतर वर्णों की स्त्रियों के बीच या इसके विपरीत प्रकार के संयोग से उत्पन्न संकर जातियाँ। धीरे धीरे इन जातियों की संख्या में वृद्धि होती गई। धर्मसूत्रों में 24 संकर जातियों का उल्लेख है जबकि कौटिल्य के यहाँ इनकी संख्या 16 है ये सभी व्रात्य को छोड़कर धर्मसूत्रों की सूची में भी हैं। व्रात्य को जोड़ लेने पर संकर जातियों की संख्या 25 हो जाती है। स्पष्ट है कि इस सूची में सभी हस्तशिल्पी शामिल नहीं हैं जिनमें से 28 का उल्लेख *दीघ निकाय* में हुआ है और जिनमें से 18 लगता है कि गिल्डों में संगठित थे जिनका आरंभिक पालि ग्रंथों में अष्टादश श्रेणी कहा गया है।[3] हस्तशिल्पियों के ये गिल्ड तब तक कठोर नियमों से युक्त जातियों में विकसित नहीं हुए जब तक कि मुद्रा का भरपूर उपयोग होता रहा, फलते-फूलते नगर और उनके ग्रामीण पृष्ठ क्षेत्र एक दूसरे की आवश्यकताएँ पूरी करते रहे और पाँचवीं सदी ई पू से पाँचवीं सदी ई तक व्यापार और वाणिज्य का प्रसार जारी रहा। अर्थव्यवस्था में हस्तशिल्पियों तथा वणिकों के लिए पर्याप्त गतिशीलता के अवसर बने रहे और उनके लिए खान पान और विवाहादि के नियमों में ढील दी जाती रही।

लेकिन जब हम *मनुस्मृति* के दसवें अध्याय तक आते हैं जिसे परवर्ती गुप्त काल का माना जा सकता है तो 61 संकर जातियों का उल्लेखनीय दृश्य देखने को मिलता है जिनमें से अधिकांश प्रतिलोम विवाहों की उपज थीं। बाद में हुवेनत्सांग ने इतनी संकर जातियाँ पाईं कि उनका वर्णन कर सकना भी उसे कठिन प्रतीत हुआ। इनकी उत्पत्ति के लिए मनु ने दो कारण बतलाए हैं। प्रथम वे व्रात्य सिद्धांत का सहारा लेते हैं जिसमें दीर्घकाल में संपन्न किया गया। बौधायन ने व्रात्य को वर्णसंकर के समान माना है और कौटिल्य के *अर्थशास्त्र* का तृतीय ग्रंथ इस विचार का पूरी तरह समर्थन करता है।[4] कौटिल्य के अनुसार चार वर्णों में से किसी के भी अशुद्ध व्यक्ति द्वारा किसी नीच जाति की स्त्री से

उत्पन्न सतान ही व्रात्य है।[5] मनु ने भी व्रात्य को सकर जाति कहा है मगर व्रात्य उत्पन्न करने की प्रक्रिया से वे शूद्रों को बाहर रखते हैं। व्रात्यों को सकर मूल का मानते हुए कौटिल्य तथा मनु उनको स्थापित धार्मिक आचारों से भ्रष्ट भी बतलाते हैं। मनु के अनुसार एक द्विजाति पुरुष सवर्ण स्त्री से ऐसी सतान उत्पन्न करता है जो व्रत का पालन नहीं करती (अव्रतान) और ये व्यक्ति जो उपनयन सस्कार के योग्य नहीं होते, व्रात्य कहलाते हैं।[6] ब्राह्मण स्त्री से ब्राह्मण व्रात्य द्वारा उत्पन्न सतानों में भूर्ज्कटक, आवत्य, वाटधान, पुष्पध और शैख आते हैं।[7] किसी क्षत्रिय स्त्री से राजन्य व्रात्य की उत्पन्न सतानों में झल्ल,मल्ल लिच्छवी नट करण खस और द्रविड़ आते हैं।[8] वैश्य स्त्री से वैश्य व्रात्य द्वारा सुधन्ना आचार्य, करूष विजन्म मैत्र और सात्वत की उत्पत्ति होती है।[9] इस प्रकार मनु ने कुल 18 व्रात्य सकर जातियों की सूची दी है। यद्यपि ये ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य की तीन श्रेणियों में विभाजित है मगर इन्हें उपनयन और फलस्वरूप वैदिक *अध्ययन का अधिकार* नहीं दिया गया है और उस सीमा तक ये शूद्रों के समकक्ष ला दिए गए हैं। इन व्रात्य जातियों के अलावा मनु ने ऐसी 12 क्षत्रिय जातियाँ भी गिनवाई है जिन्हें कर्मकाडों को छोड देने था ब्राह्मणों से सपर्क न रखने के कारण शूद्र के बराबर माना गया है।[10] ये है—पौण्ड्रक औद्र, द्रविड, काबोज, यवन, शक, पारद, पह्लव चीन, किरात दरद और खस।[11] इनकी भी स्थिति व्रात्यों के समान है क्योंकि इन्हें भी उपनयन का अधिकार नही है। चूँकि दूसरी सूची में उल्लिखित दो सकर जातियाँ पहली सूची में पाई जाती हैं इसलिए व्रात्य और अर्धव्रात्य जातियों की कुल सख्या 28 आती है।

उपसास्कृतिक भाषाई भौगोलिक और व्यावसायिक दृष्टि से इन सभी 28 जातियों की पहचान कर सकना कठिन है। आवत्य (अवति का जनगण) तथा वाटधान (*महाभारत* में एक जनगण के रूप में उल्लिखित) निश्चित रूप से कबीलों और जनगणों की श्रेणी में आते हैं और कम से कम प्रथमोक्त मालवा क्षेत्र में रहता था। सात्वत कबीला भी पश्चिमी भारत का रहनेवाला था और अगर हम मैत्र को मैत्रक मानें (मैत्र व्याकरण की दृष्टि से मैत्रक का लघुतर रूप है) तो मैत्र गुजरात के काठियावाड क्षेत्र में वलभी के रहनेवाले थे। मल्ल प्राचीन काल में हिमालय की तराई में रहते थे ओर गुप्त काल में लिच्छवियों ने नेपाल में अपना शासन स्थापित किया था जहाँ उन्होंने ब्राह्मणों को भूमियों के दान दिए थे। झल्ल सभवत उनके पडोसी रहे होंगे और वे सभवत एक कबीले के अवशेष थे। झल्ल की उपाधि आज भी प्रचलित है और राजस्थान में झालवाड नामक एक जिला ही है। पौण्ड्रक उत्तर बगाल के औद्र उडीसा के तथा द्रविड दक्षिण भारत के रहनेवाले थे और मनु ने इन तीनों का उल्लेख भी इसी भौगोलिक क्रम में किया है। इसी प्रकार विदेशी जनगणों के एक समूह (यवन शक पारद ओर पह्लव) का उल्लेख भी एक सटीक भौगोलिक और कालिक

क्रम में हुआ है जिसमें सीमावर्ती काबोज भी शामिल हैं, ये सभी पश्चिमोत्तर भारत के रहने वाले थे। हम उत्तरी और पूर्वी भारत के स्थानीय और विदेशी जनगण का एक और समूह भी देखते हैं। इनको चीन, किरात दरद और खस कहकर एक साथ रखा गया है, इनमें अनेक का उल्लेख *महाभारत* में हुआ है ओर खसों का उल्लेख एक जनगण के रूप में हूण और कुलिक के साथ, पाल शिलालेखों में भी हुआ है। करूष को बिहार के सासाराम और पलामू जिलों के जगली क्षेत्रों का एक जनगण माना जा सकता है। कुल मिलाकर, मनु की 20 सकर जातियों में 19 देसी या विदेशी कबीले थे जो अधिकाशत आर्यावर्त या ब्रह्मावर्त की सीमाओं पर रहते थे, मनु के अनुसार आर्य सस्कृति का क्षेत्र यही था। इस प्रकार व्रात्य स्थिति या कर्मकाडों के अ पालन से उत्पन्न हीन स्थिति का मिथक स्थानीय या विदेशी कबीलों को अद्विज सदस्यों के रूप में समाज में लाने की प्रक्रिया को तेज करने के लिए किया गया। फिर भी, पतित ब्राह्मणों क्षत्रियों वैश्यों और शूद्रों के रूप में इन सदस्यों को भिन्न भिन्न मात्रा में सम्मान प्राप्त होता रहा।

मनु द्वारा उल्लिखित शेष नौ व्रात्य जातियों में भूर्जकटक पुष्पध[12] शैख और आचार्य पतित या विभिन्न धार्मिक सप्रदायों के अनुयायी लगते थे जो जातियों के रूप में विकसित होने लगे थे। नट और करण व्यावसायिक समूह हैं सुधन्वा धनुषधारियों का कोई समूह रहा होगा जबकि विजन्म का शाब्दिक अर्थ अवैध सतान है। इस प्रकार मनु ने बडे पैमाने पर व्रात्य के सिद्धात का उपयोग सभी उपसास्कृतिक व्यावसायिक और क्षेत्रीय समूहों को जातियों के रूप में ब्राह्मणवादी समाज व्यवस्था में लाने के लिए किया। यह सभव है कि *मनुस्मृति* का जो दसवाँ अध्याय इन जनगणों को जातियों के रूप में वैधता प्रदान करने का सैद्धातिक आधार प्रस्तुत करता है, वह पाँचवीं सदी के आस पास की रचना हो जबकि ये सभी कबीले जातियों के रूप में ब्राह्मणवादी समाज व्यवस्था में समाहित हो चुके थे।

अनेकानेक जातियों की उत्पत्ति के बारे में मनु की दूसरी व्याख्या अनुलोम ओर प्रतिलोम के सिद्धात का विस्तार है, यह विचार व्रात्य के सिद्धात का भी अग है। इस सिद्धात के सहारे 30 से अधिक जातियों की व्याख्या की गई है। इनमें से अनेक की उत्पत्ति की व्याख्या धर्मसूत्रों में की गई है और अनेक मामलों में मनु का वर्णसकर का सिद्धात इस व्याख्या के विपरीत है। मनु समेत विभिन्न विधिकारों ने एक ही जाति के वर्णसकर उद्गम की जो भिन्न व्याख्याएँ दी हैं उनकी असगतियों को एक लेख में स्पष्ट किया गया है।[13] इनसे पता चलता है कि यह सिद्धात मनगढ्त था। चाहे निर्दिष्ट वर्णधर्म से विचलन हो या विभिन्न वर्णों के बीच सभाग हो या दोनों हों चार मूल वर्णों का निष्ठुर तर्क इन सभी जातियों पर लागू किया जाता रहा है। मगर लगता है कि अनेक सकर

जातियों का चार वर्णों से, किसी भी अर्थ में, कुछ भी लेना देना नहीं था। इसकी व्याख्या कुछ ऐतिहासिक प्रक्रियाओं में ढूँढी जानी चाहिए।

इनमें अनेकों सकर जातियों के असस्कृत नामों के तथा विभिन्न स्थानों पर कबीलों या व्यवसायों के रूप में उनके वर्णन से संकेत मिलता है कि वे पहले कबीले या व्यवसाय समूह रहे होंगे जो जातियों के रूप में स्वीकार किए गए। सकर जातियों के बारे में मनु की सूची में हम सभवत पुराने कबीलों के 18 अवशेषों की पहचान कर सकते हैं। ये हैं— आभीर, आहिंडक, अबष्ठ अध्र, चडाल चुचु, दाश कैवर्त, मद्गु, मायुक, मागध, मार्गव, मेद निषाद,पुक्कुस, सैरिंध्र, वैदेहक और वेण। शेष 13 अर्थात् आवृत, आयोगव, घर्मकार धिग्वण कुक्कुटक, कारावर, करण, क्षत्ता मैत्रेयक, पाण्डु सोपाक पाराशव सूत, श्वपाक और उग्र सभवत व्यवसाय सूचक हैं।[14] यद्यपि अत्यावसायिन को वशिष्ठ और मनु ने एक अलग सकर जाति माना है मगर लगता है कि यह सभी अस्पृश्यों के लिए प्रयुक्त एक सर्वग्राही शब्द रहा है।

मनु ने जिन व्रात्य और सकर जातियों का उल्लेख किया है उनकी कुल सख्या 61 आती है और अगर हम इनमें चार प्रमुख वर्णों को जोड़ें तो यह 65 हो जाती है। इस सूची में धर्मसूत्रों तथा कौटिल्य के *अर्थशास्त्र* में उल्लिखित लगभग सभी सकर जातियाँ आ जाती हैं। ये हैं— अबष्ठ, अत्यावसायिन आयोगव, भृज्ज्यकठ, चडाल, करण, क्षत्ता, कुक्कुटक मागध निषाद, पाराशव पुकुस या पौलकस, सूत, श्वपाक, उग्र वैदेहक या वैदेह,वेण या वैन, और यवन। दौश्मत, धीवर कृत कुशीलव, महिष्य और मूर्धावषिक्त ऐसी सकर जातियाँ हैं जिनका उल्लेख पहले की सूचियों में तो है मगर मनु की सूची में नहीं है, हालाँकि मनु के नट कौटिल्य के कुशीलव के समरूप हो सकते हैं। व्रात्य कौटिल्य के यहाँ एक सकर जाति है मगर बौधायन और मनु इसे एक जातिवाचक शब्द मानते हैं और मनु ने 28 सकर जातियों को इस श्रेणी में रखा है। मगर ध्यान देने की बात यह है कि मनु के यहाँ सकर जातियों की सख्या दोगुनी से भी अधिक है। प्राचीनतर विधि ग्रथों में उनकी कुल सख्या 25 है मगर *मनुस्मृति* के दसवें अध्याय में यह बढकर 60 से ऊपर हो जाती है। किसी भी मामले में इनकी सूची पूर्ण नहीं है लेकिन इनसे जातियों की सख्या में वृद्धि का निश्चित पता चलता है।

गुप्त-पश्चात् काल में 'सकर जातियों की सख्या में निरतर वृद्धि होती रही और सख्या की दृष्ट से मनु की सूची *ब्रह्मवैवर्त पुराण* के ब्रह्मखड के दसवें अध्याय में दी गई सूची से बहुत भिन्न नहीं है। इस पुराण को दसवीं सदी का माना जा सकता है। इसमें 72 सकर जातियाँ गिनाई गई हैं जिनमें अनेक मनु की सूची में भी हैं। लेकिन इस पुराण

में उल्लिखित अतिरिक्त जातियों में लगभग 50 कबीले और हस्तशिल्पी-समूह आते हैं जिनका मनु के यहाँ उल्लेख नहीं मिलता।

स्पष्ट है कि जातियों की संख्या की वृद्धि के लिए न तो हम मनु की व्याख्या को स्वीकार कर सकते हैं और न ही परवर्ती काल में इसके प्रक्षेप को। फिर यह संख्या बढ़ी कैसे ? चूँकि अनेक संकर जातियाँ मूलतः कबीले थीं इसलिए हमें उन दशाओं का पता लगाना होगा जिनमें ये कबीले जाति-व्यवस्था के अंग बने। जैसाकि कहा गया है, विजय और क्षेत्रीय प्रसार के कारण जाति या वर्ण में विश्वास रखनेवाले शासक पूरे देश में कबीलाई आदिम जनगणों के संपर्क में आए। चूँकि शासक वर्ग की भाषा न समझनेवाले कबीलाई जनगण संपत्ति सामाजिक श्रेणियों और पितृसत्तात्मक परिवार संबंधी स्थापित मूल्यों में विश्वास नहीं रखते थे इसलिए पुरानी जीवन शैली से चिपके रहकर उन्होंने इन शासकों के लिए परेशानियाँ खड़ी कीं। अशोक को कठिनाइयों का सामना करना पड़ा और उसने इनमें धर्म के सिद्धांतों का प्रचार कराकर उनसे सभ्य जीवन स्वीकार कराने का प्रयास किया। उसने सफलता पाने का दावा तो किया है, मगर उसकी मात्रा के बारे में हमें कोई जानकारी नहीं है।

मनु के पहले कबीलों को अपनानेवाला समाज तथा उसके द्वारा इस कार्य के लिए प्रयुक्त विधियाँ, दोनों में मनु के बाद परिवर्तन आए। यद्यपि पहले का समाज वर्णों में विभाजित अवश्य था लेकिन उसमें भूसंपत्ति के वितरण की वैसी स्पष्ट असमानता नहीं पाई जाती थी जिसके कारण भूमि में जबर्दस्त निजी अधिकारों की स्थापना हुई। स्वतंत्र कृषक उस समाज की रीढ़ थे जिसमें पर्याप्त व्यापार और वाणिज्य, अनेक फलते फूलते नगर तथा हस्तशिल्प और धात्विक मुद्रा का व्यापक प्रयोग भी पाए जाते थे। इस कारण चतुर्वर्णीय समाज में कबीलों का अधिग्रहण हुआ और उनमें से अनेक क्षत्रियों और वैश्यों के रूप में इसमें अवशोषित हो गए। मनु की व्रात्य सूची में किसी विशिष्ट शूद्र जाति का उल्लेख नहीं मिलता। दूसरी ओर, इसमें दोयम दर्जे की 12 क्षत्रिय जातियों (जिनमें सभी मूलतः देशी या विदेशी कबीलाई जनगण थी) और 6 वैश्य जातीय कबीलों की गिनती की गई है। ब्राह्मण व्रात्य जातियों की संख्या पाँच है जिनमें केवल दो ही आदिम कबीलों के अवशेष लगते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि ब्राह्मणवादी समाज में अधिगृहीत कबीलों को मान्यता देने की दृष्टि से व्रात्य सिद्धांत काफी पहले से प्रचलित था और अगर मनु के व्रात्यों के उदाहरण को प्राचीन प्रक्रिया का चरमोत्कर्ष मानें तो प्रतीत होगा कि अधिकांश कबीलाइयों को समाज की दूसरी और तीसरी अर्थात् क्षत्रिय और वैश्य श्रेणियों में स्थान दिया गया था।

कबीलों को अवशोषित करने की इस प्रणाली के लिए ब्राह्मण पुजारी वर्ग तथा बौद्ध भिक्षुओं का समर्थन आवश्यक था, जिन्हें नकद धन तथा भूमि दानों के रूप में उपहार मिलते रहते थे। यह बात पश्चिमी महाराष्ट्र तथा साँची और भरहुत क्षेत्रों से प्राप्त अभिलेखीय साक्ष्यों के आधार पर कही जा सकती है। उपहार की प्रकृति का निर्धारण लगभग 200 ई पू से 200 ई तक विनिमय के प्रचलित माध्यम से होता था। अशोक के धर्ममहामात्रों जैसे बौद्ध धर्मप्रचारकों ने कबीलाई जनगण के बीच बौद्ध सामाजिक नैतिकता के प्रचार में महत्वपूर्ण भूमिका अवश्य निभाई होगी। इस नैतिकता में पितृसत्तात्मक परिवार के मूल्यों, निजी संपत्ति, बड़ों, भिक्षुओं पुजारियों आदि के प्रति सम्मान, पशुधन की रक्षा, क्षत्रियों और ब्राह्मणों के सम्मान पर जोर दिया जाता था क्योंकि परवर्ती बौद्ध ग्रंथों के अनुसार बुद्ध का जन्म पुनर्जन्म केवल दो उच्च वर्णों में हुआ था। यही समय है जब महाराष्ट्र और गुजरात के एक अच्छे खासे भाग का उत्संस्कृतकरण हुआ और चतुर्वर्ण प्रथा की शक्ति के कारण इन क्षेत्रों में लगभग सभी चारों वर्णों की स्थापना हुई।

नकद धन के दान के पूरक रूप में भूमि दान किए जाते थे जो पश्चिमी महाराष्ट्र में अधिकांशत राजकीय संपत्ति (राजक खेतम्) से दिए जाते थे यही वह क्षेत्र है जहाँ से प्राचीनतम अभिलेखीय साक्ष्य उपलब्ध हैं। ग्राम दानों का भी आरंभ हुआ मगर इनमें हस्तांतरण, दान दिए गए क्षेत्रों से प्राप्त राजकीय राजस्व का होता था न कि उनके स्वामित्व का। बहरहाल गुप्त और गुप्त पश्चात् कालों में दान देने की पद्धति में भारी परिवर्तन आए। नकद धन की जगह मुख्यत भूमि के दान दिए जाने लगे और बौद्ध लाभार्थियों की जगह ब्राह्मण लाभार्थियों ने ले ली।

परवर्ती शासकों ने धर्ममहामात्र या अंतमहामात्र भेजने की जगह भूमि दान के द्वारा कबीलाई क्षेत्रों में ब्राह्मणों को बसाने की प्रथा अपनाई। दूसरी और पाँचवीं सदियों के बीच दकन (आंध्रप्रदेश और महाराष्ट्र) में बड़ी संख्या में ब्राह्मणों को भूमियों के दान दिए गए। मध्य प्रदेश में चौथी पाँचवीं उड़ीसा में पाँचवीं से सातवीं, पश्चिम बंगाल में तथा बंगलादेश में इन्हीं असम में सातवीं तथा हिमाचल प्रदेश और नेपाल में पाँचवीं से सातवीं सदियों में ब्राह्मणों को पर्याप्त बड़े पैमाने पर भूमि दान दिए गए। छठी सातवीं सदियों में गुजरात में वलभी के मैत्रक नरेशों ने ब्राह्मणों को अच्छी खासी संख्या में भूमि दान दिए थे। संक्षेप में चौथी से सातवीं सदी के बीच पुजारी वर्ग के सदस्यों को आंध्रप्रदेश असम बंगाल गुजरात, हिमाचल प्रदेश मध्य प्रदेश महाराष्ट्र और नेपाल के बाहरी सीमांत पिछड़े (और कुछ मामलों में पहाड़ी) तथा आदिवासी क्षेत्रों में बड़े पैमाने पर भूमि दान किए गए। कुछ मामलों में भूमि का लाभ पानेवालों की संख्या काफी बड़ी थी। पाँचवीं सदी में प्रवरसेन

द्वितीय के एक आदेश द्वारा 1000 ब्राह्मणों को एक ही जिले में भूमि दान किए गए।[15] सातवीं सदी में असम में मात्र एक आदेश के द्वारा 205 ब्राह्मणों को और बंगलादेश के टिपरा जिले के जंगली इलाकों में एक ही आदेश के द्वारा 100 ब्राह्मणों को भूमि दी गई। उसी सदी में कटक क्षेत्र में एक मामले में 23 ब्राह्मणों को और एक और मामले में 12 ब्राह्मणों को भूमि दी गई। अगली सदी में उडीसा के बालासोर जिले में 200 ब्राह्मणों को भूमि दान किए गए।[16]

चूँकि पुजारी वर्ग के लाभार्थियों को ऐसे लगभग सभी वित्तीय अधिकार और विशेषाधिकार प्राप्त होते थे जिनका उपभोग शासकगण करते थे, इसलिए उनके सामने उपज में अपना नियमित भाग प्राप्त करने भोजन, ईंधन, घास और इमारती लकड़ी आदि के रूप में जबरन वसूली करने तथा विष्टि या पीड़ा नामक बेगार कराने की समस्या खड़ी होती थी। आवश्यकता होने पर वे पट्टे पर अपनी भूमि और वित्तीय अधिकार दूसरों को दे देते थे और कुछ किसानों को हटाकर दूसरों को ले आते थे। परिवार और संपत्ति के प्रति किए गए अपराधों के लिए दंड देने का अधिकार भी उन्हें होता था। यद्यपि अनेक मामलों में ग्रामवासियों को निर्देश होते थे कि वे इन लाभार्थियों के आदेश का पालन करें और कुछ मामलों में ये ग्रामवासी स्वयं इन लाभार्थियों को हस्तांतरित कर दिए जाते थे, लेकिन अगर इन व्यवस्थाओं को लगातार लागू नहीं किया जाता तो अपने आपमें इन ब्राह्मणों को कोई खास सहायता नहीं मिलनेवाली थी। लेकिन इन सभी वित्तीय आर्थिक रिआयतों का उपभोग करने तथा कानून व्यवस्था बनाए रखने के लिए इन ब्राह्मणों के पास कोई प्रशासन तंत्र न था। एक तरह से वे उपज के एक अच्छे खासे भाग के उपभोगकर्ता लगते तो थे मगर उत्पादन के लिए किसानों और दस्तकारों को बाध्य करने की कोई प्रणाली उनके पास न थी। उनके पास मुख्यतः जो चीज थी वह थी— परिष्कृत कर्मकांडों की शक्ति तथा वर्ण विचारधारा का प्रचार कराने और लोगों से इन्हें स्वीकार कराने की योग्यता। विभिन्न दीवानी और फौजदारी अपराधों के लिए स्मृतियों में न केवल ऐसे अर्थदंड और दंड की व्यवस्थाएँ दी गई थीं जिन्हें शासन लागू करता, बल्कि प्रायश्चित के विस्तृत कर्मकांडों की व्यवस्था भी थी जिन्हें स्पष्टतः ब्राह्मण ही लागू कराते थे। लेकिन वर्ण व्यवस्था और उसके मूल्यों को न माननेवाले कबीलों के लिए ये सब अर्थहीन थे। इसलिए ब्राह्मणों ने अपने स्थापित सामाजिक ढाँचे में कबीलों को जातियाँ बनाकर समाहित कराने की प्राचीन पद्धति की गति को और भी तेज किया। यही कारण है कि मनु और बाद के पुराणों की सूचियों में ऐसी संकर (सभी शूद्र) जातियों की बड़ी संख्याएँ मिलती हैं जिनके कबीलाई उद्गम को बिना कठिनाई के पहचाना जा सकता है।

पिछड़े क्षेत्रों में भूमि दानों की अर्थव्यवस्था के कारण अनेक कबीलों का वर्णसंकर शूद्रों के रूप में रूपांतरण हुआ और आबाद क्षेत्रों में इसके कारण निचले स्तरों पर गतिशीलता कम हुई। विदेशी व्यापार के कम होने के कारण गतिशीलता में और भी कमी आई। ईसा की पहली दो सदियों में व्यापार के फलने फूलने का एक कारण हान, कुषाण और ईरानी (आर्कासी) साम्राज्यों के फलस्वरूप काफी बड़े क्षेत्र में स्थायित्व का आना था, ये सभी साम्राज्य आपस में और रोम साम्राज्य के साथ व्यापार करते थे। तीसरी सदी के मध्य में इनमें प्रथम तीन साम्राज्य नष्ट हो गए,[17] और एक सदी बाद रोम साम्राज्य का भी पतन आरंभ हो गया। गुप्त काल में पूर्वी रोम साम्राज्य के साथ व्यापार कम परिमाण में जारी रहा, क्योंकि भारत में पाँचवीं छठी सदी की कुछ बाइजेंटीनी मुद्राएँ पाई गई हैं। लेकिन छठी सदी के बाद इस व्यापार में भारी कमी आई। इसका एक कारण था बाइजेंटीन द्वारा रेशम की जानकारी पा लेना जिसके चलते वे सातवीं सदी से रेशम के लिए भारत पर निर्भर नहीं रह गए। पश्चिमी भारत में इसके पहले भी रेशम के उत्पादन में भारी कमी आने के संकेत मिलते हैं क्योंकि पाँचवीं सदी के मध्य में रेशम के बुनकरों का एक गिल्ड गुजराती बंदरगाहों के पृष्ठक्षेत्र में स्थित नौसरी भड़ौच क्षेत्र से देशांतर करके मालवा स्थित मंदसौर चला गया था, जहाँ उन्होंने अपना पुराना धंधा छोड़ दिया और धनुषर्मों कथावाचकों, धर्मगुरुओं, ज्योतिषियों, सैनिकों और सन्यासियों के काम अपना लिए।[18] ये सभी धंधे स्पष्टतः अनुत्पादक थे। धंधे की माँग में कमी आने के कारण छोटे पैमाने पर मालों के उत्पादन में लगे अन्य हस्तशिल्पी गिल्डों के साथ भी संभवतः ऐसी ही बातें हुई हों।

पश्चिमी जगत और मध्य एशिया से होनेवाले व्यापार के पतन की क्षति पूर्ति चीन और दक्षिण पूर्व एशिया के साथ होनेवाले व्यापार से न हो सकी, ये क्षेत्र तीसरी चौथी सदियों में भारत को संभवतः फिरोजा, सूती कपड़ों और शक्कर के बदले सोना भेजते थे। वेइ राजवंश के शासनकाल (ई 220 265) में चीनियों ने भारतीयों से पत्थर से रंगीन काँच बनाना सीखा जिन्हें फिरोजा कहकर चलाया जा सकता था।[19] छठी सदी के कुछ ही समय बाद उन्होंने कपास की खेती और कपड़ों की बुनाई भी मध्य एशिया और दक्षिण पूर्व एशिया से सीखी जहाँ भारतीयों के संपर्क के कारण इनका प्रचार हुआ था।[20] तांग सम्राट तईत्सांग के शासन काल (ई 627 649) में उन्होंने मगध से शक्कर बनाने की कला भी सीखी।[21] इसके कारण सातवीं सदी के आस पास तक चीन और दक्षिण पूर्व एशिया शक्कर, सूती वस्त्रों और कीमती पत्थरों के लिए भारत पर निर्भर नहीं रह गए। इसलिए इन क्षेत्रों में भारतीय व्यापार को धक्का लगा। बाद में भारत से मुख्यतः इत्र और हाथीदाँत का निर्यात होता था।

व्यापारिक पतन का इससे भी संकेत मिलता है कि कुषाणों की तुलना में गुप्त शासकों की स्वर्णमुद्राओं में शुद्ध स्वर्ण की मात्रा में अधिकाधिक कमी आती गई। वासुदेव की मुद्राओं में शुद्ध स्वर्ण की मात्रा 118 रत्ती, चंद्रगुप्त कुमारदेवी की मुद्राओं में 109 रत्ती, समुद्रगुप्त की कुछ मुद्राओं में 105 04 रत्ती, समुद्रगुप्त की अन्य और चंद्रगुप्त द्वितीय की मुद्राओं में 99 98 रत्ती, कुमारगुप्त प्रथम की धनुर्धरवाली मुद्राओं में 92 रत्ती, स्कंदगुप्त की इसी प्रकार की मुद्राओं में 79 67 रत्ती तथा नरसिंह गुप्त के अधिकारियों की मुद्राओं में 73 54 रत्ती थी।[22] इस प्रकार पाँचवीं सदी के मध्य तक गुप्तकालीन मुद्राओं में शुद्ध स्वर्ण की मात्रा कुषाण मुद्राओं की तुलना में लगभग आधी हो चुकी थी। छठी सदी के अंत तक स्वर्ण मुद्राएँ लगभग लुप्त हो गईं और कोई चार सौ वर्षों तक दुलभ बनी रहीं। शकों और गुप्त शासकों के काल में पश्चिमी भारत में रजत मुद्राओं की अच्छी खासी संख्या मिलती है जो प्रतीत होता है कि, उस काल में व्यापार के लिए प्रयुक्त होती थीं, मगर गुप्त पश्चात् काल में वे लगभग पूरी तरह लुप्त हो गईं। इन सबके कारण भारी व्यापारिक लेन देन को भारी धक्का लगा होगा।

मझोले और मामूली दर्जे का लेन देन, खासकर आंतरिक लेन देन ताम्र मुद्राओं के कारण जारी रहा। लेकिन चंद्रगुप्त द्वितीय के काल के बाद की ताम्र मुद्राएँ भी बहुत कम मिली हैं। देश के कुछ भागों में कुषाणों की ताम्र मुद्राओं की नकलें पाई गई हैं, मगर कुषाण मुद्राओं की तुलना में इनकी संख्या सीमित है। इसलिए मुद्राओं की दुर्लभता से पाँचवीं सदी के मध्य के बाद आंतरिक बाजार में भारी सिकुड़न का संकेत मिलता है।

गुप्त काल में नगरीय बस्तियों के पतन और गुप्त पश्चात् काल में उनके वीरान होने से भी व्यापार और छोटे पैमाने के माल उत्पादन में आए ह्रास का संकेत मिलता है। उत्तर भारत में खुदाइयों में मिले नगरीय केंद्रों में ई पू पाँचवीं से ईसा की तीसरी सदी तक भवनों की संरचना में निरंतर सुधार का पता चलता है इनमें कुषाण काल के स्तरों से समृद्धतम चरण का संकेत मिलता है। पाकिस्तान में कुषाण काल इतना समृद्धि भरा था कि उसे उस देश का स्वर्णकाल कहा जाता है। लेकिन उत्तरी भारत में गुप्तकालीन स्तरों तक जब हम पहुँचते हैं तो पाते हैं कि उनके भवनों में कुषाणकालीन ईंटों का पुनरुपयोग हुआ है। गुप्त पश्चात् काल में खुदाई में मिले अधिकांश स्थान वीरान हो चुके थे, क्योंकि वहाँ आबादी के लगभग नहीं के बराबर होने का संकेत मिलता है। यह बात ह्वेनत्सांग से भी पुष्ट होती है। यद्यपि उसकी टिप्पणियाँ बौद्ध नगरों के ह्रास तक सीमित हैं मगर इनकी संख्या पर्याप्त है और अनेक मामलों में उसके वक्तव्यों की पुष्टि पुरातत्व से भी हो चुकी है।[23] इस तरह नगरों के पतन का अर्थ हस्तशिल्पों और व्यापार की गतिविधियों में कमी है।

भूमि दानों की प्रथा और साथ में व्यापार के पतन से ऐसी दशाएँ उत्पन्न हुईं जिनमें माल-उत्पादन पर अंशत आधारित व्यवस्था मिट गई और एक प्रकार की नैसर्गिक अर्थव्यवस्था फिर से स्थापित हुई जिसमें लोग मुख्यत भूमि से सबद्ध थे और सभी पारिश्रमिक भूमि के रूप में या उपज में भाग के रूप में दिए जाते थे। यद्यपि भूमि पाने के लिए ब्राह्मण स्थान परिवर्तन करते थे, मगर हस्तशिल्पियों और वणिकों को कहीं जाने की जरूरत न थी। ब्याह और भोज के रूप में सामाजिक ससर्ग एक छोटे से दायरे तक सीमित था और यह निर्दिष्ट किया गया है कि ब्राह्मण को अपनी बेटी किसी दूर रहनेवाले का नहीं देनी चाहिए। गतिशीलता में कमी आने के कारण एक शुद्धत कृषि आधारित अर्थव्यवस्था में निचले स्तरों पर हस्तशिल्पियों के व्यवसाय आधारित गिल्ड जातियों के रूप में जडीभूत होने लगे। यह बात पहले से आबाद क्षेत्रों के बारे में विशेषकर सत्य रही होगी।

व्यापार और हस्तशिल्पों के पतन के कारण व्यापारियों और हस्तशिल्पियों का महत्व कम हुआ और उनके प्रति भूस्वामी वर्गों (ब्राह्मणों और क्षत्रियों) के दृष्टिकोण में कठोरता आई। बाँस और चमडे का काम करनेवाले हस्तशिल्पी अस्पृश्य जातियों की श्रेणी में रख दिए गए। लेकिन सकर, शूद्र जातियों की सख्या में वृद्धि का बुनियादी कारण आदिवासी जनगणों के रूपातरण में और हस्तशिल्पों के जडीभूत होने में भी कार्यरत था। यह भूमि दान की अर्थव्यवस्था का विस्तार और सामती स्थानवाद का आरभ था जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को अपनी भूमि अपने ग्राम स्वामी या जजमान से चिपके रहना पडता था। जजमान और स्वामी बदल भी जाते थे मगर उनके हस्तशिल्पी और कृषक नही बदलते थे। यह परिवर्तनहीनता छोटे पैमाने के माल उत्पादन को व्यवहारत बद कर देनेवाले समाज का परिणाम थी और इसके कारण जातियों के स्थायित्व और उनकी सख्यात्मक वृद्धि का वातावरण तैयार हुआ।

ऐसा प्रतीत होता है कि पहले के कालों में हस्तशिल्पी अपने उत्पादों को बाजार में बेचते और नकद रूप में भुगतान पाते थे। लेकिन छठी सदी के आरभ में उपज का एक भाग देने के अलावा भूमि दान भी उनको भुगतान करने का महत्वपूर्ण ढग हो गया। बगलादेश के राजशाही जिले से प्राप्त सन् 507 के एक ताम्रपत्र पर एक विक्रीनामा दर्ज है जिसमें सेवाओं के बदले दिए गए भुगतान का अप्रत्यक्ष सकेत मिलता है। ब्राह्मणों को दान में दिए जानेवाले भूभागों की सीमा बतलाते हुए इसमें पडोसी काश्तकारों की जमीनों का विस्तृत ब्योरा भी दिया गया है। इस सूची में अनेक हस्तशिल्पी भी शामिल हैं। इसमें कालाक के खेत का उल्लेख मिलता है[24] जिसे कौलिक (बुनकर) माना जा सकता है। विष्णुवर्द्धकि नामक एक काष्ठकार की[25] तथा एक वैद्य की[26] भूमियों का भी स्पष्ट उल्लेख मिलता है। भूमि के ऐसे तीन टुकडों का भी उल्लेख मिलता है जिनके स्वामी तीन व्यक्ति थे

और उनमें से प्रत्येक के नाम के अंत में विलाल आता था,[27] समझा जाता है कि वे काष्ठकार की तरह किसी यंत्रकर्मी जाति के रहे होंगे। इसके अलावा, ज (जो) लारी क्षेत्र का उल्लेख है जो सम्भवत एक बुनकर का रहा होगा। इसी तरह, शब्द वि (द्ध) गुरिक क्षेत्र का अर्थ सम्भवत किसी वागुरिक (आखेटक) का क्षेत्र हो सकता है। यद्यपि इनमें से कुछ मामलों में हस्तशिल्पियों की पहचान संदिग्ध है, लेकिन इसमें संदेह नहीं कि हस्तशिल्पियों और अन्य लोगों को सेवाओं के बदले भूमि दान दिए जाते थे। इसके तथा वस्तु रूप में सेवाओं के पारिश्रमिक के भुगतान की प्रथा के कारण वे अपनी भूमि से बँध जाते थे और उनकी गतिशीलता कठिन हो जाती थी। इससे हस्तशिल्पों के जातियों में रूपांतरण की प्रक्रिया त्वरित हुई होगी और जजमानी प्रथा के विकास में सहायता मिली होगी।

संदर्भ

4468

1. के पी चट्टोपाध्याय *दि एंशिएंट इंडियन कल्चर कॉन्टैक्ट्स एंड माइग्रेशंस* (कलकत्ता 1970) पृ 28
2. उपरोक्त पृ 25 26
3. 18 की संख्या का व्यवहार आगे चलकर तीर्थों (कौटिल्य *अर्थशास्त्र* के अधिकारियों) परिहारों (उन्मुक्तियों) महाभारत के पर्वों और अक्षौहिणियों पुराणों इत्यादि के लिए किया गया है। इसके गुणक 36 का उपयोग आरंभिक मध्य काल में वर्णों की संख्या गिनवाने के लिए किया गया है।
4. *अर्थशास्त्र* III 7
5. *अर्थशास्त्र* III 7 के कांगले कृत अनुवाद के अनुसार व्रात्यों की उत्पत्ति उच्चतर वर्णों के अशुद्ध पुरुषों द्वारा उसी वर्ण की स्त्री से होती है।
6. X 20
7. X 21
8. X 22
9. X 23
10. X 43 44
11. उपरोक्त
12. संभव है कि भूर्जकंटक का कुछ संबंध भोजक से हो जिनका प्रथम उल्लेख *ऐतरेय ब्राह्मण* में हुआ है।
13. विवेकानंद झा वर्णसंकर इन दी धर्मसूत्राज थ्योरी एंड प्रैक्टिस *जर्नल आफ दि इकोनामिक एंड सोशल हिस्ट्री आफ दि ओरिएंट* 13 (1970) 273 ff
14. व्यावसायिक अस्पृश्य जातियों की समस्या की विवेचना विवेकानंद झा ने पटना विश्वविद्यालय से पी एच डी की उपाधि के लिए जमा किए गए शोध प्रबंध *अनटचेबिल्स इन अर्ली इंडिया* अध्याय 3 में की है।
15. डी सी सरकार (सं) *सेलेक्ट इंस्क्रिप्शंस* 1 ग्रंथ 3 संख्या 62 पंक्ति 19 20

16 और भी दृष्टांतों के लिए देखें बी पी मजुमदार, "कलेक्टिव लैंडग्राट्स इन अर्ली मेडिवल इंस्क्रिप्शंस *जर्नल आफ दि एशियाटिक सोसायटी* 10 (1968) 7 17

17 माइकेल लोव एसपेक्ट्स आफ वर्ल्ड ट्रेड इन दि फर्स्ट सेविन सेंचुरीज आफ दि क्रिश्चियन एरा *जर्नल आफ दि रायल एशियाटिक सोसायटी आफ ग्रेट ब्रिटेन एंड आयरलैंड* अंक 2 (1971) 172

18 सेलेक्ट इंस्क्रिप्शंस 1 ग्रंथ 3 संख्या 24 पंक्ति 16-19

19 सन चाग एंशिएंट चाइनाज क्वेस्ट फॉर इंडियन प्राडक्ट्स *दि संडे स्टेट्समैन* पत्रिका खंड 6 अप्रैल 1969

20 उपरोक्त

21 उपरोक्त

22. एस के मैती *इकोनामिक लाइफ आफ नार्दर्न इंडिया इन गुप्त पीरियड* (कलकत्ता 1957) परिशिष्ट 3 पृ 202 एवं तालिका 1(स) पृ 205 पर आधारित साथ में देखें मेरा लेख इंडियन फ्यूडलिज्म रिटप्ड *दि इंडियन हिस्टारिकल रिव्यू* 1 (1974) 322 23

23 आर एस शर्मा डिके आफ गैंगेटिक टाउंस इन गुप्त एंड पोस्ट गुप्त टाइम्स' *जर्नल आफ इंडियन हिस्ट्री* स्वर्ण जयंती अंक 1973 पृ 135 50

24 *सेलेक्ट इंस्क्रिप्शंस* 1 ग्रंथ 3 संख्या 37 पंक्ति 25

25 उपरोक्त प 19

26 उपरोक्त प 22

27 उपरोक्त प 19 21 22 28

28 उपरोक्त पृ 345 पाद टिप्पणी 1

29 उपरोक्त प 24

30 उपरोक्त प 26

ग्रथ सूची

(एक से अधिक अध्यायों में प्रयुक्त सदर्भ ग्रथ)

अ मूल

महाकाव्य

(कलकत्ता सस्करण) सपादक एन शिरोमणि और अन्य, बिब्लिओथेका इडिका, कलकत्ता 1834 39 अनुवादक के एम गागुली। पी सी राय, कलकत्ता द्वारा प्रकाशित, 1884 96

(कुभकोनम सस्करण) सपादक टी आर कृष्णाचार्य और टी आर व्यासाचार्य बबई, 1905 10

(आलोचनात्मक सस्करण) सपादक विभिन्न व्यक्ति, पूना, 1927 64। जब तक अन्यथा उल्लिखित न हो निर्देश इसी सस्करण के हैं।

रामायण, वाल्मीकिकृत,

सपादक काशीनाथ पाडुरग 2 खड, बबई 1888

पुराण

अग्नि पुराण अनुवादक एम एन दत्त 2 जिल्द कलकत्ता 1903-4

दि पुराण टेक्स्ट ऑफ दि डायनेस्टीज ऑफ [illegible] कलि एज अनुवादक एफ ई पार्जिटर ऑक्सफोर्ड 1913

ब्रह्माड पुराण बबई 1913

भविष्य पुराण बबई 1910

भागवत पुराण बबई 1905

मत्स्य पुराण सपादक जीवानद विद्यासागर कलकत्ता 1876

मार्कण्डेय पुराण सपादक माननीय के एम बनर्जी बिब्लिओथेका इडिका कलकत्ता 1862 अनुवादक एफ ई पार्जिटर कलकत्ता 1904

वायु पुराण सपादक आर एल मित्र 2 जिल्द बिब्लिओथेका इडिका कलकत्ता, 1880-88

विष्णु पुराण श्रीधरस्वामी टीका सहित सपादक जीवानद विद्यासागर कलकत्ता 1882 अनुवादक एच एच विल्सन 5 जिल्द लदन 1864 70

उत्कीर्ण लेख

डी सी सरकार सेलेक्ट इंसक्रिप्शंस बियरिंग आन इंडियन हिस्ट्री ऐंड सिविलाइज़ेशन, कलकत्ता 1942

आ शब्दकोश और निर्देश ग्रंथ

ए ए मैकडानल ऐंड ए बी कीथ वैदिक इंडेक्स ऑफ नेम्स ऐंड सबजेक्ट्स 2 जिल्द लंदन 1912

एच एच विल्सन ए ग्लासरी आफ जुडीशियल ऐंड रैवेन्यू टर्म्स लन्न, 1885

एच जी लिडेल और आर स्काट ए ग्रीक इंगलिश लेक्सिकन 2 जिल्द आक्सफोर्ड 1925-40

जी पी मलसेकेरा ए डिक्शनरी ऑफ पाली प्रापर नेम्स 2 जिल्द लन्न 1937 8

जे म्यूर ओरिजनल संस्कृत टैक्स्ट्स I लंदन 1872

टी डब्ल्यू रीज डेविड्स और डब्ल्यू स्टीड पाली इंगलिश डिक्शनरी पी टी एस, लन्न 1921

डब्ल्यू ग्च गिलबर्ट कास्ट इन इंडिया (ग्रंथ सूची) खंड I चक्रमुद्रित प्रति वाशिंगटन 1948

मोनियर विलियम्स ए संस्कृत इंगलिश डिक्शनरी आक्सफोर्ड 1951

लक्ष्मणशास्त्री जोशी धर्मकोश जिल्द I (तीन खंडों में) वई जिला सतारा 1937 41

इ भारतीय साहित्य के इतिहास

ए बी कीथ ए हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर, ऑक्सफोर्ड 1928

एम विंटरनिज (i) ए हिस्ट्री ऑफ इंडियन लिटरेचर जिल्द I श्रीमती केतकर द्वारा जर्मन से अनूदित कलकत्ता I (ii) गैसिस्टे डेर इंडिशेन लिटरेटुर जिल्द II III लिपजिग 1920

एलब्रेख्ट वेबर, दि हिस्ट्री आफ इंडियन लिटरेचर जे मन्न ऐंड टी जकराया द्वारा द्वितीय जर्मन संस्करण का अनुवाद लंदन 1876

एस एन दासगुप्त और एस के डे ए हिस्ट्री आफ संस्कृत लिटरेचर (क्लासिकल पीरियड) जिल्द I कलकत्ता 1947

बी सी ला ए हिस्ट्री ऑफ पाली लिटरेचर जिल्द I लन्न 1933

ई सामान्य ग्रंथ

आर सी मजूमदार एच सी रायचौधरी और के क दत्त एन एडवांस्ड हिस्ट्री ऑफ इंडिया लन्न 1948

आर सी मजुमदार और ए डी पुसलकर (i) दि वैदिक एज, लदन, 1951 (ii) दि एज आफ इपीरियल यूनिटी बबई, 1951
ई जे रैपसन दि कैब्रिज हिस्ट्री ऑफ इडिया, जिल्द I कैब्रिज, 1922
ए एल बाशम दि वडर दैट वाज इडिया लन्दन, 1954
एच सी रायचौधरी पोलिटिकल हिस्ट्री ऑफ एनशिएट इडिया छठा सस्करण कलकत्ता, 1953
एल डी बार्नेट, एटिक्विटीज ऑफ इडिया, लन्दन 1913
के ए नीलकठ शास्त्री, दि मौर्याज ऐंड सतवाहनाज, बबई 1957
क्रिश्चियन लैसेन इडिश्चे अल्टरथुम्सकुडे, 4 जिल्द लिपजिग 1847 1861
गुन्नर लैटमैन दि ओरिजिन ऑफ दि इनिक्वेलिटी ऑफ दि सोशल क्लासेज लदन 1938
डी डी कोसबी एन इट्रोडक्शन टु दि स्टडी ऑफ इडियन हिस्ट्री बबई 1956
वाल्टर रुबेन एनफुरग इन डी इडियनकुडे बर्लिन 1954
वी ए स्मिथ अर्ली हिस्ट्री ऑफ इडिया, चतुर्थ सस्करण एस एम एडवर्ड्स द्वारा सशोधित आक्सफोर्ड 1924

उ प्राचीन भारत के सामाजिक और आर्थिक जीवन पर गौण कृतियाँ

अतींद्रनाथ बोस सोशल ऐंड रूरल इकानमी ऑफ नार्दर्न इडिया (लगभग छ सौ ई पू –दो सौ ई पू) 2 भाग कलकत्ता 1945
आर के मुखर्जी (i) एनशिएट इडियन एडुकेशन लदन 1940 (ii) लोकल गवर्नमेंट इन एनशिएट इडिया आक्सफोर्ड 1920
आर सी मजुमदार कारपोरेट लाइफ इन एनशिएट इडिया कलकत्ता 1922
आर सी हाजरा स्टडीज इन दि पुराणिक रेकर्ड्स ऑन हिंदू राइन्स ऐंड कस्टम्स ढाका 1940
ई डब्ल्यू हापकिंस पाजिशन ऑफ दि रूलिंग कास्ट इन एनशिएट इडिया जर्नल ऑफ दि अमेरिकन ओरिएटल सोसायटी बाल्टीमोर XIII 57 376
ए एस अल्तेकर, एडुकेशन इन एनशिएट इडिया बनारस 1934
एच रिजले, दि पीपुल ऑफ इंडिया लन्दन 1915
एन के दत्त ओरिजिन ऐंड ग्रोथ ऑफ कास्ट इन इडिया, जिल्द I (लगभग दो हजार ई पू तीन सौ ई) लदन 1931
ए बैन्स एथनोग्राफी स्ट्रैसबर्ग 1912
एमिल सेनार्ट कास्ट इन इडिया फ्रेंच सस्करण लेस कास्ट्स दा ल इडे (पेरिस 1896) का डेनिसन रास द्वारा अनुवाद लन्दन 1930
एस ए डागे इडिया फ्रॉम प्रिमिटिव कम्युनिज्म टु स्लेवरी बबई 1949

एस वी केतकर दि हिस्ट्री ऑफ कास्ट इन इंडिया, न्यूयार्क 1909
के एम शरण लेबर इन एनशिएंट इंडिया बबई, 1957
के एल दफ्तरी दि सोशल इंस्टिट्यूशस इन एनशिएट इंडिया नागपुर, 1947
के पी जायसवाल (1) हिंदू पालिटी, 2 खड कलकत्ता, 1924 (11) मनु ऐंड याज्ञवल्क्य कलकत्ता 1930
के वी रगस्वामी अय्यगर सम आसपेक्ट्स ऑफ दि हिंदू व्यू ऑफ लाइफ अकार्डिंग टु धर्मशास्त्र, बड़ौदा 1952
जगदीशचंद्र जैन लाइफ इन एनशिएंट इंडिया ऐज डिपिक्टेड इन दि जैन कैनन्स बबई 1947
जी एस घुर्ये कास्ट ऐंड क्लास इन इंडिया, बबई 1950
जे एच हटन कास्ट इन इंडिया ऑक्सफोर्ड 1951
जे जाली हिंदू ला ऐंड कस्टम कलकत्ता, 1928 एस के घोष द्वारा 1896 के जर्मन सस्करण से अनूदित
देवराज चानना स्लेवरी इन एनशिएट इंडिया, पाडिच्चेरि, 1957
नारायणचद्र बद्योपाध्याय इकनामिक लाइफ ऐंड प्रोग्रेस इन एनशिएंट इंडिया कलकत्ता 1945
पी एच वल्वल्कर, हिंदू सोशल इस्टीट्यूशस लदन 1939
पी वी काणे, हिस्ट्री ऑफ धर्मशास्त्र, जिल्द II पूना 1941
प्राणनाथ ए स्टडी इन दि इकनामिक कडीशन ऑफ एनशिएंट इंडिया लदन 1929
बी आर अबेडकर, (1) हू वेयर दि शूद्राज ? (हाउ दे केम टु बी दि फोर्थ वर्ण इन दि इडो एरियन सोसायटी ?) बबई 1946 (11) दि अनटचेबुल्स (हु वेयर दे ? ऐंड हाउ दे बिकेम अनटचेबुल्स ?) नई दिल्ली, 1948
बी ए सैलेटोर दि वाइल्ड ट्राइब्स इन इडियन हिस्ट्री लाहौर 1935। बी सी ला ट्राइब्स इन एनशिएट इंडिया पूना 1943
भूपेंद्रनाथ दत्त स्टडीज इन इडियन सोशल पालिटि कलकत्ता, 1944
यू एन घोषाल कान्ट्रिब्यूशस टु दि हिस्ट्री ऑफ हिंदू रेवेन्यू सिस्टम कलकत्ता, 1929
रामशरण शर्मा प्राचीन भारत के राजनीतिक विचार एव सस्थाएँ, मैकमिलन दिल्ली 1977
वाल्ट रूबेन *डी लाग डर स्कलैवेन इन डेर आल्टिनडिस्चेन गैजेलशाफ्ट*, बर्लिन 1957
सतोषकुमार दास दि इकनामिक हिस्ट्री ऑफ एनशिएट इंडिया कलकत्ता 1944

1 भूमिका

अलफ्रेड हिलब्राट ब्राह्मणेन उड शूद्राज फेस्टस्क्रिफ्ट फुर कार्ल विनहोल्ड पृ 53 57 ब्रेसलौ *1896*

आर जी भडारकर, कलेक्टेड वर्क्स, सपादक एन बी उत्तिकर और वी जी पराजपे, 4 जिल्द पूना 1927 33
एच टी कोलबुक मिसलेनस एसेज सपादक ई बी कावेल 2 जिल्द, लदन, 1873
एन बी हैलहेड, ए कोड ऑफ जेंटू लाज लदन 1776
जेम्स मिल दि हिस्ट्री ऑफ इडिया, जिल्द I और II, द्वितीय सस्करण, लदन, 1820
जे सी घोष ब्राह्मणिज्म ऐंड दि शूद्र कलकत्ता 1902
माउट स्टुअर्ट एलफिंस्टन दि हिस्ट्री ऑफ इडिया, लदन 1841
राजा राममोहन राय दि इगलिश वर्क्स, 3 जिल्द, सपादक जे सी घोष कलकत्ता, 1901
विलियम जोन्स इस्टीट्यूट्स ऑफ हिंदू ला आर दि आर्डिनेंसेज ऑफ मनु, (अनुवाद) कलकत्ता 1794
वी एस भट्टाचार्य दि स्टेटस ऑफ दि शूद्राज इन एनशिएट इडिया, विश्वभारती त्रैमासिक, 1924
स्वामी दयानद सरस्वती सत्यार्थ प्रकाश अजमेर सवत 1966

2 उत्पत्ति

मूल ग्रथ

अथर्ववेद (पिप्पलादों का) सपादक रघुवीर लाहौर, 1936-41
अथर्ववेद सहिता (शौनक मतावलंबियों का) सपादक सी आर लनमन अनुवाद डब्ल्यू डी व्हिटने ओरिएटल सीरीज VII और VIII हार्वर्ड यूनिवर्सिटी 1905। सपादक आर रौथ ऐंड डब्ल्यू डी व्हिटने बर्लिन 1856। सायण की टीका सहित सपादक एस पाडुरग पडित 4 जिल्द बबई 1895 98। अनुवादक आर टी एच ग्रिफिथ 2 जिल्द बनारस 1916 17। जब तक अन्यथा न बताया गया हो निर्देश शौनक सस्करण के माने जाएँ।
ऋग्वेद सहिता सायण की टीका सहित, 5 जिल्द, वैदिक सशोधन मडल पूना 1933 51 प्रथम 6 मडलों का अनुवाद, एच एच विलसन लदन 1950 7। के एफ गेल्डनर कैंब्रिज मैच्यूसेट्स 1951
जे डब्ल्यू मैक्क्रिंडल (i) एनशिएट इंडिया ऐज डिस्क्राइब्ड बाई टालेमी कलकत्ता 1885। (ii) दि इनवेजन आफ इडिया बाई अलेक्जेंडर दि ग्रेट वेस्टमिंस्टर, 1893
भविष्यत्कथा लेखक धनपाल सम्पादक सी डी दलाल और पी डी गुणे गायकवाड़ ओरिएटल सीरीज XX बड़ौदा 1923

वेदांतसूत्र बादरायणकृत, शंकराचार्य की टीका सहित, 2 जिल्द बिब्लिओथेका इंडिका, कलकत्ता, 1863 । अनुवाद जार्ज थीबो, सेक्रेड बुक्स ऑफ दि ईस्ट, XXXIV आक्सफोर्ड 1890

गौण रचनाएँ

आर ई मार्टिमर व्हीलर दि इंडस सिविलाइजेशन (सप्लीमेंट वाल्यूम टु कैंब्रिज हिस्ट्री ऑफ इंडिया, I) कैंब्रिज 1953

आर रौथ ब्रह्म उड डाइ ब्राह्मनेन साइटशृफ्ट डेर डोयूचेन मार्गेनलैंडिशेन गेजेलशाफ्ट, बर्लिन, I, 66 86

आर गिर्समन, ईरान (पेलिकन सीरीज) 1954

ई एल स्टीवेंशन ज्याग्रफी ऑफ क्लाडियस टालेमी, न्यूयार्क 1932

ई मैके, अर्ली इंडस सिविलाइजेशंस द्वितीय संस्करण लंदन, 1948

एन एन घोष, दि ओरिजिन ऐंड डेवलपमेंट ऑफ कास्ट सिस्टम इन इंडिया इंडियन कल्चर कलकत्ता, XII 177 191

एफ ई पार्जिटर, इंडियन हिस्टारिकल ट्रेडीशंस लंदन 1922

जार्जेज दुमेजिल (I) फ्लामेन ब्राह्मण, पेरिस, 1935 (II) ला प्रिहिस्ट्वायरे इंडो इरानियेन डेस कास्ट्स,जर्नल एसियाटिक (पेरिस) CCXVI 109 130

चार्ल शारपेंटियर, ब्राह्मण उप्सला 1932

जी जे हेल्ड, दि महाभारत एन एथनलाजिकल स्टडी, लंदन और एम्स्टरडम, 1935

जे वैकरनेगेल इंडुवायेरेनिसेज सिजुंग्सबेरिसे डेर कानिग्लिश प्रुसिस्चेन अकाडेमी डेर विसेनशैफेन 1918, पृ 380 411

टी बरो दि संस्कृत लैंग्वेज लंदन 1955

डब्ल्यू,रूबेन इंद्राज फाइट अगेंस्ट वृत्र इन दि महाभारत एस के बेल्वलकर (फेलिसिटेशन वाल्यूम बनारस 1957) 113 26

डी डी कोसंबी (I) अर्ली ब्राह्मिन्स ऐंड ब्राह्मनिज्म जर्नल ऑफ दि बाम्बे ब्रांच ऑफ दि रायल एशियाटिक सोसायटी बंबई न्यू सीरीज XXIII 39-46 (II) ऑन दि ओरिजिन ऑफ ब्राह्मिन गोत्राज जर्नल ऑफ दि बाम्बे ब्रांच ऑफ दि रायल एशियाटिक सोसायटी बंबई न्यू सीरीज XXVI 21 80 (III) अर्ली स्टेजेज ऑफ दि कास्ट सिस्टम इन नार्दर्न इंडिया जर्नल ऑफ दि बाम्बे ब्रांच ऑफ दि रायल एशियाटिक सोसायटी, बंबई न्यू सीरीज XII 32 48

पी वी काणे दि वर्ड व्रत इन दि ऋग्वेद जर्नल ऑफ दि बाम्बे ब्रांच ऑफ रायल एशियाटिक सोसायटी बंबई न्यू सीरीज XXIX 1 28

बी बी लाल प्रोटोहिस्टारिक इनवेस्टिगेशन एनशिएंट इंडिया दिल्ली स 9

राबर्ट शेफर, एथनोग्राफी ऑफ एनशिएंट इंडिया (महाभारत के आधार पर), विसबैडन 1954
राबर्ट हेन गेल्डर्न, आर्कियोलाजिकल ट्रेसेज ऑफ दि वैदिक एरियन्स, जर्नल ऑफ ■ इंडियन सोसायटी ऑफ ओरिएंटल आर्ट (कलकत्ता), vi 87 115
लुइ रनू, वैदिक इंडिया कलकत्ता, 1957
वी एस भट्टाचार्य शास्त्री, 'शूद्र', एनशिएंट इंडिया, दिल्ली ii 137 9
वी गौर्डन चाइल्ड, ■ एरियन्स लदन 1926
वी गौर्डन चाइल्ड, न्यू लाइट ऑन दि मोस्ट एनशिएंट ईस्ट, लदन 1954
सूर्यकांत, कीकट, फलिग ऐंड पणि एस के बेल्वलकर फेलिसिटेशन वाल्यूम 43-44
हरमन ग्रासमन, वोर्टरबुक जुम ऋग्वेद लिपजिग, 1873

3 जनजाति से वर्ण की ओर

(लगभग 1000 ई पू से लगभग 600 ई पू तक)*

मूल स्रोत

आपस्तंब श्रौतसूत्र रुद्रदत्त की टीका सहित सपादक रिचर्ड गार्बे 3 जिल्द कलकत्ता, 1882 1902 । संपादक और अनुवादक डब्ल्यू कैलेंड 3 जिल्द, गौटिंजेन लिपजिग एम्सर्टडम, 1921 1928.
ऋग्वेद ब्राह्मणाज ऐतरेय ऐंड कौशीतकि ब्राह्मणाज अनुवादक ए बी कीथ हार्वर्ड ओरिएंटल सीरीज XXV हार्वर्ड, 1920
ऐतरेय ब्राह्मण सायण की टीका सहित सपादक टी ऑफ्रेक्ट, बान, 1879 अनुवादक मार्टिन हाग बबई 1863
कण्व संहिता शुक्ल यजुर्वेदीय सपादक माधव शास्त्री बनारस 1915
कपिष्ठल कठ संहिता सपादक रघुवीर, लाहौर 1932
काठक संहिता, सपादक लियोपाल्ड फान श्रोडर लिपजिग 1900-1910
कात्यायन श्रौतसूत्र कर्काचार्य की टीका सहित, सपादक मदनमोहन पाठक बनारस, 1904

* [illegible]

कृष्ण यजुर्वेदीय तैत्तिरीय ब्राह्मण सायण की टीका सहित, सपादक आर एल मित्र 3जिल्द, कलकत्ता, 1859 70
गोपथ ब्राह्मण सपादक डिएके गास्ट्रा, लेडेन 1919
छादोग्य उपनिषद मूल अनुवाद और टीका, एमिल सेनार्ट, पेरिस 1930
जेंद अवेस्ता, खड 1 वेंदीदाद अनुवादक जेम्स डर्मेस्टेटर, सेक्रेड बुक्स ऑफ ▮ ईस्ट, IV आक्सफोर्ड, 1880
जैमिनीय या तलवकार उपनिषद ब्राह्मण सपादक रामदेव लाहौर, 1921
जैमिनीय श्रौतसूत्र, सपादक और जर्मन भाषा में अनुवाद, डी गास्ट्रा, लेडेन 1906
तैत्तिरीय सहिता सपादक ए वेबर, इडिश्चेन स्टुडियेन बैंड 11 और 12, लिपजिग, 1871 2। अनुवादक ए बी कीथ, हार्वर्ड ओरिएटल सीरीज XVIII और XIX हार्वर्ड, 1914
दि थर्टीन प्रिंसिपल उपनिषद्स, अनुवादक आर ई ह्यूम आक्सफोर्ड 1931
डस जैमिनीय ब्राह्मण इन औसवाल सपादक और जर्मन भाषा में अनुवादक डब्ल्यू कैलेंड एम्सटर्डम 1919
द्राह्यायण श्रौतसूत्र, धनविन की टीका सहित सपादक जे एन र्यूटर लदन,1904
निघटु ऐंड निरुक्त सपादक और अनुवादक लक्ष्मण सरूप। मूल पजाब विश्वविद्यालय 1927, अग्रेजी अनुवाद और टिप्पणियाँ ऑक्सफोर्ड,1921
बृहदारण्यक उपनिषद शकराचार्य की टीका सहित अनुवादक स्वामी माधवानन्द अल्मोड़ा 1950
बृहद्देवता समवत शौनककृत सपादक और अनुवादक ए ए मैकडानल हार्वर्ड ओरिएटल सीरीज V और VI हार्वर्ड 1904
मैत्रायणी सहिता सपादक लियोपाल्ड फान श्रोडर लिपजिग 1923
लाट्यायन श्रौतसूत्र अग्निस्वामी की टीका सहित सपादक आनद चद्र वेदातरागीश, बिब्लिओथेका इडिका कलकत्ता 1872
वाजसनेयि सहिता (माध्यदिन पाठ), उवट और महीधर की टीका सहित सपादक वासुदेव लक्ष्मण शास्त्री पसिकर बबई 1912
वाराह श्रौतसूत्र सपादक डब्ल्यू कैलेंड ऐंड रघुवीर लाहौर 1933
शतपथ ब्राह्मण, (माध्यंदिन पाठ) सपादक ची शर्मा गौड एव सी डी शर्मा काशी सवत 1994 7
शाखायन ब्राह्मण आनदाश्रम सस्कृत सीरीज स 35 1911
शाखायन श्रौतसूत्र सपादक ए हिलब्राट बिब्लिओथेका इडिका कलकत्ता 1888
सत्याषाढ (हिरण्यकेशिन) श्रौतसूत्र महादेव की टीका सहित आनदाश्रम सस्कृत सीरीज 1907
सामवेदीय जैमिनीय ब्राह्मण सपादक रघुवीर एव लोकेश चद्र नागपुर 1954

गौण रचनाएँ

आर जी फौबिस, मेटलर्जी इन एनटिक्वीटी, लेडेन, 1950
ए ए मैकडानल, ए वेदिक ग्रामर फार स्टूडेंट्स,ऑक्सफोर्ड, 1916
एच एम चैडविक, दि हिरोइक एज, कैंब्रिज, 1912
एम ब्लूमफील्ड, दि अथर्ववेद स्ट्रैसबर्ग, 1899
ए वेबर, (1) कलेक्टानिया उबर डी कस्टेनवेर हालिनिसे इन डेन ब्राह्मण उड सूत्र इंडिस्चे स्टूडियेन X 1 160 (11) डेर अर्स्ट्रे अध्याय डेस अर्स्टेन बुचेस डेस शतपथ ब्राह्मण त्साइटशिफ्ट डेर डोयूचेन मेग्रेनलैंडिशे गेजेलशाफ्ट, बर्लिन IV 289-304
ए जी बनर्जी स्टडीज इन दि ब्राह्मणाज पी एच डी थीसिस लदन विश्व वियालय 1952
ए हिलब्राट, जूर वेडिस्चेन माइथालजी उड वाल्करवेगुग लिपजिग बैंड 3 लिपजिग, 1925

जार्ज टामसन स्टडीज इन एनशिएंट ग्रीक सोसायटी, I लदन 1949
जी सी पाडे स्टडीज इन दि ओरिजन्स ऑफ बुद्धिज्म इलाहाबाद 1957
जे म्यूर रिलेशन ऑफ दि प्रिस्ट्स टु दि अदर क्लासेज ऑफ इंडियन सोसायटी इन दि वैदिक एज जर्नल ऑफ दि रायल एशियाटिक सोसायटी ऑफ ग्रेट ब्रिटेन ऐंड आयरलैंड लदन न्यू सीरीज II (1866) 257 302
विल्हेम गाइगर सिविलाइजेशन ऑफ दि ईस्टर्न इरानियन्स इन एनशिएंट टाइम्स डी डी पोसोटन सजाना द्वारा जर्मन भाषा से अनूदित जिल्द I लदन 1885
हेनरिक तिम्मर अल्टिडिस्चेस लेबेन बर्लिन 1879

4 दासता और अशक्तता

(लगभग छ सौ ई पू से लगभग तीन सौ ई पू तक)

मूल ग्रथ

अ ब्राह्मण

आपस्तम्ब धर्मसूत्र सम्पादक जी बुल्हर बबई 1932

आश्वलायन गृह्यसूत्र, हरदत्ताचार्य की टीका सहित सपादक टी गणपति शास्त्री त्रिवेंद्रम, 1923
गौतम धर्मसूत्र, सपादक ए एस स्टेंजलर, लंदन 1876 , मस्करि की टीका सहित सपादक एल श्रीनिवासाचार्य मैसूर,1917
पाणिनि सूत्र पाठ ऐंड परिशिष्टाज, शब्द सूची सहित, सकलनकर्ता एस पाठक और एस चितराव पूना, 1935
पारस्कर गृह्यसूत्र, बबई 1917
बौधायन गृह्यसूत्र सपादक आर शामा शास्त्री मैसूर 1927
बौधायन धर्मसूत्र सपादक ई हुल्श लिपजिग 1884
वसिष्ठ धर्मशास्त्र, सपादक ए ए कुहरर, बबई, *1916*
शाखायन आश्वलायन पारस्कर , खदिर गोभिल हिरण्यकेशिन् और आपस्तब के गृह्यसूत्र का अनुवाद एच ओल्डेनबर्ग, सेक्रेड बुक्स आफ दि ईस्ट XXIX और XXX आक्सफोर्ड 1886 92
शाखायन गृह्यसूत्र सपादक एच ओल्डेनबर्ग, इंडिस्चे स्टूडियेन XV पृ 13 आदि।
आपस्तब गौतम वसिष्ठ और बौधायन के धर्मसूत्र का अनुवाद जी बुल्लर सेक्रेड बुक्स ऑफ दि ईस्ट II और XIV ऑक्सफोर्ड, 1879 82

आ बौद्ध

अगुत्तर निकाय सपादक आर मौरिस एव ई हार्डी, 5 जिल्द , पाली टेक्स्ट सोसायटी लदन 1885 1900 जिल्द I II और V का अनुवाद एफ एल उडवर्ड द्वारा और III एव IV का अनुवाद ई एम हेअर द्वारा , पाली टेक्स्ट सोसायटी लन्दन 1932 36
जातक टीका सहित सपादक वी फासबाल 7 जिल्द (जिल्द 7, अनुक्रमणी , डी ऐंडरसन द्वारा) लन्दन 1877 97 अनुवाद विभिन्न व्यक्तियों द्वारा 6 जिल्द लन्दन 1895 1907
दीघ निकाय सपादक टी डब्ल्यू रीज डेविड्स और जे ई कारपेंटर 3 जिल्द पाली टेक्स्ट सोसायटी, लदन 1890-1911 अनुवादक टी डब्ल्यू रीज डेविड्स 3 जिल्द सेक्रेड बुक्स ऑफ दि बुद्धिस्ट्स लन्दन 1899 1921। मज्झिम निकाय सपादक वी ट्रेंकनर एव आर चामर्स पाली टेक्स्ट सोसायटी 3 जिल्द लदन 1888 1896 अनुवाद लार्ड चामर्स 2 जिल्द सेक्रेड बुक्स ऑफ दि बुद्धिस्ट्स 1926 27
विनयपिटक सपादक एच ओल्डेनबर्ग, 5 जिल्द लदन 1879 83। अनुवाद आई बी हौर्नर 5 खड सेक्रेड बुक्स ऑफ दि बुद्धिस्ट्स लदन 1938 52

३ जैन

आयारंगसुत्त, श्वेतांबर जैन, संपादक एच जैकोबी पाली टेक्स्ट सोसायटी, लंदन 1882
उत्तराध्ययनसूत्र संपादक जार्ल चारपेंटियर उप्पसला, 1922
उवासगदसाव संपादक ए एफ रुडाल्फ हार्नले कलकत्ता 1890
ओवाइय (या औपपातिक सूत्र)अभयदेव की टीका सहित, संपादक मुनि हेमसागर आगमोदय समिति प्रकाशन
अंतगड दसाव ऐंड अणुत्तरोववाइय दसाव संपादक पी एल वैद्य, बंबई , 1932 अनुवादक एल डी बार्नेट, लंदन, 1907
कल्पसूत्र भद्रबाहु का, संपादक एच जैकोबी, लिपजिग, 1879
सूयगडम्, संपादक पी एल वैद्य, बंबई , 1928
स्थानांग सूत्र, अभयदेव की टीका सहित संपादक वेणिचंद्र सुरचंद्र 2 जिल्द, बंबई 1918 20

गौण रचनाएँ

आइवर फाइजर दि प्राब्लम ऑफ दि सेट्ठि इन बुद्धिस्ट जातकाज आर्किव ओरिएंटलानी प्राग xxii 238 265
आर एन मेहता प्री बुद्धिस्ट इंडिया बंबई 1939
ए एल बैशम हिस्ट्री ऐंड डाक्ट्रिन्स ऑफ दि आजीविकाज, लंदन 1951
एन सी बैनर्जी स्लेवरी इन एनशिएंट इंडिया दि कलकत्ता रिव्यू (अगस्त 1930) पृ 249 265
एफ मैक्सम्यूलर दि हिब्बर्ट लेक्चर्स 1878 लंदन 1880
जे जे मेयर उबर डस वेसेन डर अल्टिन डिस्चेन रेख्टसक्रिफ्टेन उंड ऐर वरहाल्टनिस आइनेन्डर उंड सू कौटिल्य लिपजिग 1927
टी डब्ल्यू रीज डेविड्स बुद्धिस्ट इंडिया लंदन 1903
डब्ल्यू एल वेस्टरमन्न दि स्लेव सिस्टम्स ऑफ ग्रीक ऐंड रोमन एंटीक्विटी फिलाडेल्फिया 1955
डी डी कोसम्बी एनशिएंट कोशल ऐंड मगध जर्नल ऑफ दि बांबे ब्रांच ऑफ दि रायल एशियाटिक सोसायटी बंबई न्यू सीरीज xxvii
बी सी ला इंडिया ऐज डिस्क्राइब्ड इन अर्ली टेक्स्ट्स ऑफ बुद्धिज्म ऐंड जैनिज्म लंदन 1941
यू० एन० घोषाल दि स्टेटस ऑफ शूद्राज इन दि धर्मसूत्राज इंडियन कल्चर कलकत्ता xiv 21 27

रिचर्ड फिक, दि सोशल आरगेनाइजेशन इन नार्थ ईस्ट इंडिया इन बुद्धाज टाइप कलकत्ता 1920
गेडाल्फ माडाल्फो, ग्रीक ऐटिच्यूड टु मैनुअल लेबर पास्ट ऐंड प्रेजेंट, स 6
वी एम आप्टे, सोशल ऐंड रैलिजस लाइफ इन दि गृह्यसूत्राज, बबई 1954
वी एस अग्रवाल इंडिया ऐज नोन टु पाणिनि, लखनऊ 1953
शिवनाथ बसु, स्लेवरी इन दि जातकाज, जर्नल ऑफ दि बिहार ऐंड उडीसा रिसर्च सोसायटी, पटना IX 369 375

5 मौर्यकालीन राज्य-नियत्रण और सेवि वर्ग

(लगभग तीन सो ई पू से लगभग दो सो ई पू तक)

मूल स्रोत

ग्रथ

कौटिल्य का *अर्थशास्त्र*, सपादक आर शामा शास्त्री तृतीय सस्करण मैसूर 1924 (जब तक अन्यथा न बताया गया हो इस पुस्तक में जो निर्देश आए हैं वे इसी ग्रथ के हैं) अनुवादक आर शामा शास्त्री तृतीय सस्करण मैसूर 1929। टीका सहित सपादित टी गणपति शास्त्री 3 जिल्द, त्रिवेंद्रम 1924 25। सपादक जे जाली और आर स्मिद्त जिल्द। लाहौर, 1924। अनुवादक आर शामा शास्त्री तृतीय सस्करण मैसूर 1929। अनुवादक डस अल्टिनडिस्वे बुक फाम वेल्ट उड सटैटस्लेबेन जे जे मेयर लिपजिग 1926

टीकाएँ

जयमगला (*अर्थशास्त्र के खड I के अत तक है पर कहीं कहीं छूटा भी है*), सपादक जी हरिहर शास्त्री जर्नल ऑफ ओरिएटल रिसर्च मद्रास XX XXIII
नय चद्रिका माधव यज्व (खड VII XII पर), सपादक उदयवीर शास्त्री लाहौर 1924
प्रतिपद पचिका भट्टस्वामिन् रचित (खड II पर प्रकरण 8 से) सपादक के पी जायसवाल और ए बनर्जी शास्त्री जर्नल ऑफ दि बिहार ऐंड उड़ीसा रिसर्च सोसायटी पटना XI XII

उत्कीर्ण लेख

अशोक के शिलालेख सपादक ई हुल्श cII 1 आक्सफोर्ड, 1925

विदेशियों के विवरण

जे डब्ल्यू मैक्रिंडल (1) एनशिएट इंडिया ऐज डिसक्राइब्ड इन क्लासिकल लिटरेचर, वेस्टमिंस्टर 1901 (II) एनशिएट इंडिया ऐज डिसक्राइब्ड बाई मेगस्थनीज ऐंड एरियन, कलकत्ता 1926 (III) एनशिएट इंडिया ऐज डिसक्राइब्ड बाई टेसियाज दि निडियन, लदन 1882

गौण रचनाएँ

आई जे सोराबजी सम नोट्स ऑन ■ अध्यक्ष प्रचार कौटिल्य अर्थशास्त्रम का खड II, इलाहाबाद 1914

एन सी बद्योपाध्याय कौटिल्य आर एन एक्सपोजिशन ऑफ हिज सोशल ऐंड पोलिटिकल थ्योरी कलकत्ता 1927

के वी रगस्वामी अय्यगर इडियन कैमरैलिज्म मद्रास, 1949

पी एल नरसू, दि इसेन्स ऑफ बुद्धिज्म, मद्रास 1912

बर्नहार्ड ब्रोलर कौटिल्य स्टुडियेन 3 जिल्द बान 1927 34

6 प्राचीन व्यवस्था का कमजोर पड़ना

(लगभग दो सौ ई पू से लगभग दो सौ ई सन तक)

मूल स्रोत

ग्रंथ

ड्रामाज ऑफ भास अविमारक बालचरित पचरात्र और प्रतिमानाटक, सपादक टी गणपति शास्त्री त्रिवेंद्रम 1912 15

दिव्यावदान सपादक ई बी कौवेल और एफ ए नील कैंब्रिज 1886

पन्नवणा सूत्र (मलयगिरि की टीका सहित) 2 जिल्द बनारस 1884

मनुस्मृति या मानव धर्मशास्त्र, सपादक वी एन माडलिक बबई 1886,
अनुवादक जी बुहलर, सेक्रेड बुक्स ऑफ दि ईस्ट xxv ऑक्सफोर्ड 1886
महाभाष्य ऑफ पतजलि, सपादक एफ किलहार्न 3 जिल्द बबई 1892 1909
महावस्तु, सपादक ई सेनार्ट, 3 जिल्द, पेरिस 1882 97
मिलिंदपहो, सपादक वी ट्रेंकनर, लदन 1928, अनुवादक टी डब्ल्यू रीज डेविड्स सेक्रेड बुक्स ऑफ दि ईस्ट xxxv xxxvi ऑक्सफोर्ड, 1890-4
युगपुराण, सपादक डी आर मनकद, वल्लभविद्यानगर, 1951
ललितविस्तर, सपादक एस लेफमन 2 जिल्द हैले 1902 1908
सद्धर्मपुडरीकसूत्र जिसमें सेंट्रल एशिया की पाडुलिपियों के पाठ भी हैं एन डी मिरोनोव के सपादक एन दत्त कलकत्ता *1952* अनुवादक एच कर्न सेक्रेड बुक्स ऑफ दि ईस्ट xxi ऑक्सफोर्ड, 1884।

उत्कीर्ण लेख

ल्यूडर की उत्कीर्ण लेखों की सूची, एपिग्राफिया इडिका X

गौण रचनाएँ

आर ई एम व्हीलर, रोम बियाड दि इपीरियल फ्रटियर्स पेलिकन सीरीज 1955
ई एच वार्मिंगटन दि कामर्स बिटविन दि रोमन एपायर ऐंड इडिया कैंब्रिज *1928*
ई डब्ल्यू हापकिंस दि म्युचुअल रिलेशस ऑफ दि फोर कास्ट्स एकार्डिंग टु दि मानव धर्मशास्त्र, लिपजिग 1881
ए डी पुसलकर, भास— ए स्टडी, लाहौर 1940
के पी जायसवाल हिस्ट्री ऑफ इडिया ई सन 150 से ई सन 350 लाहौर 1933
के वी रगस्वामी अय्यगर, (i) आस्पेक्ट्स ऑफ दि सोशल ऐंड पालिटिकल सिस्टम ऑफ मनुस्मृति लखनऊ 1949 (ii) राजधर्म मद्रास 1941
जी एफ इलयिन शूद्राज उड स्लावेन इन डेन अल्टिं डिस्चेन गेसेत्सबुचर्न साउजे त्सिसेनशैफ्ट (बर्लिन) 1952 स 2, पृ 94 107
डब्ल्यू डब्ल्यू टार्न दि ग्रीक्स इन बैक्ट्रिया ऐंड इडिया कैंब्रिज 1938
डी ■ सुलेकिन फडामेंटल प्राब्लम्स ऑफ दि पीरियडाइजेशन ऑफ एनशिएट इडिया, मेडीइवल इडिया क्वार्टर्ली *(अलीगढ) i स 3 4 46 58*
बी एन पुरी सम आस्पेक्ट्स ऑफ इकनामिक लाइफ इन दि कुषाण पीरियड इडियन कल्चर कलकत्ता xii

7 रूपांतरण की प्रक्रिया

(लगभग दो सौ से पाँच सौ ईसवी सन)

मूल स्रोत

ग्रंथ

अमरकोश या अमरकृत नामलिंगानुशासन भट्ट क्षीरस्वामी की टीका सहित, संपादक ए डी शर्मा और एन जी सरदेसाई पूना, 1941

कात्यायन स्मृति व्यवहार विधि एवं प्रक्रिया संबंधी नए पाठ सहित संपादन अनुवाद टिप्पणी और प्रस्तावना पी वी काणे बंबई 1933

कामन्दकीय नीतिसार संपादक आर एल मित्र , बिब्लिओथेका इंडिका कलकत्ता, 1884 अनुवादक एम एन दत्त, कलकत्ता 1896

कामसूत्र वात्स्यायनकृत, यशोधर की जयमंगला टीका सहित संपादक गोस्वामि दामोदर शास्त्री बनारस, 1929

जंबूद्वीप प्रज्ञप्ति शांतिचंद्र की टीका सहित बंबई , 1920

जयाख्य संहिता संपादक एंबर कृष्णाचार्य , गायकवाड ओरिएंटल सीरीज lxv बड़ौदा 1931

थेरगाथा अट्ठकथा (परमत्थदीपनी) धर्मपाल की टीका, संपादक एफ एल वुडवार्ड 2 जिल्द पाली टेक्स्ट सोसायटी लंदन 1940 52

नरसिंह पुराण द्वितीय संस्करण बंबई 1911

नाट्यशास्त्र भरत मुनि कृत अभिनव गुप्त की टीका सहित संपादक मनवल्लि रामकृष्ण कवि 3 जिल्द गायकवाड ओरिएंटल सीरीज, बड़ौदा, 1926 54 अनुवादक मनमोहन घोष कलकत्ता 1950

नारद स्मृति असहाय की टीका के उद्धरण सहित संपादक जे जाली कलकत्ता, 1885 अनुवाद जे जाली सेक्रेड बुक्स ऑफ द ईस्ट xxxiii, ऑक्सफोर्ड 1889

पंचतंत्र प्राचीनतम पाठ, कश्मीरी जिसका शीर्षक है तंत्राख्यायिका संपादक जे हर्टेल हार्वर्ड ओरिएंटल सीरीज xiv हार्वर्ड 1915 । ग्रंथ अपने प्राचीनतम रूप में संपादक एफ एडगर्टन पूना 1930 (निर्देश इसी ग्रंथ के दिए गए हैं)

पिंडनिर्युक्ति भद्रबाहु स्वामी कृत बंबई, 1918

बृहत् कल्पसूत्र और स्थविर आर्य भद्रबाहु स्वामिन् की मूल निर्युक्ति तथा संघदास गणि क्षमाश्रमण का भाष्य और टीका जिसका आरंभ मलयगिरि ने और समापन क्षेमकीर्ति ने किया 6 जिल्द भावनगर 1933 42

बृहत् संहिता वराहमिहिरकृत हिंदी अनुवाद सहित दुर्गाप्रसाद लखनऊ , 1884

वृहत् संहिता वराहमिहिरकृत, भट्टोत्पल की टीका सहित 2 खड, सपादक सुधाकर द्विवेदी बनारस 1895 7
बृहस्पति स्मृति (इस ग्रथ का अनुसरण किया गया है) सपादक के वी रगस्वामी अय्यगर गायक्वाड ओरिएटल सीरीज lxxxv बड़ौदा 1941 अनुवादक जे जाली सेक्रेड बुक्स ऑफ दि ईस्ट xxxiii ऑक्सफोर्ड 1889
मालविकाग्निमित्र, कालिदासकृत सपादक पी एस सने जी एच गोडबोले ऍड एच एस० उरसेकर बबई 1950
मृच्छकटिक शूद्रक कृत सपादक और अनुवादक आर डी करमारकर पूना 1937। अनुवादक आर पी आलिवर एलिनाय 1938
याज्ञवल्क्य स्मृति वीरमित्रोदय एव मिताक्षरा सहित चौखबा सस्कृत सीरीज, बनारस सवत 1986 ।
रघुवश,कालिदासकृत सपादक रघुनाथ नदर्गिकर बबई 1891
लकावतार सूत्र सपादक बुनियु नानजियो क्योटो 1923 । अनुवादक डी टी सुजुकी लदन 1932
वज्रसूची अश्वघोषकृत सुजितकुमार मुखोपाध्याय शातिनिकेतन 1950
विमानवत्थु अट्ठकथा (धम्मपालकृत परमत्थदीपनी का खड IV) सपादक ई० हार्डी पाली टेक्स्ट सोसायटी लदन 1901
विष्णुधर्मोत्तर महापुराण बबई विक्रम सवत 1969
विष्णुस्मृति या वैष्णव धर्मशास्त्र (नद पडित की टीका के उद्धरण सहित)
सपादक जे जाली बिब्लिओथेका इडिका कलकत्ता 1881 अनुवादक जे जाली, सेक्रेड बुक्स ऑफ दि ईस्ट vii ऑक्सफोर्ड 1880

चीनी ग्रथ

एच ए जाइल्स दि ट्रैवेल्स ऑफ फाहियान आर ■ रेकार्ड ऑफ बुद्धिस्टिक किंगडम्स (अनुवाद) कैंब्रिज 1923
जेम्स लेगि ए रेकार्ड ऑफ बुद्धिस्टिक किंगडम्स (चीनी भिक्खु फाहियान की यात्रा का विवरण) (अनुवाद) ऑक्सफोर्ड 1886
टी वाल्टर्स आन युएन साग्स ट्रैवेल्स इन इडिया सपादक टी डब्ल्यू रीज डेविड्स एव एस डब्ल्यू बुशेल,2 जिल्द लदन 1904 5
सैमुअल बील ट्रैवेल्स ऑफ फाहियान ऍड सुग यग (अनुवाद) लदन 1869

अन्य ग्रथ

एडवर्ड सी सचौ अलबेरुनीज इडिया (अनुवाद एव सपादन),लदन 1888

उत्कीर्ण लेख

जे एफ फ्लीट इसक्रिप्शस ऑफ दि अर्ली गुप्त किंग्स, CII III लदन 1888

गौण रचनाएँ

आर एन सेलेटोर लाइफ इन दि गुप्त एज बबई 1943
आर जी बसाक इडियन सोसायटी ऐज पिक्चर्ड इन दि मृच्छकटिक इडियन हिस्टारिकल क्वार्टर्ली कलकत्ता, V
आर जी भडारकर वैष्णविज्म शैविज्म ऐंड माइनर रेलिजस सेक्ट्स स्ट्रैसबर्ग 1913
आर सी मजुमदार एव ए एस अल्टेकर दि गुप्त वाकाटक एज लाहौर 1946
आर सी मजुमदार एव ए डी पुसलकर दि क्लासिकल एज बबई 1954
ई डब्ल्यू हापकिंस (i) दि रेलिजन्स ऑफ इडिया लदन 1895, (ii) दि ग्रेट एपिक ऑफ इडिया न्यू हेवेन 1901
ई पी ओ मरे दि एनशिएट वर्कर्स ऑफ वेस्टर्न धानभूम जर्नल ऑफ दि रायल एशियाटिक सोसायटी ऑफ बगाल कलकत्ता III क्रम vi 79 104
एच सी चकलादार सोशल लाइफ इन एनशिएट इडिया कलकत्ता 1929
एच सी रायचौधरी अर्ली हिस्ट्री ऑफ वैष्णव सेक्ट कलकत्ता 1920
ए बी कीथ दि साख्य सिस्टम आक्सफोर्ड 1919
एम ए मरे दि स्प्लेंडर दैट वाज इजिप्ट लदन 1949
एस के मैती दि इकनामिक लाइफ ऑफ नार्दर्न इडिया इन दि गुप्त पीरियड कलकत्ता 1957
के एस रामस्वामी शास्त्री स्टडीज इन रामायण बडौदा 1944
के जे विरजी एनशिएट हिस्ट्री ऑफ सौराष्ट्र बबई, 1952
जी एफ इलयिन ओसोबेनोस्टी राबस्त्वा व ड्रेवनीयइन्यि वेस्तनिक ड्रेवनीय इस्तोरी (मास्को लेनिनग्राद) 1951 स I पृ 33 52
जे एन बनर्जी दि डेवलपमेंट आफ हिंदू आइकोनोग्राफी कलकत्ता 1941
डी आर पाटिल कल्चरल हिस्ट्री फ्राम दि वायु पुराण पूना 1946
डी डी कोसबी दि वर्किंग क्लास इन दि अमरकोश जर्नल ऑफ ओरिएटल रिसर्च मद्रास XXIV पृ 57 69
रामशरण शर्मा भारतीय सामतवाद राजकमल प्रकाशन दिल्ली 1973
बी एस उपाध्याय इंडिया इन कालिदास इलाहाबाद 1947
बी सी ला हैवेन ऐंड हैल इन बुद्धिस्ट पर्सपेक्टिव कलकत्ता एव शिमला 1925
बी आर आर दीक्षितार दि गुप्त पालिटी मद्रास 1952

अनुक्रमणिका

(सस्कृत, पालि और प्राकृत शब्द)

इ

उ

ऋ

ए

ओ

क

श्र

स

ह

इ

उ

ऋ

ए

ऐ

ओ

क

क्ष

ग

घ

च

छ

ज

झ

ट

ड

त

द

भ

म

य

र

रामशरण शर्मा

जन्म 1 सितंबर 1920 बरौनी (बिहार) एम ए. पी एच डी (लन्दन) आरा भागलपुर और पटना के कॉलेजों में प्राध्यापन (1959 तक) पटना विश्वविद्यालय में इतिहास के विभागाध्यक्ष (1958-73) पटना विश्वविद्यालय में प्रोफेसर (1959) दिल्ली विश्वविद्यालय में प्रोफेसर तथा विभागाध्यक्ष (1973-78) जवाहरलाल नेहरू फैलोशिप (1969) भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद् के अध्यक्ष (1972-77) भारतीय इतिहास कांग्रेस के सभापति (1975-76) यूनेस्को की इंटरनेशनल एसोसिएशन फॉर स्टडी ऑफ कल्चर ऑफ सेंट्रल एशिया के उपाध्यक्ष (1973-78) बंबई एशियाटिक सोसायटी के 1983 के कैंपबेल स्वर्ण पदक से सम्मानित (नवंबर 1987) अनेक समितियों और आयोगों के सदस्य संप्रति भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद् के नेशनल फैलो और सोशल साइंस प्रोबिंग्स के संपादक मंडल के अध्यक्ष हैं।

प्रकाशित ग्रंथ *विश्व इतिहास की भूमिका* पटना 1951 52 *शूद्राज इन एंशिएंट इंडिया* द्वितीय संस्करण 1980, *आस्पेक्ट्स ऑफ पॉलिटिकल आइडियाज एंड इंस्टीट्यूशंस इन एंशिएंट इंडिया* द्वि स 1968, *लाइट ऑन अर्ली इंडियन सोसाइटी एंड इकानॉमी* 1966 *इंडियन फ्यूडलिज्म*, द्वि स 1980 *एंशिएंट इंडिया* द्वि स 1980 *इन डिफेंस ऑफ 'एंशिएंट इंडिया'* तीसरी आवृत्ति *सोशल चेंजेज इन अर्ली मिडिएवल इंडिया* चौथी आवृत्ति 1987 *मैटीरियल कल्चर एंड सोशल फॉर्मेशंस इन एंशिएंट इंडिया*, दूसरी आवृत्ति *पर्सपेक्टिव्स इन सोशल एंड इकनॉमिक हिस्ट्री ऑफ अर्ली इंडिया*, 1983 *अर्बन डिके इन इंडिया* (लगभग 300 ई से लगभग 1000 ई) 1989 *ओरिजिन ऑफ द स्टेट इन इंडिया*, 1989 [illegible] *ए सर्वे ऑफ रिसर्च इन सोशल एंड इकनॉमिक हिस्ट्री ऑफ इंडिया* 1987

हिंदी और अंग्रेजी के अतिरिक्त प्रो. शर्मा की पुस्तकें अनेक भारतीय भाषाओं और जापानी, फ्रांसीसी, जर्मन तथा रूसी आदि विदेशी भाषाओं में भी प्रकाशित हुई हैं।